दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड ग्यारह

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय

खंड ग्यारह

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. XI)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. XI ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-26-0
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण

डॉ. रघुवीर

(30 दिसंबर, 1902 - 14 मई, 1963)

भारतीय जनसंघ के आठवें अध्यक्ष

को समर्पित

परिचय

डॉ. रघुवीर

रावलपिंडी में 30 दिसंबर, 1902 को श्री मुंशीरामजी एवं श्रीमती जयावंती के घर एक बालक का जन्म हुआ। दंपती ने इस बालक का नामकरण किया—रघुवीर। यह बालक भविष्य में भाषा, साहित्य और संस्कृति का प्रखर विद्वान् बना और लोग सम्मानपूर्वक आचार्य रघुवीर कहने लगे, तब केवल उच्च शिक्षा प्राप्त करने और विश्वविद्यालयों में अध्यापन करनेवाले आचार्य नहीं कहलाते थे। जनमानस में स्वीकृति तो दूर की बात थी। आचार्य कहलानेवाले के लिए आचरण प्रधान होता था। आचार, विचार और उच्चार की कसौटी पर खरा उतरनेवाला ही आचार्य संबोधन प्राप्त करता था। डॉ. रघुवीर सच्चे अर्थों में आचार्य रघुवीर थे।

इनके पिता रावलपिंडी के एक विद्यालय में प्रधानाध्यापक थे। बाल्यावस्था में बालक रघुवीर की माँ का निधन हो गया। पिता ने रावलपिंडी में संस्कृत और अंग्रेज़ी का ज्ञान कराया और लालन-पालन किया। रावलपिंडी का इलाक़ा संस्कृत-ज्ञान के लिए विशेष रूप से जाना जाता था। प्राचीन युग में यह क्षेत्र 'उत्तरा पथ' के नाम से संबोधित होता है। इसके निकट कुभा नदी बहती थी, जिसके तट पर ऋषियों ने ऋग्वेद के कुछ सूक्तों की रचना की थी। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि का जन्म जिस शालातुर ग्राम में हुआ था, वह भी रावलपिंडी के समीप है। रावलपिंडी से विद्यालयी शिक्षा के उपरांत डी.ए.वी. महाविद्यालय, लाहौर से इन्होंने संस्कृत में स्नातक (प्रतिष्ठा) एवं स्नातकोत्तर की शिक्षा प्राप्त की। इस दौरान इन्हें 'मक्लोद काश्मीर संस्कृत' छात्रवृत्ति मिली। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ डॉ. रघुवीर ने 'लिपि विज्ञान' एवं 'प्राचीन भारत के इतिहास' में भी विशेषज्ञता प्राप्त की। इसी दौरान अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी, उर्दू सहित अन्य कई भारतीय भाषाओं को भी सीखा।

इतिहास के उस काल में लाहौर डी.ए.वी. महाविद्यालय स्वतंत्रता आंदोलन का

एक केंद्र था। यहाँ लाला लाजपत राय से प्रभावित विद्यार्थी अच्छी संख्या में थे। रघुवीर भी उन्हीं विद्यार्थियों में से एक थे। अंग्रेज़ी दासता के विरुद्ध कई स्तर पर संघर्ष हो रहे थे। विद्यार्थियों, नौजवानों का बड़ा समूह आंदोलन में भाग लेकर सीधे-सीधे ब्रिटिश सत्ता के प्रतिरोध में आवाज़ बुलंद कर रहा था। समूचे देश में ऐसे भी युवजन थे, जो ब्रिटिश राज्य के औपनिवेशिक सांस्कृतिक विमर्श का प्रत्याख्यान कर रहे थे। यह ऐसा संघर्ष था, जो बौद्धिक स्तर पर ही लड़ा जा सकता था। इसके लिए गहरे अध्यवसाय और श्रेष्ठ बौद्धिकता की अनिवार्यता थी। अंग्रेज़ी सत्ता ने भारतीय ज्ञान मीमांसा को हीन साबित कर मानसिक दासता भी स्थापित कर दी थी। इसलिए उनकी श्रेष्ठता को चुनौती देकर भारतवासियों में श्रेष्ठता-बोध पैदा करना आवश्यक था। इसके लिए अपनी ज्ञान परंपरा का अभिज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। डॉ. रघुवीर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इसी मोरचे के कर्मठ सिपाही बने। कहना न होगा कि देश की राजनीतिक आज़ादी के पश्चात् भी सांस्कृतिक आज़ादी का संघर्ष जिन महानुभावों ने जारी रखा, डॉ. रघुवीर उनमें अगली पंक्ति में गिने जाते हैं।

डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में अध्ययन के दौरान प्राचीन ग्रंथों, अप्रकाशित पांडुलिपियों के प्रति उनका आकर्षण पल्लवित-पुष्पित हुआ। इसी काल में इन्होंने वैदिक ज्ञान परंपरा का गहन अध्ययन किया और यजुर्वेद की 'कपिष्ठल संहिता' का संपादन किया। लाहौर में पढ़ाई पूरी कर वे कुछेक वर्ष अजमेर में रहे। फिर उच्च शिक्षा के लिए सन् 1928 में यूरोप चले गए। उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ़ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़' में पीएच.डी. उपाधि के लिए प्रवेश लिया। तदुपरांत लंदन विश्वविद्यालय में अपने शोध निर्देशक, संस्कृत विद्वान् प्रो. आर.एल. टर्नर से अनुमति लेकर उन्होंने हॉलैंड के प्रो. कालंड के निर्देशन में 'डॉक्टर ऑफ़ लैटर्स' की उपाधि प्राप्त की। लंदन विश्वविद्यालय में शोधकार्य के दौरान उन्होंने ईरानी विभाग के प्रो. एच.डब्ल्यू. बेली तथा एन.पी. जॉप्सन के साथ ईरानी, रूसी और लिथुआनियन का अध्ययन किया। उन्होंने रूसी, बुल्गार, गोथिक, लिथुआनियन और जेंद अवेस्ता भाषाओं की परीक्षा उत्तीर्ण की। शोधकार्य के साथ ही डॉ. रघुवीर ने लंदन विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा और पतंजलि का महाभाष्य पूर्ण मनोयोग से पढ़ाया।

प्राचीन भाषा एवं साहित्य का अध्ययन और अध्यापन डॉ. रघुवीर के लिए राष्ट्रोन्नति की बृहद सांस्कृतिक परियोजना का एक भाग था। इसके लिए विदेश में अध्ययन से आवश्यक था स्वदेश में अध्यापन। इस आशय से आचार्य रघुवीर ने सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर में संस्कृत भाषा एवं साहित्य पढ़ाना शुरू किया। जल्द ही वे संस्कृत विभाग के अध्यक्ष बनाए गए। आचार्य रघुवीर ने संस्कृत के अलावा रूसी और जापानी भाषा भी पढ़ाना शुरू किया। संभवत: वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्वतंत्रता से पहले रूसी और

जापानी पढ़ाना आरंभ किया। डॉ. रघुवीर के संबंध रूसी और जापानी भाषा के विद्वानों से थे। अंग्रेज़ी सरकार इसे संदेह की दृष्टि से देखती थी। परिणामतः उन्हें कारावास हुआ। कालांतर में इन्होंने 'सरस्वती विहार' संस्था बनाई, ताकि दुनिया भर के पुस्तकालयों में बिखरे प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान को संचित किया जा सके और यह धरोहर दुनिया एवं भारतवासियों को बताया भी जा सके। प्राचीन ज्ञान एवं दर्शन की आधारभूमि पर टिका भारतवर्ष डॉ. रघुवीर को दुनिया का सबसे श्रेष्ठ देश लगता था। 'सरस्वती विहार' के माध्यम से वे इस रिक्थ का अभिज्ञान कराने में प्राणपण से जुटे थे।

संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं का दुनिया की कई प्राचीन भाषाओं से साम्य दिखता है। आचार्य रघुवीर ने अवेस्ता का अध्ययन कर इसे प्रमाणित भी किया। 5-10 सितंबर, 1938 ई. को बेल्जियम के ब्रसेल्स शहर में 'अंतरराष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन' आयोजित हुआ। डॉ. रघुवीर ने उस सम्मेलन में दुनिया भर से पधारे विद्वानों के समक्ष वैदिक ग्रंथों और विभिन्न भारतीय भाषाओं में रामायण के अलग-अलग संस्करणों की रूपरेखा प्रस्तुत की। सबने इसकी भरपूर सराहना की। इस व्याख्यान के बाद डॉ. रघुवीर की कीर्ति पूरी दुनिया में फैली। परिणामस्वरूप ब्रिटेन और आयरलैंड की रॉयल एशियाटिक सोसायटी ने 'सरस्वती विहार' लाहौर की प्रशंसा की और इसकी लक्ष्यपूर्ति के लिए हर संभव सहयोग का आह्वान भी किया। सन् 1952 में जर्मन शासन के निमंत्रण पर आचार्य रघुवीर ने बॉन नगर में 'प्राच्य विद्या सम्मेलन' में पुनः भाग लिया। जर्मन विद्वानों के सम्मुख उन्होंने बृहद 'शतपिटक' की योजना रखी। इसके अंतर्गत उन सभी ग्रंथों के प्रकाशन की योजना थी, जिसके आधार पर मंगोलिया से इंडोनेशिया तक एक बृहत् संस्कृति का निर्माण हुआ था। इस यात्रा के दौरान वे इंग्लैंड, हॉलैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड और इटली गए। इन देशों के पुस्तकालयों में मंगोल, तिब्बती, ग्रीक, चीनी एवं संस्कृत की पांडुलिपियों का दिग्दर्शन किया। अपने ज्ञान के आधार पर उन्होंने प्रमाणित किया कि तिब्बत, चीन, मंगोल, मांचुदेश, कोरिया, जापान, श्रीलंका, बर्मा, थाईदेश, लावदेश, वियतनाम, कंबुज, मलेशिया, इंडोनेशिया सहित अनेक देशों के साहित्य पर संस्कृत का गहरा असर है। सितंबर 1952 में लंदन में आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय भाषा विज्ञान सम्मेलन' में भाग लेकर वे भारत लौट आए।

सन् 1934 में 'सरस्वती विहार' की स्थापना के साथ ही आचार्य ने 'जर्नल ऑफ़ वैदिक स्टडीज़' शोध पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। प्रो. ए.सी. वूल्नर, प्रो. ए.बी. कीथ, डॉ. एजर्टन, प्रो. लूई रनू सहित कई विद्वान् इसके संपादन से संबद्ध थे। प्राचीन पांडुलिपियों एवं ग्रंथों के प्रकाशन के लिए इन्होंने जून 1936 में 'आर्य भारती मुद्रणालय' की स्थापना की। इस मुद्रणालय से 'सरस्वती विहार ग्रंथमाला' के अंतर्गत कई ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। देश के बँटवारे के पश्चात् 'सरस्वती विहार' नागपुर से काम करने लगा।

सन् 1956 में नई दिल्ली में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इसका उद्‌घाटन किया।

भाषा और साहित्य के मोरचे पर इस प्रकार सक्रिय रहनेवाले आचार्य रघुवीर राष्ट्रभाषा हिंदी के एक महत्त्वपूर्ण पक्षकार थे। हिंदी में पारिभाषिक और वैज्ञानिक शब्दावली के अभाव को दूर करने के लिए संस्कृत के आधार पर लगभग 4 लाख नए शब्दों का निर्माण किया था। वे 24 अप्रैल, 1948 को मध्यप्रांत से संविधान सभा के सदस्य मनोनीत हुए। सन् 1952 से 1962 तक कांग्रेस पार्टी की तरफ़ से राज्यसभा के सदस्य भी रहे। सन् 1962 में पं. जवाहरलाल नेहरू से देश की सीमाओं की रक्षा के प्रश्न पर आचार्य रघुवीर की मत-भिन्नता बढ़ती गई। परिणामस्वरूप उन्होंने कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र दे दिया और जनसंघ में शामिल हुए। दिसंबर 1962 में भारतीय जनसंघ ने उन्हें अध्यक्ष बनाया। मई 1963 में सोशलिस्ट पार्टी की तरफ़ से डॉ. राममनोहर लोहिया चुनाव लड़ रहे थे। जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में आचार्य रघुवीर उनके पक्ष में चुनावी सभाओं को संबोधित कर रहे थे। इसी क्रम में 14 मई को कानपुर के पास एक पेड़ से उनकी गाड़ी टकरा गई। सिर में अधिक चोट आई और फिर उन्हें बचाया नहीं जा सका। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने दिसंबर 1963 को अहमदाबाद राष्ट्रीय अधिवेशन में कहा, ''उन्होंने कार्यकर्ताओं को झकझोरकर खड़ा कर दिया था, किंतु हम लोगों का दुर्भाग्य है कि पिछले मई में जब जौनपुर के चुनाव आंदोलन से लौटकर फर्रुखाबाद जा रहे थे, उस समय मोटर दुर्घटना में काल ने उनको हमसे छीन लिया, जनसंघ के ऊपर यह बड़ा वज्राघात था, किंतु जो विधि का विधान है उसके सम्मुख सर झुकाने के अतिरिक्त कोई और चारा रहता नहीं। उनके निधन की ख़बर सुनकर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा था, ''वे राजनीति को पावन करने आए थे।'' यह वक्तव्य आचार्य रघुवीर के व्यक्तित्व और कर्तव्य पर सटीक बैठता है।

—राजीव रंजन गिरि

संपादकीय

दीनदयाल संपूर्ण वाङ्मय का यह एकादश खंड 1963-64 का है। भारतीय जनसंघ के इतिहास में यह समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारत के इतिहास में भी यह एक युग का संक्रांतिकाल है, देश में प्रथम ग़ैर-कांग्रेसवाद का चुनाव 1963 में हुआ। जौनपुर से पं. दीनदयाल उपाध्याय, अमरोहा से आचार्य कृपलानी तथा फर्रूखाबाद से डॉ. राम मनोहर लोहिया, ग़ैर-कांग्रेस दलों के साझे प्रत्याशी थे। यह रेखांकनीय उपचुनाव था। डॉ. लोहिया व आचार्य कृपलानी विजयी हुए तथा दीनदयालजी चुनाव हार गए। देश की राजनीति में पं. जवाहर लाल नेहरू की नीतियों का विरोध परिपक्व हो रहा था। परिवर्तन सन्निकट था। इन चुनावों में एक बड़ी क्षति हुई, महान् भाषाविद् एवं भारतविद् आचार्य डॉ. रघुवीर की चुनाव प्रचार के दौरान कार-दुर्घटना में मृत्यु हो गई। वे थोड़े ही समय पूर्व भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बाद भारतीय जनसंघ को पुनः एक गहरा धक्का लगा था।

चीन के आक्रमण एवं भारत की पराजय ने पं. नेहरू को तोड़ दिया था। इस ऐतिहासिक उपचुनाव में कांग्रेस की पराजय वस्तुतः पं. जवाहरलाल नेहरू की पराजय थी। 1964 में ही उनका भी देहावसान हो गया।

दीनदयालजी की ऐतिहासिक विदेश यात्रा हुई, विश्व-पटल पर दीनदयालजी का व्यक्तित्व सामने आया। मेनचेस्टर गार्जियन ने लिखा—"एक ध्यान देने लायक व्यक्ति।" इन संदर्भों की पर्याप्त सामग्री इस खंड में है। स्वयं दीनदयालजी ने इस विषय में चार आलेख लिखे हैं।

1964 में एक और कालजयी कार्य हुआ। दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का निरूपण किया। उनके बौद्धिक वर्ग, भाषण एवं 'सिद्धांत व नीति' प्रलेख इस खंड का हिस्सा हैं। ग्वालियर का स्वाध्याय शिविर ऐतिहासिक था, उसका भी परिशिष्ट दिया है।

पूरी सामग्री संकलित हुई है।

विदेशनीति एवं अर्थनीति पर हर वर्ष के समान ही दीनदयालजी ने इन दोनों वर्षों में भी पर्याप्त लेखन किया है। भाषा की समस्या, चीनी आक्रमण एवं कम्युनिस्ट पार्टी पर दीनदयालजी निरंतर बोलते रहे हैं। इस खंड में भी अपेक्षित सामग्री संकलित हुई है। मीनू मसानी के बयान के कारण स्वतंत्र पार्टी से गठबंधन तोड़ने का सिद्धांतवादी एवं साहसिक निर्णय दीनदयालजी ने लिया। परिष्कृत राजनीति का उनका अभियान निरंतर चलता रहा, जौनपुर के चुनाव में भी।

1963 में राजस्थान के अजमेर संघ शिक्षा वर्ग एवं 1964 के उदयपुर संघ शिक्षा वर्गों के चार बौद्धिक वर्ग इस खंड में हैं। 1964 के बौद्धिक वर्ग ऐतिहासिक हैं, इन्हीं में सबसे पहले 'एकात्म मानववाद' का विशद् विवेचन हुआ है।

दीनदयालजी का कर्तृत्व क्रमशः उनके राजनीतिक व्यक्तित्व को गढ़ रहा था। राजनीतिक व्यक्तित्व का भी एक नवीन अर्थ उन्होंने उल्लिखित किया, 1964 के संघ शिक्षा वर्ग में ही उन्होंने स्वयं को 'राजनीति में संस्कृति का राजदूत' कहा था।

इस महत्त्वपूर्ण खंड की भूमिका लिखने का निवेदन भारत माता मंदिर के अधिष्ठाता स्वामी सत्यमित्रानंदजी से किया था, उन्होंने असमर्थता जाहिर की तथा दीनदयालजी के लिए श्रद्धांजलि एवं प्रतिष्ठान के लिए शुभकामनाएँ लिख भेजी। यह उनका आशीर्वाद था, लेकिन खंड विशेष की भूमिका तो यह नहीं हुई। मैंने दत्तोपंत ठेंगड़ीजी के सहयोगी रहे श्री रामदास पांडे से चर्चा की, उन्होंने स्वामी सत्यमित्रानंदजी के विद्वान् शिष्य स्वामी गोविंद गिरी महाराज का परिचय करवाया, नितांत व्यस्तताओं में उन्होंने मिलने का समय दिया तथा तीन माह लगाकर सांगोपांग भूमिका लिखी, निश्चित ही यह ईश्वर का आशीर्वाद था। 'वह काल' का आलेखन डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने बहुत परिश्रमपूर्वक किया, आभारी हूँ।

शुभम्

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

राष्ट्रधर्म का दीपस्तंभ

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

अर्थात् उन अत्यंत श्रेष्ठ पुण्यात्मा कवियों की जय हो, जिनका काव्यरस सिद्ध है और जिनकी कीर्तिरूप काया को जरा एवं मरण का कोई भय नहीं है।

हमारे देश के महनीय मनीषी स्व. पं. दीनदयालजी उपाध्याय के समग्र वाङ्मय के इस ग्यारहवें खंड का अवलोकन करते समय संस्कृत का उपरोक्त सुभाषित मुझे बार-बार याद आता रहा। कवि शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में 'क्रांतदर्शी विद्वान् विचारक' ऐसा भी होता है। जिनके जीवन का एक क्षण समष्टि के लिए सत्कर्म हेतु ही सार्थक हुआ, ऐसे पुण्यात्मा तथा मातृभूमि की भक्ति का रस जिनके व्यक्तित्व, कृति तथा उक्ति से निरंतर निर्झरित होकर कोटि-कोटि अनुयायियों में सिद्ध हो गया और एकात्मक मानवदर्शन जैसा कालजयी चिंतन प्रदान कर, जो यश उन्होंने प्राप्त किया है, उसका नाश होने के डर की बात ही क्या, अपितु दिन प्रतिदिन, उत्तरोत्तर उसकी महत्ता विश्व पर अपना गहरा प्रभाव जमाएगी, ऐसा सबकुछ उनके जीवनदर्शन में समाहित है। उस वाङ्मय सूर्य की एक प्रखर किरण यह एकादश खंड है।

पं. दीनदयालजी का नाम मैंने सर्वप्रथम मेरे माध्यमिक विद्यालयीन जीवन में सुना। उनकी छवि लेकर 'कच्छ करार तोड़ दो, वरना गद्दी छोड़ दो' के नारे लगाते हुए हमारे जन्मग्राम में एक मोरचे में सहभागी होने की अमिट स्मृति मेरे मन में आज भी अंकित है। 1965 में पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में उनके बौद्धिक वर्ग के श्रवण का भी लाभ हुआ। तत्पश्चात् उनके व्यक्तित्व एवं विचारों का अध्ययन भी चलता ही रहा। प.पू. श्रीगुरुजी से मैं आरंभ से ही अत्यंत प्रभावित रहा हूँ। सभी के विचारों की तुलना पू. श्रीगुरुजी के

विचारों से करते रहना मेरी लगभग आदत ही हो गई थी। इसके परिणामस्वरूप पिछली सदी के नौवें दशक के आरंभ में स्व. दत्तोपंत ठेंगडीजी से प्रथम बार मिलते ही मैं पूछ बैठा, 'प. श्रीगुरुजी की विचारधारा शुद्ध स्वरूप में केवल दो विचारकों में मुझे प्रतीत होती है—एक पं. दीनदयालजी और दूसरे श्री दत्तोपंत ठेंगडीजी। मेरा तो यह निश्चित मत है, परंतु यह सही है अथवा नहीं? यह जानने के लिए मैं अत्यंत उत्कंठित हूँ।' मेरे मन में इन तीनों के लिए अपार आदर रहा है और अब मैं एक और नाम मेरी इस सूची में जोड़ता हूँ—वह है स्व. श्रद्धेय अशोक जी सिंघल का। यह मेरा पं. दीनदयालजी के साथ मानसिक अनुबंध रहा है। अस्तु।

पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के ग्यारहवें खंड में 21 परिशिष्टों सहित कुल 97 प्रकरण हैं। इनमें साप्ताहिक ऑर्गनाइज़र के 55 लेख, साप्ताहिक पाञ्चजन्य के 28 लेख, संघ शिक्षा वर्ग में दिए 6 बौद्धिक, टाइम्स ऑफ़ इंडिया के 4 लेख, एक पुस्तिका 'सिद्धांत और नीति' भारतीय जनसंघ की वार्षिक सभा का एक प्रतिवेदन, 'राष्ट्रधर्म' का एक लेख और राष्ट्रीय महामंत्री के नाते किया हुआ एक और प्रतिवेदन ऐसे कुल मिलाकर यह 97 प्रकरण होते हैं। ईसवी सन् 1963 और 64 की कालावधि में उस महापुरुष के द्वारा जो कहा और लिखा गया, उसके समग्र संकलन के रूप में यह अमूल्य विचारधन हमें उपलब्ध होता है। इस समृद्ध विचारधन का अवलोकन करते समय उस महापुरुष के दीप्तिमान पहलू हमारी दृष्टि के समक्ष साकार हो उठते हैं। उन सभी का पर्याप्त विचार तो समयाभाव से संभव नहीं, पर उनमें से कुछ प्रतिमाएँ अत्यंत प्रखर आलोक के साथ मनश्चक्षुओं के समक्ष सजीव हो उठती हैं। उनका सुभग दर्शन कराना प्रसंगोचित होगा, यथा—

कालजयी दार्शनिक

मनुष्य अपनी इंद्रियों से जो कुछ भी करता है, उन क्रियाओं के पीछे कुछ मानस प्रेरणाएँ होती हैं। मन में उठनेवाली और इंद्रियों को प्रेरित करनेवाली इन प्रेरणाओं का आधार व्यक्ति के अंतरंग में सुस्थिर भावनात्मक निष्ठाएँ होती हैं। ये निष्ठाएँ प्राय: परंपरा से चली आती हैं और बाल्यकाल में ही हमारे अंत:करण में दृढमूल हो जाती हैं। अपवादात्मक थोड़े प्रसंगों में व्यक्ति इन पारंपरिक निष्ठाओं को अपने अध्ययन के आधार से, तर्क बुद्धि से परखता है। इस बौद्धिक परीक्षा से कभी-कभी ये निष्ठाएँ थोड़ी परिवर्तित होती हैं अथवा कभी पूरी ही बदल जाती हैं। तर्क बुद्धि के आधार से बिना परखे इन निष्ठाओं को स्वीकार करनेवाले असंख्य अनुयायी प्राय: समाज में दृग्गोचर होते हैं। जो स्वयं तर्काधिष्ठित बौद्धिक चिंतन से इन निष्ठाओं में कुछ नवीन प्रक्रिया अथवा परिभाषा उपलब्ध करा देते हैं, वे दार्शनिक कहलाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हर

दार्शनिक नया सिद्धांत प्रदान करे। जगद्गुरु आदिशंकराचार्य अद्वैतवाद के दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध हैं। किंतु यह अद्वैत सिद्धांत उनका अपना नहीं। अद्वैत सिद्धांत तो वेद और उपनिषदों में पहले से ही प्रतिपादित है। श्री शंकराचार्यजी की विशेषता इस सिद्धांत को खोज निकालना, वेद-वेदांत के सभी वाक्यों की उसी के अनुसार संगति बिठाना, इस संगति के ऊपर उठाए गए आक्षेपों का तर्कपूर्ण खंडन करना, सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए मायावाद जैसी नूतन प्रक्रिया एवं भाषा प्रदान करना और इस सिद्धांत के प्रचार के लिए प्रबोधनक्षम महात्माओं का प्रशिक्षण करना, इसमें है। अत: आज वेदांत शाखा के सर्वोच्च भाष्यकार 'दार्शनिक' के रूप में वे सुप्रतिष्ठित हैं।

भारतीय राष्ट्र के संरक्षण, संवर्धन आदि सभी कल्याणकारी, कार्यों के लिए भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। जनसंघ के कार्यकर्ता केवल चुनाव जीतनेवाली पार्टी के, वेतनभोगी अथवा अवैतनिक सेवक न रह जाएँ, उनके छोटे-से-छोटे कार्य के पीछे उदात्त प्रेरणा हो और उस प्रेरणा के पीछे सृष्टि के पिंड ब्रह्मांड का चिंतन करके अत्यंत सुनिश्चित दृढ सिद्धांत हो, जो छोटे-से-छोटे कार्य को भी आध्यात्मिक मूल्य प्रदान कर दे, ऐसे 'एकात्मक मानव दर्शन' जैसे श्रेष्ठतम दर्शन को भारतीय जनसंघ की वैचारिक नींव में रखकर पंडित दीनदयालजी ने महानतम कार्य किया है। उसकी पूरी समीक्षा होना अभी शेष है। किंतु हर चिंतनशील व्यक्ति को तो एकात्म मानवदर्शन का अध्ययन करते समय यही प्रतीत होता है कि श्रद्धेय पंडितजी के इस अनुपम उपहार ने जनसंघ विचार को अमृतरस प्रदान कर दिया और इस दर्शन के द्रष्टा के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी को 'कालजयी दार्शनिक' बना दिया।

मेरा सौभाग्य है कि एकात्म मानव दर्शन का यह अत्यंत प्रगल्भ विचार जिस काल खंड में पंडित दीनदयालजी ने प्रतिपादित किया, उसी काल खंड के इस ग्रंथ पर जैसे गंगाजी से जल लेकर गंगाजी की पूजा की जाती है, वैसे उनके ही विचारों से, उन्हीं की वाङ्मय कृति की अर्चना करने का अवसर मुझे मिला। उनके अत्यंत पंचदश खंडात्मक वाङ्मय में एकात्मक मानववाद प्रथमत: इसी खंड में उपलब्ध होता है। इस ग्रंथ में भी वह प्रथम बार प्राप्त होता है। (पृ. 190) पर—"हम न पूँजीवाद को मानते हैं, न समाजवाद को, हम तो एकात्मकवाद को मानते हैं। एकता-संघता को मानते हैं। हममें एक आत्मा है। इस एकात्म्य में दैवी संपत्ति है। हम दैवी भावों को प्रमुख मानकर, आधार मानकर प्रगति करते हैं।" इस बात को आगे कुछ विस्तार के साथ उन्होंने 'सिद्धांत और नीतियाँ' के अंतर्गत स्पष्ट किया है। 'हमारा आधार एकात्मक मानव है, जो अनेक एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद (Intergal Humanism) के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विचार करना होगा।' (पृ. 237)

इसी एकात्म मानववाद की संकल्पना का कुछ विस्तार उन्होंने ग्वालियर के कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर में किया। भारतीय संस्कृति के अनुरूप एकात्म मानववाद की संकल्पना पाश्चात्य अनेक वादों से कैसे भिन्न है, इसका प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं– ''पश्चिम की समाजवाद और पूँजीवाद की विचारधाराओं में मनुष्य केवल एक आर्थिक इकाई है। यह खंडित और अपर्याप्त दृष्टिकोण है और इससे एकांगी सिद्धांतों का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति में मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक और मानसिक आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया गया है। इस आधार पर तैयार कार्यक्रम निश्चय ही चिरस्थायी होंगे।'' (पृ. 356)

वस्तुतः उपाध्यायजी का यह विचार वेद प्रणीत है। वेद वाङ्मय के ही सारभूत विचार, जिसे वेदांत कहते हैं, ऐसे उपनिषदों ने संपूर्ण सृष्टि की एकात्मकता का प्रतिपादन किया है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' नेह नानास्ति कञ्चन (बृ. 4.41.19) याने सृष्टि के रूप में प्रतीत होनेवाला संपूर्ण दृश्य केवल ब्रह्म का ही आविष्कार है। इसमें प्रतीत होनेवाली विविधता एक ही शक्ति का विलास है। इस सिद्धांत को पंडितजी ने सीधे अपने शब्दों में अनूदित किया है। विस्तृत होने पर भी पश्चिमी दर्शन और एकात्म मानवदर्शन की मौलिक भिन्नता जानने के लिए यह परिच्छेद पठनीय है।''इस प्रकार हमारी प्रकृति ब्रह्मनिष्ठ है, जिनको हम देख नहीं पाते, ऐसे सबको—संपूर्ण सृष्टि को—केंद्र मानकर चलते हैं। हम इस केंद्र की ओर चलते हैं, वे बाहर की ओर चलते हैं। केंद्र की ओर चलने से हम केंद्र के निकट आते हैं। वहाँ जितने व्यक्ति उतने ही केंद्र हैं, वे केंद्र से बाहर चलते हैं। अतः केंद्र से दूर चले जाते हैं। हमारे यहाँ केंद्र ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म कुछ भी कहें— है। इसलिए हम सब में एक आत्मा मानते हैं। पश्चिम वाले सबको यंत्रवत् मानते हैं, समाज भी उनके लिए एक यंत्र है। हम समाज, राज्य, राष्ट्र सब में ईश्वर या चैतन्य मानते हैं। इस संपूर्ण विश्व में एक चैतन्य की कल्पना करते हैं—ईश्वर सब में मौजूद है। हम आत्मवादी हैं, वे अनात्मवादी हैं, जड़वादी हैं। हम समाज राष्ट्र को भी आत्म-ईश्वर का रूप मानकर चलते हैं, वे केवल यंत्रवत् राष्ट्र की कल्पना लेकर चलते हैं।' (पृ. 191)

ईशावास्य उपनिषद् के आरंभ में ही 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' आत्मैवेदं सर्वम् (छां. 7.25.2) में तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छां. 6.114.1) में भी यही बात कही है। याने इस अखिल सृष्टि में ब्रह्मा से लेकर चींटी तक जो कुछ भी है ईश्वरमय अथवा ब्रह्ममय ही है, ऐसा प्रतिपादन किया गया। इसी उपनिषद् में आगे भी यह पुनः स्पष्ट किया गया कि संपूर्ण अस्तित्व एक ही चैतन्यशक्ति का विलास है। दो तत्त्वों का अस्तित्व ही नहीं है। सबकुछ मुझमें है और सबमें मैं ही हूँ, यही पूर्ण ज्ञान है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति,
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।

उपनिषदों का यह अद्वैत ही एकात्म मानवदर्शन का मूल आधार है। और उपनिषदों का यह अद्वैत सिद्धांत अद्यतन पदार्थ विज्ञान भी मान्य कर रहा है। जगद्विख्यात नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डॉ. फ्रिटजॉफ काप्रा अपने सुविख्यात ग्रंथ Tao of Physics में कहते हैं—

"The most important characteristic of the eastern world view is the basic oneness. All things are seen as interdependent and inseparable parts of the 'cosmic whole', as different manifestations of the ultimate reality. As we study the various models of subatomic physics, we shall see that they express again and again, in different ways, the same insight that the constituents of matter and the basic phenomena involving them are interconnected, interrelated and interdependent; they cannot be understood as isolated entities but only as integrated part of the whole."

[पूरब की दुनिया के दृष्टिकोण की सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता इसकी एकात्मता है। सभी चीज़ें एक-दूसरे पर निर्भर और 'संपूर्ण ब्रह्मांड' के अविभाज्य अंश के रूप में देखी जाती हैं, एक ही परमसत्य के बहुविध प्रकटीकरण के रूप में। यदि हम सूक्ष्माणु भौतिकी के विभिन्न प्रारूपों का अध्ययन करें तो हम बार-बार और अलग-अलग ढंग से उसी अंतर्दृष्टि को प्रकट होते देख सकते हैं कि द्रव्य के घटक और उनकी भागीदारी वाली मूलभूत घटना सभी परस्पर संबद्ध, परस्पर संबंधित और एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उन्हें अलग-अलग घटकों के रूप में नहीं, बल्कि संपूर्ण और उसके अविभाज्य अंश के रूप में ही समझा जा सकता है।]

वेदांत शास्त्र में अंतिम सिद्धांत के रूप में सर्व ब्रह्मवाद को स्वीकार किया गया। इसी को 'चिदविलास' वाद की भी संज्ञा दी गई। सारा अस्तित्व एक ही शक्ति का विविध रूपों में विस्तार है। यह इसकी मूल धारणा है। अद्वैत वेदांत में सिद्धांत के ब्रह्म और आत्मा समानार्थक पर्याय माने जाते हैं। उसके अतिरिक्त अन्य किसी तत्त्व का अस्तित्व नहीं। यह बात वेदांत के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'योगवासिष्ठ' में विस्तार से निरूपित है, यथा—

चिदिहास्ति हि चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च।
चित्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः।।
चिच्चेत्यकलिता बन्धस्तन्मुक्ता मुक्तिरुच्यते।
चिदचेत्या किलात्मेति सर्वसिद्धान्तसंग्रहः।।'

(ल.यो.वा. उपराम 5/54)

एक ही चैतन्यमय शक्ति के विलास के रूप में सारा विश्व-ब्रह्मांड आत्मज्ञानोत्तर प्रतीत होता है, यह इसका सार है। अत्यंत वेग से आधुनिक विज्ञान भी इसी दिशा में आगे बढ़ रहा है।

'Each man is not, what to so many scientists he has seemed to be, fortuitous concatenation of Physical forces, but is rather a ripple on the mighty ocean of spirit, as individual ripple, small and feeble, yet sharing in the nature of the whole and not wholly detached from it.' (Mc Dougall-Religion and the Science of Life P. 16)

[प्रत्येक मनुष्य वही नहीं है, जो वह कई वैज्ञानिकों को दिखाई देता है, यानी भौतिक शक्तियों की सांयोगिक शृंखलाबद्धता। इसके इतर वह चेतना के महासागर पर एक लहर भी है, एक वैयक्तिक लहर, छोटी-सी और नाचीज़, प्रकृति की संपूर्णता में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करते हुए और उससे पूरी तरह असंपृक्त भी नहीं। (मैक डॉगल, रिलीजन एंड द साइंस ऑफ लाइफ, पृष्ठ 16)]

आर्थर एडिंगटन, मैक्स प्लैंक, आइंस्टीन, श्रॉडिंगर, हेज़नबर्ग, फ्रिट्जॉफ काप्रा आदि श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के अनुसंधान एवं लेखन से भी इसी सिद्धांत की अधिकाधिक पुष्टि होती जा रही है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। यह सब विस्तार से इसलिए जानना आवश्यक है कि किस प्रकार 'एकात्मक मानवदर्शन' भारतीय संस्कृति से और आधुनिक विज्ञान से पूर्णतया समर्थित है, यह सहजता से समझ में आ जाए। साथ-साथ इस बात का भी विश्वास हो जाए कि किस तरह यह विचारधारा सर्वनाशक काल के ऊपर भी विजय प्राप्त करके शाश्वत बनी रहेगी।

किसी भी उत्तम दार्शनिक की विशेषता यह होती है कि वह केवल परंपरा से प्राप्त विचार को ग्रहण करके वैसे ही उसका प्रतिपादन करने के बजाय अपनी ओर से उसमें विशेष परिभाषा, परिष्कार अथवा प्रक्रिया जोड़ने का योगदान दे। वेदांत के आत्मविचार को ग्रहण करते हुए पंडित दीनदयालजी ने काशी के मौलिक तत्त्वचिंतक पंडित बद्रिसाह ठुलधारिया की विलक्षण कृति 'दैशिकशास्त्र' से उनकी विचारधारा का सार ग्रहण कर एकात्म मानवदर्शन को राष्ट्रधर्म की नींव के रूप में विराजमान कर दिया। उनके चिंतन का सुंदर सार देखिए, 'विश्व में आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई है 'राष्ट्र'। अत: राष्ट्र की दृष्टि से भी विचार करें तो राष्ट्र के लिए भी चार बातों की आवश्यकता रहती है। प्रथम आवश्यकता है देश। देश, भूमि और जन दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं है। किसी भूमि पर एक जन (समाज) रहता हो और वह उस भूमि को माँ के रूप में पूज्य समझे, तभी वह देश कहलाता है। जैसे दक्षिणी ध्रुव में कोई नहीं रहता, तो वह देश नहीं है। किंतु भारत में हम रहते हैं, हम इसे माँ मानते हैं, इसलिए यह देश है। दूसरी आवश्यकता है, सबकी इच्छाशक्ति याने सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी एक व्यवस्था जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं—इसके लिए हमारे यहाँ सबसे अच्छा शब्द प्रयुक्त हुआ है 'धर्म'। और चौथी है जीवन-आदर्श। इन चारों का समुच्चय

याने 'राष्ट्र'। जिस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समुच्चय से व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है।' (पृ. 197) इसी लेख में व्यक्ति और समूह के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का संपादन करना कैसे आवश्यक और संभव है, इसका भी विचार विद्वान् लेखक ने किया है, जो मूल में ही द्रष्टव्य है।

उनके द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र के स्वाभाविक चैतन्य याने 'चिति' का अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचार अभ्यसनीय है। इसी राष्ट्र की चिति को स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्र संजीवनी अध्यात्म शक्ति अथवा Life-blood कहा है। वे कहते हैं—

"Our life blood is spirituality. If it flows clear, if it flows strong and pure and vigorous, everything is right; social, any other material defects, even the poverty of the land, will all be cured if that Life-blood is pure."

[हमारे जीवन का रक्त आध्यात्मिकता है। यदि यह अबाध रूप से बहता रहे, यदि यह मज़बूती और शुद्धता और जीवंतता से बहता रहे तो सभी चीज़ें सही रहेंगी; सामाजिक और अन्य किसी भी तरह की विकृतियों, यहाँ तक कि देश की दरिद्रता का भी उपचार किया जा सकेगा, यदि जीवन-रक्त शुद्ध रहे तो।]

इस प्रकार का यह विज्ञान से प्रमाणित, परंपरासम्मत तथा राष्ट्र के लिए उन्नायक एवं विश्वकल्याणकारी विचार देकर पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी ने 'कालजयी दार्शनिक' के रूप में अपना स्थान निर्माण किया। केवल राजकीय कार्यकर्त्ताओं को ही नहीं अपितु किसी भी अंग से राष्ट्र सेवा के कार्य में लगे हुए कार्यकर्ताओं को इसका अध्ययन करना नितांत आवश्यक है। इसका अध्ययन करनेवाले किसी भी कार्यकर्ता का राष्ट्रसेवा का कोई भी काम ईश्वर की पूजा के रूप में आध्यात्मिक साधना बन सकती है। इस विचार की महत्ता लेखक के ही शब्दों में, ''एकात्म मानव विचार भारतीय और भारत-बाह्य सभी चिंतनधाराओं का सम्यक् आकलन करके चलता है। उनकी शक्ति और दुर्बलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है, जो मानव को अब तक के उसके चिंतन, अनुभव और उपलब्धि की मंज़िल से आगे बढ़ा सके।''

राष्ट्र के जागरूक प्रहरी

पंडित दीनदयालजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आदर्श रहे। 1936 में मा. भाऊराव देवरसजी ने कानपुर में संघ की प्रथम शाखा का शुभारंभ किया, उस शाखा के प्रथम स्वयंसेवक पं. दीनदयालजी रहे। तब से उनके अतीव दुःखद निधन तक मा. भाऊरावजी का उनसे अटूट संबंध रहा। इतने प्रदीर्घ काल तक इतनी निकटता से उनके जीवन का

अवलोकन करनेवाले मा. भाऊरावजी जैसे ज्येष्ठ एवं अधिकारी मार्गदर्शक ने अत्यंत शोकाकुल अवस्था में उपाध्यायजी को जो श्रद्धांजलि अर्पित की, उसके हर शब्द में उनकी आत्यंतिक व्याकुलता का परिचय तो मिलता ही है, किंतु राष्ट्र के जागरूक प्रहरी के रूप में पं. दीनदयालजी की जो विशेषताएँ थीं, उन पर प्रचुर प्रकाश डाला हुआ उपलब्ध होता है। उनकी श्रद्धांजलि के कुछ वाक्य—''मेरे परम मित्र, संघ के प्रारंभिक काल में सारा मार्ग कंटकाकीर्ण ही था, किंतु उससे न डरते हुए उसी मार्ग पर तुमने चलना आरंभ किया। उत्तर प्रदेश में संघ का विचार किसी को पता भी नहीं था। आपने स्वयंसेवक के रूप में यह दायित्व ग्रहण किया और उसे पूर्ण सफल होने तक निभाया। उत्तर प्रदेश में संघकार्य की वृद्धि आपके कारण हुई। आज जो वहाँ दृश्यमान है, वह निःसंदेह केवल आपके अखंड परिश्रम का फल है।'... 'आपसे प्रेरणा लेकर सहस्रावधि समर्पित कार्यकर्ता इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर अविरल चलते रहेंगे।' ...'डॉ. हेडगेवारजी के श्रीमुख से आदर्श स्वयंसेवक कैसा हो, इस विषय का जो बौद्धिक हमने सुना, उसका मूर्तिमंत प्रतीक आपका जीवन रहा।' 'राजनीति के क्षेत्र में केवल राष्ट्रहित और समाजहित को ही सामने रखकर उसकी विपरीत दिशा में जानेवाले लोगों की, उनके विचारों का पूरा अध्ययन करके कठोर आलोचना अब कौन करेगा? सरकार को भी उसकी त्रुटियाँ दिखाकर कार्यपद्धति की योग्य दिशा अब कौन दिखाएगा?''संघकार्य में खड़ी होनेवाली समस्याएँ और अंतरंग वैचारिक संघर्षों की स्थिति में मैं आपके पश्चात् अब किससे परामर्श करूँगा?' इत्यादि (नवदधीचि पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 53)

वस्तुतः यह श्रद्धांजलि पत्र मूल में ही पठनीय है। किंतु उपरोक्त अंश से इस बात पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है कि पंडितजी आजीवन भारतीय राष्ट्र के समर्पित एवं जागरूक प्रहरी रहे हैं। उनके समग्र वाङ्मय के इस एकादश खंड में स्थान-स्थान पर उनकी इस भूमिका के विपुल प्रमाण उपलब्ध होते हैं। जैसे भारतीय जनसंघ की नीति का निर्धारण करते हुए वे सावधान करते हैं, ''भारतीय जनसंघ का विश्वास है कि किसी देश की राष्ट्रनीति राष्ट्र के प्रकट हितों की सिद्धि के एकमेव उद्देश्य से ही तैयार की जानी चाहिए।'' उसे यथार्थवादी होना चाहिए और विश्व की पार्थिव प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए। हमारे देश के नेता अपनी भ्रांत धारणाओं के कारण अनेक बार ग़लत नीति अपनाते हैं, जिसका शिकार सारे देश को होना पड़ता है। अत्यंत सौम्य प्रकृति के पंडितजी भी कैसे कठोर होकर इसकी आलोचना करते हैं, देखिए, ''हमारी पिछली नीति, जो निश्चित रूप से और निर्लज्ज तरीक़े से चीन समर्थक रही, और आक्रामक के प्रति हमारी नरमी का वर्तमान रुख़ बड़ी सीमा तक इस भावना का कारण है।'' इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं, ''यह वह नीति है, जो ऐसे राष्ट्र की नीति नहीं हो सकती, जो अपने को आक्रांत मानता है, जिसे भविष्य में भी ख़तरा दिखाई देता है और जो स्थिति को

बदल देने की इच्छा रखता है। इससे हमारा पक्ष दुर्बल हुआ है।''

''भारतीय जनसंघ का निर्माण देश की अनेक पार्टियों में अपनी भी एक नई पार्टी होनी चाहिए, इस दृष्टि से नहीं हुआ, बल्कि समग्र भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए एक अभियान के रूप में हुआ है। इसलिए हमारी प्रेरणा केवल राजकीय नहीं बल्कि महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, महामना पं. मदनमोहन मालवीय तथा महात्मा गांधी से आती है। इन सभी से प्रेरणा लेकर राष्ट्रोत्थान के इस कार्य में हम लगे हुए हैं। क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य, इसके बारे में इन महापुरुषों की प्रेरणा ही जनसंघ के लिए निर्णायक रहनी चाहिए।'' इसे कहकर राष्ट्र केवल ज़मीन का टुकड़ा नहीं होता, वह प्राचीन पवित्र परंपरा का संवाहक भी होता है, यह बात वे कार्यकर्त्ताओं के मन में स्थापित करना चाहते हैं। इसे वे कितनी ठोस भाषा में बतलाते हैं, देखिए— ''सचमुच भारतीय जनसंघ एक दल न होकर एक आंदोलन है। यह भारत के आत्मस्वरूप की प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा से पैदा हुआ है। राष्ट्र की जो नियति तय है, उसे आकार देने और प्राप्त करने की यह इच्छा है।'' (पृ. 275)

इस महान् लक्ष्य को लेकर जनसंघ के रूप में राष्ट्र की संस्कृति के संरक्षक प्रहरियों का एक जत्था कार्यशील तो हुआ, किंतु वर्तमान एवं भावी संकटों का विचार करते हुए यह कार्य धीमी गति से नहीं बल्कि शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़कर अखिल भारतीय जनमानस के प्रतिनिधि के रूप में खड़ा होना चाहिए, इसके भी वे आग्रही रहे। इसलिए वे आह्वान करते हैं, ''आज की परिस्थिति में इससे आगे बढ़कर हम भारतीय जनता के मानस को पहचानकर उसका प्रतिनिधित्व भी कर सकें, इस दृष्टि से हमें अपनी तैयारी करनी चाहिए।''

जनसंघ का कार्य अधिकाधिक गति से आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने जीवन की बाज़ी लगा दी। किंतु इसका अर्थ, आज की भाषा में कुछ भी करके चुनकर आना, चुनाव लड़ते समय सही-ग़लत सारे तरीक़े अपनाना, ऐसा उन्होंने प्रारंभ से ही कभी नहीं होने दिया। जौनपुर का चुनाव हारने के बाद उन्होंने स्पष्ट किया—''जौनपुर में जनसंघ इसलिए पराजित नहीं हुई, क्योंकि उसे जन समर्थन कम मिला अपितु इसलिए हारी, क्योंकि वह कांग्रेस की कपटपूर्ण चालों का मुक़ाबला न कर सकी।'' (पृ. 59)

ग़लत तरीक़े अपनाकर भी चुनाव जीतने को ही वे प्रधानता देते तो जनसंघ कभी का कांग्रेस में ही परिवर्तित हो चुका होता, किंतु यह उनके विशुद्ध नैतिक आचरण एवं आग्रह का परिणाम था कि भारतीय जनसंघ की पहचान Party with difference के रूप में खड़ी हुई। राष्ट्र की रक्षा में, राष्ट्र के परंपरागत जीवन-मूल्यों की सुरक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है, इसके वे स्वयं उदाहरण बन चुके थे। और इसलिए उनका आत्मकथन

कि 'मैं राजनीति में संस्कृति का दूत हूँ' अत्यंत यथार्थ है।

संस्कृति के दूत होने का अर्थ, भारतीय संस्कृति के दूत—और मेरी दृष्टि में भारतीय संस्कृति महाभारतीय विचारों का प्रगल्भ प्रवाह है। महाभारत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का प्रतिपादन करनेवाला विजिगीषु प्रेरणा का ग्रंथ है। इसीलिए महाभारत के भगवान् श्रीकृष्ण के समान पंडित दीनदयालजी जैसे सात्त्विक नेता भी युद्ध के आग्रही बन सकते हैं। देखिए—"हमने संकट काल में सरकार को सब प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन देते हुए चीन से युद्ध की माँग की है। इसीलिए हमें अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को पहचानकर यह घोषणा करनी होगी कि न हम स्वत: शिथिल होंगे और न प्रशासन अथवा जनता को ही शिथिल होने देंगे।"

इस प्रकार इस खंड का अवलोकन करते हुए राष्ट्र की उन्नति के लिए अपने संपूर्ण जीवन का समर्पण करनेवाले पंडित दीनदयालजी राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा, राष्ट्र की परंपरागत प्राचीन धारणाओं की सुरक्षा और निरंतर राष्ट्र की उन्नति के लिए पुरुषार्थमयी प्रेरणा के लिए मार्गदर्शन करनेवाले 'राष्ट्र के जागरूक प्रहरी' के रूप में हमारे अंत:पटल पर साकार होते हैं।

संपूर्ण राष्ट्र की जनता की मानसिकता विजयोन्मुख बनाने के लिए प्रखर राष्ट्रनिष्ठा भी जाग्रत् करनी पड़ती है। वे कहते हैं, "हमें तो इस राष्ट्रीयता की भावना को स्वाभाविक दृष्टि से पुष्ट करना पड़ेगा (पृ.42), यह कार्य सरकार के साथ-साथ देश की सभी राष्ट्रवादी शक्तियों का भी कर्तव्य है।" वे आह्वान करते हैं, "संकटों का मुक़ाबला करने के लिए समस्त राष्ट्रवादी शक्तियों को सतत प्रत्यनशील रहना है। देश और समाज को राष्ट्रवादियों से बहुत सी अपेक्षाएँ हैं।" (पृ. 121)

कश्मीर के आग्रही

सन् 1947 में भारत देश स्वतंत्र तो हुआ, किंतु आंशिक स्वतंत्रता के साथ-साथ कश्मीर की समस्या भी एक दुर्धर रोग के समान इस देश के साथ आरंभ से ही लगी रही। स्व. पंडितजी पाकिस्तान के निर्माण को पूर्णतया अस्वाभाविक मानते हैं—पाकिस्तान का निर्माण कृत्रिम विभाजन करके हुआ है। इस कृत्रिम विभाजन के साथ-साथ कश्मीर समस्या भी खड़ी हुई, जो वास्तव में हमारे तत्कालीन नेताओं की असावधानता तथा इच्छाशक्ति के अभाव का परिणाम है। विभाजन के समय के भीषण अत्याचार और तत्पश्चात् निरंतर सरदर्द के रूप में खड़ा कश्मीर का प्रश्न तथा वहाँ की हिंदू जनता के ऊपर हो रहे आघात अपने आप में हमारे देश की दर्द भरी कहानी बन गए। इसके मूल में है, हमारे नेतृत्व की संवेदनहीनता तथा अदूरदर्शिता। हमारे समाज पर चल रहे अत्याचारों के लिए हम विश्व के बाज़ार में न्याय की भिक्षा माँगें, यह लज्जास्पद लगता है। हमारे

भोले-भाले नेता पाकिस्तान की कुटिलता को क्यों नहीं समझ पाए? अपने अत्याचारों को छिपाने के लिए वह न्याय की माँग का बहाना बनाता है—''पाकिस्तान ने कश्मीर मुद्दा पुनः सुरक्षा परिषद् में ले जाने का निर्णय, पूर्वी बंगाल में अपनी आपराधिक गतिविधियों पर परदा डालने के लिए किया है।'' (पृ.140)

चालाक विदेशी शक्तियों से हम अपने लिए न्याय की अपेक्षा करें, यह कितना हास्यास्पद है? पंडितजी लिखते हैं—''वाशिंगटन के नीति-निर्माता यह चाहते हैं कि भारत कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध तो दृढ रुख़ अपनाए, पर साथ ही पाकिस्तान के प्रति नरम रहे। परंतु जब तक भारत और पाकिस्तान मिल करके फिर से एक नहीं हो जाते, वे हिंदु-मुसलिम देश बने रहेंगे।'' (पृ. 160) नरम रुख़ अपनाने का अर्थ अकसर यही होता है कि सीमा पर चल रही वारदातों का मुँह तोड़ जवाब प्रत्याक्रमण या प्रतिकार से न करते हुए बातचीत से समझौता किया जाए। पर पंडितजी चेतावनी देते हुए कहते हैं—''लोग पाकिस्तान से समझौते की बात करते हैं। भारत सदा समझौते के लिए तैयार रहा है। पर हम भारत के हितों का बलिदान करके समझौता नहीं कर सकते।'' (पृ. 131)

कश्मीर के बारे में हमारी तत्कालीन सरकार ग़लतियों पर ग़लतियाँ करती हुई हारती ही गई। पंडितजी कहते हैं, ''यह प्रधानमंत्री शेख़ अब्दुल्ला को पंथनिरपेक्ष रहने के लिए समझाने में नाकाम रहे हैं। तो उन्हें यह खुलकर स्वीकार करना चाहिए, न कि राज्य के हिंदुओं के साथ खिलवाड़ करना चाहिए। हमें सावधान रहना चाहिए।'' (पृ. 178) शेख़ अब्दुल्ला को लाड़ लड़ाने में प्रधानमंत्री इतने मशगूल थे कि वे किसी की कोई बात सुनने को तैयार ही नहीं हो रहे थे; देखिए—''शेख़ अब्दुल्ला को आज़ाद करने से पहले सरकार ने हर परामर्श की उपेक्षा की। उन्होंने न केवल उसे आज़ाद करने का निर्णय लिया बल्कि इससे पूर्व उसका स्वागत भी किया। यह सब न तो राजनीतिक दृष्टि से ठीक था और न सामान्य व्यवहार की दृष्टि से।'' (पृ.169)

विश्व के इतिहास का थोड़ा सा भी अवलोकन करने पर ध्यान में आता है कि बलवान राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रों को आक्रमण के माध्यम से जीतकर उन्हें निगल जाते हैं। इसको 'मत्स्य न्याय' कहते हैं। यह वैसे ही है, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। इसलिए निसर्गतः सभी को सुरक्षित रहने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता रहती है। सुरक्षित रहना केवल अधिकार नहीं, अपितु अपनी सुरक्षा के लिए सावधान रहना हमारा प्रथम कर्तव्य है, इसका बोध कराते हुए पंडितजी कहते हैं—''प्रत्येक राष्ट्र का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करे, उसे सुदृढ एवं स्थायी बनाने का प्रयास करे तथा अपने नागरिकों को ऐसा शासन प्रदान करे, जिसके अंतर्गत वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए समृद्ध, सोद्देश्य एवं सुखी समाज के संगठन में सचेष्ट रह सकें।'' (पृ. 228) चीन के आक्रमण ने हमारी सुरक्षा व्यवस्था की

धज्जियाँ उड़ा दीं। आक्रमण के प्रहार के बाद हमारा मोहभंग हुआ और देश की सरकार ने सँभलने का प्रयास आरंभ किया। वास्तव में जैसे पं. दीनदयालजी कहते हैं—''प्रतिरक्षा योजनाएँ पर्याप्त बनाई जानी चाहिए।'' (पृ. 12) जनता में विजय का आत्मविश्वास जगाना सुरक्षा के लिए परम आवश्यक है। वे कहते हैं—''यदि लोगों की राज्य की सरकार में आस्था समाप्त हो चुकी है, जैसा कि सभी राजनीतिक दलों के नेताओं के कथन से स्पष्ट है, तो केंद्र का यह दायित्व है कि वह लोगों का विश्वास पुनः बनाए।'' (पृ.142) किंतु सुरक्षा का यह कार्य भी तभी सफल हो सकता है, जब देश आत्मनिर्भर हो—आर्थिक दृष्टि से सबल हो। यह सिद्धता एकाएक नहीं होती।

चीन और पाकिस्तान, भारत के इन दोनों शत्रुओं द्वारा इस महान् राष्ट्र पर एक साथ हमला करने की भी आशंका निर्माण हो रही थी और देश कांग्रेस के हाथ में तथा कांग्रेस पं. नेहरू के हाथ में, ऐसी स्थिति के कारण कोई ठोस उपाय नहीं किए जा रहे थे। सामान्यतः सौम्य प्रकृति के पं. उपाध्यायजी राष्ट्र के इस संकट की आशंकित संभावना में व्यथित होकर कैसी तीखी आलोचना भी कर सकते थे, यह देखिए—''प्रधानमंत्री बुज़ुर्ग हो चुके हैं। हमारे भारत में बुज़ुर्गों का सम्मान करने की परंपरा है। उनकी वृद्धावस्था का पूरा सम्मान करते हुए हम निवेदन करना चाहते हैं कि अब उनके लिए सबकुछ छोड़ने का समय आ गया है। एक अपेक्षाकृत स्वस्थ और युवा व्यक्ति, नए विचारों और नए शासनादेश तथा स्वच्छ मन से इस दुहरे संकट से निपटने के लिए आवश्यक निर्णय ले सकता है।'' (पृ. 173)

सम्यक हिंदुत्व के प्रतिपादक

पंडित उपाध्यायजी आयु के बीसवें-इक्कीसवें वर्ष में संघ कार्य के संपर्क में आए। वे कानपुर शाखा के प्रथम स्वयंसेवक थे। और आगे चलकर संघ के प्रचारक जीवन को अपनाकर वे राष्ट्र की सेवा में जुट गए। स्व. पंडित श्यामाप्रसाद मुखर्जी के अनुरोध पर राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रसेवा करने के लिए उनका पदार्पण भी संघ की व्यवस्था से निर्धारित था। तत्पश्चात भारतीय जनसंघ के महामंत्री के रूप में दीर्घकाल तक कार्य करते रहे। जीवन के अंतिम वर्ष में पार्टी के अखिल भारतीय अध्यक्ष पद का दायित्व ग्रहण केवल सभी के अनिवार्य आग्रह के वशीभूत किया।

स्वभावतः वे अत्यंत ध्येयशील रहे। निजी शिक्षा में सर्वत्र प्रथम क्रमांक प्राप्त करते रहे। इससे स्पष्ट है कि आजीवन संघ निष्ठा स्वीकारने से पूर्व उन्होंने संघ विचारों का प्रचुर अध्ययन, चिंतन किया ही होगा। उनके संपूर्ण वाङ्मय के इस एकादश खंड में उनके द्वारा संघ शिक्षा वर्ग में दिए गए छह बौद्धिकों का भी समावेश है। संघ विचार के चिंतनशील वक्ता के रूप में उनका यश सर्वमान्य रहा।

संघ का केंद्रीय विचार हिंदू राष्ट्र का विचार है। संघ की स्थापना ही हिंदू राष्ट्र की भावना का जागरण तथा उसके लिए संस्कार संपन्न आदर्श नागरिकों का निर्माण इन दो उद्देश्यों को लेकर हुई। हिंदुत्व और संस्कार संघ का मूलाधार है। इस हिंदुत्व का प्रतिपादन पंडित दीनदयालजी की प्रत्येक कृति तथा उक्ति की प्रधान प्रेरणा रही है। हिंदू और हिंदुत्व का शब्द लेकर हमारे देश में बहुत कुछ लिखा एवं कहा गया है। अनेक बार ये लेखक तथा वक्ता अपने दुराग्रहों के कारण हिंदुत्व की संकल्पना को अपनी मनोवृत्ति के अनुसार अपनी ही दिशा में खींचातानी करके उसे प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, महात्मा गांधी, आचार्य विनोबाजी आदि। गांधीवादी, सर्वोदयवादी विचारधारा अहिंसा के अत्यधिक आग्रह के कारण तपस्वियों के अहिंसा तप, आदि व्यक्तिगत गुणों का पूरे समाज के लिए सामूहिकीकरण करने का प्रयास करती हुई हिंदुत्व को ऐसी दिशा में घसीटती है, जहाँ देश संरक्षण के लिए सेना भी अनावश्यक है, ऐसा स्वर निकलता है। अहिंसा निष्ठा के अतिरेक के कारण पू. विनोबाजी की 'गीताई' में 'विनाशाय च दुष्कृताम्', इस गीता वचन का अर्थ ही बदल जाता है। तो दूसरी ओर स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी का अति बुद्धिजीवी हिंदुत्व गोमाता को केवल एक उपयुक्त पशु की संज्ञा देकर और उसकी पवित्रता पर प्रश्नचिह्न लगाकर परंपरागत पवित्र श्रद्धा से ही खिलवाड़ करता है। तीसरी ओर देखा जाए तो पू. स्वामी करपात्रीजी महाराज जैसे महान् संतों की हिंदुत्व संकल्पना, अतिकर्मकांड, अस्पृश्यता, मंदिर प्रवेश निषेध तथा महिलाओं के लिए अनेक कालबाह्य बंधनों की परिधि से बाहर निकल ही नहीं सकती।

ऐसी चक्रव्यूहात्मक स्थिति में फँसा हुआ सामान्य हिंदू जनमानस किसका अनुसरण करे, यह यक्षप्रश्न बन जाता है। महामनीषी स्व. पंडित दीनदयालजी के द्वारा इस विषय में किया गया मार्गदर्शन इतना सम्यक् और संतुलित है कि उपरोक्त तीनों अथवा अन्य भी मतप्रवाहों से बाहर निकलकर हिंदुत्व एवं हिंदू राष्ट्र इन संज्ञाओं के बारे में स्वच्छ एवं सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख खड़ा हो जाता है। हिंदू की व्याख्या करते समय वे स्पष्ट मार्गदर्शन करते हैं, ''हिंदू की व्याख्या उपासना पद्धति के आधार पर नहीं, हिंदू की व्याख्या राष्ट्रीय आधार पर है। जो हिंदुस्थान को मातृभूमि माने, पुण्यभूमि माने, इसके इतिहास को अपना माने, इसकी पराजय देख जिसका मस्तक ग्लानि से झुक जाता है, जिसे तीव्र पीड़ा होती है तथा जय-जय कर हर्षित हो उठता है, वह हिंदू है।'' (पृ. 54) हिंदुत्व को उन्होंने भारत माता के साथ जोड़ दिया। हिंदुत्व का आधार भारतवर्ष की प्राचीन परंपरा है, यह कहते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जब तक यह हिंदुत्व यहाँ विद्यमान है, तभी तक भारत भी भारत है। वे कहते हैं, ''हिंदुत्व को यहाँ से निकाल दें तो भारत में क्या बचा रहता है।···भक्ति तो तब बनती है, जब उसके साथ हज़ारों वर्षों के भाव जुड़ जाते हैं।'' (पृ. 52-53) भारतीय संस्कृति सहित भारत भूमि यही हमारी

आराध्य देवता है। भारत वर्ष के आध्यात्मिक चैतन्य को अभिव्यक्त करनेवाली क्रियाओं का प्रवाह ही संस्कृति बन जाता है। वे कहते हैं, ''जो कर्म राष्ट्र को 'चिति' का साक्षात्कार कराते हैं, वे संस्कृति हैं।'' (पृ. 47) इस मिट्टी के लिए मातृभाव, यह इस समाज का प्राण है। केवल यहाँ निवास करनेवाला राष्ट्रीय नहीं हो जाता। अंग्रेज़ों ने स्वामी बनकर यहाँ निवास किया, पर हिंदुओं ने? स्व. पंडितजी कहते हैं, ''किंतु हम अपने को इस भूमि का पुत्र कहते हैं और माता के नाते स्वीकार करते हैं, यह हमारी माँ है, इसकी गोद में आकर बैठेंगे, गौरव और स्वतंत्रता के साथ बैठेंगे।'' (पृ. 46)

उन्होंने मुसलमानों से अनुनय करने में धन्यता माननेवाले लोगों से साफ़ पूछा कि केवल उनका विचार क्यों किया जाता है, जो पूरे भारत को इसलामी राज्य में कैसे मिलाया जाए, यही सोचते हैं? उनका स्पष्ट मार्गदर्शन देखिए, ''जब कुछ लोग यह कहते हैं कि मुसलमानों का क्या होगा? तो यह कहने के साथ हम यहूदी, पारसियों, तिब्बतियों की, अन्यों की चिंता क्यों नहीं करते? केवल मुसलमानों का ही हम क्यों विचार करते हैं? तो क्या इसलिए कि वे अधिक संख्या में हैं। मुसलमान यदि अधिक संख्या में हैं तो उनका सामना करने के लिए अधिक सामर्थ्य उत्पन्न करें।''

हमारे देश की परंपरा में भी जो विषमता मूलक है, कालबाह्य है और परस्पर समन्वय की दृष्टि से बाधक है, ऐसे तत्त्वों को उन्होंने वर्जित माना और व्यवस्थाओं के बदलने पर भी राष्ट्र की परंपरा के साथ काल के प्रवाह में मूल भावों को सुरक्षित रखते हुए कैसे परिवर्तन होता रहा है, इसका अनेक उदाहरणों सहित विवेचन करते हुए भविष्यकाल के लिए भी स्पष्ट मार्गदर्शन कर दिया। वे कहते हैं, ''हिंदू संस्कृति का संदेश तथाकथित धर्मनिरेपक्षता (सेक्यूलॅरिज़्म) में नहीं आता। हमारे राष्ट्र की विशेषताएँ तो हैं त्याग, सेवा, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता। उस आधार पर यदि हम चलें तो दुनिया को हमारी कोई क़ीमत है। अतः हिंदुत्व का गौरव लेकर चलें, जिससे शक्ति पैदा होकर प्रतिष्ठा और खोई हुई भूमि फिर से प्राप्त कर सकेंगे।'' (पृ. 58)

उपसंहार

भारतीय जनसंघ का यह आजीवन महामंत्री और अंतिम वर्ष का अध्यक्ष किसी राजकीय पार्टी का नेता मात्र था, ऐसा लगता हो तो वह निरा भ्रम मात्र है। भारतमाता की सेवा के माध्यम के रूप में उन्हें राजनीति में आना पड़ा और उस दायित्व को उन्होंने पूरी तरह अत्यधिक सफलता के साथ निभाया भी, किंतु मूल प्रकृति से यह व्यक्तित्व विश्वकल्याण की चिंता वहन करनेवाला चिंतनशील महात्मा का था। हिंदू संस्कृति के विश्व कल्याणकारी रूप को प्रस्तुत करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त इन सूत्रों को देखिए—

* जीवन की एकता, पूर्ण अभेदता हमारे जीवन की विशेषता है। (पृ. 189)

* पश्चिम में आदम की कल्पना सेब की चोरी की है। हमारे सामने मछली की रक्षा करनेवाले करुणामय मनु की कल्पना है। (पृ. 191-192)
* संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए। एकात्मक मानववाद (Integral Humanism) के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का निर्माण करना होगा। (पृ. 237)
* जब तक आत्मा को सुख की प्राप्ति नहीं होती तब तक शरीर, मन, बुद्धि के सुख कुछ एक सीमा तक ही सुखकारक हैं। इसलिए शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों का विचार करने पर संपूर्ण मनुष्य का विचार हो सकेगा। (पृ. 280)
* हमारा आधार एकात्मकता का है, सद्‌गुणों का है। यहाँ भी छुआछूत जाति-पाँति आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए, परंतु हमने उन्हें मिटाने के प्रयत्न किए। हमारा वास्तविक कार्य तो एकात्मता बढ़ाने का ही है। (पृ. 189-190)
* शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का समुच्चय ही व्यक्ति है। इन चारों का सुख मनुष्य का सुख है। (पृ. 196)
* हमारी संस्कृति कभी समानता का नारा नहीं लगाती। वह तो आत्मीयता का नारा लगाती है। अर्थात् एक कुटुंब की तरह सबको आवश्यकतानुसार मिले। (पृ. 112)
* हम किसी एक वाद को नहीं मानते। हम तो पूर्णतावादी, एकात्मवादी, आत्मवादी और संघवादी हैं। उसमें भी चैतन्य को, एक जीवमान आत्मा को मानकर चलते हैं। (पृ. 203)

पं. दीनदयालजी के बारे में कहा गया कि वे भारत के सच्चे राजदूत अथवा प्रतिनिधि हैं। (पृ. 330) तथा यह एक अत्यंत ध्यान देने जैसा महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है—मेनचेस्टर गार्जियन (पृ. 323) वास्तविकता यह है कि वे अपने जीवन, कार्य तथा वाङ्मय के कारण सर्वदा ही भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में पहचाने जाएँगे और सभी देशभक्तों के लिए राष्ट्रधर्म के पथप्रदर्शक दीपस्तंभ बने रहेंगे। आदर्श देशदूत, सव्यसाची मार्गदर्शक, सार्थक अर्थनीतिज्ञ, राष्ट्रीय शिक्षाविद् और सच्चे प्रन्यासी के रूप में उनका सुभग दर्शन इस खंड में तथा अन्यत्र भी होता ही रहेगा। यह जीवन को सुपुष्ट करनेवाले असंख्य विचार रत्न उनके साहित्य-सागर में छिपे हैं। यहाँ केवल नमूने के लिए उनमें से कुछ चुनकर प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इन पर दृष्टिपात करते ही उनके महान् जीवन के अनेक पहलू स्वतः ही स्पष्ट हो जाएँगे।

* राष्ट्र की दृष्टि से चार बातों की आवश्यकता है। वे चार बातें अनुक्रम से देश, सामूहिक जीवन का संकल्प, संविधान और जीवन-आदर्श /धर्म, अर्थ, काम,

मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के आधार पर हम संपूर्ण जीवन की कामना लेकर चल सकते हैं। (पृ. 197/202)

* यदि हम अपने जीवन के महान् ध्येय, महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्यनशील हैं, तो हम श्रेष्ठ हैं। यही हमारा वास्तविक स्वयंसेवकत्व है। (पृ. 108)
* जो इस भारतभूमि को माँ मानकर चलेंगे तो हम उनको अपना भाई कहेंगे, पर यदि वे कहेंगे कि नहीं, यह हमारी माँ तो नहीं है, पर हम हिंदुओं के साथ यहाँ मित्रतापूर्वक रहेंगे तो हम उनको मित्र कहेंगे। (पृ. 55)
* राष्ट्रीय निष्ठाओं को बलवती बनाने के भावात्मक प्रयत्नों से ही राष्ट्रीय एकता को पुष्ट किया जा सकता है तथा विघटन और विच्छेद की प्रवृत्तियों से रोका जा सकता है। (पृ. 241)
* हमारे समाज को कार्यक्षम बनाने का सर्वोत्तम मार्ग है एक महान् राष्ट्रीय लक्ष्य की ओर लोगों के मस्तिष्क को मोड़ देना चाहिए। (पृ. 164)
* व्यक्ति जब से अपने को केंद्र बनाकर चलने लगा है तो सामान्यत: वह समाज को भूलने लगा है।
* हम संपूर्ण विश्व में एक चैतन्य की कल्पना करते हैं—ईश्वर सब में मौजूद है। हम आत्मवादी तो वे अनात्मवादी, जड़वादी हैं। हम समाज-राष्ट्र को भी आत्म-ईश्वर का रूप मानकर चलते हैं, वे केवल यंत्रवत् राष्ट्र की कल्पना लेकर चलते हैं। (पृ.191)
* 'हम सब के सब एक हैं' यह तब तक संभव नहीं जब तक हमें यह ज्ञात न हो कि हमें एक बनानेवाली, हमें जोड़नेवाली वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं? (पृ. 183)
* समर्थ दुर्बल को समाप्त न करें, इसलिए हम नियम व समाज बनाते हैं। (पृ. 188)
* हमें स्वयं और भी जागरूकता और उत्तरदायित्व के साथ समाज को जगाना होगा। संघ जागेगा तो समाज जागेगा। (पृ. 88)
* भारत सरकार देश के वास्तविक हितों की चिंता न करते हुए अपने प्रिय और प्रचलित नारों के मोह में फँसकर बारंबार व्यावहारिकताओं को भूल जाती है।
* राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी चाहिए। शासन का व्यष्टि और समष्टि के प्राकृतिक हित में हस्तक्षेप न करना तथा सदैव उसके अनुकूल चलना राजनीतिक स्वतंत्रता है। (पृ. 233)
* राज्य व्यवस्था की भाँति अर्थव्यवस्था का निकष भी मानव का सर्वतोन्मुखी विकास होना चाहिए। (पृ. 235)

* राष्ट्रीयकरण का नारा तो ज़ोरों से लगाया जाता है, किंतु राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव भी आज की समस्या का मुख्य कारण है। (पृ. 225)
* व्यक्ति जितना ग़ुलाम पूँजीवादी यूरोप में था, संभवतः उससे अधिक ग़ुलाम समाजवादी व्यवस्था में आज है। जितनी विषमताएँ यूरोप में थीं, उससे अधिक विषमताएँ समाजवादी यूरोप में हैं। (पृ. 72)
* कम्युनिस्ट पार्टी और देश के अन्य राजनीतिक दलों में मूलभूत अंतर है। देश के अन्य सभी दल इस देश को मातृभूमि मानकर चलते हैं। इनका प्रेरणास्रोत यही पावन भूमि है। इसके विपरीत कम्युनिस्ट देश के बाहर से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।
* ...रिक्शावाले, मज़दूर, किसान, आदिवासी एवं वनवासी वर्ग की समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें सुलझाने का प्रयास करना होगा और तब कम्युनिस्टों का कुचक्र स्वतः समाप्त हो जाएगा।
* केंद्र और राज्यों के बीच विभिन्न करों के विभाजन के पुनर्गठन की भी आवश्यकता है। (पृ. 29)
* ...किंतु सनसनी पैदा करने का अर्थ क्रांति नहीं और न क्रांति का अर्थ आवश्यक रूप से प्रगति ही है।
* एकता एक जैविक प्रक्रिया है और इसे हिसाब-किताब से नहीं पाया जा सकता। हम जहाँ जुड़ सकते हैं, वहाँ एक हों। जहाँ हमारा मतभेद है, वहाँ हम दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और उसके प्रति सहिष्णु बनें। (पृ. 64)
* वैचारिक दृष्टि से भी चीन व पाकिस्तान हमारे शत्रु हैं। (पृ. 116)
* ...भारत की सामरिक परेशानी का अनुचित लाभ उठाने की बात सोचें तो हमें किसी भी प्रकार झुकना नहीं चाहिए। (पृ. 8)
* हमारे यहाँ संसदीय शासन प्रणाली है। परंतु शासक दल के प्रचंड बहुमत के कारण यह सरकार मात्र दलीय सरकार बन गई है, जहाँ सारे निर्णय दल की बैठकों में लिए जाते हैं, संसदीय समितियों में नहीं। (पृ. 173)
* इस प्रकार प्रतिपक्ष की संख्या भले ही कम हो, परंतु वह निश्चित ही किसी भी अन्य देश की अपेक्षा अधिक सबल है और प्रभावी है। (पृ. 153)
* नागरिक का धर्म कोई भी हो, उसकी आज़ादी और सुरक्षा भारत की पवित्र परंपरा रही है। (पृ. 167)
* सरकार जो एक काम कर सकती है और उसे अवश्य करना चाहिए, वह है अनुत्पादक ख़र्चों में कटौती।...ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार मितव्ययता की बजाय जनता के पैसे को नालियों में बहा रही है। (पृ.149-150)
* विभिन्न विपक्षी दलों की अनौपचारिक बैठकों ने जो भूमिका आज तक निभाई

है, वह आगे भी जारी रहेगी और वे संयुक्त कार्रवाई का कोई ऐसा रास्ता खोजेंगे, जिससे वर्तमान कांग्रेस सरकार का विकल्प तैयार किया जा सके। (पृ. 91)

राष्ट्रधर्म के उस महान् दीपस्तंभ की ये केवल कुछ किरणें मात्र हैं। इस दीपस्तंभ का प्रकाश जब वाङ्मय के माध्यम से सर्वत्र फैलेगा, तब विश्व के महानतम चिंतकों की पंक्ति में वे विराजमान रहेंगे। उनके दुःखद निधन के आघात से व्यथित पू. श्रीगुरुजी के दो सहजस्फूर्त वाक्यों में एक वाक्य था—"देश में तो वह महान् हो ही गया था। संपूर्ण विश्व में भी महान् बनने के पूर्व ही चला गया।" मेरा विश्वास है, उनका समग्र वाङ्मय प्रकाशित होने पर श्रीगुरुजी की यह भावना भी चरितार्थ होगी। वे विश्व भर में महान् माने जाएँगे। वह घड़ी अब समीप आ रही है।

पं. दीनदयालजी ने 1965 के अप्रैल मास में मुंबई में 'एकात्म मानववाद' विषय पर चार व्याख्यान दिए थे। उन प्रकाशित व्याख्यानों के चौथे दिवस के समापन प्रसंग के अंत में जो उन्होंने कहा, उसमें मानो उनका जीवन हेतु, हम सभी की आकांक्षा, उसके लिए आवश्यक कार्य, इन सभी का अमृतमय सार ही समाया है। इसलिए उसी परिच्छेद से यह प्रस्तावना पूर्ण करना उचित होगा।

वे कहते हैं—"विश्व का ज्ञान तथा आज तक की अपनी परंपरा इनके आधार से हम ऐसे नए भारत का सृजन करेंगे कि जो अपने पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा और यहाँ जन्मा हुआ हर मानव स्वयं के व्यक्तित्व को विकासशील बनाते समय केवल मानवजाति ही नहीं अपितु संपूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार प्राप्त कर नर से नारायण बनने के लिए समर्थ होगा। यही हमारी संस्कृति का शाश्वत, चिरंतन दैवी स्वरूप है। चौराहे पर खड़ी विश्व की मानवजाति को हमारा यही मार्गदर्शन है। इस कार्य के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान कर हमें इस कार्य में सफल बनाएँ, यही हमारी परमात्मा से प्रार्थना है।"

इससे अधिक क्या चाहिए?

लेखन सीमा। इति शम्।

श्री ज्ञानेश्वरपदाश्रित

—स्वामी गोविंददेव गिरि

वह काल
(1963-64)

भ्रमों के टूटते जाल

1963 और 1964 के दो वर्ष भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण वर्ष थे। यह वह काल था, जब नेहरू युग का अस्त पर्व प्रारंभ हुआ था और 1964 के मध्य में जवाहरलालजी दिवंगत भी हो गए। भारतीय राजनीति पर पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रभावी और ताक़तवर नेता की छाया उनके जाने के पश्चात् भी कई साल रही, यह सच है। मगर 1963-64 की विशेषता यह रही कि इस कालखंड की प्रमुख घटनाओं ने नेहरूवाद की बहुचर्चित तीन आधारशिलाओं की मर्यादा और कुछ मायनों में उनका छूटता या क्षीण होता संदर्भ भी उजागर किया। 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। हम पराजित हुए। इस घटनाक्रम ने गुटनिरपेक्षता की सीमाएँ सामने ला दीं। हज़रतबल प्रकरण, विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना और गणराज्य दिवस परेड में सहभागी होने के लिए आर.एस.एस. को निमंत्रण दिए जाने से सेक्युलरवाद की जो व्याख्या जवाहरलाल नेहरू करते थे; उसकी भी मर्यादा उजागर हुई। इसी के साथ आर्थिक मोरचे पर कई सारी घटनाओं के चलते सोशलिज़्म या साम्यवाद का बौनापन भी सभी को समझ में आया।

1963-64 इस कालखंड की पृष्ठभूमि में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी, चीन द्वारा भारत पर थोपा हुआ युद्ध। प्रधानमंत्री नेहरू का इस युद्ध से सबसे अधिक आहत होना स्वाभाविक था, क्योंकि ऐसा कुछ होगा, यह उनकी कल्पना के बाहर था। भारत और

चीन के आपसी संबंधों में तनाव निर्माण होना तीन साल पहले ही शुरू हुआ था। भारतीय जनसंघ उस समय चीन की भूमिका का सही विश्लेषण करते हुए सरकार को कठोर शब्दों में सचेत करनेवाला शायद एकमात्र विपक्षी दल रहा था। जनसंघ ने 1959 में प्रथमत: दिल्ली में और तत्पश्चात् सूरत में संपन्न अपनी केंद्रीय कार्यकारिणी बैठकों में प्रस्ताव पारित करते हुए चीन के आक्रामक इरादों के प्रति न केवल सरकार को आगाह किया था बल्कि भारत-चीन संबंधों की समग्र समीक्षा भी की थी और सीमा सुरक्षा के विषय में कुछ ठोस माँगें भी रखी थीं। केंद्र में वर्तमान में शासन कर रही भारतीय जनता पार्टी आज सीमांत क्षेत्र में रास्ते, यातायात के प्रबंध इत्यादि अधो-संरचनात्मक कार्यों पर बल दे रही है। मगर भारतीय जनसंघ ने बड़ी दूरदर्शिता से 1959 में ही बुनियादी संरचनाओं के अभाव पर सरकार का ध्यानाकर्षण करते हुए कई माँगें उठाई थीं। चीन के आक्रामक रवैयों की अनदेखी करते हुए भारत के प्रधानमंत्री चीन के साथ मित्रता की बात जारी रखते रहे, इस पर भी जनसंघ ने कड़ी आपत्ति जताई थी। अपनी ही सीमा के अंदर, अपने ही क्षेत्र में भूमि की सुरक्षा के लिए सेना को नहीं भेजने का भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा चीन को भेजा हुआ प्रस्ताव भारतीय नेतृत्व की कूटनीतिक विफलता की चरमसीमा थी। 1962 में प्रत्यक्ष युद्ध छिड़ने के बाद राष्ट्रीय कोष में संपदा संचय के लिए महिलाओं ने ख़ुशी-ख़ुशी अपने गहने दान कर दिए थे। यह समय आ रहा है, इसको पहचानते हुए भारतीय जनसंघ ने दिसंबर 1959 में ही किसान, मज़दूर समेत आम नागरिक से अपील की थी कि वह चीन के मुक़ाबले के लिए सेना को और समूचे देश को सन्नद्ध करने में सहयोग करे। आनेवाला समय स्पष्टता से दिख रहा था। शायद यही कारण था कि जनसंघ ने अपने प्रस्ताव में देशवासियों को 'सर्वोच्च त्याग' करने के विषय में तैयार रहने का आह्वान किया था।

केवल भारतीय जनसंघ ही नहीं, अपितु कई सारे राजनीतिक नेता, रक्षा विशेषज्ञ और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के जानकार भी चीन से भारत पर आक्रमण होने की संभावना को समझ रहे थे, देख रहे थे। मगर शुतुरमुर्ग की तरह बालू में मुँह छुपाए भारत सरकार ने इन सारी संभावनाओं को खारिज किया और वह स्व-निर्मित स्वप्नसृष्टि में खोई रही। भारत पर चीन का आक्रमण न केवल चीन से हुआ मित्र-द्रोह था अपितु पं. नेहरू की स्वप्नसृष्टि की धज्जियाँ उड़ानेवाला एक निर्मम आघात भी था। साथ ही, नेहरू द्वारा प्रोत्साहित गुटनिरपेक्षता की अप्रासंगिकता भी इसी हमले ने उजागर की।

20 अक्तूबर, 1962 को चीन ने आक्रमण किया। पाँच ही दिन बाद 25 अक्तूबर को सोवियत रूस की सरकारी पत्रिका 'प्रावदा' ने छापा कि चीन रूस का भाई है, जबकि भारत मात्र दोस्त है और ख़ून (का रिश्ता) पानी से क़तई गाढ़ा होता है। बाद में दिसंबर होते-होते रूस फिर भारत की मदद के लिए सामने आया और उसके पूर्व नवंबर

में नेहरूजी ने अमरीका से सामरिक सामग्री के सहयोग की याचना करते हुए बची-खुची गुटनिरपेक्षता को एक दृष्टि से स्वत: ही समाप्त कर दिया। दिसंबर 1962 में भोपाल में संपन्न राष्ट्रीय कार्यसमिति में भारतीय जनसंघ ने गुटनिरपेक्षता का डंका बजाते-बजाते हमने अपनी सीमा सुरक्षा की जो अनदेखी की और ना-ना कहते-कहते हम किस तरह सोवियत रूस के पक्ष में चले गए, इस पर आपत्ति उठानेवाला प्रस्ताव भी पारित किया। बाद में; इसी विषय पर 4 फरवरी, 1963 को पं. दीनदयालजी ने ऑर्गनाइज़र में जो लेख लिखा है, उससे गुटनिरपेक्षतावाद के विषय में दीनदयालजी की अंतर्दृष्टि (insight) ध्यान में आती है। दीनदयालजी लिखते हैं, ''गुटमुक्ति का महत्त्व केवल दो शक्ति गुटों के संदर्भ में ही है, किंतु गत एक दशाब्दी की अवधि में कई-कई नई शक्तियाँ पैदा हो गई हैं और नए गुट बन गए हैं। यह सच है कि अमरीका और सोवियत रूस जैसी शक्तिशाली धुरियों के अभाव में ये नए गुट अधिक महत्त्व का स्थान नहीं पा सके हैं, फिर भी उनके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। अफ्रो-एशियाई शक्तिगुट एक ऐसा ही गुट है, जिसमें गुटमुक्त और गुटयुक्त, सभी देश शामिल हैं।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों के कई अध्येता मानते हैं कि 1962 के युद्ध तक गुटनिरपेक्ष आंदोलन के निर्विवाद नेता के रूप में भारत तथा प्रधानमंत्री नेहरूजी का एक प्रतिष्ठित स्थान था। चीन के आक्रमण ने इस गरिमा को ठेस पहुँचाई। युद्ध में हमारी हार के कारण भारत की प्रतिष्ठा की क्षति हुई। साथ ही, अमरीका और ब्रिटेन द्वारा सामरिक हस्तक्षेप की हमारी प्रकट अपेक्षा के कारण गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेता के रूप में हमारी सैद्धांतिक प्रतिबद्धता की अपरिमित हानि हुई।

1980 में जनता पार्टी सरकार समाप्त होने से कुछ दिन पूर्व सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण ने अपनी हताशा बताते हुए यह कहा था कि मेरा बाग उजड़ गया। 1962 के युद्ध में एक राष्ट्र के नाते हमें जिस शर्मनाक स्थिति का सामना करना पड़ा, उससे पं. नेहरूजी के मन में भी अपना बाग उजड़ जाने की भावना प्रबल हुई होगी। जवाहरलाल नेहरू की विश्व-दृष्टि में गुटनिरपेक्षता का अव्वल स्थान था। समय के तकाज़े के कारण अपनाया गया यह सिद्धांत एक दृष्टि से कूटनीतिक जनतंत्र की अवधारणा का आविष्कार था। पं. नेहरू इस अवधारणा की प्रतिष्ठा के प्रकाश में बहुत नहाते रहे। चीन के द्वारा आक्रमण इन्हीं कारणों से केवल भारत की भूमि तक सीमित नहीं रहा। यह आक्रमण भारत पर, भारत की विदेश नीति पर और नीति निर्धारक के रूप में पं. जवाहरलाल नेहरू पर भी था। अपनी सीमाओं की सुरक्षा और बंजरभूमि पर भी अपना क़ब्ज़ा जमाए रखने की आवश्यकता की नेहरूजी निरंतर उपेक्षा करते रहे। इसलिए देश की प्रतिष्ठा की क्षति और विदेशनीति की मर्यादा के उजागर होने से भी पं. नेहरू को अपनी स्वयं की प्रतिष्ठा पर चीन आक्रमण के कारण आई आँच ने अधिक विचलित किया होगा। यही कारण था कि 1962 के युद्ध

के पश्चात् जवाहरलाल नेहरू अंदर से व्यथित थे और बिगड़ी सेहत से परेशान होते-होते जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव की तरफ़ अग्रसर होते गए।

एक नेता के रूप में पं. जवाहरलाल नेहरू में कई गुण थे। समूचा देश स्वाधीन भारत की आकांक्षाओं के प्रतीक चिह्न के रूप में नेहरूजी की ओर देख रहा था। श्रद्धा, आदर, सम्मान पाकर जन-मन में अपना स्थान बनाए कितने सारे नेता उस ज़माने में थे। मगर अपने अंगभूत करिश्मे के कारण पं. नेहरू ने जनसाधारण के हित में एक सम्राट् या राजा जैसा स्थान पाया था। अपने मज़बूत जनाधार के बावजूद पं. नेहरू अंदर से भीरुता से ग्रसित थे। यही कारण था कि जहाँ से सीमित लड़ाई-झगड़े से सामनेवाले को परास्त करने की स्थिति में रहे, उन्होंने वह किया। बग़ैर खुले संघर्ष उन्होंने नेताजी सुभाषचंद्र बोस को दरकिनार किया और जब गांधीजी के निधन के पश्चात् पार्टी पर उनकी पकड़ और मज़बूत हुई तो पुरुषोत्तमदास टंडन को पार्टी अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र देने के लिए मजबूर किया। मगर ऐसे कुछ उदाहरणों का अपवाद अगर हम छोड़ें तो चीन-पाकिस्तान या अन्य पड़ोसी राष्ट्रों के साथ संबंध, मुसलमानों से जुड़े आंतरिक मसले, आर्थिक मुद्दों के संदर्भ में घिसी-पिटी राह छोड़कर ख़तरा मोल लेते हुए भी कुछ नए रास्तों को अपनाने की ज़रूरत और प्रशासनिक विषयों में भी प्रतीकवाद (symbolism) के परे जाकर कुछ करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति—इन मोरचों पर पं. नेहरू की दुर्बलता बार-बार सामने आती रही। नेहरूजी के नेतृत्व की नींव रखी गई स्वाधीनता के तुरंत पश्चात्, मगर स्वाधीनता की दशाब्दी के साथ ही उनकी प्रतिष्ठा का सूरज ढलने लगा था और 1962 के युद्ध के साथ वह लगभग डूब गया। नेहरू के बाद कौन? इस बहुचर्चित प्रश्न के अंदर नेहरूजी का और नेहरूवाद की जादुई मोहिनी का अंत लगभग तय हुआ माना गया है, इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गांधीजी की निंदनीय हत्या से मात्र 6 दिन पूर्व 24 जनवरी, 1948 को अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के छात्रों के सम्मुख जो दीक्षांत भाषण किया था, वह नेहरूजी की गांधी हत्या-पूर्व सोच को दरशाता है। नेहरूजी ने दो टूक कहा था—"आप मुसलमान हैं और मैं हिंदू हूँ। हम विभिन्न मतों में विश्वास करें या फिर किसी भी मत में विश्वास न करें, मगर उससे हमारी दोनों की मिलकर जो सांस्कृतिक विरासत है, उससे हमें कोई दूर नहीं कर सकता। मैं अपनी उस विरासत के प्रति गर्व का भाव रखता हूँ जिसने देश को विश्व में सांस्कृतिक और बौद्धिक संपदा की दृष्टि से असाधारण स्थान दिया। आप इस विरासत की ओर कैसे देखते हैं? क्या आपको भी गर्व का भान होता है?"

दुर्भाग्यवश, ऐसे दो टूक सवाल पूछने का साहस कांग्रेसी नेतृत्व में 1948 के पश्चात् लगभग नहीं रहा। 1950 का नेहरू-लियाक़त समझौता हो या फिर हिंदू कोड

बिल जैसे प्रगतिशील, सुधारवादी क़दम मुसलमानों के बारे में उठाने के विषय में उदासीनता, भीरुता और राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव की बात हो, 1963-64 आते-आते नेहरू-प्रणीत सेक्युलरिज़्म के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास को चोट पहुँची तथा यह समाप्त होते गए। शायद यही कारण था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रति घोर पूर्वग्रह होने के बावजूद 1962 के चीन-युद्ध के दौरान संघ ने दिल्ली में जो कार्य किया, उसके प्रति कृतज्ञ रहते हुए नेहरूजी ने संघ को 1963 की गणतंत्र दिवस परेड में सहभागी होने का न्योता दिया।

1964 में विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना को भी इसी पृष्ठभूमि पर देखना चाहिए। मुसलिम मानसिकता के विषय में पं. नेहरू की भूमिका इतनी लघुदृष्टि-भारित और विकृत हो रही थी कि केवल बहुसांख्यिकता को ही वह जातीय, सांप्रदायिक तनावों के लिए ज़िम्मेदार ठहराते रहे। मुसलमानों को कुछ खरी-खरी सुनाने के साहस के संपूर्ण अभाव के कारण हिंदू मत की आवाज़ को राजनीतिक मंचों से परे जाकर उठानेवाली व्यवस्था आवश्यक बन गई। सेक्युलरवाद पर निष्ठा के प्रतीक चिह्न के रूप में मुसलमानों का अनुनय आम बात हो गई। मुसलमानों के अनुनय का तर्क 'बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता' के विरोध की आवश्यकता कह देना फिर लंबे समय के लिए फैशनेबल बना।

1960 में जब जबलपुर में उषा भार्गव नाम की महिला पर बलात्कार का प्रकरण हुआ और उसमें अपराधियों की सूची में मुसलमानों के नाम आने लगे, उस समय बग़ैर कोई तथ्य समझे पं. नेहरू ने 'बहुसंख्यकों की (कथित) सांप्रदायिक मानसिकता' पर इस पूरे प्रकरण का ठीकरा फोड़ डाला।

इसी दरम्यान स्थापित नेहरूवाद की बिखरी आधारशिला—समाजवाद—का खोखलापन और अप्रासंगिकता भी पूरी ताक़त से सामने आती गई। इसमें महत्त्वपूर्ण था जनसहभागिता का अभाव। स्वाधीनता के पश्चात् विदेशी शासनकर्ता चले गए। ऐसी स्थिति में नए स्वदेशी शासनकर्ताओं के लिए देशवासियों की सहभागिता सुनिश्चित करते हुए राष्ट्र के पुनर्निर्माण को एक लोक आंदोलन बनाना ज़रूरी था। मगर यह महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक सोच शायद किसी के भी एजेंडे पर नहीं थी। नए मंत्री पुराने तंत्र पर अपनी पकड़ बिठाने में व्यग्र हो गए, जनसंघ राजनीति तंत्र के रास्ते निकल पड़ा, स्वाधीनता संग्राम की ऊर्जा को न किसी ने सँजोया, न बरक़रार रखने की या नए अंदाज़ में संगठित करने की किसी ने कोशिश की। ऐसे वायुमंडल में 'विकास' एक जन-आंदोलन होने से मीलों दूर, एक सरकारी कार्यक्रम बनकर रह गया। नेहरू प्रणीत 'समाजवाद' में अपने स्वयं के विकास का कार्य भी एक दृष्टि से 'आउटसोर्स' किया गया। 'सब कुछ सरकार को करना चाहिए, वाली मानसिकता इस भाव को और बलवती बनाती गई।

अंतरराष्ट्रीय पटल पर इसी समय रूस में ख्रुश्चेव के द्वारा प्रारंभ निस्टालिनीकरण (De-Stalinisation) अपने अंतिम चरण तक आ पहुँचा था। रूस का ख्रुश्चेव-पर्व और भारत का नेहरू-पर्व लगभग समानांतर था। वहाँ स्टालिन की छाया को मिटाकर राजसत्ता की संप्रभुता बढ़ाने की कोशिश थी। यहाँ विडंबना यह थी कि ब्रिटिश राजसत्ता की ढलती छाया के ही प्रकाश में नेहरूवाद का निरंकुश साम्राज्य मज़बूत कराने की कोशिश थी। राजसत्ता की सर्वंकषता दोनों देशों की स्थितियों में समान सूत्र थी।

नेहरू प्रणीत आर्थिक नीति में समाजवाद को वरीयता थी, सोवियत मॉडल एक आदर्श था और सरकार की मज़बूत पकड़ सर्वोपरि थी। शायद इसीलिए विनोबा भावे ने सरकारी और अ-सरकारी के बीच जो खाई निर्माण हो रही थी, उस पर प्रकाश डालने की कोशिश की। साठ के दशक के प्रारंभ में ही समाजवाद की दीवार ध्वस्त होने लगी थी। वैसे 1955 में आवडी (चेन्नई के निकट) में हुए कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में कांग्रेस ने समाजवादी समाज रचना को अपना घोषित लक्ष्य मानते हुए विपक्ष में बैठे साम्यवादी-समाजवादी दलों का एजेंडा ही मानो छीन लिया था। मगर '60 के दशक के प्रारंभ में समाजवाद की चमक-दमक कुछ कम पड़ने लगी थी और इस विचारधारा के प्रति लोगों के मन में बसा आकर्षण भी फीका पड़ने लगा था। 1959 में नागपुर कांग्रेस में सहकारिता के माध्यम से कृषि के विषय में आधिकारिक प्रस्ताव संगत किया तो गया, मगर समाजवाद के प्रति कांग्रेसियों के मोहभंग का एहसास भी उसी समय होने लगा था। सहकारी-खेती के विषय में चीज़ों को अनिवार्य बनाकर थोपने के विषय में स्वयं पं. नेहरू असमंजस में थे। स्वाभाविक ही था कि मीनू मसानी और चौधरी चरण सिंह के साथ पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी सहकारी-खेती की संकल्पना की अव्यावहारिकता उजागर की और उसका विरोध भी किया।

इसी समय भारत को अनाज-संकट ने घेर लिया और अमरीका के बहुचर्चित पी एल 480 कार्यक्रम के तहत भारी मात्रा में अनाज आयात करने के लिए मजबूर हुआ। अनाज को बड़ी मात्रा में आयात करने की मजबूरी भी नेहरू-प्रणीत समाजवाद की विफलता की परिचायक थी।

इसी समय अर्थशास्त्रीय सिद्धांतों का सीधा संबंध विकास की संकल्पना से जोड़ने हेतु Development Economics (विकास का अर्थशास्त्र) नाम से नई ज्ञान शाखा विकसित हुई। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल की किताब 'एशियन ड्रामा' यद्यपि 1960 के दशक के उत्तरार्ध में आई थी, विकसनशील देशों की ग़रीबी अर्थशास्त्र की वैश्विक कार्यसूची का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनकर रही थी।

1963-64 की पृष्ठभूमि इस तरह समाजवाद, सेक्युलरवाद और गुटनिरपेक्षता की

मर्यादाओं को उजागर करनेवाले काल की थी। विकल्प के रूप में उभरते भारतीय जनसंघ को इसी संदर्भ में अपनी समग्र सोच को एक चिंतनधारा के रूप में संपूर्णता से प्रस्तुत करने की ज़रूरत महसूस होना स्वाभाविक था। 'वह काल' इस तरह के मंथन की संभावनाओं से भरा हुआ था। 1964 में ही दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का प्रणयन किया, जो 1965 के विजयवाड़ा के अधिवेशन में भारतीय जनसंघ द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकार किया गया। यह उस काल के घटनाचक्र की स्वाभाविक, तार्किक परिणति थी।

—विनय सहस्रबुद्धे

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954–1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956–1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइज़र के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'द टू प्लान्स : प्रॉमिसेज़, परफॉर्मेंस, प्रॉस्पेक्ट्स' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पॉलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

ख़िलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जनसंघ

नैरोबी हवाई अड्डे पर पं. दीनदयाल उपाध्यायजी के स्वागत के लिए आया जन समुदाय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वार्षिकोत्सव में पं. दीनदयाल उपाध्यायजी के साथ हैं नैरोबी संघचालक श्री एस.के. सरकार

नैरोबी में आयोजित संघ के वार्षिकोत्सव में भगवा ध्वज फहराते पं. दीनदयाल उपाध्यायजी

केन्या के भारतीय दूतावास में आयोजित कार्यक्रम को संबोधित करते पं. दीनदयाल उपाध्यायजी

नैरोबी में आयोजित संघ के वार्षिकोत्सव में संबोधित करते पं. दीनदयाल उपाध्यायजी,
साथ में मंचासीन पूर्वी अफ्रीका के संघचालक जे.एस. सूद

नैरोबी में मेयर से भेंट के बाद वहाँ की विजिटर बुक में अपना मंतव्य लिखते पं. दीनदयाल उपाध्यायजी।
साथ में खड़े हैं मेयर पार्लर

नैरोबी के मेयर पार्लर एवं एल्डरमैन चार्लेस रूविन के साथ
औपचारिक चर्चा करते हुए पं. दीनदयाल उपाध्यायजी
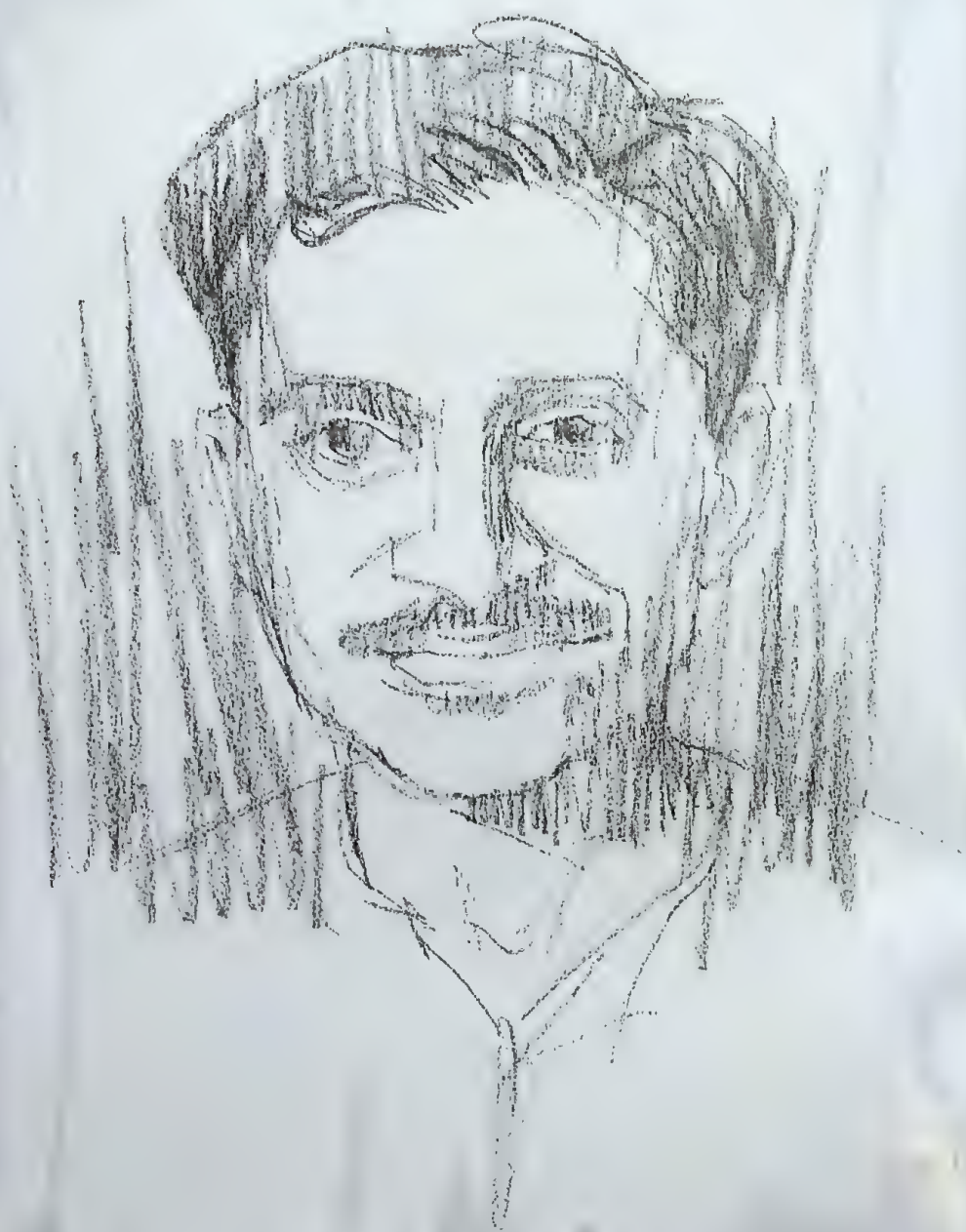
अनुक्रमणिका

परिचय *सात*
संपादकीय *ग्यारह*
भूमिका *तेरह*
वह काल (1963-64)-भ्रमों के टूटते जाल *इकतीस*
वाङ्मय संरचना *उनतालीस*

1. अंतिम विजय सर्वस्व की बलि माँगती है
—पाञ्चजन्य, जनवरी 21, 1963 1
2. पाश्चात्य देशों ने पाकिस्तान को खुश करने के लिए नहीं—
कम्युनिस्ट चीन को परास्त करने के लिए सहायता दी है
—पाञ्चजन्य, जनवरी 21, 1963 6
3. पोलिटिकल डायरी **—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 4, 1963** 10
—भारतीय जनसंघ और विदेश नीति पर बहस
4. जनसंघ का निर्देश : अंग्रेज़ी लादी न जाए
—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 11, 1963 16
5. आर्थिक नीतियों का पुनर्मूल्यांकन हो
—पाञ्चजन्य, फरवरी 11, 1963 17
6. पोलिटिकल डायरी **—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1963** 20
—स्वर्णनीति का एक्स-रे
7. प्रशासन स्वर्णकारों की रोज़ी-रोटी की व्यवस्था करे
—पाञ्चजन्य, मार्च 4, 1963 26

8. पोलिटिकल डायरी —**ऑर्गनाइज़र, मार्च 11, 1963** 27
—नया बजट : अर्थशास्त्र का अभाव, अर्थनीति की उपेक्षा
9. महापुरुषों को किसी दल विशेष की सीमा में बाँधना सांप्रदायिकता एवं संकुचित मनोवृत्ति का द्योतक है
—**पाञ्चजन्य, अप्रैल 1, 1963** 33
10. भाषा संबंधी काला विधेयक संविधान का खुला उल्लंघन है
—**पाञ्चजन्य, अप्रैल 22, 1963** 37
11. डॉ. रघुवीर सदा याद किए जाएँगे
—**ऑर्गनाइज़र, मई 20, 1963** 41
12. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अजमेर —**मई 28, 1963** 42
13. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अजमेर —**मई 28, 1963** 49
14. जौनपुर में हम क्यों हारे : एक विश्लेषण
—**ऑर्गनाइज़र, जून 3, 1963** 59
15. अतिथि संपादकीय —**ऑर्गनाइज़र, जून 10, 1963** 63
—संगठित विपक्ष के लिए प्रस्ताव
16. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली —**जून 18, 1963** 66
17. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली —**जून 20, 1963** 71
18. 'अनिवार्य बचत' बात ही अंतर्विरोधी है
—**ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963** 78
19. मुद्रास्फीति और भ्रष्टाचार के चलते कई मोरचों पर हारे
—**ऑर्गनाइज़र, जुलाई 8, 1963** 80
20. मुखर्जी पद्धति —**ऑर्गनाइज़र, जुलाई 8, 1963** 82
21. मोरारजी पहले अपना घर सँभालें
—**पाञ्चजन्य, जुलाई 15, 1963** 84
22. कम्युनिस्ट पार्टी की चीन से साँठ-गाँठ
—**पाञ्चजन्य, अगस्त 5, 1963** 85
23. समाज की रक्षा का व्रत ही रक्षाबंधन का संदेश
—**पाञ्चजन्य, अगस्त 12, 1963** 86
24. यह सरकार के अंत की शुरुआत है
—**ऑर्गनाइज़र, अगस्त 26, 1963** 89
25. पोलिटिकल डायरी —**ऑर्गनाइज़र, सितंबर 2, 1963** 92
— कामराज-योजना पर एक दृष्टि

26. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, सितंबर 9, 1963 95
—क्या हमने चीन आक्रमण से शिक्षा ली?
27. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, सितंबर 16, 1963 98
—श्री केनेडी के रुख़ में कमी क्या है
28. अमरीका यात्रा से पूर्व वक्तव्य
—पाञ्चजन्य, सितंबर 23, 1963 101
29. लोकतांत्रिक राष्ट्रवादी, लोकतांत्रिक समाजवादी और राष्ट्रवादी समाजवादी
—ऑर्गनाइज़र, दीवाली, 1963 102
30. स्वयंसेवक —पाञ्चजन्य, नवंबर 25, 1963 107
31. भारतीय जनसंघ को कांग्रेस का विकल्प बनाएँ
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 2, 1963 109
32. हिंदू भावना कोई राजनीतिक इकाई नहीं है
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 9, 1963 110
33. अमरीका में भारत के प्रति घोर अज्ञान
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 9, 1963 113
34. संकटकाल में राष्ट्रवादी शक्तियों का दायित्व
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 23, 1963 115
35. भारतीय जनसंघ वार्षिक राष्ट्रीय अधिवेशन :
अहमदाबाद महामंत्री प्रतिवेदन
—दिसंबर 28, 1963 122
36. मिथ्या पाकिस्तानी प्रचार : हिंदुस्तान पाकिस्तान पर हमला करेगा
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 30, 1963 129
37. कुछ धारणाएँ-1 —पाञ्चजन्य, दिसंबर 30, 1963 134
— मेरी विदेश यात्रा
38. कुछ धारणाएँ-2 —ऑर्गनाइज़र, फरवरी 3,1964 137
—अफ्रीका की जय हो!
39. कश्मीर और पूर्वी बंगाल
बात बहुत आगे जा चुकी है-और बहुत देर से हो रही है!
—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 3, 1964 140
40. अतिथि संपादकीय —ऑर्गनाइज़र, मार्च 2, 1964 144
—कश्मीर में विषाद
41. बजट पर कुछ विचार —ऑर्गनाइज़र, मार्च 16, 1964 148

42. कुछ धारणाएँ-3 —ऑर्गनाइज़र, मार्च 23, 1964 152
—अमरीकी तीन प्रश्न पूछते हैं
43. परंपरावाद और यथास्थितिवाद —ऑर्गनाइज़र, मार्च 23, 1964 155
44. कुछ धारणाएँ-4 —ऑर्गनाइज़र, मार्च 30, 1964 156
—हमेशा 'हिंदू' भारत और 'मुसलिम' पाकिस्तान होता है
45. आर्थिक प्रगति की समस्याएँ —पाञ्चजन्य, अप्रैल 13, 1964 161
46. परिसंघ —ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 20, 1964 166
47. अतिथि संपादकीय —ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 27, 1964 168
— अब्दुल्ला से बातचीत नहीं
48. उपाध्याय ने स्वतंत्र पार्टी पर वचनभंग का आरोप लगाया
—ऑर्गनाइज़र, मई 12, 1964 174
49. अतिथि संपादकीय —ऑर्गनाइज़र, मई 18, 1964 176
—पंडित जी, कश्मीर से दूर रहें!
50. यदि सरकार अपना पक्ष बदलती है तो सत्याग्रह होगा!
—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, मई 26, 1964 181
51. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : राजस्थान —जून 4, 1964 183
52. संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : राजस्थान —जून 5, 1964 193
53. अतिथि संपादकीय —ऑर्गनाइज़र, जून 8, 1964 204
—एक नया युग आया है
54. ए. पी. जैन उप समिति की रिपोर्ट : हौवा फिर खड़ा किया गया
—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 13, 1964 209
55. पोलिटिकल डायरी —ऑर्गनाइज़र, जुलाई 20, 1964 213
—कश्मीर, जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी
56. भारत सरकार ने बर्मा में बसे भारतीयों को हताश किया
—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 27, 1964 217
57. शास्त्री—अयूब मिलन अपमानजनक
—पाञ्चजन्य, जुलाई 27, 1964 220
58. देश की एकता और अखंडता पर कोई समझौता नहीं
—पाञ्चजन्य, जुलाई 27, 1964 222
59. राष्ट्रीयकरण नहीं राष्ट्रीय दृष्टिकोण चाहिए
—पाञ्चजन्य, अगस्त 3, 1964 224
60. सिद्धांत और नीतियाँ —पुस्तक, अगस्त 1964, ग्वालियर 228

61. उपाध्याय ने सं. सो. पा. को साम्यवादी जाल में न फँसने को चेताया
—**ऑर्गनाइज़र, अगस्त 31, 1964** 266
62. अंग्रेज़ी बिल को त्याग दो! —**ऑर्गनाइज़र, अगस्त 31, 1964** 268
63. शास्त्रीजी की बड़ी कूटनीतिक ग़लती
—**ऑर्गनाइज़र, सितंबर 21, 1964** 270
64. राज्य के निर्णय की आलोचना
—**द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, सितंबर 25, 1964** 272
65. केरल को नए नेतृत्व की ज़रूरत है
—**ऑर्गनाइज़र, सितंबर 28, 1964** 273
66. लोग, जो हमें प्रेरणा देते हैं —**ऑर्गनाइज़र, दीवाली, 1964** 275
67. प्रकृति, संस्कृति और विकृति —**राष्ट्रधर्म, अक्तूबर, 1964** 278
68. न्यायपालिका का सम्मान सर्वोपरि
—**पाञ्चजन्य, अक्तूबर 12, 1964** 281
69. उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर कुछ विचार
—**ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 12, 1964** 284
70. अनुच्छेद 370 को अभी समाप्त करें!
—**ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 19, 1964** 287
71. जनसंघ नेता ने परमाणु नीति पर पुनर्विचार को कहा
—**ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 26, 1964** 289
72. पोलिटिकल डायरी —**पाञ्चजन्य, अक्तूबर 26, 1964** 290
—चौथी योजना में तीसरी योजना से कृषि और
लघु उद्योगों के लिए आवंटन कम
73. शरणार्थियों का देश —**ऑर्गनाइज़र, नवंबर 9, 1964** 292
74. जनसंघ फूलपुर और मुंगेर, दोनों जगह से लड़ेगी
—**ऑर्गनाइज़र, नवंबर 9, 1964** 295
75. शास्त्री—सिरिमाओ समझौते द्वारा एक नई समस्या का जन्म
—**पाञ्चजन्य, नवंबर 16, 1964** 297
76. आसाम में दस दिन —**ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 14, 1964** 299

परिशिष्ट—

I. जनसंघ कार्यकारिणी
—**द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, जनवरी 8, 1963** 305

II. भारतीय जनसंघ केंद्रीय कार्यकारी समिति की बैठक
—बी.जे.एस. केंद्रीय कार्यालय, जनवरी 20, 1963 306
III. श्री उपाध्याय, लोहिया तथा कृपलानी चुनाव मैदान में, कांग्रेस परेशान
—पाञ्चजन्य, मार्च 18 1963 308
IV. अंतिम यात्रा **—ऑर्गनाइज़र, मई 20, 1963** 313
V. I. प्रयाग की डॉ. रघुवीर को श्रद्धांजलि
II. घोष बाबू कार्यकारी अध्यक्ष चुने गए
—ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963 315
VI. राष्ट्रवादी शक्तियों में पारस्परिक सहयोग
भारतीय जनसंघ द्वारा पहल का समर्थन
—ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963 317
VII. दीनदयालजी द्वारा श्री मसानी को उत्तर
—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 10, 1963 318
VIII. अखिल भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा
—पाञ्चजन्य, अगस्त 26 1963 319
IX. ध्यान देने योग्य आदमी : मैनचेस्टर 'गार्जियन'
—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 25, 1963 323
X. कीनिया में दीनदयाल जी
—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 2, 1963 324
XI. अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 16 1963 326
XII. कीनिया में दीनदयालजी
'भारत के असली राजदूत'
—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 23, 1963 328
XIII. भारतीय जनसंघ का वार्षिक राष्ट्रीय अधिवेशन, अहमदाबाद
—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 6, 1964 332
XIV. "अनुच्छेद 370 का उत्सादन"
—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, मार्च 4, 1964 336
XV. मुसलिम बहुल डोडा ने अब्दुल्ला के दावे को झुठलाया
—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 6, 1964 338
XVI. भारतीय जनसंघ कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण शिविर
—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 6, 1964 341

XVII. अराष्ट्रीय पोस्टर का रहस्य **—पाञ्चजन्य, अगस्त, 3 1964** 342

XVIII. 'सिद्धांत और नीति' ग्वालियर प्रशिक्षण शिविर
—पाञ्चजन्य, अगस्त 14, 1964 343

XIX. भारतीय जनसंघ के कार्यक्रमों का आधार 'एकात्मक मानववाद'
—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 24, 1964 352

XX. सरकार अन्न व्यापार के एकाधिकार को छोड़े
—पाञ्चजन्य, दिसंबर 14, 1964 358

XXI. जनसंघ की कार्यकारिणी ने 'सिद्धांत और नीतियाँ'
विषयक प्रपत्र के प्रारूप को स्वीकृति दी
—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 14, 1964 361

XXII. भारत के पुण्यक्षेत्र 365

संदर्भिका *389*

1

अंतिम विजय सर्वस्व की बलि माँगती है

भोपाल में आयोजित जनसंघ के अखिल भारतीय अधिवेशन में दीनदयालजी के भाषण का संक्षिप्त अंश।

राष्ट्र के सम्मुख विद्यमान कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण से उत्पन्न भीषण परिस्थिति पर शांत चित्त से विचारकर हमें कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने होंगे। परंतु उन निर्णयों की सार्थकता इसी में होगी कि हम प्रत्येक भारतवासी को संकट से परिचित कराएँ। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि हमने राष्ट्र के सम्मुख विद्यमान संकट के संबंध में सरकार को चेतावनी एवं उसका निराकरण करने के लिए जो व्यावहारिक सुझाव दिए हैं, वे तभी प्रभावी हो सकेंगे और भारतीय प्रशासन उस पर अमल करने को तभी सिद्ध हो सकेगा, जब वह देखेगा कि संपूर्ण देश खड़ा हो गया है। अत: हमारे लिए केवल इतने से ही संतोष करने का कोई कारण नहीं है कि हम भारत का विचार लेकर चले हैं। आज की परिस्थिति में इससे आगे बढ़कर हम भारतीय जनता के मानस को पहचानकर उसका प्रतिनिधित्व भी कर सकें, इस दृष्टि से हमें अपनी तैयारी करनी चाहिए।

शांत नहीं बैठेंगे

फलस्वरूप हमारी ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ जाएँगी। हमें शासन को दृढ एवं जनता को जागरूक बनाना होगा और यह देखना होगा कि दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास की पुनरावृत्ति न होने पाए। केवल यह कह देने मात्र से कि हमने पहले ही चेतावनी दी थी, हमारा कर्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता। हमें स्मरण रखना होगा कि यदि शत्रु आगे बढ़ता है तो उसके परिणाम केवल प्रशासन अथवा सत्तारूढ़ पक्ष को ही नहीं, संपूर्ण राष्ट्र को भुगतने होंगे। हमने संकट काल में सरकार को सब प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन देते हुए युद्ध की माँग की है, इसीलिए

हमें अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व को पहचानकर यह घोषणा करनी होगी कि न हम स्वत: शिथिल होंगे और न प्रशासन अथवा जनता को ही शिथिल होने देंगे।

शिथिलता का अर्थ आत्मघात

'शांति-शांति' की रट लगानेवाले भारतीय कम्युनिस्टों ने अपने आका रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र 'प्रावदा' से यह संकेत ग्रहण कर कि भारतीय जनता एवं भारतीय कम्युनिस्ट राष्ट्रवाद के शिकार न बनें, अपने षड्यंत्र प्रारंभ कर दिए हैं। प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व की आड़ में उन्होंने शांति और समझौते की रट लगाई है। वे युद्ध-प्रयत्नों को शिथिल बनाने के अपराधी हैं और उनके विरुद्ध कठोरतम कार्रवाई की जानी आवश्यक है। इसका कारण यह है कि शांति और समझौते की भाषा बोलने का परिणाम यह होगा कि भारतीय जनमानस में जो अदम्य राष्ट्रीय चेतना आज जगी है, वह सुप्त हो जाएगी और हमारे युद्ध-प्रयत्नों में शिथिलता आ जाएगी। इसका दूसरा अर्थ आत्मघात भी हो सकता है। अत: हम राष्ट्र को और प्रशासन को शिथिल न होने दें और समाज में व्याप्त चैतन्य को सुसंगठित कर प्रचंड सामर्थ्य खड़ा करें।

षड्यंत्र सफल न होने पाएँ

कम्युनिस्ट पार्टी और देश के अन्य राजनीतिक दलों में मूलभूत अंतर है। देश के अन्य सभी दल इस देश को मातृभूमि मानकर चलते हैं। उनकी प्रेरणास्रोत यही पावन मही है। इसके विपरीत कम्युनिस्ट देश के बाहर से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। वे प्रस्ताव चाहे जैसे क्यों न पारित करें, परंतु उन्हें सदैव रूस और चीन के हितों की चिंता भारत से अधिक रहती है। अत: आज जनसंघ, प्र.स. दल, समाजवादी दल अथवा कांग्रेस के बीच विद्यमान मतभेदों की खाई चौड़ी न कर उन्हें भुलाने की आवश्यकता है और भारतीय राजनीति में कम्युनिस्टों को बिल्कुल अकेला कर देने की नीति का अवलंबन करना होगा, जिससे उनके राष्ट्रद्रोहितापूर्ण षड्यंत्र सफल न होने पाएँ।

रूसवादी बनाम चीनवादी

हमें यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि अंतत: हमें कम्युनिस्टों से ही निपटना होगा, क्योंकि उनका इतिहास राष्ट्रद्रोही घटनाओं से भरा पड़ा है। इसी प्रकार हमें रूसवादी कम्युनिस्ट अथवा चीनवादी कम्युनिस्टों के पचड़े में भी पड़ने की ज़रूरत नहीं। कारण, कल यदि युद्ध पुन: होता है तो डाँगेवादी कामरेड[1] भी हमें युद्ध-लोलुप कहने से चूकेंगे नहीं।

1. श्रीपाद अमृत डाँगे (1899-1991) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य थे। भारत-चीन युद्ध के समय लोकसभा में कम्युनिस्ट समूह के नेता थे।

कम्युनिस्टों को 'अकेला' करें

इसलिए आज विभिन्न राजनीतिक दलों के मतभेदों, मत-मतांतर एवं पूर्वग्रहों को छोड़कर सभी राष्ट्रीय शक्तियों को एकत्र कर अंतरराष्ट्रीय जगत में कम्युनिस्ट चीन को एकाकी करने की नीति के अनुसार ही राजनीतिक क्षेत्र में कम्युनिस्ट पार्टी को अकेला कर देने की नीति अपनानी चाहिए। यदि कोई पक्ष अथवा व्यक्ति हमारे इस प्रयत्न में पूर्णतः हमारे साथ नहीं आता तो भी उसे कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थक बता-बताकर कम्युनिस्टों के चंगुल में नहीं ढकेल देना चाहिए।

राष्ट्रवादी तत्त्व संगठित हों

कम्युनिस्ट केवल बाह्य आक्रमण द्वारा ही किसी देश को अपने क़ब्ज़े में नहीं लाते। वह दलाई लामा को अपदस्थ करने के लिए पणक्षेन लामा को अपना हस्तक बनाते हैं। अतः क्या आश्चर्य, यदि कल को कम्युनिस्ट चीन भारतीय कामरेडों की एक प्रतिद्वंद्वी सरकार का गठन कर उसकी सहायता करते हुए युद्ध चलाने का प्रयत्न करे। उक्त परिस्थिति में युद्ध केवल मोरचे तक ही सीमित नहीं रह जाएगा, वरन् राष्ट्र के जिस हिस्से में भी कम्युनिस्ट होगा, वह भारत को पराधीन बनाने का प्रयास करेगा। उस समय राष्ट्रवादी शक्तियाँ यदि संगठित नहीं हुई तो उनका मुक़ाबला करना कठिन होगा। अतः यह समय पारस्परिक छिद्रान्वेषण करने, अपने को शुद्ध राष्ट्रवादी और दूसरों को मिश्रित राष्ट्रवादी समझने का नहीं वरन् राष्ट्रवाद के आधार पर भारत की बिखरी हुई राष्ट्रीय शक्ति को एकत्र करने का है।

सक्रियता आवश्यक

कम्युनिस्टों द्वारा भारत की भोली-भाली निर्धन एवं ग़रीब जनता की दुरावस्था और अज्ञानता का लाभ उठाकर उन्हें अपना हस्तक बनाने के कारनामों का केवल रोना रोने मात्र से भी काम न चलेगा। आज हमें इस क्षेत्र में भी प्रवेश कर रिक्शा वाले मज़दूर, किसान, आदिवासी एवं वनवासी वर्ग की समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें सुलझाने का प्रयास करना होगा और तब कम्युनिस्टों का कुचक्र स्वतः समाप्त हो जाएगा।

विधायक कार्यक्रम

युद्ध प्रयत्नों में हमें स्थान-स्थान पर राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में अधिकाधिक धन एकत्र कराने का प्रयास कराना चाहिए। सेना के जवानों के पास यथासंभव स्वेटर आदि भिजवाने की व्यवस्था करनी चाहिए। यह ठीक है कि एक स्वेटर से युद्ध नहीं जीता जा सकता। पर बूँद-बूँद से तालाब भरता है, यह भी हम स्मरण रखें और यदि संपूर्ण देश में सेना के जवानों के लिए आत्मीयता उत्पन्न हो जाए तो वह लाखों स्वेटर एकत्र करा

देगी। इस प्रकार के कार्यों से संपूर्ण समाज में शत्रु का प्रतिकार करने की भावना जगती है और सेवा का उत्साह एवं मनोबल बढ़ता है। जवान यह अनुभव करते हैं कि उनके पीछे संपूर्ण राष्ट्र खड़ा हुआ है।

सत्तारूढ़ दल के वश का नहीं

धन संग्रह आदि के कार्य में सत्तारूढ़ दल यदि उसका लाभ दलगत स्वार्थ के लिए न उठाता एवं तेजपुर से लौटने के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी कांग्रेस सेवा दल आदि की प्रशंसा न कर कम-से-कम इस समय दलगत स्वार्थ की दृष्टि से न सोचतीं तो उचित होता। परंतु यदि वह अपना कर्तव्य पूर्ण करने के लिए सिद्ध नहीं, तो भी हम पीछे न रहें और सरकारी समितियों को सहयोग दें; क्योंकि हमारा उद्देश्य तो चीनियों को मार भगाना है। कोई भाषण में कुछ भी कहे, समाज तो कार्य देखता है। और हम जानते हैं कि परिश्रम करना शासनारूढ़ पक्ष के वश की बात नहीं है। अतः नाम की चिंता न कर हम अपना सक्रिय सहयोग दें।

सरकार का मुँह न जोहें

राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में सेवा शुश्रूषा, आग बुझाने एवं प्राथमिक उपचार करने आदि के साथ सैनिक शिक्षा लेना अनिवार्य हो गया है। पर सैनिक शिक्षा और राइफल ट्रेनिंग के पूर्व क़दम मिलाकर चलना भी अधिक महत्त्वपूर्ण है और इस कार्य के लिए सरकार का मुँह न जोहते रहकर हम स्वतः आगे बढ़ें। इसी प्रकार निर्दलीय आधार पर सेना में जवानों की भरती करने के साथ इन युवकों का सार्वजनिक अभिनंदन करने से उनका हौसला बढ़ेगा, उन्हें प्रेरणा मिलेगी।

इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर हम जवानों को आश्वस्त कर सकते हैं कि वे अपने परिवार, खेती, घर और बच्चों की चिंता से मुक्त होकर मोरचे पर आगे बढ़ें और समाज तथा सरकार द्वारा उनके तथा उनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा आदि की चिंता आगे बढ़कर की जाएगी।

विजयश्री प्राप्त करेंगे

समय की आवश्यकता पहचानकर राष्ट्र-जागरण के लिए अधिकाधिक और पूर्ण समय देकर कार्य करनेवालों की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति की दृष्टि से हमें आगे बढ़कर ग्राम-ग्राम में फैलकर समाज में आशा एवं विश्वास का संचार करना चाहिए और राष्ट्रद्रोहियों द्वारा पं. नेहरू को च्यांगकाई शेक[2] बनाने के षड्यंत्र का परदा फाश

2. च्यांग काई शेक (1887-1975) चीन के राजनेता एवं सैनिक नेता थे। इन्होंने दिसंबर 1943 में राष्ट्रवादी कुओमिंतांग सरकार का गठन किया था। अमरीका ने भी चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता न देकर फारमोसा स्थित राष्ट्रवादी सरकार को चीन की सरकार के रूप में मान्यता दी थी।

करते हुए यह स्पष्ट रूप से घोषणा करनी चाहिए कि चीन के उक्त दुर्भाग्यपूर्ण परिच्छेद की पुनरावृत्ति भारतभूमि में न होने दी जाएगी। हमारे सामने उस पन्ना धाय[3] का आदर्श है, जिसने उदय सिंह के रक्षार्थ अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपने पुत्र की ही बलि चढ़ा दी थी। वसीयत के रूप में प्राप्त राष्ट्र की अस्मिता, अखंडता और विश्व में सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति एवं जीवन-दर्शन की रक्षार्थ बड़े से बड़ा बलिदान करने से हम न चूकें। कम्युनिस्ट भले हमें अपने मार्ग का काँटा समझते हों, परंतु भारत की इस राष्ट्रीय प्रतिरोध की शक्ति के सम्मुख उनके गर्हित मनसूबे और षड्यंत्र सफल न होने पाएँगे और अंततः इस संघर्ष में हम विजयश्री प्राप्त करके ही दम लेंगे।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 21, 1963

□

3. पन्ना धाय, 16वीं सदी में महाराणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) के चौथे पुत्र उदय सिंह द्वितीय की दाई थीं। उनका पुत्र उदय सिंह का हमउम्र था। मेवाड़ के इतिहास में जिस गौरव के साथ महाराणा प्रताप को याद किया जाता है, उसी गौरव के साथ पन्ना धाय का नाम भी लिया जाता है। पन्ना धाय ने उदय सिंह का जीवन बचाने के लिए अपने पुत्र चंदन का बलिदान दे दिया था।

2

पाश्चात्य देशों ने पाकिस्तान को खुश रखने के लिए नहीं, कम्युनिस्ट चीन को परास्त करने के लिए सहायता दी है

क्या पाकिस्तान से किसी प्रकार समझौता किए बिना वर्तमान परिस्थिति में चीनी आक्रमण का सामना किया जा सकता है? यह प्रश्न आजकल विशेष रूप से इसलिए विचारणीय बन गया है कि पाकिस्तान और भारत के बीच जो वार्त्ता चल रही है, उसमें पाकिस्तान अपनी ज़िद पर अड़कर भारत के किसी भी न्यायपूर्ण अधिकार को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं दिखता। उल्टे वह चीन से मित्रता करके हमें धौंस दिखाकर कश्मीर हड़पना चाहता है। यह स्थिति भारत को कभी भी स्वीकार नहीं हो सकती। तब प्रश्न उठता है कि क्या पाकिस्तान के सहयोग के बिना भी हम अपनी सुरक्षा कर सकते हैं या नहीं?

यह तो निर्विवाद है कि संपूर्ण भरतखंड एक प्राकृतिक इकाई है। सामरिक दृष्टि से विचार करते समय वह एकत्व बहुत ही उभरकर सामने आता है। पाकिस्तान का निर्माण भारत का कृत्रिम विभाजन करके हुआ है। यह कृत्रिमता दो प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करती है। दोनों के बीच की सीमाएँ प्राकृतिक नहीं हैं। फलतः यदि दोनों में समझौता न रहा अथवा शत्रुता रही तो दोनों को ही इन सीमाओं की रक्षा करने के लिए भारी संख्या में फ़ौजें तैनात करनी पड़ेंगी। दूसरे, आवागमन की दृष्टि से अविभाजित भारत एक इकाई होने के कारण भारत और पाकिस्तान दोनों के विभिन्न भू-भागों का संरक्षण एक दूसरे की सहायता के बिना नहीं हो सकता। बिना भारत के साथ समझौता किए पाकिस्तान पूर्वी बंगाल की रक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार किसी संकटकाल में

यदि बंगाल और आसाम का गलियारा हमारे हाथ से जाता रहा तो आसाम की रक्षा के लिए फ़ौजों को पूर्वी बंगाल के रास्ते से ही भेजना पड़ेगा।

सामरिक कारणों के अतिरिक्त कुछ अंतरराष्ट्रीय राजनीति की विवशताएँ भी पाकिस्तान के साथ समझौते की आवश्यकता प्रतिपादित करती हैं। अमरीका और ब्रिटेन, जो इस आड़े समय भारत के साथ आए हैं, पहले से पाकिस्तान के साथ सैनिक संधि कर चुके हैं। पाकिस्तान आज उनके ऊपर दबाव डाल रहा है। वे चाहते हैं कि पाकिस्तान का विरोध किसी-न-किसी प्रकार ख़त्म कर दिया जाए।

उक्त कारणों के अतिरिक्त कम्युनिस्ट चीन का संकट केवल भारत के लिए ही नहीं, पाकिस्तान के लिए भी है। आज यद्यपि वह पाकिस्तान के साथ मित्रता की बातें करता है किंतु वह केवल भारत भूखंड की दोनों शक्तियों को बाँटने की दृष्टि से है। यदि किसी दुर्घटनावश भारत के हाथ से आसाम निकल गया तो चीन वहीं नहीं रुकेगा। वह बंगाल की खाड़ी तक पहुँचने के लिए पूर्वी बंगाल को धर दबोचेगा। अतः समान संकट के नाते बुद्धिमानी इसी में है कि दोनों मिलकर चीन का मुक़ाबला करें। यदि युद्ध में नहीं मिल सकते तो कम-से-कम दूसरे के मार्ग में रोड़े तो न अटकाएँ।

समझौता रूपी तुष्टीकरण घातक

इन कारणों से अनेक लोग सलाह देते हैं कि पाकिस्तान के साथ कुछ-न-कुछ समझौता कर लेना चाहिए। परंतु दुर्भाग्य का विषय है कि ये सब बातें न तो पाकिस्तान के शासकों की समझ में आती हैं और न वे इनको सुनने के लिए तैयार हैं। वे तो यही चाहते हैं कि इस मुसीबत का लाभ उठाकर भारत से कुछ हथिया लिया जाए। मुसलिम लीग की यह पुरानी नीति है। फिर क्या कुछ दे-लेकर पाकिस्तान के साथ समझौता किया जाए? कुछ लोग 'अर्द्ध त्यजति पंडितः' का न्याय बताकर इसे विवेकपूर्ण बता सकते हैं। किंतु वास्तव में वह अव्यावहारिक है। तुष्टीकरण से जिस एकता की हम कल्पना करते हैं, वह प्राप्त नहीं होगी। इस मार्ग से कोई गारंटी नहीं कि पाकिस्तान आगे शांत हो जाए, बल्कि उसकी भूख और बढ़ेगी। फिर वर्तमान में पाकिस्तान की जो माँगें हैं, उनको यदि मान लिया गया तो भारत की लद्दाख क्षेत्र में बहुत कठिनाइयाँ बढ़ जाएँगी। साथ ही जो आंतरिक दुष्परिणाम होंगे, वे अलग हैं। कश्मीर में पाकिस्तान एक आक्रमणकारी है। अतः भारत यदि एक आक्रमणकारी के सामने झुका तो दूसरे का डटकर मुक़ाबला नहीं कर सकेगा।

इन परिस्थितियों में पाकिस्तान के साथ मेल, तभी हो सकता है, जब कि चीन का डटकर मुक़ाबला करने के अपने उद्देश्य को वह समान संकट की अनुभूति पर बिना किसी शर्त के स्वीकार करे। दोनों के बीच के प्रश्न यदि पिछले 15 वर्षों में नहीं सुलझ

पाए तो और ठहर सकते हैं। यदि पाकिस्तान ठहरना नहीं चाहता तो कहना होगा कि उसका दिल साफ़ नहीं।

दोहरे संघर्ष और सुरक्षा के लिए

किंतु अभी मुख्य प्रश्न तो बचा हुआ है। क्या पाकिस्तान से समझौता न करते हुए हम चीन का मुक़ाबला कर सकते हैं? उत्तर स्पष्ट है—हम पूर्णतया सफल मुक़ाबला कर सकते हैं। परंतु ऐसी स्थिति में हमें अधिक सतर्क रहना होगा और अधिक श्रेष्ठ प्रकार से युद्ध प्रयत्नों में जुटने की आवश्यकता होगी। हमें स्पष्ट रूप से सबको यह बता देना होगा कि हम अपने से पाकिस्तान पर कोई आक्रमण नहीं करेंगे, परंतु यदि पाकिस्तान किसी भी प्रकार के आक्रमण की पहल करेगा तो उसको इस धृष्टता का पूरा-पूरा मज़ा चखा देंगे। उसे अपने कुकृत्यों का परिणाम भुगतना पड़ेगा, यह बात पाकिस्तान को समझा देना आवश्यक होगा। स्वाभाविक रूप से लोगों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि भारत पाकिस्तान की शरारत नहीं रोक सकता तो वह चीन से कैसे लड़ेगा? अतएव स्पष्टतया हमें तो दोनों से ही निपटने की तैयारी करनी पड़ेगी।

झुकना स्वीकार नहीं

यहाँ यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि इन सारी परिस्थितियों में भी पाकिस्तान से यदि कोई तात्कालिक सम्मानजनक संधि हो जाती है तो उससे दोनों का ही हित होगा। क्योंकि दोनों के सामने समान रूप से चीन का संकट उपस्थित है। अब रही हमारी पड़ोसी के प्रति कर्तव्यपालन की बात, सो हमने तो इतना स्पष्ट कर दिया है और इस पर भी यदि पाकिस्तान के शासक कम्युनिस्ट चीन के प्रसारवादी हथकंडों से उत्पन्न संकट की उपेक्षा करते हुए भारत की सामरिक परेशानी का अनुचित लाभ उठाने की बात सोचें तो हमें किसी भी प्रकार झुकना नहीं चाहिए।

मित्र राष्ट्र सत्य को समझें

जहाँ तक हमारे मित्रों का प्रश्न है, उन्होंने कम्युनिस्ट चीन का विरोध करने के लिए सहायता दी है। उनका इस सहायता के पीछे यह मंतव्य कदापि नहीं है कि हम पाकिस्तान को ख़ुश रखें या नाराज़। हमारे चीन विरोधी कार्यों में यदि पाकिस्तान बाधा डालता है तो हमारे इन सहायक मित्रों को (जो कि उसके भी मित्र हैं) उसे समझना चाहिए और फिर भी यदि उसकी समझ में नहीं आता तो उसकी असलियत को पहचानकर उसके साथ यथोचित व्यवहार करें। पाश्चात्य देशों ने पाकिस्तान को जो सहायता दी, उसका एकमेव उद्‌देश्य कम्युनिस्ट चीन का विरोध करना ही था। संधि के अनुसार आज जब कम्युनिस्ट चीन अपने विस्तारवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील

है, पाकिस्तान का कर्तव्य है कि वह वहाँ का मार्ग अवरुद्ध करे। यदि पाकिस्तान ऐसा नहीं करता तो भारत की वे आशंकाएँ सत्य प्रमाणित हो जाएँगी जो कि उसने पाश्चात्य देशों द्वारा पाकिस्तान को सहायता दिए जाते समय व्यक्त की थीं। अंततोगत्वा यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि पाश्चात्य शक्तियों ने इस दृष्टि से जो रुख़ अपनाया है, उससे यह नहीं लगता कि वे पाकिस्तान को ख़ुश करने के लिए भारत को कमज़ोर करेंगे, क्योंकि वे स्पष्ट जानते हैं कि कम्युनिज़्म के विस्तार को रोकने की शक्ति भारत में पाकिस्तान से कहीं अधिक है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 28, 1963

□

पोलिटिकल डायरी

3

भारतीय जनसंघ और विदेश-नीति पर बहस

यह आलेख 'पोलिटिकल डायरी' (पुस्तक), 1971 में 'परराष्ट्रीय नीति और प्रतिरक्षा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

गत मास भोपाल में संपन्न भारतीय जनसंघ के दशम वार्षिक अधिवेशन ने चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि में यथा-आवश्यकता दल की नीतियों और कार्यक्रमों के पुनर्मूल्यांकन, पुनर्निर्धारण के बारे में विचार करने के लिए प्रतिनिधियों को एक अवसर प्रदान किया। मुख्यत: यही बात ध्यान में थी, जिस कारण इंदौर में एक सामूहिक अधिवेशन आयोजित करने के पूर्वनिर्णय में परिवर्तन कर दिया गया। विशाल संख्या होने पर गंभीर विषयों पर विचार-विमर्श कठिन हो जाता है। यहाँ भी प्रतिनिधियों की संख्या, जो तेरह सौ से अधिक थी, प्रत्याशित से अधिक रही। फिर भी यह व्यवस्था-शक्ति के अंदर ही थी। साथ ही, प्रतिनिधियों ने स्थिति के प्रति अभूतपूर्व जागरूकता प्रदर्शित की तथा उत्तरदायित्व के प्रति उनकी चेतना अत्यंत रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुई। उनके सोद्देश्य एवं सहयोगात्मक व्यवहार के कारण ही नीतियों के सभी पहलुओं पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श हो सका और प्राय: सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किए जा सके। प्राविधिक (टेक्निकल) बातें, जिनको कुछ विधिज्ञ, विधिनिर्माता तथा व्याख्याकार बहुत महत्त्व देते हैं, विचार-विमर्श में बाधक नहीं बन पाईं। इस प्रकार के राजनीतिक सम्मेलन में उन्मुक्त एवं स्पष्ट मताभिव्यक्ति आवश्यक होती है, जिससे कार्यकर्ताओं की शंकाओं का समाधान हो सके, ताकि वे भी देश भर में जनता का संदेह-निवारण कर सकें। विषय-समिति की बैठक में हुई चर्चा के दौरान इस उद्देश्य की पर्याप्त सीमा तक पूर्ति हो गई। मध्य प्रदेश जनसंघ और उसके महामंत्री श्री कुशाभाऊ ठाकरे[1] अधिवेशन का स्थान परिवर्तित कर

1. कुशाभाऊ ठाकरे (1922-2003) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक थे। 1956 में मध्य प्रदेश जनसंघ के संगठन सचिव बनाए गए। बाद में इन्हें उड़ीसा तथा गुजरात में संगठन का काम सौंपा गया था।

देने के बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। विधानसभा-विश्रामगृह, जो नगर से काफ़ी दूर हैं तथा जहाँ के दृश्य अत्यंत मनोहारी हैं, इस कार्य के लिए अत्यंत उपयुक्त था।

भारतीय जनसंघ के लिए चीनी आक्रमण अप्रत्याशित नहीं था। हम उसके राक्षसी मनोभावों के प्रति सतर्क थे और सरकार को तथा देश की जनता को तात्कालिक आसन्न संकट के बारे में सतत चेतावनियाँ देते आ रहे थे। अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को निर्धारित करते समय जनसंघ ने इस संभावना पर विचार किया था, अतः भोपाल में जो प्रस्ताव पारित किए गए, वे विगत नीतियों से संबंध-विच्छेद का संकेत नहीं देते। मुख्यतः जनसंघ के दृष्टिकोण का सिंहावलोकन तथा पुनर्विचार ही किया गया। यदि कोई नई बात थी तो यही कि वर्तमान स्थिति के विशेष संदर्भ में दल के कार्यक्रम को सुविस्तृत ढंग से उच्चारित किया गया। अणुबम के निर्माण के लिए सरकार से की गई अनुशंसा (श्री रामचंद्र बड़े का संशोधन)[2] का विशेष रूप से उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि वाराणसी-अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि सभा ने ऐसे सुझाव को अस्वीकृत कर दिया था। उस समय जो व्यापक समस्याएँ उसकी दृष्टि में थीं, वे हमारे सिंहद्वार पर चीनी संकट की उपस्थिति के सामने महत्त्वहीन हो गई प्रतीत होती हैं।

वहाँ की कार्रवाइयों एवं प्रस्तावों को समाचार-पत्रों ने पर्याप्त अच्छे प्रकार से प्रकाशित किया। फिर भी, परराष्ट्र-नीति के बारे में परस्पर-विरोधी समाचार प्रकाशित हुए और इस आधार पर कुछ समाचार-पत्रों के अग्रलेखों में जनसंघ के अंदर भिन्न-भिन्न एवं परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण विद्यमान होने का फ़तवा दे दिया है, विशेषकर नीति-प्रस्तावों की तैयारी के चरण में। किंतु दल की परराष्ट्र-नीति के बारे में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तथाकथित मतभेद केवल काल्पनिक हैं, वास्तविक नहीं। मतवैभिन्य दिखाई इसलिए पड़ता है कि सरकार की वर्तमान नीतियों की आलोचना पर किसी ने कम और किसी ने अधिक बल दिया। यदि किसी विशेष अवसर पर दल की विदेश-नीति में किसी परिवर्तन की स्पष्ट घोषणा की आवश्यकता न पड़े तो बहुधा लोग कतिपय आलोचनाओं के आधार पर न जाने क्या-क्या निष्कर्ष निकाल लेते हैं। जनसंघ के दृष्टिकोण को यदि कार्यकारिणी समिति और विषय-समिति दोनों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत उसके प्रस्ताव के आधार पर परखा जाता तो अधिक अच्छा होता। समाचार-पत्रों में परस्पर-विरोधी रिपोर्टें प्रकाशित होने के उपरांत भी और ये रिपोर्टें उस समय प्रकाशित हुईं, जब अभी 'विषय-समिति' प्रस्ताव पर विचार कर रही थी—प्रतिनिधियों

---

2. 1962 में चीन से पराजय के बाद जनसंघ ने अणुबम निर्माण की अनुशंसा की थी। जनसंघ नेता और मध्य प्रदेश के खरगोन से सांसद रामचंद्र बड़े ने लोकसभा में कहा था कि भारत में अणुबम निर्माण का विरोध वही करेगा, जो भारत पर रूसियों और चीनियों को शासन करते देखना चाहेगा।

के मन में कोई उलझन नहीं पैदा हुई। तथाकथित विवादास्पद 'गुटमुक्तता और गुटयुक्तता' से संबंधित प्रस्ताव पर विचार के समय किसी ने कोई संशोधन तक नहीं सुझाया।

चीनी आक्रमण के बाद से देश की वर्तमान नीति पर जितनी अधिक बहस हुई है, उतनी अन्य किसी विषय पर नहीं हुई। यहाँ तक कि प्रतिरक्षा-नीति भी पीछे रह गई। इस बहस का प्रथम कारण यह भ्रांत धारणा है कि प्रतिरक्षा मुख्यत: देश की परराष्ट्र-नीति पर निर्भर रहती है, और दूसरा कारण यह है कि कुछ निहित स्वार्थ वाले लोगों की यह इच्छा है कि वर्तमान संकट का लाभ उठाकर हमारा ध्यान अन्य दिशा में मोड़ दिया जाए। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर नकारात्मक दृष्टि से विचार करते हैं। कुछ उलझन इसलिए भी पैदा हो गई है कि अपने परराष्ट्र-संबंधों के विशाल दायरे को हम केवल एक शब्द में अभिव्यक्त करना चाहते हैं और वह है या तो 'गुटयुक्तता' या 'गुटमुक्तता'। हम भूल जाते हैं कि ये शब्द एक विशेष संदर्भ में एक विशेष भाव का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमें सामान्यीकरण की भूल नहीं करनी चाहिए। हमें यह भी अनुभव करना चाहिए कि एक गतिशील स्थिति में किसी एक विचार से बँधे रहना लाभकर नहीं होता। साथ ही, अन्य नीतियों की ही भाँति पर-राष्ट्रनीति भी चरम लक्ष्य नहीं बन सकती। उसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप ढालना होता है।

भारतीय जनसंघ का विश्वास है कि किसी देश की पर-राष्ट्रनीति राष्ट्र के प्रकट हितों की सिद्धि के एकमेव उद्देश्य से ही तैयार की जानी चाहिए। उसे यथार्थवादी होना चाहिए और उसे विश्व की पार्थिव प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए। चूँकि जनसंघ देश की प्रतिरक्षा को सर्वदा सर्वोच्च मानता रहा है, उसका मत है कि पर-राष्ट्रनीति की रचना इस लक्ष्य की पूर्ति की दृष्टि से करनी चाहिए। फिर भी जनसंघ जानता है कि किसी भी देश की रक्षा केवल पर-राष्ट्रनीति के कुशल संचालन से ही नहीं हो सकती, भारत की तो निश्चय ही नहीं।

जो लोग यह मानते हैं कि देश पर आक्रमण का अर्थ उसकी पर राष्ट्रनीति की विफलता होता है, वे इस पर बहुत अधिक बल देते प्रतीत होते हैं। वे भी वही भूल कर रहे हैं, जो भारत सरकार ने साम्यवादी चीन के साथ पंचशील-संधि के कारण प्रतिरक्षा तैयारी की उपेक्षा करके की थी। यदि भारत सरकार अवास्तविकता के विश्व में रह रही थी, तो इस दिशा में उसके आलोचक भी वही भ्रांतिपूर्वक भावना रखते प्रतीत होते हैं।

ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिरक्षा पर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नौ सैनिक बेड़े के एडमिरल लार्ड चैटफील्ड के एक लेखन से लिया गया निम्नांकित उद्धरण असंतुलन को दूर करने में सहायक होगा—

"पर-राष्ट्रनीति और प्रतिरक्षा के बीच अत्यधिक संबंध जताने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रथम महायुद्ध के बाद बहुत से लोग इस विचार से अभिप्रेरित थे कि चूँकि

शांति-संधियाँ एक लंबे भविष्यकाल के लिए विश्व की पर-राष्ट्रनीति को निश्चित कर देती हैं, अतः हम अपनी प्रतिरक्षा की तथा अपनी राष्ट्रीय और साम्राज्यीय युद्ध-संगठन की उपेक्षा कर सकते हैं। परंतु विश्व की स्थिति चाहे जितनी संतोषजनक दिखाई पड़े, हमें पर्याप्त शक्तिशाली बने रहना चाहिए। पर-राष्ट्रनीति पर किसी भी क्षण निर्णय की आवश्यकता पड़ सकती है और अविलंब निर्णय किया भी जा सकता है, परंतु प्रतिरक्षा के बारे में अचानक निर्णय नहीं किया जा सकता, क्योंकि हमें अपनी शक्ति में परिवर्तन लाने में दीर्घ समय लगता है। इसलिए प्रतिरक्षा योजनाएँ पर्याप्त पहले से बनाई जानी चाहिए।''

यदि हमने देश की प्रतिरक्षा के लिए पर्याप्त तैयारी नहीं की तो उसमें पर-राष्ट्रनीति का दोष नहीं है। वही पर-राष्ट्रनीति उस समय, जब हमें उसकी आवश्यकता अनुभव हुई, मित्र देशों से भारी पैमाने पर सैनिक सहायता लेने में बाधक नहीं बनी और यदि वर्तमान नीति बदल भी जाए तो भी सरकार देश की सैनिक तैयारी की उपेक्षा जारी रखे तो क्या कोई यह आश्वासन दे सकता है कि कोई आक्रमण नहीं होगा? या यदि होगा तो सफलता से उसका सामना किया जा सकेगा? पर-राष्ट्रनीति प्रतिरक्षा नीति का स्थान नहीं ले सकती। वह केवल उसकी पूरक बन सकती है।

तटस्थता के विवादास्पद प्रश्न पर भी विचार किया जाना चाहिए। कुछ लोग ऐसे हैं, जो इस शब्द के अंधभक्त बने हुए हैं, मानो वह एक ऐसी कील है, जिसके चतुर्दिक् ही पर-राष्ट्रनीति का सारा ढाँचा चक्कर काटता रहता है। इस प्रकार की कोई बात नहीं है। गुटमुक्तता का महत्त्व केवल दो शक्तिगुटों के संदर्भ में ही है। किंतु गत एक दशाब्दी की अवधि में कई नई शक्तियाँ पैदा हो गई हैं और नए गुट बन गए हैं। यह सच है कि अमरीका और सोवियत रूस जैसी शक्तिशाली धुरियों के अभाव में ये नए गुट अधिक महत्त्व का स्थान नहीं पा सके हैं, फिर भी उनके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। अफ्रो-एशियाई शक्तिगुट एक ऐसा ही गुट है, जिसमें गुटमुक्त और गुटयुक्त, सभी देश शामिल हैं।

साम्यवादी चीन भी एक नई आक्रामक शक्ति है, जो एशिया और विश्व की शांति को ख़तरा पहुँचा रहा है। इस नए संकट को पुरानी दृष्टि से देखना राजनीतिज्ञता नहीं होगी। उस दशा में चीन के साथ युद्ध विश्वयुद्ध बन जाएगा, जिसमें एक गुट दूसरे गुट का मुक़ाबला करेगा। क्या वह हमारे लिए या विश्व के लिए लाभकर होगा? इसका अर्थ अपनी भूमि पर विश्वयुद्ध का आह्वान करना होगा। यदि हम ऐसी विपत्ति मोल लेने के लिए तैयार भी हों, तो युद्ध और शांति दोनों के लिए पहल अमरीका और सोवियत रूस के हाथ में चली जाएगी और यदि कोई चैंबरलेन दूसरे म्यूनिख की पुनरावृत्ति करने का निश्चय कर ले तो हम इसके अतिरिक्त और क्या कर सकेंगे कि बेचारे

चेकोस्लोवाकिया की भाँति असहाय दर्शक बने रहें।[3]

इसलिए जहाँ तक दो गुटों के संघर्ष का संबंध है, उससे दूर रहना आवश्यक है। हम एक नया गुट बनाएँ—एक विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाने के कारण 'गुट' शब्द से बचा जा सकता है और हम उसे एक नई 'मैत्री' या 'संघ' नाम दे सकते हैं। हम इस नए संबंध क्षेत्र और संयुक्त प्रयास में गुटमुक्त या गुटयुक्त सभी देशों को सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। बताया गया है कि स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री एन.जी. रंगा[4] ने कहा है कि सोवियत रूस को भी एक मित्र के रूप में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि यदि हम पुराने गुट से चिपके रहे तो यह संभव नहीं हो सकता। जहाँ तक उसका संबंध है, हमारी नीति गुटमुक्तता की बनी रहेगी। किंतु इस नए संघ में हम निश्चय ही पश्चिमी विश्व के साथ रह सकते हैं, क्योंकि उन देशों ने हमारी सहायता करने की इच्छा प्रदर्शित की है। इसके अतिरिक्त एशिया के कुछ गुटमुक्त देशों को, जिन्हें चीन के विस्तारवादी ख़तरे का आभास कराया जा सकता है, और कुछ साम्यवादी देशों को भी, यदि वे चीन के आक्रमण की नीति की निंदा करें, नए संघ में सम्मिलित कर सकते हैं। यदि नाज़ी जर्मनी को पराजित करने के लिए जनतांत्रिक पश्चिम और साम्यवादी रूस हाथ मिला सकते हैं, तो हम उपर्युक्त 'संघ' की कल्पना को केवल एक 'सुनहरा सपना' कहकर निरस्त नहीं कर सकते। इस प्रकार नए मित्र देश और नए तटस्थ देश दृष्टिगत होने लगेंगे। यदि साम्यवादी देश तटस्थ भी रहे तो वह हमारे लिए एक लाभ ही होगा। जनसंघ ने इस दिशा में प्रयत्न किए जाने की माँग की है। प्रधानमंत्री ने भी कहा है कि चीनी आक्रमण के संदर्भ में 'गुटमुक्तता' का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। इस योजना को कार्यान्वित करने की दिशा में पग उठाए जाने चाहिए।

स्थिति का तकाज़ा है कि सरकार अपनी चीन-नीति में पूर्ण परिवर्तन करे। जनसंघ इस संबंध में माँग करता रहा है कि

1. चीन के साथ कूटनीतिक संबंध भंग कर दिए जाएँ,
2. तिब्बत पर चीनी सार्वभौमिकता की मान्यता वापस ली जाए, और

---

3. 29 दिसंबर, 1938 को म्यूनिख (जर्मनी) में ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जर्मनी के बीच एक समझौता हुआ। अब इसे जर्मनी के तुष्टीकरण के लिए किया गया एक निरर्थक कृत्य माना जाता है। इसके अंतर्गत चेकोस्लोवाकिया के सुडेटन लैंड पर जर्मनी को अधिकार मिल गया था। इस समझौते का प्रस्ताव इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चेंबरलेन ने किया था। इंग्लैंड तथा फ्रांस की ऐसी ही तुष्टीकरण नीति के कारण जापान पहले मंचूरिया पर विजय प्राप्त कर चुका था। इटली ने अबीसिनिया के युद्ध में एवं जर्मनी ने आस्ट्रिया व चेकोस्लोवाकिया को हड़पने में मनमानी की, जिसका परिणाम द्वितीय विश्वयुद्ध था।
4. एन.जी. रंगा (1900-1995) स्वतंत्रता सेनानी तथा प्रसिद्ध किसान नेता थे। सहकारी कृषि के मुद्दे पर नेहरूजी के साथ विवाद होने के कारण कांग्रेस से त्याग-पत्र दे 'कृषिकर लोक पार्टी' के नाम से किसानों के लिए एक अलग पार्टी की स्थापना की। 1959 में स्वतंत्र पार्टी में विलय कर इसके संस्थापक सदस्य और अध्यक्ष बने।

3. दलाई लामा की सरकार को तिब्बत की प्रवासी सरकार के रूप में मान्यता दी जाए और तिब्बत की मुक्ति के लिए सभी प्रकार की सहायता की जाए।

फिर भी नीति का क्रियान्वयन उस नीति का एक अविभाज्य अंग है। कोई भी विदेश-नीति, यदि उसे उचित रूप से प्रस्तुत नहीं किया जाता और उसको व्यवहार में नहीं लाया जाता तो वह विफल होनेवाली है, चाहे वह कितने ही सही ढंग से क्यों न तैयार की गई हो। यही वह बिंदु है, जहाँ हमने गंभीरतम भूलें की हैं। विदेशों में स्थित हमारे प्रवक्ता हमारी नीति को सोवियताभिमुख रूप दे देते हैं। इसी प्रकार हम चीन और पाकिस्तान दोनों के विरुद्ध अपना पक्ष ठीक से प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हुए हैं। जनसंघ का मत है कि यदि हमारे कूटनीतिक तंत्र को ठीक से चला लिया जाए तो हम अपनी मूलभूत नीतियों में कोई परिवर्तन किए बिना ही अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 4, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

4

जनसंघ का निर्देश : अंग्रेज़ी लादी न जाए

भारतीय जनसंघ के केंद्रीय कार्यालय द्वारा जारी एक निर्देश में दीनदयालजी ने जनसंघ की सभी इकाइयों को 17 फरवरी को समाप्त हो रहा सप्ताह 'अंग्रेज़ी मत लादो सप्ताह' के रूप में मनाने और संसद् के आगामी सत्र में प्रस्तुत होने के लिए प्रस्तावित भाषा अधिनियम के विरोध में जनमत तैयार करने का निर्देश दिया है। संसद् का सत्र 18 फरवरी से प्रारंभ होना तय है। दीनदयालजी का निर्देश।

आशा की जाती थी कि राष्ट्रीय संकट की इस घड़ी में सरकार कम-से-कम ऐसा निंदनीय विधेयक नहीं लाएगी। समय की माँग तो यह थी कि राष्ट्रीयता का भाव और सुदृढ करने के लिए देश की भाषाओं पर अधिक बल दिया जाता। इसके विपरीत सरकार एक ऐसा भाषा अधिनियम प्रस्तुत करने जा रही है, जिससे भारतीय भाषाएँ उपेक्षित होंगी और उस भाषायी साम्राज्यवाद को बल मिलेगा, जिसकी नींव विदेशी शासकों ने रखी थी। यह सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है कि यह साम्राज्यवाद 1965 से आगे भी जारी न रहे। संविधान भी हमसे इसी बात की अपेक्षा करता है।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 11, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

5

आर्थिक नीतियों का पुनर्मूल्यांकन हो

महाकवि बिहारी ने अपने एक दोहे में कहा है कि

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
या पाए बौरात जग, वा खाए बौराय॥

संभवतः बिहारी से प्रेरणा पाकर ही श्री मोरारजी भाई को देश का नशा उतारने का नशा सवार हो गया है। पुराने बंबई राज्य के मुख्यमंत्री के नाते उन्होंने नशाबंदी को इस कठोरता के साथ लागू किया कि एक बार तो बड़े-बड़े पियक्कड़ भी तौबा करने लगे। पर भला करे भट्टीवालों का, जिसके कारण पीनेवालों की उखड़ी साँस और आबकारी विभाग की डूबी साख दोनों ही वापस लौट आईं। सरकार ने नीरा केंद्र खोले, पर जब घर-घर में 'मधुशाला' की सुविधा हो तो नीरस नीरा के पीछे भागने की ज़हमत कौन मोल ले। सरकारी काग़ज़ों में 'नशाबंदी' चलती रही, राजस्व की हानि और नशाबंदी विभाग का ख़र्चा दोनों का भार बढ़ाती गई। दूसरी ओर व्यवहार में 'पियो और पिलाओ' का नारा भी बंबई की गलियों और कूचों में काम करता रहा। महाकवि ज़ौक[1] के अनुसार, ''रात को पी ली, सुबह को तौबा कर लिया; रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गई।'' शासन की हाँ में हाँ मिलानेवाले इस योजना की सफलता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे। यह छद्‌माचार पिछले बीस वर्षों से बंबई ही नहीं, देश के अनेक भागों में चल रहा है। मद्य-पान की हमारे यहाँ पंचमहापातकों में गिनती है। इसलिए इस योजना के सदुद्‌देश्य से सहमत होने के कारण लोगों ने उसका विरोध नहीं किया और जिन्होंने कभी मुँह खोला, उन्हें पातकी ठहराया गया।

---

1. शेख़ मोहम्मद इब्राहिम ज़ौक़ (1789-1854) उर्दू कवि और साहित्यकार, कविता और धर्म के विद्वान् थे। सिर्फ़ 19 वर्ष की उम्र में दिल्ली के मुग़ल दरबार में महाकवि नियुक्त किए गए।

राजस्व की चिंता

पर चीनी अफ़ीमचियों ने जब कम्युनिज़्म के नशे में चूर होकर भारत पर आक्रमण बोल दिया तो यहाँ के भी कुछ लोगों की पिनक छूटी। उन्हें असलियत नज़र आई और उन्होंने सोचा कि इस योजना में कुछ फेरबदल करना चाहिए। उन्हें लोगों के पीने-पिलाने की तो कोई चिंता नहीं, पर राजस्व की अवश्य चिंता हुई। पर वह भी कोई नशा है, जो एकाध झटके में ही काफ़ूर हो जाए। श्री मोरारजी भाई ने उन्हें सलाह दी कि वे इस योजना को तिलांजलि न दें। यदि उन्हें पैसे की ज़रूरत है तो उसके लिए नए उपाय ढूँढ़ें, कुछ केंद्र भी मदद करेगा और आख़िर देश की जनता जब तक बरक़रार है, उस पर नए-नए टैक्स लगाए जा सकते हैं।

स्वर्ण-नियंत्रण की अव्यावहारिक योजना

एक ऐसे समय में जब श्री मोरारजी भाई की अत्यंत प्रिय योजना का भविष्य भँवर में हो, वे 'स्वर्ण-नियंत्रण' की दूसरी योजना लेकर मैदान में कूदे हैं। यदि यह कहा जाए कि पहली के समान दूसरी योजना भी अच्छे उद्देश्य वाली किंतु अव्यावहारिक है तो असत्य नहीं होगा। आर्थिक दृष्टि से वर्तमान युग में सोने में रुपया लगाने का विशेष महत्त्व नहीं बचा है, प्रत्युत कुछ अंशों में वह हानिकारक ही है। जिस भारी पैमाने पर सोने का तस्कर व्यापार पिछले वर्षों में चलता रहा है, उसका देश के विदेशी-मुद्राकोष पर बहुत प्रतिकूल परिणाम हुआ है। यदि लोग सोना ख़रीदने के स्थान पर रुपया दूसरे कारोबार में लगाएँ तो वह अधिक लाभदायक होगा। इन कारणों से यदि जनता का 'कनक' का नशा कम हो जाए तो उत्तम होगा। किंतु वह कैसे हो?

सफलता संदेहास्पद

केंद्रीय वित्त मंत्री[2] जनजीवन में यह मानसिक क्रांति क़ानून के सहारे करना चाहते हैं। इस हेतु उन्होंने 'स्वर्ण-नियंत्रण' नियम लागू किए हैं। वे कहाँ तक सफल होंगे, यह तो भविष्य ही बतलाएगा, किंतु यह तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस योजना को लागू करते समय उन्होंने इसके मानवीय पहलू तथा आर्थिक कारणों का पूरी तरह विश्लेषण नहीं किया है। भारत में सोने की भूख के तीन मुख्य आर्थिक कारण हैं—

1. रुपए के मूल्यों में गिरावट,
2. अधिकोषण व्यवस्था की कमी, और
3. विनियोजन के मार्ग में कठिनाइयाँ।

इनके अतिरिक्त संभवत: कर व्यवस्था की गुत्थियाँ एवं अव्यावहारिकता और कराधान

---

2. मोरारजी देसाई (1896-1995) 13 मार्च, 1958 से 29 अगस्त, 1963 तक भारत के वित्त मंत्री थे।

या आधिक्य भी कुछ अंशों में सोने की माँग के लिए ज़िम्मेदार है। शासन इन कारणों को दूर किए बिना सोने की माँग पर नियंत्रण करना चाहता है। निश्चित है कि उसमें सफलता संदेहास्पद रहेगी। अच्छा तो यह होगा कि वह दोनों ओर से क़दम उठाए।

आर्थिक नीतियों में मौलिक परिवर्तन आवश्यक

स्वर्ण-नियंत्रण नियमों में सोने और सोने के ज़ेवरों में भेद करके एक ओर तो सोने को छिपाने का मार्ग खोल दिया है और दूसरी ओर 14 कैरेट का नियम बनाकर देश के लाखों सुनारों को बेकार कर दिया है। जब सरकार ने 50 ग्राम तक सोना रखने की छूट दे रखी है तो ज़ेवर के रूप में सोना रखने की अलग से छूट देने का कोई अर्थ नहीं है। यदि 50 ग्राम के स्थान पर यह छूट बढ़ाकर 100 या 150 ग्राम तक कर दी जाए और उसमें ज़ेवरों को भी सम्मिलित कर दिया जाए तो संपूर्ण कठिनाई दूर हो जाएगी। फिर लोग एक निश्चित मर्यादा के अंतर्गत अपनी मरज़ी की शुद्धता के आभूषण बना सकेंगे। आज तो जिस भारी मात्रा में सुनार बेकार हुए हैं, उनके लिए दूसरा काम दिलवाना या उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना सरकार के लिए संभव नहीं है। साथ ही 14 कैरेट की शुद्धता के ज़ेवर केवल मशीनों से ही बन सकते हैं और उसका फल यह होगा कि एक विकेंद्रित उद्योग कुछ हाथों में केंद्रित हो जाएगा। श्री मोरारजी भाई का यह कहना कि ताँबे की जगह चाँदी मिलाई जाए तो 15 कैरेट के जेवर सभी जगह बन सकते हैं, सही नहीं है। ज़ेवर बनानेवालों के मत में उसका परिणाम सोने के रंग पर पड़ेगा। आभूषणों के साथ-साथ सोने का उपयोग अनेक औद्योगिक एवं औषधि-निर्माण के क्षेत्र में भी होता है। उसके बारे में भी पूर्ण विचार नहीं हुआ है। लाइसेंस की फीस तो इतनी अधिक रखी है कि छोटे-छोटे लोगों के लिए दुर्वह हो जाएगी। आवश्यकता है कि इस योजना पर पुनर्विचार किया जाए। साथ ही सोने की माँग के लिए ज़िम्मेदार कारणों को दूर करने के लिए देश की आर्थिक नीतियों में भी मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है। अन्यथा संपूर्ण योजना निस्सार सिद्ध हो जाएगी।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 11, 1963

□

6

स्वर्णनीति का एक्स-रे

स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश को लागू हुए एक माह से अधिक हो गया। प्रति वयस्क 50 ग्राम और प्रति अवयस्क 20 ग्राम की मुक्त सीमा से अधिक आभूषणेतर सोने की मात्रा घोषित कर देने की अंतिम तिथि बढ़ाकर 28 फरवरी कर दी गई है। स्पष्ट है कि घोषणा की अब तक की मात्रा नीति-निर्माताओं की आशा के अनुरूप नहीं रही है।

स्वर्ण-बॉण्डों में धन लगाने की तिथि भी आगे बढ़ा दी गई है। उसे भी अत्यंत अल्प समर्थन मिला है। एक प्रेस-विज्ञप्ति के अनुसार उन बॉण्डों से केवल 3 करोड़ रुपए प्राप्त हुए। इस तथ्य के बावजूद कि सोने में 'तैयार' या 'वायदा' कामकाज की अनुमति नहीं है, उसका नाम के लिए जो भाव बोला जा रहा है, उसमें गिरावट नहीं हुई है।

12 फरवरी को दिल्ली बुलियन में डायमंड सोने का भाव 108 रुपए (नाममात्र के लिए) प्रति 10 ग्राम था। स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश लागू होने के एक दिन पहले 8 जनवरी को वह 107.75 रुपए के आसपास रहा। स्वर्ण-नियंत्रण आदेश लागू होने के बाद दो या तीन दिनों को छोड़कर नई स्वर्णनीति का सोने के मूल्यों पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं प्रतीत हुआ।

गत वर्ष नवंबर में सोने के भाव नीचे लाने के लिए सरकारी कार्रवाइयाँ किए जाने के वित्त मंत्री के संकेत से जो व्यापारी एकदम आतंकित हो गए थे, वे इस बार सामान्य बने रहे। या तो उन्होंने सरकारी कार्रवाई के आघात के प्रति अपना हृदय कड़ा कर लिया, या नई नीति गंभीरता और प्रभावशीलता की दृष्टि से उनकी अपेक्षा से कहीं कम सिद्ध हुई है।

नवंबर में संचित सोने के चतुर्दिक् बिक्री 'आफर' दिखाई पड़ रहे थे और हतोत्साह बिकवाली के कारण भाव गिरकर 84.50 रुपए प्रति 10 ग्राम के निम्न स्तर पर आ गया,

जबकि गत वर्ष वह 129.50 रुपए प्रति 10 ग्राम के एक सार्वकालिक ऊँचे स्तर तक पहुँच गया था। वह गिरावट बहुत भारी थी। इससे सरकार को प्रोत्साहन मिला और उसे यह विश्वास हो गया कि वह सोने का भाव घटाकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ला सकेगी। फिर भी, आतंक की स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो गई और व्यापारियों में विश्वास जाग गया तथा भाव बढ़ने लगे। केंद्रीय वित्त मंत्री द्वारा कठोर सरकारी कार्रवाई की जाने की धमकी और सोने के मूल्यों में वृद्धि रिज़र्व बैंक के सतत निर्देशों के बावजूद इस भाववृद्धि की अवधि में सामान्य क़ीमत घट-बढ़ के अलावा सोने के भाव में कोई कमी नहीं हुई, और वह बढ़कर 199 रुपए प्रति दस ग्राम ऊँचे स्तर पर पहुँच गया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाव आना तो दूर रहा, उल्टे उसमें वृद्धि का ही रुख़ दिखाई पड़ रहा है।

सरकार की स्वर्ण-नीति का उद्देश्य अभी तक पूर्ण होता नहीं दिखाई देता। स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश जारी होने के दिन 9 जनवरी, 1963 को श्री मोराजी भाई ने अपने रेडियो-भाषण में कहा था, ''हमारे देश की परिस्थितियों में स्वर्ण-नीति का मूलभूत उद्देश्य न केवल संकटकाल की अवधि के लिए, अपितु सर्वदा के लिए सोने की माँग में सतत कमी लाने का दृढ प्रयास होना चाहिए।'' यह सही है कि केवल गत एक मास के रुख़ के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा, फिर भी स्वर्ण-नीति के किसी विश्लेषण में बाज़ार के रुख़ की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के कारण उत्पन्न संकटकाल की स्थिति में सोना बाहर निकालने के उद्देश्य से स्वर्ण-नीति के क्रियान्वयन के लिए निश्चय ही उपयुक्त अवसर था, पर पूरी योजना के लिए काफ़ी समय लगा। स्वर्ण-बॉण्ड 5 नवंबर, 1962 को जारी हुए, जबकि स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश दो महीने बाद 9 जनवरी, 1963 को जारी हुआ। इस बीच की अवधि में संकटकाल विषयक मनोवैज्ञानिक दबाव युद्धविराम एवं उसके बारे में सरकारी रुख़ के कारण काफ़ी घट गया था। कोलंबो-प्रस्तावों[1] की स्वीकृति के साथ राष्ट्र आत्मतुष्टि की भावना से शांत हो गया प्रतीत होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि देशभक्ति का तीव्र उद्वेग भी बहुत कुछ शांत हो गया है।

---

1. कोलंबो प्रस्ताव : चीन द्वारा एकपक्षीय युद्ध विराम की घोषणा के पश्चात् 10 दिसंबर, 1962 को श्रीलंका के प्रधानमंत्री सिरिमावो भंडारनायके ने कोलंबो में छह गुट-निरपेक्ष देशों (श्रीलंका, बर्मा, कंबोडिया, इंडोनेशिया, घाना तथा यू.ए.ई.) का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में भारत-चीन विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के लिए सुझाव दिए गए, जिनमें चीन पश्चिमी क्षेत्र में अपनी चौकियाँ 10 कि.मी. पीछे हटा ले; भारत दोनों ही क्षेत्रों में अपनी सैनिक स्थिति जैसी थी वैसी ही बनाए रखे; चीन द्वारा ख़ाली किए गए क्षेत्र को असैन्यीकृत रहने दिया जाए; उत्तर-पूर्व सीमा अभिकरण (नेफा) में दोनों देशों की स्वीकृत नियंत्रित रेखा को युद्ध विराम रेखा माना जाए; मध्य क्षेत्र में 8 सितंबर, 1962 वाली स्थिति बनाए रखी जाए आदि बिंदु शामिल थे। कोलंबो प्रस्ताव को भारत ने स्वीकार कर लिया, परंतु चीन ने कुछ ऐसी शर्तें रखीं, जिसे भारत के लिए मानना असंभव था। चीन यह चाहता था कि पश्चिम में असैन्यीकृत क्षेत्र में चीन केवल अपनी चौकियाँ स्थापित करे तथा भारत का उसमें कोई अधिकार न हो; पूर्वी क्षेत्र में भारतीय सुरक्षा बलों को मैकमोहन रेखा तक न जाने दिया जाए।

फिर भी, सरकार न केवल स्वर्ण-नीति के क्रियान्वयन के संबंध में, अपितु उसे तैयार करने के संबंध में भी संकटकालीन क़ानून के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों पर ही निर्भर कर रही है। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा कोष को धन और स्वर्ण के रूप में जनता का जो समर्थन मिला है, वह उत्साहप्रद है। किंतु इस प्रकार के भावना प्रधान उपाय को दीर्घकालिक उद्देश्ययुक्त आर्थिक नीति तैयार करते समय नहीं अपनाया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान नीति को तैयार करते समय सरकार ने आर्थिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी है।

इसके अलावा देश में संचित सोने के ठीक-ठाक आँकड़े की अनुपलब्धि से भी इसमें बाधा पहुँची है। स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश के अंतर्गत प्रस्तुत किए जानेवाले विवरणों के आधार पर कुल आभूषणेतर सोने के परिमाण एवं उसके वितरण के बारे में लगभग सही अनुमान लगाए जा सकते हैं। अभी तक तो केवल मोटा-मोटा अनुमान लगाया गया है। यह अनुमान लगभग 6 अरब रुपए से लेकर 61 अरब रुपए के बीच भिन्न-भिन्न है। फिर भी, रिज़र्व बैंक का अनुमान अंतरराष्ट्रीय मूल्य के आधार पर 18 अरब 50 करोड़ रुपए के लगभग है। किंतु इसमें से अधिकांश सोना अवश्य ही आभूषणों के रूप में ही होगा।

देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए सोने में विनियोग का कोई औचित्य नहीं है। यह अनुत्पादकता है और गत दशाब्दी से यह हमारे अल्प विदेशी मुद्रास्रोत पर भारी दबाव डाल रहा है। सोने में धन लगाने से न व्यक्तिगत आय में और न राष्ट्रीय आय में ही वृद्धि होगी। अतिरिक्त रोज़गार के लिए भी इससे पूँजी की व्यवस्था नहीं होती। इसलिए यदि लोग सोना ख़रीदने के बदले किसी उत्पादक उद्योग में अपनी बचत का विनियोग करें तो उन्हें दोहरा लाभ होगा। इससे न केवल उन्हें ब्याज और लाभ मिलेगा, अपितु विकास की एक प्रक्रिया भी पैदा होगी, जिससे बचत करने और विनियोजन के लिए भारी प्रोत्साहन मिलेगा।

किंतु लोगों में स्वर्ण के लिए भूख क्यों है? इसके सामाजिक और आर्थिक दोनों कारण हैं। भारत में जबकि सामाजिक अनिवार्यताएँ ह्रासोन्मुख हैं, परिवर्तित परिस्थितियों के बावजूद आर्थिक कारणों से सोने के लिए अपेक्षाकृत अधिक माँग है। इसका कारण मुख्यत: सरकार की त्रुटियाँ हैं। समझा जाता है कि सोने का तस्कर-व्यापार 1952-53 से भारी पैमाने पर आरंभ हो गया है और लगातार बढ़ता जा रहा है। इसके लिए जो आर्थिक समस्याएँ ज़िम्मेदार हैं, उन्हें समझकर सुधार करना चाहिए।

सोने की माँग में वृद्धि का पहला और सबसे बड़ा कारण मुद्रास्फीति है। यदि सरकार क़ीमतों और अपनी मुद्रा को स्थिर नहीं रख सकती तो खरी धातु में विनियोजन करने की प्रवृत्ति पैदा होना अवश्यंभावी है।

दूसरा यह कि बैंकिंग और ऋण-सुविधाओं का भी अभाव है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में गाँवों में लोगों के पास अपनी बचत को सुरक्षित रखने का कोई अन्य उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि वे उसे स्वर्णाभूषणों में परिणत कर दें। वहाँ कोई बैंकिंग संस्थान नहीं है, जहाँ वे विनियोजन कर सकें, और कोई भी व्यक्ति बिना अमानत के उन्हें उधार नहीं देगा। स्वाभाविकतया यदि उनके पास स्वर्ण है तो वे आवश्यकता पड़ने पर उसे बंधक रखकर धन प्राप्त कर सकते हैं। ग्रामीण-ऋण-सर्वेक्षण के अनुसार कृषिकारों की ऋण विषयक व्यापक आवश्यकताओं को देखते हुए सहकारिताओं (Cooperatives) और भू-बंधक-बैंकों (Land Mortgage Banks) का योगदान नगण्य सा है।

जहाँ तक भूमिहीन श्रमिकों और कारीगरों का प्रश्न है, उनके लिए शायद ही कोई ऋण-सुविधा विद्यमान है। कष्ट के समय उन्हें सोने या चाँदी के आभूषणों में परिणत अपनी पिछली बचत का ही सहारा लेना पड़ता है। डाकघर से बचत-खाते तथा अन्य बैंकों के होते हुए भी नगरीय मध्यम वर्ग की कहानी भी इससे कुछ भिन्न नहीं है। यदि अविलंब सहकारिताओं एवं चिटफंड आदि के साथ ऋण-संस्थानों का व्यापक प्रबंध नहीं किया गया, तो वर्तमान स्वर्ण-नियमों से निश्चय ही इस वर्ग को भारी आघात लगेगा।

सरकार की औद्योगिक और व्यापारिक नीतियाँ भी सोने की माँग में वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं। इन वर्गों की बचत के समानुपात में विनियोजन-सुविधाएँ नहीं हैं। गत सारे वर्षों में निजी शेयर इशुओं (Share Issues) के लिए निर्धारित से अधिक धनराशि निर्गमित होती रही है। स्पष्ट ही ऐसी धनराशि विद्यमान है, जो विनियोजन-मार्गों को खोज रही है, जिन्हें समाजवाद से आविष्ट सरकार ने अवरुद्ध कर रखा है। राष्ट्रीयकरण की चर्चा से भी विनियोजकों के कान खड़े हो गए। स्वाभाविकतया ही वे सोने के पीछे दौड़ते हैं, चाहे वह सोना अवैध हो या वैध।

सरकार के कराधान क़ानून और सेवाओं में व्यापक रूप से फैले भ्रष्टाचार ने भी सोने के लिए माँग बढ़ाने में योगदान किया है। कुछ विशेष पदों पर अधिष्ठित अधिकारियों और व्यवसायी तथा व्यापारी समाज के पास 'काला धन' विद्यमान है, जिसे 'सफ़ेद' नहीं बनाया जा सकता, इसलिए स्वर्ण में परिणत कर दिया जाता है। यदि सरकार अपनी नीति को सफल बनाने में इच्छुक है तो उसे स्वर्ण-नियंत्रण-नियमों में उल्लिखित उपायों को क्रियान्वित करने के साथ-साथ इन कारणों को भी दूर करना होगा।

जब तक वर्तमान दुरवस्था को जन्म देनेवाली सरकार की आर्थिक नीतियों में आमूल सुधार एवं पुनर्निर्धारण नहीं किया जाएगा, तब तक स्वर्ण-नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष श्री कोटक, राजा कैन्युट[2] की भाँति, आर्थिक महासागर की स्वर्ण-लहरों को रोक सकने में विफल ही रहेंगे। मोरारजी भाई की स्वर्ण-नीति यद्यपि उद्देश्यों की दृष्टि

2. कैन्युट (995-1035) सन् 1016 से 1035 तक इंग्लैंड, डेनमार्क तथा नॉर्वे के राजा रहे थे।

से श्लाघ्य है, तथापि उसकी भी मद्य-निषेध-नीति के समान ही दुर्गति होगी। इसके कारण सामान्य व्यापार-स्रोत भूमिगत हो जाएँगे, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व की क्षति होगी, अधिकारियों के पास और भी अवैध धन आ जाएगा, काला बाज़ार के कारण सोने के मूल्य में वृद्धि होगी और इसीलिए सोने के तस्कर-व्यापार को और प्रेरणा मिलेगी। इस प्रकार के असमन्वित पग का स्वाभाविक परिणाम होगा सोने का अवैध व्यापार और तस्कर-व्यापार।

अपनी विविध उपशाखाओं के द्वारा स्वर्णनीति ने स्वर्णकारों को भी प्रभावित किया है। वर्तमान नियमों के अंतर्गत वे सबसे अधिक प्रपीड़ित हैं। स्वर्ण-नियंत्रण-आदेश जारी होने के बाद वे बेरोज़गार हो गए हैं। पहली बात तो यह कि सरकार ने इस मानवीय पहलू को ध्यान में नहीं रखा, और दूसरी बात, वह इतनी निर्दय प्रतीत होती है कि उनके द्वारा किए गए सारे प्रतिनिधि-मंडलों की उसने पूर्णतः उपेक्षा कर दी है।

स्वर्णकार प्रपीड़ित हैं, क्योंकि 14 कैरेट से अधिक शुद्धता के स्वर्ण के गहने बनाना निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। गाँवों और कस्बों में काम करनेवाले बहुसंख्यक स्वर्णकार इस घटिया क़िस्म के कठोर सोने के आभूषण नहीं बना सकते। उनके पास आवश्यक प्रशिक्षण और औज़ारों का अभाव है। साथ ही गाँवों में शोधन-सुविधा (Refining Facility) उपलब्ध नहीं है, जो मिलावटी सोने के आभूषण बनाने की एक आवश्यक प्रक्रिया है। तांत्रिक बेकारी के अलावा स्वर्णाभूषण बनाने का व्यवसाय नगरों के थोड़े से पूँजीपतियों के हाथों में केंद्रित हो जाएगा और उसके फलस्वरूप हमारी अतिकुशलतापूर्ण ऐसी स्वर्ण कारीगरी विनष्ट हो जाएगी, जिसके लिए भारत प्रसिद्ध रहा है और जिससे बहुमल्य विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जाती है।

अब 14 कैरेट के नियम से स्वर्ण की माँग में कमी होगी या नहीं, यह विवादस्पद प्रश्न है। जबकि अधिकारी इस पर बल दे रहे हैं कि माँग कम हो जाएगी, कर्मचारियों का यह मत है कि माँग कम नहीं हो सकेगी। निश्चय ही 14 कैरेट का स्वर्णाभूषण अपेक्षाकृत सस्ता होगा। किंतु उसके फलस्वरूप बाज़ार का विस्तार हो सकता है, और इस प्रकार मोटे तौर पर कहें तो राष्ट्र के अंदर सोने की खपत बढ़ते जाने की संभावना है। इस प्रकार उन आर्थिक उद्देश्यों की क़ीमत पर, जिनकी उपलब्धि के लिए स्वर्ण-नीति तैयार की गई है, अन्य सामाजिक उद्देश्य पूरे होने लगेंगे। विशुद्ध स्वर्णाभूषणों के निर्माण पर पूर्ण प्रतिबंध लगा देने से ही देश में ऐसे आभूषणों का तस्कर-व्यापार आरंभ हो सकता है।

यदि आर्थिक कार्रवाइयाँ असफल हो जाती हैं, तो इसमें संदेह ही है कि स्वर्ण की तस्करी रोकने में (विधिक) क़ानूनी कार्रवाइयाँ सफल होंगी। चूँकि विशुद्ध सोने के आभूषण रखने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, और चूँकि उन आभूषणों की घोषणा करने की

भी आवश्यकता नहीं है, अत: एक बार यदि तस्कर-व्यापार का सोना उपभोक्ता के पास पहुँच गया, तो उसका पता लगाना सरल नहीं होगा। इस तरह अपने स्वर्ण-कारीगरों को वंचित करके हम पाकिस्तान और अन्य पश्चिमी एशियाई देशों के स्वर्णकारों को रोज़गार प्रदान करेंगे।

चाहे किसी नीति के निर्माण के पीछे कितनी भी नेकनीयती हो, सभी पहुलओं से कुकल्पित नीति असफल होगी ही। एक माह से भी अधिक के अनुभव, समाज के विभिन्न हितों के द्वारा किए गए प्रतिनिधित्व का उपयोग इस नीति को पूर्ण बनाने के लिए किया जाना चाहिए। जब तक उद्देश्यों के प्रति सर्वसहमति न हो, तब तक एक ऐसी प्रभावकारी नीति बनाने में, जिसमें सभी सहयोग कर सकते हैं, हम विफल रहते हैं और उसके स्थान पर उन उद्देश्यों को 'केवल मैं सही हूँ' के रुख़ के कारण या किसी एक व्यक्ति या समूह की भ्रांतियों के कारण विफल बना देते हैं, तो यह एक हास्यास्पद एवं निंदनीय बात होगी।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 18, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

7

प्रशासन स्वर्णकारों की रोज़ी-रोटी की व्यवस्था करे

स्वर्णकारों और उनके कुटुंबियों द्वारा बेरोज़गारी से उत्पन्न निर्धनता के कारण आत्महत्या के समाचार एक के बाद एक आ रहे हैं। स्थान-स्थान पर जो स्वर्णकार बंधु मिले हैं, वे इस समय अत्यंत ही दयनीय स्थिति में हैं। पिछले डेढ़ महीने से उनका काम बिल्कुल ठंडा है। जिनके पास कुछ बचा हुआ था, वह भी अब ख़त्म हो चुका है। रोज़गारहीन व्यक्ति को क़र्ज़ मिलना भी कठिन है। ऐसी स्थिति में यदि सरकार नहीं चेती तो थोड़े ही दिनों में बहुत बड़े पैमाने पर भुखमरी और आत्महत्याओं का रोग फैल जाएगा।

निश्चित ही यह स्थिति देश, समाज और राज्य सभी के माथे पर बहुत बड़ा कलंक होगा। शासन की स्वर्ण-नीति के गुण-दोषों का विवेचन न करते हुए भी इतना तो निर्विवाद रूप से कहना ही होगा कि उससे स्वर्णकारों पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, उसका शीघ्र ही निवारण होना चाहिए।

सरकार द्वारा स्वर्णकारों के लिए पुनर्वासन योजना ज़रूरी है। सरकार ने स्वर्णकारों के पुनर्वास का आश्वासन दिया है। किंतु जब तक लालफीताशाही की भूलभुलैया से निकलकर इस संबंध की कोई योजना पीड़ितों तक पहुँचेगी, तब तक अनेकों की लीला समाप्त हो चुकेगी। 'का वर्षा जब कृषी सुखानी' की कहावत यहाँ भी चरितार्थ होती दिखाई देती है। शासन से मेरी अपील है वह स्वर्णकारों को तुरंत बेरोज़गारी का भत्ता देने की व्यवस्था तथा अपनी स्वर्ण-नीति पर विचार कर उन सब नियमों में परिवर्तन करे, जिनसे इस संकट की अवस्था में इतने भारी प्रमाण में बेरोज़गारी फैल रही है।

—पाञ्चजन्य, मार्च 4, 1963

□

8

नया बजट : अर्थशास्त्र का अभाव; अर्थनीति की उपेक्षा

यह आलेख 'पोलिटिकल डायरी' (पुस्तक), 1971 में 'मोरारजी का 1963 का बजट' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

वर्तमान आपात-स्थिति में हर कोई एक प्रतिरक्षामूलक बजट की आशा रखता था। वित्त मंत्री ने उस सीमा तक आशा की पूर्ति की है, जहाँ तक उन्होंने प्रतिरक्षा-व्यय में पर्याप्त वृद्धि की है। यह स्वागतार्ह है। फिर भी, प्रयास यह होना चाहिए कि इस राशि का समुचित उपयोग हो, और देश की प्रतिरक्षा पूर्णतः सुरक्षित हो जाए। चूँकि सुरक्षात्मक कारणों में प्रतिरक्षा-बजट को संसद् में अधिक विवरण के साथ नहीं प्रस्तुत किया गया है, यह उचित होगा कि प्रतिरक्षा परिषद् या प्रतिरक्षा उपसमिति इस प्रश्न की ओर अधिक ध्यान दे।

हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि प्रतिरक्षा और विकास के कार्य साथ-साथ चलें। यदि विकास की उपेक्षा की जाएगी तो आगे चलकर प्रतिरक्षा-कार्य दुर्बल पड़ जाएगा। किंतु यह मानना ग़लत होगा कि तृतीय योजना वास्तविकतया विकास की योजना है, जो सुदृढ प्रतिरक्षा का आधार बन सकती है। योजना और सरकार की नीतियों में मूलभूत संशोधन की आवश्यकता है। वर्तमान बजट में युद्ध लड़ने में सहायक अर्थव्यवस्था के ठोस दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है।

सरकार की नीतियों के कारण देश की अर्थव्यवस्था गंभीर तनाव में है। अब जब युद्ध के कारण अतिरिक्त कर लगाए गए हैं, सुधारात्मक क़दम उठाने की अतीव आवश्यकता है, सरकार ऐसा कोई पग उठाने में असफल रही है।

हम वर्तमान वर्ष के बजट का विश्लेषण करें। गत वर्ष जब वित्त मंत्री ने अपना बजट प्रस्तुत किया था, उन्होंने 60 करोड़ रुपए के राजस्व-अंतर को उतनी ही राशि का अतिरिक्त कर लगाकर पूरा करने का प्रस्ताव रखा था। इस प्रकार 72 लाख रुपए की लघु बचत रह गई थी। संशोधित अनुमानों के अनुसार नए करों से भारी आय होने के बावजूद 22.06 करोड़ रुपए का राजस्व-घाटा रह गया है। राजस्व और पूँजी-बजट, दोनों बजटों को मिलाकर सरकार का इरादा केवल 1 अरब 50 करोड़ रुपए के घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लेने का था। अब वित्त मंत्री 2 अरब 40 करोड़ रुपए आँकड़ा बता रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रीय संकटकालिक स्थिति और उसके परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा-व्यय में वृद्धि के नाम पर इस त्रुटि का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया है।

किंतु वे इस प्रकार एक ग़लत छाप डालना चाहते हैं। कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के कारण हमारा प्रतिरक्षा-व्यय राजस्व (संशोधित) के अंतर्गत 343.47 करोड़ रुपए के बजट-आँकड़े से बढ़कर 451.81 करोड़ रुपए और पूँजी-बजट के अंतर्गत 32.61 करोड़ रुपए से बढ़कर 52.75 करोड़ रुपए हो गया। इस प्रकार कुल केवल 128.46 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई है। यदि हम सरकार के राजस्वों पर दृष्टि डालें, तो उनमें भी 120 करोड़ रुपए की वृद्धि दिखाई पड़ती है, जो 1380.93 करोड़ रुपए के बजट-आँकड़े से बढ़कर 1500.25 करोड़ रुपए के संशोधित अनुमान पर पहुँच गए हैं। इस प्रकार यदि सरकार ने अन्य विभागों में अनावश्यक व्यय को कम रखने की सतर्कता दिखाई होती, तो इतना अधिक घाटा रहने का कोई कारण नहीं था। साथ ही, जनता ने राष्ट्र के आह्वान को स्वीकार करते हुए संकटकाल की घोषणा के बाद विभिन्न कोषों के अंतर्गत 123.93 करोड़ रुपए का योगदान किया है।

स्पष्ट है कि जनता ने अतिरिक्त बोझ को वहन कर लिया है। यदि कहीं त्रुटि है तो वह सरकार की ओर से है। यदि यह अपव्यय नहीं होता, तो वर्तमान वर्ष का बजट एक बचत का बजट रहा होता। यदि सरकार लोक लेखा समिति द्वारा सुझाई गई मितव्ययिता पर चली होती, तो वह भावी ख़र्च की पूर्ति के लिए निश्चय ही कुछ बचा सकती होती।

इस अतिरिक्त व्यय का एक कारण सात राज्यों को उनके साधन-स्रोतों में सुधार करने के लिए तदर्थ ऋणों (Adhoc Loans) की स्वीकृति थी। राज्यों को केंद्र से अधिकाधिक स्रोत उपलब्ध कराए जा रहे हैं। तृतीय वित्त आयोग[1] ने केंद्रीय करों में उनका अंश (हिस्सा) और अनुदान बढ़ा दिया है। इसके अतिरिक्त केंद्र भी प्रतिवर्ष उनको भारी अनुदान देता रहा है। जबकि द्वितीय योजनावधि में केंद्र से राज्यों को केवल 2867.92 करोड़ रुपए अंतरित किए गए, तृतीय योजना आरंभ होने के बाद से अब तक ही उतनी राशि उनके हिस्से में दी जा चुकी है। इस वर्ष के बजट में यह राशि 1008.72

1. तृतीय वित्त आयोग का गठन ए.के. चंदा की अध्यक्षता में 1960 से 64 के वित्त वर्ष के लिए किया गया था।

करोड़ रुपए की ऊँची धनराशि दिखाई गई है। इस वर्ष के लिए संशोधित अनुमान 982.44 करोड़ रुपए बताया गया है। 1962-63 के लिए राज्यों का कुल राजस्व और पूँजी बजट 1700.61 करोड़ रुपए है। स्पष्ट ही वे अपने स्रोतों का 60 प्रतिशत से अधिक केंद्र सरकार से प्राप्त करते हैं। इस स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। या तो राज्यों को अधिक साधन-स्रोत जुटाने के लिए कहना चाहिए या उनको 'तेते पाँव पसारिए जेती लांबी सौर' का पालन करने के लिए कहना चाहिए।

केंद्र और राज्यों के बीच विभिन्न करों के विभाजन के पुनर्गठन की भी आवश्यकता है। वर्तमान स्थिति में राज्य अधिकाधिक केंद्र पर निर्भर होते जाएँगे, और इस प्रकार अनुत्तरदायी बन जाएँगे। उन राज्यों के संबंध में, जो आरक्षित निधि पर 'ओवर-ड्रा' जारी रखे हुए हैं, समुचित संवैधानिक क़दम उठाना आवश्यक है। वित्त मंत्री द्वारा दिया गया परामर्श या शुभाशा की अभिव्यक्ति पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रपति को धारा 360 के अंतर्गत कार्रवाई करनी चाहिए और उन राज्यों में 'आर्थिक संकटकाल की स्थिति' घोषित कर देनी चाहिए।

जहाँ तक अगले वर्ष के बजट का प्रश्न है, जनता और अर्थव्यवस्था पर पड़नेवाले प्रभाव की चिंता न करते हुए वित्त मंत्री ने जहाँ तक संभव हो, वहाँ तक विस्तृत और गहरा जाल फैलाने का प्रयत्न किया है। जनता असह्य बोझ का वहन करने के लिए भले ही पर्याप्त देशभक्त हो सकती है, पर अर्थव्यवस्था तो प्राणधारी व्यक्ति की भाँति साथ नहीं दे सकती। वित्त मंत्री जब यह कहते हैं, ''मैंने इस बात पर बल दिया है कि एक सुनियोजित अर्थव्यवस्था की कराधान-नीति न केवल खज़ाने के लिए राजस्व उगाहने के उद्देश्य की पूर्ति करती है, बल्कि आर्थिक प्रगति की दर को उन्नत करने और उसके विभिन्न क्षेत्रों के बीच असंतुलन को सुधारने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह आर्थिक नीति का भी एक साधन है'', तब वे आर्थिक सिद्धांतों के जानकार लगते हैं, किंतु उनके बजट-प्रस्ताव में इस दृष्टिकोण की पूर्ण उपेक्षा की गई है। वित्त मंत्री ने अनिवार्य जमा योजना (Compulsory Deposit Scheme) के अलावा जिसके अंतर्गत उन्होंने लगभग 70 करोड़ रुपए प्राप्त होने की आशा व्यक्त की है, 296.50 करोड़ रुपए के करों का प्रस्ताव रखा है। इस प्रकार 366.50 करोड़ रुपए का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। राज्य सरकारें भी विभिन्न कर लगाने का प्रस्ताव रख रही हैं, जिनके 135 करोड़ रुपए से भी ऊपर पहुँच जाने की संभावना है। स्थानीय संस्थाएँ कितना बोझ डालेंगी, उसका अनुमान लगाना कठिन है। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि जनता अब तक जितना करभार उठाती रही है, उसकी अपेक्षा उसे इस वर्ष लगभग 5 अरब रुपए अधिक चुकाने पड़ेंगे। और यह सारा बोझ प्रतिरक्षा के नाम पर डाला जा रहा है। किंतु तथ्य है कि प्रतिरक्षा-सेवाओं पर 4 अरब रुपए से अधिक अतिरिक्त व्यय की संभावना नहीं है।

वर्तमान कर सभी वर्गों के लोगों पर प्रहार करते हैं, और यह प्रहार वे उनके मर्मकेंद्रों पर करते हैं। उत्पादन-शुल्क और चुंगी-करों का अवश्य ही मुद्रास्फीतिकारी प्रभाव पड़ेगा। मूल्यों को, जो सर्वदा ही वृद्धि का रुख़ दिखाते रहे हैं, संकटकाल की लहर में किसी प्रकार नियंत्रण में रखा जा सका। इसका श्रेय जनता—उपभोक्ताओं, उत्पादकों और व्यापारियों—को है। किंतु अब वे इन नए करों के प्रभाव को निःसत्त्व नहीं कर सकते। भारत में उपभोग-ढाँचा प्रायः ग़ैर लचीली माँग का है। एक सीमा है। जनता अपनी आवश्यकताओं को उससे अधिक नहीं कम कर सकती। ऐसा अनुमान है कि इन नवीनतम करों के परिणामस्वरूप पारिवारिक ख़र्च में 25 से 30 प्रतिशत वृद्धि हो जाएगी। यह बहुत अधिक है।

प्रत्यक्ष कर मध्यम वर्ग एवं विनियोगकर्ता, दोनों पर आघात करेंगे। युद्ध के लिए एक विस्तृत औद्योगिक आधार आवश्यक है। किंतु वित्त मंत्री ने निजी क्षेत्र की आवश्यकताओं पर थोड़ा सा ध्यान नहीं दिया है। ऐसे समय में जबकि 'शेयरों' के भाव गिर रहे हैं, ये प्रस्ताव घातक सिद्ध होंगे। अधि-लाभ कर (Super Profit Tax) स्वर्ण और मद्यनिषेध नीतियों की भाँति ही आर्थिक दृष्टि से दुर्बल हैं।

जनता पर इन अभूतपूर्व बोझों के पश्चात् भी वित्त मंत्री संपूर्ण बजट-स्थिति को संतुलित बनाने में विफल हो गए हैं। पूँजीगत बजट में 151 करोड़ रुपए का घाटा दिखाया गया है, जिसकी पूर्ति ट्रेजरी-बिलों के विस्तार के द्वारा करने का प्रस्ताव रखा गया है। तृतीय योजना ने घाटे की अर्थव्यवस्था को सीमित कर दिया है। किंतु जिस प्रकार वित्त मंत्री चल रहे हैं, वे शीघ्र ही उस सीमा को पार कर जाएँगे। इन सबका अर्थ होगा मूल्यवृद्धि, जिसके परिणामस्वरूप वेतनवृद्धि की माँग उठेगी, और उसके फलस्वरूप लागत ढाँचे में वृद्धि हो जाएगी। वित्त मंत्री ने निर्यात-वस्तुओं के लिए कुछ विशेष छूट स्वीकृत की है। निर्यात-उद्योग को आर्थिक सहायता (सब्सिडी) देने का कुछ औचित्य हो सकता है, किंतु यदि देशी और विदेशी मूल्यों के बीच अधिक काल तक अंतर रहने दिया गया तो उससे भ्रष्टाचार पैदा होगा और आर्थिक ढाँचा अनार्थिक नींव पर आधारित हो जाएगा। मूल्यों को स्थिर करने के लिए सरकार को अपनी नीतियों में सुधार करना चाहिए।

सरकार ने प्रशासन में मितव्ययिता करने के लिए कुछ नहीं किया है। सामुदायिक विकास और सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों को, जो पूर्णतः असफल सिद्ध हो चुके हैं, अब भी बनाए रखा गया है। जहाँ तक प्रशासन का संबंध है, व्यय में वृद्धि हुई है। वेतन और भत्तों के रूप में 1961-62 में वास्तविक व्यय 98.40 करोड़ था, पर इस बजट में उस मद में 121.15 करोड़ रुपए का प्रस्ताव रखा गया है। इस प्रकार उसमें लगभग 23 करोड़ रुपए की वृद्धि हुई है। लोक लेखा समिति ने प्रतिवर्ष 60 करोड़ रुपए से लेकर 1 अरब रुपए तक की मितव्ययिता करने का सुझाव दिया है। किंतु हम देखते हैं कि

सरकार विपरीत दिशा में ही चल रही है। प्रशासन-व्यय अत्यंत भारी हो रहा है।

1961-62 में सरकारी अधिकारियों का वेतन 17.21 करोड़ रुपए और व्यवस्थापन-व्यय 56.10 करोड़ रुपए था। अब इन मदों की राशि बढ़कर क्रमशः 23.18 करोड़ रुपए और 65.70 करोड़ रुपए हो गई है। इस प्रकार गत दो वर्षों में अफसरों का वेतन कुल वेतन-देयक के 17.4 प्रतिशत से बढ़कर 19.1 प्रतिशत पर पहुँच गया है। यद्यपि बताया जाता है कि 80 प्रतिशत राजाओं ने प्रिवी पर्स[2] में 10 प्रतिशत की कटौती मान्य कर ली है, प्रिवीपर्स खाते में दी जानेवाली धनराशि में कोई उल्लेखनीय कमी नहीं हुई है।

बजट में अर्थशास्त्र के नियमों का पालन नहीं किया गया है तथा मितव्ययिता की उपेक्षा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वित्त मंत्री ने बजट-प्रस्तावों के साथ प्रस्तुत 'आर्थिक सर्वेक्षण' के प्रकाश में अपने नए प्रस्तावों को आधारित करने की ओर ध्यान नहीं दिया है। सर्वेक्षण में यह बिना हिचक स्वीकार किया गया है कि चीनी आक्रमण के कारण उपस्थित चुनौती का सामना करने के लिए जनता ने अवसर की माँग के अनुकूल तत्परता प्रदर्शित की। उसमें कहा गया है कि "संकटकालीन स्थिति की लहर में आर्थिक नीति का पहला उद्‌देश्य यह है कि अर्थव्यवस्था के सामान्य संतुलन को अस्त-व्यस्त किए बिना यथासंभव त्वरित गति से प्रतिरक्षा-तैयारी की जाए, और उपलब्ध प्रमाणों से यह सिद्ध है कि जनता के स्वतः स्फूर्त सहयोग से यह तात्कालिक उद्‌देश्य पूरा हो गया है।" अब तात्कालिक उद्‌देश्य पूर्ण हो जाने के बाद दीर्घकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुविचारित और समन्वित नीतियों के आधार पर होनी चाहिए। किंतु वित्त मंत्री ने ग़लत क़दम सुझाए हैं। सर्वेक्षण ने सावधान किया है और कहा है, "अनिश्चितता की सर्वमान्य भावना क़ायम है और नए ऋणपत्रों पर उसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है...किंतु यह स्पष्ट है कि आगामी महीनों में अर्थव्यवस्था एक बड़ी सीमा तक निजी विनियोजकों के विश्वास पर और आवश्यक कामकाज के विस्तार के लिए आवश्यक कोष प्राप्त करने की उनकी योग्यता पर निर्भर करेगी।" वित्त मंत्री ने इस विश्वास को और भी झकझोर दिया है।

न केवल नए विनियोजकों के कान खड़े हो गए हैं, बल्कि वर्तमान उद्योगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका है। नए चुंगी-करों का उद्‌देश्य आयात पर नियंत्रण रखना है, पर सर्वेक्षण में कहा गया है—

"आयात-नियंत्रणों में अधिकाधिक वृद्धि के कारण वह उस स्तर पर आ पहुँचा है, जब नियंत्रणों में और तनिक भी वृद्धि से न केवल ऊँचे उत्पादन में अपितु ऊँचे

---

2. प्रिवी पर्सेस : स्वतंत्रता पश्चात् देसी रियासतों के राजाओं को भारत में मिलाने के फलस्वरूप मिलनेवाली राशि थी, जो सभी 565 रियासतों को उनके राज्य के राजस्व आँकड़े, सलामी क्रम, ऐतिहासिक महत्त्व के आधार पर वार्षिक रूप से तय की गई थी।

निर्यात के कार्य में भी बाधा पड़ जाएगी।''

अनिवार्य जमा योजना एक ऐसी नई पद्धति है, जिसका अल्प-बचत और छोटे व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ना संभव है। यह पक्षपातपूर्ण है और इससे कृषिकारों पर बोझ पड़ता है, जिनको सरकार ने जानबूझकर उपेक्षित रखा है। स्वर्ण-नीति से ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण प्राप्त करना एक समस्या बन गई है। अब यदि सरकार 50 प्रतिशत भू-राजस्व को आवश्यक जमा के रूप में ले लेती है, तो कृषिकार के पास कम पूँजी बच जाएगी। इससे कृषि-उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। इसके अलावा, विभिन्न राज्यों में या एक ही राज्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भी भू-राजस्व की कोई एकरूप दर नहीं है। सरकार इस कठिनाई को दूर करने के लिए क्या विचार रखती है? अनिवार्य जमा की एक ही दर से सर्वत्र वसूली निश्चित रूप से न्यायपूर्ण नहीं है।

जहाँ तक वेतनभोगी कर्मचारियों का संबंध है, 1500 रुपए वार्षिक से कम पानेवाले कर्मचारियों को मुक्त रखा गया है। कृषकों के संबंध में ऐसा क्यों नहीं किया गया? करोड़ों किसान ऐसे हैं, जिनकी आय 1500 रुपए से कम है। नगरों में रहनेवाले के समान ही हैसियत वाले लोगों की अपेक्षा उनसे अलग बरताव क्यों होना चाहिए?

वित्त मंत्री को इन प्रस्तावों पर फिर से विचार करना चाहिए और लोगों की आवश्यकताओं में कमी करने का परामर्श देने के लिए पहले सरकार को स्वयं कमख़र्ची की ओर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इस दिशा में उसमें इतनी ढोलमपोल है कि वह सम्मान और दक्षता दोनों खो चुकी है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 11, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

9

महापुरुषों को किसी दल विशेष की सीमा में बाँधना सांप्रदायिक एवं संकुचित मनोवृत्ति का द्योतक है

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चंद्रभानु गुप्त ने राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन स्मारक समिति की ओर से आयोजित प्रदर्शनी के संबंध में बोलते हुए जनसंघ पर यह आरोप लगाया कि यह टंडनजी के नाम का दुरुपयोग करना चाहता है तथा टंडनजी के आदर्शों और जनसंघ के सिद्धांतों में कोई मेल नहीं है। जहाँ तक उक्त समिति का संबंध है, उसका जनसंघ के साथ कोई संबंध नहीं है। यद्यपि जनसंघ के कतिपय सदस्य इस समिति के भी सदस्य हैं किंतु वह एक स्वतंत्र संस्था है। इसके अतिरिक्त आयोजन समिति का जिस प्रकार से गठन किया गया है, उसमें तो जनसंघ ही नहीं कांग्रेस के सदस्य, उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल के कतिपय मंत्रिगण भी सम्मिलित हैं। वास्तव में यह एक निर्दलीय समिति है। किंतु जो लोग किसी भी परिस्थिति में दलीय दृष्टिकोण को नहीं छोड़ सकते, वे प्रत्येक कार्य को किसी-न-किसी दल पर मढ़ते रहते हैं। किंतु मुझे यहाँ प्रदर्शनी के संबंध में कुछ नहीं कहना है। हमें तो उस आरोप का विचार करना होगा, जो श्री गुप्त ने जनसंघ और टंडजी के आदर्शों में विसंगति के रूप में लगाया है।

महापुरुषों का विभूतिमत्व

राजर्षि पुरुषोतम दास टंडन महापुरुष थे। ऐसे महापुरुष, जो अपने जीवन काल में चाहे किसी दल या पंथ विशेष से संबंधित रहे हों, वे किसी वर्ग विशेष की संपति नहीं होते। संपूर्ण राष्ट्र का उन पर समान रूप से अधिकार रहता है। उन्हें किसी वर्ग के साथ जोड़ना या एक छोटे दायरे में बनाकर रखना सांप्रदायिकता और संकुचितता समझी जाएगी।

क्या महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी को केवल मेवाड़ और महाराष्ट्र तक ही सीमित रखा जा सकता है। क्या गुरु गोविंद सिंह सिक्खों के ही महापुरुष थे? क्या लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और डॉ. राजेंद्र प्रसाद कांग्रेस के दायरे में सीमित रहकर अपनी वास्तविक महत्ता प्राप्त कर सकते हैं? राजर्षि टंडन और सरदार पटेल चाहे जीवन भर कांग्रेस में रहे हों किंतु उनका जीवन कांग्रेसियों की पैतृक संपत्ति नहीं बन सकता। डॉ. हेडगेवार और डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या जनसंघ के सदस्यों के लिए ही नहीं, संपूर्ण राष्ट्र के लिए प्रेरणास्रोत हैं। सामान्यतः तो विभिन्न दलों में काम करते हुए भी हमारे अंदर इतनी सहिष्णुता और उदारता होनी चाहिए कि दूसरे दल के नेताओं के प्रति भी सम्मान और श्रद्धा का भाव रख सकें। उनके पास भी यदि कुछ अनुकरणीय हो तो लेने को तैयार रहें। मृत्यु के उपरांत तो वे दल विशेष के रहते ही नहीं। यह सामान्य भारतीय शिष्टाचार है और इसी आधार पर राष्ट्र का इतिहास एक अभिन्न इकाई के रूप में बनता जाता है। यदि सदैव ही उन्हें किसी-न-किसी दल के साथ बाँधकर रखा तो राष्ट्र के वर्तमान में ही नहीं; भूत में भी ऐसी दरार पड़ जाएगी, जो घातक सिद्ध होगी। इसीलिए संभवतः हमारे यहाँ छोटे और बड़े सभी को एक ही श्मशान घाट पर ले जाते हैं। श्मशान यात्रा में सभी सम्मिलित हों, यह परंपरा है। आज यदि टंडनजी को या अन्य किसी महापुरुष को कांग्रेसी केवल अपने तक ही सीमित रखना चाहते हैं तो हमें विवश होकर कहना पड़ेगा कि वे उनका दलीय दृष्टि से दुरुपयोग करना चाहते हैं, उनके साथ अन्याय कर रहे हैं तथा उन महापुरुषों की महत्ता को कम करने का प्रयत्न करते हैं।

जनसंघ और राजर्षि टंडन

जहाँ तक टंडनजी के जीवनादर्शों का संबंध है, आज जनसंघ ही एक ऐसा दल है, जो शत-प्रतिशत उनको स्वीकार करके चलता है। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडनजी के कांग्रेस के अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण और जनसंघ के घोषणा-पत्र दोनों को एक साथ पढ़ लीजिए। आपको पता चल जाएगा कि दोनों में नीति विषयक कितना साम्य है। सत्य तो यह है कि यदि राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन कांग्रेस के अध्यक्ष बने रहते तथा जिन नीतियों का उन्होंने प्रतिपादन किया था, कांग्रेस उनका पालन करती तो भारतीय जनसंघ का आविर्भाव ही नहीं होता। जिस प्रकार टंडनजी को अध्यक्ष पद छोड़ना पड़ा,[1]

1. पुरुषोत्तम दास टंडन 'राजर्षि' (1882-1962) सरदार पटेल के समर्थन से 1950 में आचार्य कृपलानी को पराजित कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। पंडित नेहरू का कथन था कि धर्मनिरपेक्ष पार्टी में एक कट्टर हिंदूवादी को अध्यक्ष नहीं बनाया जा सकता। नेहरू आचार्य कृपलानी के समर्थन में थे। बाद में नेहरू ने पहले कार्यसमिति और फिर संसदीय बोर्ड के पुनर्गठन की माँग रखी। टंडनजी का कहना था कि यह काम अध्यक्ष का है। वे पुनर्गठन करने के बजाय इस्तीफ़ा देना पसंद करेंगे। इसके बाद 1951 में टंडनजी ने इस्तीफ़ा दे दिया था।

कांग्रेस में उनके अनुयायियों ने उनका साथ नहीं दिया तथा सैद्धांतिक दृष्टि से कांग्रेस जन-भावनाओं से दूर हटती गई, वह वर्तमान राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को भली-भाँति ज्ञात है। आज भी यदि टंडनजी के पुराने साथी कांग्रेस में चेत जाएँ तो वे उनके प्रति अपने ऋण को, जो ऋषि ऋण है, चुका सकते हैं।

टंडनजी के तपः मूल जीवन एवं उनकी आचार शुचिता का अनुकरण करना तो आज के भ्रष्टाचार परिपूर्ण जीवन में असंभव सा हो गया है। मैं गुप्तजी या कांग्रेसजनों के समक्ष इतना कठिन प्रस्ताव रखकर उनको असमंजस में नहीं डालना चाहूँगा। किंतु टंडनजी ने हिंदी के प्रश्न पर जो दृढ रुख़ अपनाया था, उसका तो वे अवश्य ही पालन कर सकते हैं। हिंदी को राजभाषा बनाने के प्रयत्नों में टंडनजी ने अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया। अदालतों में हिंदी के व्यवहार से लेकर भारत की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने तक वे बराबर उसके लिए लड़ते रहे। संविधान में हिंदी को उचित स्थान उनके ही कारण मिला। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जिसने 'माँ की पुकार' प्रदर्शनी का आयोजन किया, उस समय भी टंडनजी के साथ इस अभियान में साथ था। उसने देश भर में हिंदी के लिए जनमत संग्रह किया और इस प्रकार 'हिंदी और हिंदुस्तानी' (उस समय अंग्रेज़ी का प्रश्न ही नहीं था) विवाद में संविधान सभा में टंडनजी के हाथों को बाहर के जन-जागरण ने मज़बूत बनाया।

टंडनजी की आत्मा की पुकार

पर आज जिस हिंदी को टंडन जी ने बड़े स्नेह के साथ सँजोया था, उसको अंग्रेज़ी की दासी बनाने का प्रयत्न हो रहा है। अंग्रेज़ी को सखी राजभाषा बनाने का विधेयक बनाया जा रहा है। क्या श्री चंद्रभानु गुप्त,[2] श्री कमलापति त्रिपाठी[3] या अन्य कांग्रेसजन जो अपने को टंडनजी का अनुयायी कहने का दावा कर सकते हैं, इस अवसर पर 'टंडनजी की आत्मा की पुकार को सुनेंगे? उन्हें माँ की पुकार तो सुनाई नहीं दी पर क्या वे मातृभाषा की पुकार, राष्ट्रभाषा की पुकार भी सुन सकेंगे? अथवा 'कुरसी की पुकार' के शोर में वे 'आत्मा की पुकार' को सुनने की क्षमता को खो चुके हैं? टंडनजी अपने कार्यकाल में 'विधानसभा' में हिंदी चला गए। अंग्रेज़ी को उन्होंने वहाँ से बिल्कुल हटा दिया। क्या गुप्तजी अपने कार्यकाल में उत्तर प्रदेश के शासन से अंग्रेज़ी को पूरी तरह हटाकर हिंदी को चला सकते हैं? यदि उन्होंने इतना भी कर दिया तो टंडनजी की

---

2. चंद्रभानु गुप्त (1902-1980) तीन बार (क्रमशः 1960-1963; मार्च 1967; 1969-1970) उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे थे।
3. कमलापति त्रिपाठी (1905-1990), कांग्रेसी राजनेता, जो बाद में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री तथा केंद्रीय रेल मंत्री बने।

आत्मा को संतोष होगा और वह उन्हें आशीर्वाद देगी। अन्यथा हमें यही कहना होगा कि वे टंडनजी का मात्र नाम लेते हैं और उसका अपने दलीय दृष्टिकोण के लिए दुरुपयोग करना चाहते हैं। यदि टंडनजी की स्मृति हमारे कांग्रेसी भाइयों में जग रही है तो मैं समझता हूँ कि राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन स्मारक समिति का लक्ष्य बहुत बड़े अंश में पूरा हो जाएगा।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 1, 1963

□

10

भाषा संबंधी काला विधेयक संविधान का खुला उल्लंघन है

वैशाखी के पुण्य पर्व पर दिनांक 13 अप्रैल, 1963 को गृहमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने लोकसभा में राजभाषा विधेयक प्रस्तुत किया। इस विधेयक के अनुसार 26 जनवरी, 1965 के उपरांत भी अंग्रेज़ी का प्रयोग राज्य के समस्त व्यवहारों में उसी प्रकार चलता रहेगा, जिस प्रकार वह भारत के स्वतंत्र होने तथा संविधान बनने के पूर्व था। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार 26 जनवरी, 1965 के उपरांत हिंदी में ही संपूर्ण राजकाज का प्रावधान है। उसके इस स्थान को छीनकर श्री शास्त्री ने उसे एक अनुवाद की भाषा, और वह भी कुछ विभागों में, बना दिया है। इसको यदि शास्त्रीजी हिंदी को महत्त्व की भाषा का स्थान देना कहते हों तो हमें विवश होकर कहना पड़ेगा कि वे जानबूझकर जनता की आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं।

विश्वासघात

हिंदी को क्यों राजभाषा होना चाहिए, इस विषय पर मैं यहाँ कुछ नहीं कहूँगा। क्योंकि इसका पूर्ण विधान जब संविधान स्वीकृत हुआ, तब हो चुका था तथा सर्वसम्मति से उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था। भारतीय शासन पर संविधान ने यह ज़िम्मेदारी डाली थी कि वह 15 वर्ष के अंदर हिंदी भाषा भृत्यवर्ग को इस योग्य बनाए, जिससे अंग्रेज़ी को सदा के लिए विदा किया जा सके। स्पष्ट है कि सरकार ने इस दायित्व का निर्वाह नहीं किया। किंतु अपनी इस कमी के लिए जनता के सामने क्षमा-याचना करने तथा आगे कुछ और समय माँगने के इसके स्थान पर वह सदा के लिए इस संबंध में अपने कर्तव्य से ही छुट्टी लेना चाहती है। अंग्रेज़ी का विधेयक इसी भाव से प्रस्तुत किया गया है।

भस्मासुरी नीति

यह विधेयक संविधान की भावना और आदेशों के प्रतिकूल है। संविधान के अनुच्छेद 343 (3) में, जिसके अंतर्गत इस विधेयक को प्रस्तुत किया गया है, इस बात की तो व्यवस्था है कि संसद् विधि द्वारा कुछ विषयों के लिए और कुछ समय के लिए अंग्रेज़ी के प्रयोग की अनुमति दे सकती है, किंतु इस प्राविधान का यह अर्थ नहीं कि उसके द्वारा राजभाषा संबंधी मूल प्राविधान अनुच्छेद 343 (1) को ही पूर्णतः समाप्त कर दिया जाए। यह तो भस्मासुर द्वारा शिवजी को ही भस्म कर देनेवाली नीति कही जाएगी। कुछ विषयों का और कुछ समय का अर्थ सब विषयों और सब समय के लिए लगाना कभी तर्कसंगत नहीं कहा जाएगा। कल हो सकता है कि संविधान में संशोधन की व्यवस्था का दुरुपयोग कर कोई सरकार यही पारित कर दे कि संविधान की शेष धाराएँ अब लागू नहीं होंगी। क्या इस प्रकार संविधान की हत्या की अनुमति दी जा सकती है?

उल्टी गंगा

विधेयक में कहा गया है कि संसद् में 26 जनवरी, 1965 के बाद प्रस्तुत होनेवाले विधेयक का हिंदी अनुवाद भी दिया जाएगा और वह अधिकृत अनुवाद माना जाएगा। स्पष्ट है कि यह विधान अनुच्छेद 343 के प्रतिकूल है। यदि यह कहा जाता है कि अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिया जाएगा जो कि अधिकृत माना जाएगा तो यह कहने में कुछ अर्थ था कि अंग्रेज़ी को भी चलने की सुविधा दी जा रही है। किंतु यहाँ प्रमुख स्थान अंग्रेज़ी का है। हिंदी का केवल अनुवाद होगा। इस अनुवाद का उपयोग क्या होगा?

जहाँ तक न्यायालयों का प्रश्न है, उनका कामकाज अंग्रेज़ी में ही चलेगा तथा अंग्रेज़ी में छपा क़ानून ही अधिकृत समझा जाएगा। इस संबंध में हिंदी को वह सुविधा भी नहीं जो देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को मिली है। बंगाल में बांग्ला में विधान प्रस्तुत और पारित होगा तथा वही मूल प्रति होगी। उसका अंग्रेज़ी में या हिंदी में किया गया अनुवाद अनुवाद मात्र होगा। किंतु हिंदी के संबंध में यह विधान उलटा है।

टेढ़ा मार्ग

उच्च न्यायालय की डिग्रियों के आदेशों और निर्णयों को राष्ट्रपति की अनुमति लेकर हिंदी में देने का प्राविधान अवश्य किया गया है। किंतु साथ ही अंग्रेज़ी में उनका भाषांतर अनिवार्य होगा। स्पष्ट है कि यह प्राविधान कभी काम में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि राष्ट्रपति से अनुमति लेना और फिर मूल अंग्रेज़ी के क़ानून के आधार पर निर्णय देना तथा उसका अंग्रेज़ी में भाषांतर करना ऐसी चीज़ें हैं, जो व्यवहार में पग-पग पर बाधक बनेंगी।

यह धोखा और फ़रेब

हिंदी के ऊपर उपकार जताने और लोगों को भ्रम में डालने के लिए यह भी कहा है कि हिंदी की प्रगति का पुनरीक्षण करने के लिए 10 वर्ष उपरांत अर्थात् 1975 में राष्ट्रपति संसद् की 30 सदस्यों की समिति गठित कर सकेंगे और उसकी सिफ़ारिशों के आधार पर अपनी ओर से आदेश दे सकेंगे। इस धारा का एक-एक शब्द धोखे से भरा हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 344 के अंतर्गत राष्ट्रपति को निर्देश दिया गया था कि वे पाँच और दस वर्ष के उपरांत एक राजभाषा आयोग गठित करें तथा उसके प्रतिवेदन एवं उस पर संसद् की समिति की सिफ़ारिशों का विचार कर हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग के संबंध में आदेश दें। पाँच वर्ष के उपरांत एक आयोग इस विषय में नियुक्त हुआ। उसके प्रतिवेदन तथा संसदीय समिति की सिफ़ारिशें भी आ गईं। राष्ट्रपति ने कुछ आदेश भी दिए, किंतु वह सब रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया और दस वर्षों के बाद जो दूसरा आयोग बनाने का निर्देश दिया गया था, उसका तो कहीं नाम भी नहीं है। जब सरकार इस प्रकार संविधान के स्पष्ट निर्देशों का भी उल्लंघन कर सकती है तो इच्छाधीन प्राविधानों का क्या मूल्य रह जाता है? अनुच्छेद 344 में लिखा है—''The President shall Constitute.'' जबकि विधेयक में कहा गया है, ''The President may Constitute.'' अंग्रेज़ी में 'शैल' और 'मे' का अंतर जाननेवाले इस फ़रेब को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

षड्यंत्र सफल न होगा

श्री लालबहादुर शास्त्री ने चाहे जानबूझकर और चाहे संयोग से वैशाखी का दिन इस काले विधेयक को पेश करने के लिए चुना, पर उस दिन के साथ इतिहास की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। आज के दिन ही खालसा पंथ[1] का जन्म हुआ। गुरु गोविंदसिंहजी ने पंचप्यारों को दीक्षित किया। खालसा ने मुग़ल तख़्त की नींव किस प्रकार हिला दी, यह हमें अच्छी तरह से मालूम है। वैशाखी के दिन ही जलियाँवाला बाग का नरमेध हुआ था। जलियाँवाला ने भारतवासियों का दिल दहला दिया। पंडित

1. खालसा पंथ की स्थापना सिख़ पंथ के दसवें और अंतिम गुरु गोविंद सिंहजी ने 1699 को बैसाखी के दिन आनंदपुर साहिब में की थी। गुरुजी ने लोगों को धर्म की रक्षा और देश की आज़ादी के लिए प्रेरणा प्रदान की। जनभावना को परखने के लिए समस्त जनसमूह के समक्ष बलिदानस्वरूप शीश की माँग की और जो पाँच वीर गुरु गोविंद सिंहजी के लिए शीश भेंट करने को आगे आए, वे 'पंच प्यारे' नाम से विख्यात हुए। गुरुजी ने 'सिंह' पद से उनके नाम विभूषित कर जनसमुदाय को निर्देश दिया कि 'आज से आप लोग आपसी वीर भावना के लिए सिंह कहलाएँगे और अपने उद्देश्य के अनुरूप कृपाण, कड़ा, केश, कंघा और कच्छा, ये पाँच चिह्न सदैव अपने पास रखेंगे।' वे पाँच प्यारे जो देश के विभिन्न भागों से आए थे और अलग-अलग जाति और संप्रदाय के लोग थे, उन्हें एक ही कटोरे में अमृत पिलाकर गुरु गोविंद सिंहजी ने जाति तथा संप्रदायवाद का भेद मिटाकर एक बना दिया।

मोतीलाल नेहरू इस बर्बर कांड से क्षुब्ध होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूदे। जलियाँवाला अंग्रेज़ों का मारक बन गया। स्वतंत्र भारत में फिर इस बार ख़ूनी वैशाखी आई है। जलियाँवाला बाग में यदि जनता को भूना गया तो आज उसकी वाणी को कुंठित किया जा रहा है। अंग्रेज़ों ने सोचा था कि कुछ लोगों को गोली से उड़ाकर वे अपना साम्राज्य यहाँ सदा के लिए टिका लेंगे। शायद अंग्रेज़ी भक्त भी अंग्रेज़ी के साम्राज्य को सदैव के लिए बनाए रखना चाहते हैं। किंतु भारत की भाषाएँ संपन्न हैं और भारत के नागरिक स्वाभिमानी। वे इस षड्यंत्र को कभी सफल नहीं होने देंगे।

कर्तव्य को पहचानें

अंग्रेज़ी का बिल लादकर देश की एकता पर भारी कुठाराघात किया गया है। जिन्हें एकता प्यारी है, वे इस संकट के समय में धैर्य के साथ इस आघात को झेलकर एकता को बनाए रखने का प्रयत्न करें। आज कांग्रेसजनों से मेरी यही अपील है कि वे उन दिनों को याद करें, जब वे स्वतंत्रता संग्राम में कूदे थे। कौन से उनके सपने थे और क्या थीं उनकी भावानाएँ ? वे क्यों आज अमनसभाई बन गए? आदर्श को छोड़कर वे क्यों मोह में पड़े हैं? आज अवसर है कि वे हिम्मत से आगे आएँ। यदि वे नहीं आते तो हमारा कर्तव्य है कि हम अपने मान्य नेताओं को, जिनकी बुढ़ापे और मोह के कारण आज स्मृति धुँधली पड़ गई है अथवा जिनका पौरुष शिथिल हो गया है, जवानी की भावनाओं का स्मरण दिलाकर माँ-भारती की रक्षा के लिए खड़े हो जाएँ।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 22, 1963

□

11

डॉ. रघुवीर सदा याद किए जाएँगे*

डॉ. रघुवीर का दुःखद निधन[1] राष्ट्र के लिए एक आघात है। उनका सारा जीवन राष्ट्र को समर्पित रहा और उनका अंत भी राष्ट्र-सेवा करते हुए हुआ। उनके जीवन में हम देशभक्ति और प्रबुद्ध आत्मा का अद्‌भुत मिश्रण देखते हैं। साथ ही अपने वांछित उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए एक कर्मयोगी की तरह निरंतर प्रयास करने की क्षमता भी देखते हैं। हिंदी को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए की गई उनकी सेवाएँ सदा याद की जाती रहेंगी।

—ऑर्गनाइज़र, मई 20, 1963

□

* देखें परिशिष्ट IV, पृष्ठ 313 एवं परिशिष्ट V, पृष्ठ 315।

1. मई 1963 में भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष महान् भाषाविद् डॉ. आचार्य रघुवीर का जौनपुर में चुनाव प्रचार से लौटकर, फर्रुख़ाबाद जाते समय मोटर दुर्घटना में निधन हो गया था।

12

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अजमेर

दीनदयालजी ने अजमेर में 28 मई, 1963 को दो बौद्धिक वर्ग दिए। यह बौद्धिक वर्ग उन्होंने प्रातःकाल में दिया। दूसरा बौद्धिक वर्ग मध्याह्न में हुआ।

राष्ट्रीयता क्या है? इसका विचार करने की बात उठे, यह किसी भी देश के लिए अत्यंत दुर्भाग्य की वस्तु है, फिर भी आज इसका विचार करना पड़ रहा है, क्योंकि अपने देश में लोगों को इसके संबंध में पर्याप्त भ्रम है।

हम कौन हैं? क्या हैं? इसका लोगों को पता नहीं। राष्ट्र क्या है? इसके संबंध में लोगों में इतना भ्रम है कि जो राष्ट्र है, उसे वे ठुकरा देते हैं और जो राष्ट्र नहीं है, उसे पकड़कर पोषण करने का प्रयास करते हैं। किंतु यह स्वाभाविक है कि ग़लत चीज़ के पोषण से सही चीज़ मिलती नहीं। कोयल अपना अंडा कौवे के घोंसले में रख देती है, कौवा उसे अपना अंडा समझकर सेता रहता है, पर अंत में उसमें से निकलती कोयल ही है, कौवा नहीं। इसी प्रकार ग़लत चीज़ को राष्ट्र में सेवन करने से राष्ट्रीयता नहीं, कुछ और ही वस्तु निकलेगी।

हमने पिछले चालीस वर्षों में यह देखा कि राष्ट्रीयता के लिए बलिदान दिए गए, त्याग किए गए, उनमें राष्ट्रीयता की ही भावना थी। उनके बलिदान के पीछे जो एक समर्पण की भावना, सर्वस्व निछावर की प्रवृत्ति चाहिए, उसमें भी किसी प्रकार की कमी नहीं थी। गुरुता भी उनकी कम नहीं की जा सकती। परंतु आज हमें उनसे मिला क्या? क्या आज भारत में राष्ट्रीयता बलवती है? हमारी सरकार को आज स्वतंत्र भारत में इस बात की कमेटी बिठानी पड़ती है कि राष्ट्रीयता को कैसे बढ़ाया जाए। इसका विचार

करना पड़ता है, क्योंकि आज वह नहीं है।

चालीस वर्षों के इन प्रयासों में से जो चीज़ें पैदा हुई हैं, वे हैं, भाषा-विवाद, सांप्रदायिकता, देश-विभाजन, व्यक्ति-स्वार्थ व सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार। चालीस वर्षों के राष्ट्रीय जागरण का यह परिणाम है। ऐसा क्यों हुआ? एक अच्छा काम करते हुए ये बुराइयाँ क्यों आईं? इसका कारण यह है कि चाहे हमारी भावना अच्छी रही हो, संकल्प अच्छा हो, किंतु दिशा ग़लत थी। हमने हीरा निकालना चाहा, किंतु कोयले की खानों को खोदा। कितनी भी इच्छा और परिश्रम महान् क्यों न हो, ग़लत काम से हीरा नहीं निकलेगा, क्योंकि ग़लत प्रकार से प्रयत्न किया गया।

आज भी यही स्थिति है। चालीस वर्षों के परिश्रम और अनुभव के बाद भी लोग सही बात समझना नहीं चाहते, ग़लत बात पर ही डटे हुए हैं। कुछ उसका व्यामोह हो गया है। व्यामोहवश ग़लत बात से ही चिपक गए हैं और उसे छोड़ नहीं पाते हैं, जिस प्रकार कोई प्राणी किसी जाल में फँसने पर उसमें से निकलने का प्रयत्न करने पर उसमें और भी उलझ जाता है। अतः मोह न रखकर जाल को ही काट देना चाहिए। यह मोह बहुत हो गया है।

इस स्थिति में हमें यह विचार करना है कि राष्ट्र क्या है? हमारी राष्ट्रीयता क्या है? हमें किस प्रकार के प्रयत्न करने पड़ेंगे तथा किसी प्रकार की सावधानियाँ रखनी पड़ेंगी। इन सब बातों का हमें गंभीरता से मूलभूत रूप से विचार करना है। रेखागणित में और न्याय में कुछ बातों को स्वयं सिद्ध तथ्य (एक्सीमेटिक ट्रुथ) कहते हैं। जैसे मैं मनुष्य हूँ, यह स्वयंसिद्ध तथ्य है। इसे सिद्ध करना बड़ा कठिन है। किंतु जब मनुष्य अपनेपन को भूल जाए, अपने को मनुष्य समझे ही नहीं तो उसे यह बताना पड़ता है कि तुम मनुष्य हो। वह भावात्मक रूप से नहीं समझता, तो अभावात्मक रूप से समझता है।

भारत की राष्ट्रीयता का निर्णय करने के लिए एक कमेटी बिठाई गई। उसमें विचार होने लगा कि राष्ट्रीयता क्या है? वे कहने लगे कि हम तो एक राष्ट्र हैं ही नहीं; हमें राष्ट्र बनाना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसमें विश्वास नहीं करता। उस कमेटी में एक स्वयंसेवक भी था। उसने कहा कि हम एक राष्ट्र हैं, हमें राष्ट्र को बनाना नहीं है, उसे पहचानना है। किंतु उस समय इसे नहीं माना गया। पर जब चीन का आक्रमण हुआ तो राष्ट्र के लोग एक होकर धन देने, सेना में भरती होने, चीन का सामना करने खड़े हो गए। इसके बाद फिर जब कमेटी के लोग मिले तो कहा कि अब इस कमेटी की आवश्यकता ही नहीं रही; हम राष्ट्र हैं, यह तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

तात्पर्य यह कि चीन के आक्रमण के विरोध से यह पता लगा कि हम एक राष्ट्र हैं। कभी-कभी बहुत सी चीज़ों का पता विरोध से लगता है। जिसे स्वयं अपनी असलियत का पता नहीं, उसे दूसरे बताते हैं। चीन के आक्रमण से जो प्रतिक्रिया देश में हुई, उससे

हमें भूली हुई राष्ट्र-भावना का पता चला। पता तभी चलता है, जब दूसरे लोग बताते हैं। जब झगड़ा होता है या दूसरे लोग इसका विरोध करते हैं, तभी हम समझते हैं कि संघ में इतनी ताक़त है।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में एक कहानी है कि हम आत्मा को किस प्रकार भूल जाते हैं। दस मनुष्य एक साथ यात्रा करने चले। मार्ग में एक नदी पड़ी। नदी को पार कर दूसरे किनारे पहुँचने पर एक-दूसरे को गिनने लगे कि कहीं कोई नदी में ही तो नहीं रह गया। हर एक गिननेवाला अपने को छोड़कर शेष नौ को गिन लेता और इस प्रकार नौ ही गिनने में आते। सबके गिनने के बाद उनको यह लगा कि हम में से एक नदी में डूब गया। यह सोचने पर वे बैठकर रोने लगे। इतने में एक घुड़सवार आया और उनसे पूछा कि क्या बात है? उन्होंने बताया कि हम दस व्यक्ति आए थे, उनमें से एक नदी में डूब गया है। घुड़सवार ने देखा कि ये तो पूरे दस ही दिखाई देते हैं तो उसने पूछा कि कौन डूब गया है? इस पर उन्होंने बताया कि न जाने कौन डूब गया है, पर हम नौ ही रह गए हैं। घुड़सवार ने पूछा कि नौ कैसे रह गए? उनमें से एक ने गिनकर बताया कि 1-2-3-4-5-6-7-8-9! उसने अपने को गिना नहीं और कहा कि हम नौ ही रह गए हैं। घुड़सवार समझ गया कि ये मूर्ख हैं। बोला, 'मैं दसों को निकाल दूँ।' उन्होंने कहा, 'हम आपके कृतज्ञ होंगे।' घुड़सवार एक-एक को चाबुक लगाता गया और गिनता गया। अंत में दसवीं चाबुक लगाकर कहा, 'दस हो गए न?'

इस 'दशमो अयं' की कहानी की तरह हम भी अपने को भूल जाते हैं और चाबुक लगानेवाले को धन्यवाद देते हैं। इसीलिए नेताओं ने कहा कि चीन को धन्यवाद है कि उसने चाबुक लगाया, जिससे हमें पता लग गया है कि हम सब एक हैं। चाबुक लगने पर राष्ट्रीयता का विचार हो तब तो उस घोड़े जैसी स्थिति हो जाएगी, जो चाबुक लगने पर ही ठीक प्रकार से चलता है। पर भगवान् चाबुक मारनेवाले भेजें, उसके कारण हम में राष्ट्रीयता आए, यह बात ठीक नहीं। हमें तो इस राष्ट्रीयता की भावना को स्वाभाविक दृष्टि से पुष्ट करना पड़ेगा। हमें इसे भावात्मक दृष्टि से देखना चाहिए और कोई हम पर चाबुक उठाए या टेढ़ी नज़र से देखे, ऐसा मौक़ा ही नहीं आने देना चाहिए।

अब हम इस सामान्य सी चीज़ का राष्ट्रीयता के संबंध में तार्किक दृष्टि से विचार करें। सबसे पहले 'राष्ट्र' का अर्थ व भाव क्या है? सामान्य पद-व्याख्या की दृष्टि से यह एक समुच्चय-वाचक-संज्ञा (Collective Noun) है। राष्ट्र मनुष्यों का वह समूह है, जो एक देश में रहता है। अर्थात् एक देश और मनुष्य-समूह मिलकर राष्ट्र बनता है, इतनी सी बात तो सामान्य लोगों की समझ में भी आ जाती है। किंतु एक बात भूल जाते हैं कि देश क़ा स्वरूप कौन सा है, उसका प्रकटीकरण कैसे होता है।

आज लोग देश को एक राजनीतिक स्वरूप में देखते हैं और एक राज्य को ही एक

देश कहते हैं। यदि एक राज्य के दो राज्य बन गए तो दो देश हो गए, जैसे भारत और पाकिस्तान। अंग्रेज़ी के 'कंट्री' शब्द का राजनीतिक इकाई के साथ समीकरण करके रख दिया है। यह दोनों एक मान लिए गए हैं। यह ठीक है कि एक देश में एक ही राज्य हो। यह एक आदर्श है, किंतु यह आदर्श प्राप्त नहीं हुआ, तब भी एक राज्य को देश कह देना ग़लत है।

यह तर्कहीनता है। यह सोचना ही ग़लत है कि एक राज्य को पहले एक देश मान लिया जाए और फिर कहा जाए कि उसके रहनेवाले एक राष्ट्र हैं। यदि उनमें राष्ट्र को बनानेवाली चीज़ें नहीं हैं तो बनाई जानी चाहिए। पर यह उलटी रीति से सोचने का ढंग है। वास्तव में सोचना इस प्रकार से चाहिए कि एक देश में एक राष्ट्र होता है। एक देश में दो राष्ट्र नहीं हो सकते। दूसरा होगा तो या तो वह उस देश पर शासन करनेवाला, ग़ुलाम बनानेवाला होगा या फिर शरणार्थी होगा। जैसे एक घर में दो स्वामी, एक जंगल में दो शेर, एक म्यान में दो तलवारें नहीं हो सकतीं, उसी प्रकार एक देश में दो राष्ट्र नहीं हो सकते। अतः प्रयत्न यह हो कि एक देश या राष्ट्र में एक ही राज्य हो।

पर कभी-कभी ऐसा होता है, जब आदर्श प्राप्त नहीं होता है। उस समय जो कुछ मिलता है, उसी को ठीक समझकर चलने लगते हैं। जैसे कोई कर्मचारी सोचता है कि मैं घूस नहीं लूँगा, पर कभी आगे चलकर फिसल जाता है और घूस ले लेता है, तो घूस लेने को ही न्यायोचित ठहराने लगता है। अंग्रेज़ी कवि गोल्डस्मिथ ने कहा है, सभी कुछ यहाँ दुनिया की राजनीति के कारण हुआ।

सीधी तरह विचार करने पर ज्ञात होता है कि राष्ट्र मानवों के उस समूह को कहते हैं, जो एक देश में निवास करता है। देश की राजनीतिक सीमाएँ शक्ति के अनुसार घट-बढ़ सकती हैं। कुछ वर्ष पूर्व पाकिस्तान हमारे देश की राजनीतिक सीमा के अंतर्गत था, काफ़ी पहले अफगानिस्तान भी था। अभिप्राय यह कि राजनीतिक सीमाएँ घट-बढ़ सकती हैं। फिर यदि राजनीतिक सीमाएँ नहीं, तो राष्ट्र की या देश की दूसरी सीमाएँ कौन सी हैं?

राष्ट्र के लिए देश में निवास करना ही पर्याप्त नहीं है। निवास करनेवाले तो अनेक हो सकते हैं, जैसे अंग्रेज़ भी यहाँ निवास करते हैं। किंतु राष्ट्र उन लोगों से बनता है, जो एक भूमि में निवास करते हैं, और उस भूमि को अपनी समझते हैं, निवास न भी करते हों, तो भी उसे अपनी समझते हों। 'अपने' का भी भाव माता और पुत्र का सा होना चाहिए। यों तो अंग्रेज़ भी हिंदुस्तान को अपना समझते थे, पर वे अपने को इसका स्वामी समझते थे। किंतु हम अपने को इस भूमि का पुत्र कहते हैं और माता के नाते स्वीकार करते हैं।

हमने राष्ट्र को अपनी माता के रूप में माना है। अतः जिस भूभाग के संबंध में

हमारा मातृभाव है, वह हमारा देश है, चाहे फिर वह राजनीतिक दृष्टि से घट-बढ़ गया हो। अत: राष्ट्र उन मानवों का समूह है, जो किसी भूखंड के प्रति मातृभाव लेकर चलता है। यह हमारी माँ है, इसकी गोद में आकर बैठेंगे, गौरव और स्वतंत्रता के साथ बैठेंगे। यदि आज किसी कारण से उस गोद में बैठने से वंचित हो गए तो ध्रुव के समान तपस्या की भावना लेकर बैठने की इच्छा से चलेंगे। यह कल्पना, यह भावना, जिस मानव समूह में हो, वह एक राष्ट्र है।

एक बात और भी है। किसी भी भूखंड के प्रति यह भाव मानव-समूह लेकर चले तो प्रश्न हो सकता है कि अलग-अलग टुकड़ों के बारे में यह भाव हो जाए, जैसे राजस्थान, बंगाल आदि। किंतु इसके आगे भी एक चीज़ होती है। यह मातृभावना लेकर चलनेवाला मानव समाज एक अन्य भाव से भी जुड़ा हुआ होता है, वह है संस्कृति। संस्कृति के कारण ही उस भूखंड के प्रति मातृभावना प्रकट होती है।

सामान्य रूप से समझने के लिए यह संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है। पर आत्मा के स्थान पर संस्कृति से भी आगे की एक चीज़ है। संस्कृति तो शरीर है। वैसे व्याकरण के अनुसार 'मनुष्य' व्यक्तिवाचक संज्ञा है। रामप्रसाद एक व्यक्ति है। अब रामप्रसाद व्यक्तिवाचक एकवचन है। पर रामप्रसाद क्या है? यह एक बड़ी समस्या है। बच्चों के छूने के खेल के समान मानो रामप्रसाद एक व्यक्ति से कहता है, मुझे छुओ, बच्चों ने उसके हाथ को छुआ। रामप्रसाद ने कहा कि यह तो मेरा हाथ है, हाथ को छुआ है, रामप्रसाद को कहाँ छुआ। तो रामप्रसाद कहाँ है? रामप्रसाद नाम है तो नाम तो उससे जुड़ गया है। दूसरा नाम रख दें, उसके स्थान पर तो वह दूसरा नाम हो जाएगा। यह शरीर भी रामप्रसाद नहीं।

इसके आगे भी कोई चीज़ है, वह है उसका व्यक्तित्व। मरने के बाद हम मनुष्य के शरीर का स्मरण नहीं करते, उसके व्यक्तित्व का, गुणों का, कर्मों का वर्णन करते हैं। उसके कर्मों से, गुणों से व्यक्तित्व बनता है। पर वह असलियत नहीं, आत्मा नहीं। आत्मा तो निर्लेप है। आत्मा व्यक्तित्व से अलग है। जब मनुष्य पैदा हुआ तो कर्म लेकर या व्यक्तित्व लेकर नहीं पैदा हुआ। व्यक्तित्व तो पैदा किया जाता है। जन्म लेने के बाद बड़े होने पर कर्म करते-करते गुणों से मिलकर व्यक्तित्व बनता है। पर आत्मा तो मूल में होती है। वह इससे भी आगे की वस्तु है, जो आगे विकसित होती है।

राष्ट्र एक सजीव इकाई है, निर्जीव इकाई नहीं। राष्ट्र में जीवन है, व्यक्ति के समान चैतन्य है। अपने यहाँ प्राचीन काल में भी यही मानते थे। आज के मनोवैज्ञानिक भी इसे समझने लगे हैं। जैसे व्यक्तित्व का एक भाग मस्तिष्क सब में है, कुत्ते में भी और पेड़-पौधों में भी। ऐसे प्रयोग किए गए हैं, जिनसे सिद्ध हुआ है कि संगीत से पेड़-पौधे भी बड़े होते हैं और उनमें अच्छे फल आते हैं। इस प्रकार सुख-दुःख और आनंद

का अनुभव वनस्पति को भी होता है।

यह सोचने की ताक़त सब में होती है, ऐसे ही समूह-मस्तिष्क (ग्रुप माइंड) भी होता है। जिस प्रकार हर व्यक्ति का अपना सोचने का अलग ढंग होता है, उसी प्रकार समूह का भी अपना एक अलग व्यक्तित्व होता है। समूह की यह जो अलग सत्ता होती है, उसमें भी जीवमान सत्ता है। तभी वह प्रेरणा देती है। क्योंकि जीवमान वस्तु ही प्रेरणा देती है। मोटर चलती है, पर जीवनमान नहीं, अतः वह प्रेरणा नहीं दे सकती। जीवनमान वस्तु में स्वतः ही इच्छाशक्ति, स्वतः की चेतना, कर्मशक्ति तथा सत्ता की भावनाओं का समुच्चय होता है। इसी प्रकार राष्ट्र का एक जीवमान समुच्चय होता है। इसीलिए राष्ट्र पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते। जैसे व्यक्ति या कोई भी जीव मात्र उत्पन्न होता है, बनाया नहीं जाता, वैसे ही राष्ट्र बनाया नहीं जाता, उत्पन्न होता है, बढ़ता है और नष्ट भी जीवनमान वस्तु के समान होता है।

अब प्रश्न उठता है कि राष्ट्र का चैतन्य क्या है? उसके लिए संस्कृत का एक शब्द है, वह कठिन है। वह है, 'चिति'। उसे हम राष्ट्र की आत्मा कह सकते हैं। एक 'चिति' को लेकर एक राष्ट्र पैदा होता है। उसके लिए मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करते हैं और कर्मों से मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है। उससे व्यक्ति के अच्छे कर्म होते हैं। अच्छे कर्म वे होते हैं, जो व्यक्ति को उदात्त बनाते हैं, जिससे उसका विकास होता है। 'चिति' अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करनेवाले अच्छे कर्म और जो ऐसे नहीं हैं, वे बुरे कर्म। इसी प्रकार राष्ट्र की उन्नति जिससे होती है, वह है उसकी संस्कृति। जो कर्म राष्ट्र को 'चिति' का साक्षात्कार कराते हैं, वे संस्कृति हैं। जो बुरे कर्म हैं, वे विकृति हैं। राम व कृष्ण के कर्म संस्कृति हैं। रावण व दुर्योधन के नहीं।

राम और कृष्ण विजयी हुए, इसी कारण उनके कर्मों को ठीक मानते हैं, ऐसी बात नहीं है। उगते सूर्य को ही नमस्कार करते हैं, ऐसा नहीं है। पृथ्वीराज, पद्मिनी[1] और प्रताप को भी हम बड़ा कहते हैं। इसमें हमारे जीवन की एक दृष्टि है जो हमारी 'चिति' से बनती है। उसके अनुकूल जो कार्य होते हैं, उनसे हमारी संस्कृति बनती है।

इस प्रकार राष्ट्र बनता है। जिस प्रकार एक मनुष्य की आत्मा होती है, वह कर्म करता है, अच्छे कर्मों को पुण्य के नाते जोड़ता है, बुरे कर्मों को हटाने का प्रयत्न करता

1. महारानी पद्मिनी सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन और रानी चंपावती की बेटी थीं। इनका विवाह चित्तौड़ के राजा रतनसिंह के साथ हुआ। रानी पद्मिनी बहुत सुंदर थीं और उनके सौंदर्य पर एक दिन दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की बुरी नज़र पड़ गई। अलाउद्दीन किसी भी क़ीमत पर रानी पद्मिनी को हासिल करना चाहता था। उसने 1303 ई. में चित्तौड़ पर हमला कर दिया। रानी पद्मिनी ने आग में कूदकर जान दे दी, लेकिन अपनी आन-बान पर आँच नहीं आने दी। इनकी कथा कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी भाषा में 'पद्मावत' ग्रंथ में लिखी है।

है। यद्यपि बुरे कर्मों का भी दुष्परिणाम तो भुगतना ही पड़ता है, पर प्रेरणा अच्छे कर्मों से ही लेता है। इसी प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व के समान राष्ट्र का एक व्यक्तित्व बनता है। राष्ट्र एक जीवमान इकाई है, जो अपनी आत्मा या 'चिति' को लेकर पैदा होती है। उसका 'चिति' के अनुसार साक्षात्कार करानेवाली सभी कृतियाँ संस्कृति हैं। यह संस्कृति पैदा होती है, बढ़ती है। उस आधार पर यह राष्ट्र खड़ा होता है। मातृभाव की भूमि पर खड़ा रहता है, कर्म करता है, भौतिक जीवन के व्यवहार में समृद्धि लाता है, मकान आदि बनते हैं, राज्य निर्मित होते हैं। समाज व्यवस्थाएँ बनती हैं। यह सब सभ्यता है। जिस प्रकार मनुष्य कोई चित्र बनाता है तो उसके अंदर की जो भावना है, उसके अनुकूल वह चित्र बनाता है, इसी प्रकार राष्ट्र के अंदर की वस्तु संस्कृति-सभ्यता के रूप में प्रकट होती है।

इसी प्रकार इन संबंधों के आधार पर एक इतिहास का निर्माण होता है। जब राष्ट्रों का परस्पर संबंध आता है, तो संघर्ष होते हैं। विजय होती है, पराजय भी होती है। जिस-जिस ने इसकी संस्कृति को बढ़ाया, पोषण के नाते खड़े हुए, वे महापुरुष बनकर खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार एक मानव समाज होता है, एक देश, एक संस्कृति, एक सभ्यता, एक इतिहास होते हैं तो वह राष्ट्र हो जाता है। उस समाज के महापुरुष एक होते हैं। उनके आदर्श-आकांक्षाएँ एक हो जाती हैं। उनके भूत, वर्तमान और भविष्य एक हो जाते हैं। यदि एक नहीं हों तो समझना चाहिए कि कहीं गड़बड़ है। यह एक वैज्ञानिक दृष्टि से विचार है। दुनिया में अन्यत्र भी जहाँ तार्किक दृष्टि से विचार हुआ है, यही निष्कर्ष निकला है।

—मई 28, 1963

□

13

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : अजमेर*

आज प्रात:काल हम लोगों ने इस विषय पर विचार किया था कि राष्ट्र किसको कहते हैं, राष्ट्रीयता क्या है और राष्ट्र के कौन से तत्त्व होते हैं? उनमें से कौन सी बात प्रमुख है, कौन-कौन सी बातें आनुषंगिक रूप से यथाक्रम हमारे सामने उपस्थित होती हैं। अब हमें यह विचार करना है कि राष्ट्र के नाते हमारी क्या स्थिति है, हम कहाँ खड़े हैं, हम राष्ट्र हैं या नहीं?

हम अपने इतिहास में राष्ट्र शब्द का प्रयोग या व्यवहार अनेक स्थानों पर पाते हैं। राष्ट्र का उत्थान हो, राष्ट्र विजयी हो—इसकी कामना वैदिक सूत्रों में की गई है, समृद्धि की भावना व्यक्त की गई है। स्वस्तिवाचन में भी राष्ट्र शब्द का व्यवहार होता है। अत: हम पहले से ही राष्ट्र हैं, यह बात अच्छी प्रकार से समझ लें।

कुछ लोग कहते हैं कि भारत में पहले राष्ट्रीयता नाम की कोई वस्तु थी ही नहीं। अब राष्ट्रीयता नाम की नई चीज़ बनानी है। ऐसा कहनेवाले वे लोग हैं, जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा का अध्ययन किया है। आज की भाषा में जिन्हें राष्ट्र कहा जाता है, पश्चिमी देशों में आज से पाँच सौ-सात सौ वर्ष या एक हज़ार वर्ष पूर्व कोई राष्ट्र नहीं था। वहाँ जितने भी लोग थे, जातियाँ थीं, मज़हब के नाम पर बँटे हुए थे। ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि। प्राचीन यूनान में अवश्य राष्ट्रीयता का कुछ स्वरूप था, परंतु उनके समाप्त होने पर जो आए, वे सब मज़हब के नाम पर थे। यहूदी, ईसाइयों की मुसलमानों की इस प्रकार उस समय यूरोप व एशिया में जो भी लड़ाइयाँ हुईं, मज़हब के नाम पर हुईं, जिन्हें क्रूसेड्स कहते हैं। उसमें प्रत्येक मज़हब के पक्ष के लोग दूर-दूर से आते थे। कुछ समय तक सुधार के नाम पर नया मज़हब आया प्रोटेस्टेंट। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों की

---

* देखें परिशिष्ट XXII, पृष्ठ 365।

लड़ाइयाँ हुईं। एक स्थिति ऐसी थी कि रोम का पोप संपूर्ण यूरोप का ईसाई जगत् का सम्राट् माना जाता था। वही धार्मिक गुरु था तथा वही राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से सम्राट् था।

मुसलमानों में भी सभी शक्ति का केंद्र ख़लीफ़ा था, सभी मुसलमानी राज्य उसके नाम पर थे, वह सम्राट्, शेष सभी राजा उसके प्रतिनिधि माने जाते थे। पर यह बात अधिक दिन तक नहीं चली, धीरे-धीरे स्थिति बदली। यूरोप में पोप के विरुद्ध लोग खड़े हो गए। जर्मनी में मार्टिन लूथर[1] के नेतृत्व में प्रोटेस्टेंट मज़हब आया। उसने पोप की सत्ता को मानने से इनकार कर दिया। इंग्लैंड में भी एक नया चर्च-एंग्लीकन चर्च बना। धीरे-धीरे इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी से रोम का प्रभुत्व हट गया। अन्य देशों में भी ऐसा ही हुआ। वे भी उनके प्रभुत्व से मुक्त हो गए। धीरे-धीरे इनमें कुछ लोगों ने प्रयत्न किया और समूहों को जोड़कर राज्य निर्माण किए। सभी प्रकार के लोगों को जोड़कर राष्ट्र की स्थिति निर्माण हुई। इटली में मैजिनी[2] और गैरीबाल्डी[3] ने छोटे-छोटे राज्यों को एक स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया। ऐसा ही जर्मनी में हुआ, ऐसा ही फ्रांस में हुआ। इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, आयरलैंड भी मिलकर एक इकाई के रूप में बने। इस प्रकार राष्ट्रीयता बनी। इसी प्रकार उस शिक्षा को प्राप्त किए हुए लोग सोचते हैं कि भारत में भी पहले राष्ट्रीयता नहीं थी। जब अंग्रेज़ों से हमारा संपर्क आया तो राष्ट्रीयता की भावना आई कि उन देशों के समान ही हमें भी राष्ट्र बनाना है।

हमारी राष्ट्रीयता की कल्पना और पश्चिम से आई हुई राष्ट्रीयता की कल्पना में एक आधारभूत अंतर है। यह राष्ट्रीयता की कल्पना राजनीतिक आधार पर नहीं, सांस्कृतिक आधार पर है। हमारे राष्ट्रवाद का आधार सांस्कृतिक है। कुल तीन प्रकार के राष्ट्रवाद हैं। प्रादेशिक (Territorial), राजनीतिक (Political) और सांस्कृतिक (Cultural)। हमारे यहाँ का राष्ट्रवाद कल्चरल (सांस्कृतिक) है। भूमि व राज्य इसके पोषक हैं। अन्य देशों में पहले राज्य, उसके लिए भूमि और उसकी पोषक संस्कृति है।

राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक आधार का हमें लाभ भी रहा। हमारे देश में कितने भी राजनीतिक उतार-चढ़ाव आए, उससे राष्ट्रवाद को कभी कोई धक्का नहीं लगा। अन्य देशों में, राजनीतिक सत्ता समाप्त होते ही, राष्ट्रीयता भी समाप्त हुई। पर हमारे यहाँ

---

1. मार्टिन लूथर (1483-1546) ईसाई धर्म में प्रोटेस्टेंटवाद नामक सुधारात्मक आंदोलन चलाने के लिए विख्यात हैं। वे जर्मन भिक्षु, धर्मशास्त्री, विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, पादरी एवं चर्च-सुधारक थे। इनकी प्रेरणा से ही प्रोटेस्टेंटिज़्म सुधार आंदोलन आरंभ हुआ, जिसने पश्चिमी यूरोप के विकास की दिशा बदल दी थी।
2. ज्यूसेपे मैजिनी (1805-1872) इटली के राजनेता तथा पत्रकार थे। इनके अथक प्रयत्नों से ही इटली स्वतंत्र तथा एकीकृत हुआ। वीर सावरकर मेजिनी को अपना आदर्श नायक मानते थे।
3. जुज़प्पे गैरीबाल्डी (1807-1882) इटली के राजनीतिक और सैनिक नेता थे, जिन्होंने इटली को एक करने की लड़ाई में मुख्य रणनीतिकार की भूमिका निभाई।

राजनीतिक सत्ता को गौण स्थान देने से, सत्ता जाने पर भी राष्ट्रीयता बनी रही व बनी हुई है। हमारे यहाँ राष्ट्रीयता सांस्कृतिक रही। यहाँ चाहे एक राज्य था चाहे अनेक, राष्ट्रीयता बनी रही।

पर जो लोग ऐसा कहते हैं कि भारत की एकता अंग्रेज़ों के समय में ही रही, इससे पूर्व कभी नहीं रही, ऐसा सोचना ही भूल है। एक तो हमारी इस ओर देखने की दृष्टि कभी राजनीतिक नहीं रही, फिर भी चंद्रगुप्त के समय में राजनीतिक एकता अंग्रेज़ों के समय से भी अधिक ही थी। फिर पृथु, रघु, दिलीप, मांधाता आदि चक्रवर्ती सम्राटों के समय में तो संपूर्ण पृथ्वी ही हमारे अंतर्गत थी। बाद में हो सकता है, हमारे यहाँ अनेक राजा रहे होंगे, पर अनेक राजाओं के रहने पर भी देश की ओर देखने की हमारी दृष्टि क्या है? हमारे देश के एक राज्य वालों ने अपने इसी देश के दूसरे राज्यवालों को दूसरे देश का समझा है क्या? बल्कि सदा यह प्रयत्न रहा कि भारत को एक देश के रूप में देखें। कोई भी पुण्यकार्य करते समय, संकल्प करते समय, यह संपूर्ण भारत हमारे सामने आया है। 'जम्बूद्वीपे भारतखण्डे भारतवर्षे···'—इस प्रकार कहते हैं। सारे देश की एकता हमारे सामने आई है।

हमारे देश की जितनी भी महान् कल्पनाएँ आई हैं, उनमें संपूर्ण देश की एकता ही प्रस्फुटित हुई है—तर्पण पितृ श्राद्ध गया में करें, मातृश्राद्ध करें, अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित करें। इन सबके सामने भारत की एकता की कल्पना नहीं थी क्या? राष्ट्रीयता की कल्पना नहीं होती तो ऐसा विचार भी नहीं आता। चारों धाम की यात्रा करनेवालों ने संपूर्ण भारत की ही तो कल्पना की थी। यदि उनको यह कल्पना नहीं होती तो वे धाम भारत के बाहर विदेशों में भी बना सकते हैं। पर भारत में ही और वे भी भारत के चारों कोनों में पुण्य धाम बनाए। यह राष्ट्रीयता की कल्पना के ही कारण है। शक्ति के बावन पीठ भी पूरे भारत में फैले हुए हैं, देश के बाहर नहीं।

प्रजापति की कन्या सती बिना बुलाए ही शिवजी से स्वीकृति लेकर अपने पिता के यज्ञ में आईं, पिता की ओर से पति शिवजी को आमंत्रित न किए जाने का अपमान उनसे सहन नहीं हुआ। सती ने यज्ञाग्नि में प्राणों की आहुति दे दी। यज्ञ भंग हो गया। शिवजी सती की लाश लेकर सारे भारत में घूमते रहे। भारत में सभी की यही आकांक्षा रहती है कि जीवन में एक बार सभी तीर्थों में जाऊँ और मरने पर भी मेरे शरीर की अस्थियाँ तीर्थों में प्रवाहित की जाएँ। शिवजी संपूर्ण भारत में घूमे। जहाँ-जहाँ गए, सती का एक-एक अंग गिरता गया, वहीं शक्ति का, देवी का एक पीठ बन गया। आसाम, कलकत्ता, मथुरा आदि संपूर्ण भारत में बावन पीठ हैं। ये भारत के कोने-कोने में हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन बावन पीठों की यात्रा आवश्यक है। वैष्णवों के भी सारे भारत में एक सौ छप्पन तीर्थ हैं। हमारे ज्योतिर्लिंग भी संपूर्ण भारत में हैं। जैनियों के, बौद्धों के सबके

तीर्थ संपूर्ण भारत में फैले हैं। सभी संप्रदायों ने अपने तीर्थ संपूर्ण भारत में बनाए हैं। शंकराचार्य ने चारों कोनों में पीठ बनाए। इसी प्रकार रामायण, महाभारत इन दोनों महाकाव्यों का साहित्य सारे भारत में फैला हुआ है। कृष्ण भी द्वारका से, पश्चिम से, प्राग्ज्योतिषपुर, पूर्व तक गए। इस प्रकार दोनों का चरित्र संपूर्ण देश पर छाया है। सब पर छाया है। हम इन दो आदर्शों से अनुप्राणित देश हैं।

भारत माता की कल्पना संपूर्ण देश में सभी पुराणों में है। पुराणों में कहा गया है, स्वर्ग के देवता भी भारत में जन्म लेने की कल्पना करते हैं, क्योंकि स्वर्ग मोक्ष भूमि है और यह भारतभूमि है। यह पुण्य कमाने का स्थल है और स्वयं पुण्य भोगकर क्षय करने का, इसीलिए ज़ब देवताओं के पुण्य क्षीण हो जाते हैं तो वे फिर से पुण्य कमाने के लिए भारत में जन्म लेने की कल्पना करते हैं, ताकि अच्छे कर्म कर फिर स्वर्ग में पहुँच सकें। यह कल्पना हमारे जीवन में घर कर गई है कि यहाँ की एक-एक नदी, एक-एक पर्वत शिखर हमारे लिए पवित्र है। इस देश के पशु-पक्षी भी हमारे हैं। इसी आधार पर हम हज़ारों वर्षों से खड़े हैं।

सब यह विचार करें कि इस संपूर्ण राष्ट्रीयता को कौन सा नाम दें। इसको प्राचीन काल से 'हिंदू' नाम से पुकारते हैं। इसका समुच्चयवाचक नाम हिंदू है। यह हिंदू नाम किसने दिया? बहुत से लोग कहते हैं कि यह नाम हमें पारसियों ने दिया है, दिया होगा, नाम तो दूसरे ही देते हैं। फिर कोई यह भी कहते हैं कि फारसी में हिंदू चोर को कहते हैं तो वे इसका कुछ भी अर्थ करते होंगे, हम भी उनको यवनों को मलेच्छ आदि कहते हैं।

डॉ. संपूर्णानंद ने लिखा है कि देवासुर संग्राम देव और असुरों के पूजकों में हुआ था। देवों के पूजक अर्थात् हिंदू, असुरों के पूजक अर्थात् पारसी इनमें युद्ध हुए। हम असुर का अर्थ राक्षस करते हैं, पर असुर या अहुर पारसियों के देवता हैं। वेदों में भी असुर देवता ही हैं। यहाँ असुर माने राक्षस और फारसी में देव माने राक्षस। तात्पर्य यह है कि बहुत से शब्द दूसरी भाषा में बुरे अर्थ में ही प्रयोग किए जाते हैं। फारसी में राम शब्द का अर्थ भी चोर होता है तो क्या हम राम शब्द को छोड़ दें? मलयालम में भी चारे चावल को कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न भाषाओं में शब्द का अलग अर्थ हो जाता है।

यह हिंदू शब्द इस देश के साथ आया। राष्ट्र का नाम उस देश से ही प्राप्त होता है। बहुत से व्यक्ति तक भी इस प्रकार नाम रखते हैं—जयपुरिया, झुनझुनूवाला, इंदूरकर आदि। सिंधु नदी के इस पार रहनेवाले हम हिंदू नाम से विख्यात हुए। यह शब्द हमको बहुत प्राचीन काल से जोड़नेवाला है। यह शब्द अत्यंत प्राचीन है। व्यासजी को भी हिंदू कहा गया है। दूसरा शब्द है भारतीय—भरत वंशीय।

तो हमारे लिए समुच्चयवाचक शब्द हिंदू ही है। इस शब्द के पीछे हमारी राष्ट्रीयता की सब भावनाएँ छिपी हैं। हिंदू शब्द को छोड़ दें, हिंदुत्व को यहाँ से निकाल दें तो

भारत में क्या बचा रहता है? एक मिट्टी, एक भूमि मात्र, जिसके बारे में विचार उठेगा कि यहाँ तिनका भी उगता नहीं? कृषि होती है या नहीं? फिर यह भी भूमि के रूप में ही सामने आएगी। हिंदू का भाव आने से ही यह भाव आएगा कि हिमालय हमारा देवात्मा है, शिवजी का निवास स्थान है। यहीं बदरीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ आदि पुण्य तीर्थ हैं, पतितपावनी जाह्नवी का स्रोत है। किंतु जो हिंदू नहीं या जिसके मन में हिंदुत्व का भाव नहीं, उसके लिए यह एक पहाड़ मात्र है।

एक पहाड़ के लिए भक्ति किस प्रकार हो सकती है। भक्ति तो तब बनती है, जब उसके साथ हजारों वर्षों के भाव जुड़ जाते हैं। जमुना के प्रति भक्ति तब आती है, जब उसके साथ यह भाव जुड़ जाता है कि यहाँ कृष्ण ने लीलाएँ की थीं। गंगा की भक्ति तब आती है, जब यह ध्यान आता है कि उसके लिए तपस्या की गई है, वह हमारे भगीरथ के प्रयत्नों का, पुरुषार्थ का परिणाम है। अतः मरने पर हम मृत शरीर की अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित करते हैं। स्वर्ग से भी गंगा को भारत में लाने की दैवी और पवित्र कल्पना भगीरथ को अपना माननेवालों में है। तो भारत की पवित्रता हिंदू के साथ है। हिंदू को हटाकर कल्पना कीजिए, फिर हिमालय रहेगा, गंगा रहेगी, वृक्ष रहेंगे, पर उनमें वह पवित्रता नहीं रहेगी कि यहाँ किसी ने तपस्या की थी।

चित्तौड़ की धूलि को मस्तक पर लगाएँ, यह प्रेरणा नहीं रहेगी। फिर यह भूमि कर्मभूमि, धर्मभूमि, पुण्यभूमि, मातृभूमि के नाम पर नहीं रहेगी, फिर वह पवित्रता नहीं रहेगी। तो वह भारत तभी तक भारत है, जब तक यहाँ हिंदू हैं। इसका एक-एक कण हमारे पुरुषार्थ से बना है। संस्कृत में एक श्लोक है, 'उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्। वर्षं भारतं नाम, भारती तत्र सन्ततिः।' यहाँ के एक-एक कण में हमारे पूर्वजों की मिट्टी समाई हुई है।

महाभारत की एक कथा है, जब कर्ण के घायल होने के पश्चात् भगवान् कृष्ण अर्जुन के साथ ब्राह्मण वेश में कर्ण की परीक्षा लेने गए और कर्ण ने अपने दाँत तोड़कर स्वर्णदान दिया तो भगवान् ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। कर्ण ने कहा, "जहाँ किसी का दाह-संस्कार न हुआ हो, वहाँ मेरा दाह-संस्कार किया जाए।" भगवान् ने तथास्तु कहा। कर्ण के मरने पर ऐसा स्थान ढूँढ़ने पर भी न मिला, बड़ी कठिनाई से खोजते-खोजते एक बालिश्त भर भूमि मिली। जहाँ किसी का भी दाह संस्कार नहीं हुआ था। वहाँ कर्ण का दाह संस्कार हो गया। इस प्रकार अपने देश में कहीं की भी मिट्टी उठाएँगे, वहाँ अपने पूर्वजों की स्मृति मिलेगी।

दूसरा भी एक विचार करें। हिंदू का विचार करें। हिंदू की व्याख्या क्या है? मुसलमानों, ईसाइयों की जिस प्रकार एक पुस्तक (धर्म ग्रंथ), एक पैगंबर, एक पूजा पद्धति है, वैसी हिंदुओं की नहीं। अनेक ग्रंथ, अनेक अवतार, अनेक महापुरुष। इसीलिए

प्रात: स्मरण में अनेकों महापुरुषों का वर्णन कर अंत में यही कहते हैं—जो अज्ञात संत हैं, उन सबको नमस्कार!

हिंदू की व्याख्या उपासना पद्धति के आधार पर नहीं, हिंदू की व्याख्या राष्ट्रीय आधार पर है। जो हिंदुस्थान को मातृभूमि माने, पुण्यभूमि माने, इसके इतिहास को अपना माने, इसकी पराजय देख जिसका मस्तक ग्लानि से झुक जाता है, जिसे तीव्र पीड़ा होती है तथा जय-जयकार से जो हर्षित हो उठता है, वह हिंदू है। हमारी उपासना पद्धतियों में भी 90 प्रतिशत राष्ट्रीयता है और केवल 10 प्रतिशत मोक्ष प्राप्ति की बातें। इनमें भारतभूमि की स्तुति है। यदि यह कहा जाए, हम सबके साथ हिंदू भारत छोड़कर ऑस्ट्रेलिया चले जाएँ तो वहाँ जाने के एक पीढ़ी के बाद हिंदू शेष नहीं रहेंगे। क्योंकि वहाँ हमारे सामने गंगा कहाँ होगी, फिर 'विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं' किसे कहेंगे? क्या ऑस्ट्रेलिया को माँ कहकर उसकी पद वंदना करेंगे। वहाँ 'होमर' के महाकाव्य में तथा 'मिल्टन' के 'पैराडाइज़ लॉस्ट' में पढ़ने पर वह रस नहीं आ पाता, जो रस रामायण, महाभारत के पढ़ने से आता है। वास्तविकता यह है कि हिंदू और हिंदुस्थान दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। जैसे धूप और प्रकाश एक-दूसरे से जुड़े हैं, वैसे ही हिंदुस्थान और हिंदू एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

हिंदू की राष्ट्रीयता ही हिंदुस्थान की राष्ट्रीयता है। यदि इसमें हिंदू का विचार है, तो भाषा भिन्नता का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। हरिद्वार में जब सारे देशवासी विभिन्न भाषा-भाषी डुबकी लगाते हैं, तो वे अपनी-अपनी भाषा में गंगाजी की व प्रभु की स्तुति करते हैं, गंगाजी उन सबकी भाषा समझती हैं, वह भाषा कोई भी हो, पर हो हिंदू की। हमारे देश में इतनी सारी भाषाएँ हैं, तो इससे क्या कठिनाई है। जिस प्रकार घर में जब कोई अत्यंत छोटा बच्चा होता है, उसकी भाषा कोई समझता है, उसकी माँ समझती है, तो यह भाषा माँ के समान प्रेम करने से समझ में आती है। तो यह प्रेम कौन सा है, यह हिंदू का सूत्र है। इस हिंदू के सूत्र को छोड़ देने से इस चालीस करोड़ के हमारे समाज में एक भाषा के ही नहीं, अनेकों भेदोपभेद आ खड़े होंगे।

एक स्कूल में कई कक्षाएँ होती हैं, उन सभी कक्षाओं को अलग-अलग कक्षाओं में बिठाकर पढ़ाते हैं। एक ही कक्षा में सबको कैसे पढ़ा सकते हैं? ये कक्षाएँ तो व्यवस्था के लिए होती हैं, इससे कोई भिन्नता नहीं आती। इसी प्रकार शाखा में या संघ शिक्षा वर्ग में अलग गण होना तो व्यवस्था है। इससे कोई भिन्नता नहीं आती, क्योंकि सब यह समझते हैं कि हम सभी एक ही संघ के स्वयंसेवक हैं। पर यदि संघ नहीं रहे तो फिर तो ये सब गण अलग-अलग गुट हो जाएँगे। तो यह हिंदू शब्द ही हम सबको जोड़ता है, यह सूत्र समझ लें।

फिर कुछ लोग यह कहते हैं कि इस देश में हिंदुओं के अतिरिक्त अन्य लोग भी तो निवास करते हैं—मुसलमान हैं, ईसाई है, पारसी हैं। उनका क्या होगा? पर इसका विचार हम करें? इसका विचार तो वे करें कि उनके साथ कैसा व्यवहार होगा? वे भला व्यवहार करेंगे तो हम भी भला व्यवहार करेंगे, यदि वे शत्रु मानेंगे तो हम उनको मित्र मानकर कैसे चलेंगे? यह स्पष्ट ही है कि यदि वे इस भारतभूमि को माँ मानकर चलेंगे, तो हम उनको अपना भाई कहेंगे, पर यदि वे कहेंगे कि नहीं, यह हमारी माँ तो नहीं है, पर हम हिंदुओं के साथ यहाँ मित्रतापूर्वक रहेंगे, तो हम उनको मित्र कहेंगे। वे यदि यहाँ शरणार्थी बनकर रहना चाहेंगे, तो हम उनको शरणार्थी मानेंगे। और यदि वे शत्रु बनकर रहेंगे तो एक योग्य शत्रु को जैसा व्यवहार करना चाहिए, वैसा व्यवहार करेंगे। इसमें हमें घबराहट क्यों हो?

इस देश में यहूदी और पारसी शरणार्थी बनकर आए थे। हमने उनको अत्यंत प्रेम से रखा। फिर यहाँ मुसलमान भी आया, पर वह शरणार्थी बनकर नहीं आया। वह यहाँ की धन-संपत्ति लूटने, यहाँ का धर्म भ्रष्ट करने, हमारी सब चीज़ों पर आक्रमण करने आया। हमने उनके साथ युद्ध किया। जिसमें किन्हीं मोर्चों पर हम जीते भी और किन्हीं पर हम हारे भी। एक हज़ार वर्ष से हमारी लड़ाई चलती आ रही है। यदि मुसलमान केवल मज़हब के नाते आया हो तो हमारे यहाँ तो मज़हब की स्वतंत्रता है, भगवान् को किसी भी नाम से भजें। वे मसजिद में नमाज पढ़ें, इसमें हमें क्या कठिनाई है। हमारे विजेता वीरों ने शिवाजी ने, नलवा[4] ने किसी भी मसजिद को नहीं गिराया। पर मुसलमान केवल मज़हब के लिए ही नहीं आया, वह केवल मसजिद बनाने नहीं आया। वह तो हमारे देश की हर चीज़ को बदलने आया। हम इस देश को मातृभूमि कहते हैं, हरेक मुसलमान कहता है दारूल हरब[5] यानी युद्धभूमि। हम कहते हैं, हम यहीं जन्म लेंगे। हमारा मुसलमान भाई कहता है, 'मेरे मौला, मदीने बुला ले मुझे।' उसे भारत का विचार नहीं आता।

तो इसमें कहीं-न-कहीं ग़लती है। हिंदू से मुसलमान बनते ही उसके पूर्वज क्यों बदल जाते हैं? कर्बला की लड़ाई[6] की याद कर छाती क्यों कूटता है? उसके सामने

---

4. सरदार हरि सिंह नलवा (1791-1837) महाराजा रणजीत सिंह के सेनाध्यक्ष थे, जिन्होंने पठानों के विरुद्ध हुई कई लड़ाइयों का नेतृत्व किया। सिख फ़ौज के सबसे बड़े जनरल हरि सिंह नलवा ने कश्मीर के बाद काबुल पर विजय प्राप्त की। खैबर दर्रे से होनेवाले अफ़ग़ान आक्रमणों से देश को मुक्त किया। रणनीति और रणकौशल की दृष्टि से हरि सिंह नलवा की गणना भारत के श्रेष्ठतम सेनानायकों में की जा सकती है।
5. इसलामिक समाजशास्त्र के अनुसार दारुल हरब अर्थात् युद्ध का क्षेत्र, गैर मुसलमानों का देश, वह क्षेत्र जहाँ के लोगों ने अभी इसलाम को स्वीकार नहीं किया है, जहाँ लोगों को मतांतरित करने के उद्देश्य से संघर्ष चल रहा है।
6. कर्बला, इराक की राजधानी बगदाद से 100 किलोमीटर दूर उत्तर-पूर्व में एक छोटा सा क़स्बा। कर्बला का युद्ध 10 अक्तूबर, 680 ई. (10 मुहर्रम 61 हिजरी) को इमाम हुसैन और उनके समर्थकों की शहादत के साथ समाप्त हुआ था।

रामायण, महाभारत, हल्दीघाटी का युद्ध नहीं आता, उसके सामने दजला-फरात से युद्ध आते हैं। तो इसलाम यहाँ भारत में विदेशी आक्रांता ग़ुलाम बनानेवाला बनकर आया, भारत की राष्ट्रीयता को बदलनेवाला बनकर आया। हिंदू से मुसलमान बनते ही वह धोती क्यों छोड़ देता है। केरल में जहाँ सभी तहमद पहनते हैं, वहाँ भी तो उसमें अंतर है। मुसलमान तो सभी बातें यहाँ से उल्टी ही करता है। भारत के इसलाम में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनका शरीयत से कोई संबंध नहीं, फिर भी वह हिंदुओं से उलटी होती हैं।

एक आर्यसमाजी सज्जन विभेद और व्यंग्य में एक क़िस्सा कहते हैं कि एक मुसलमान भोजन कर रहा था, एक रोटी का ग्रास ज़मीन पर गिर गया। अब वह सोचने लगा कि इसे वह खाए या नहीं खाए। उसकी कुछ समझ में नहीं आया तो वह दौड़ा-दौड़ा मौलवी के पास गया। मौलवी ने शरीयत उलट-पलटकर देखा, पर इस संबंध में कुछ पता न लगा। मौलवी ने कहा कि यहाँ पास में जो पंडितजी रहते हैं, उनके पास जाओ और पूछकर मुझे बताओ कि उसने क्या कहा है। वह पंडितजी के पास गया। पंडितजी ने शास्त्रों का प्रमाण देकर कहा कि नहीं खाना चाहिए। मुसलमान ने पंडितजी का उत्तर मौलवी को बताया। मौलवी ने चट कह दिया कि शरीयत में मिल गया है कि ऐसे गिरे हुए ग्रास को अवश्य खाना चाहिए। इस प्रकार उनकी सब बातें हिंदुत्व विरोधी हैं। वे आज भी भारत की राष्ट्रीयता के साथ एकरस नहीं हुए हैं। आज भी वे यही सोचते हैं कि संपूर्ण भारत को इसलामी राज्य में कैसे मिलाया जाए। तो ऐसी स्थिति में भी जब कुछ लोग यह कहते हैं कि मुसलमानों का क्या होगा? तो यह कहने के साथ हम यहूदी, पारसियों, तिब्बतियों व अन्यों की चिंता क्यों नहीं करते? केवल मुसलमानों का ही हम क्यों विचार करते हैं? तो क्या इसीलिए कि वे अधिक संख्या में हैं। मुसलमान यदि अधिक संख्या में हैं, तो उनका सामना करने के लिए अधिक सामर्थ्य उत्पन्न करें।

हिंदू-मुसलिम भाई-भाई का नारा लगानेवाली कांग्रेस ने भी मुसलमानों को सच्चे रूप में राष्ट्रीय कभी नहीं माना है। यदि वे राष्ट्रीय मानते तो उनसे शर्तनामा क्यों माँगा जाता, उनको ख़रीदने का प्रयत्न क्यों किया जाता। हिंदुओं के लिए तो कभी ऐसा नहीं किया गया, क्योंकि वे भी यह मानते रहे हैं कि हिंदू तो अपना है ही। ये तो भारत को माता मानते ही हैं। जिस प्रकार घर में कोई बीमार माँ है, उसके पुत्र उसकी सेवा करते हैं, घर में कोई सेवा करनेवाले नहीं हो, तो बहन को उसकी ससुराल से बुला लेते हैं या उसका भाई (माँ का पुत्र) कोई बाहर हो तो उसे बुला लेंगे। उस बहन को सेवा के बदले वेतन नहीं देते। यह हिसाब नहीं लगाते कि इसने इतने दिन और रात परिश्रम किया है, अतः इतना देंगे। पर नर्स को यदि बुलाते हैं तो रुपए देकर रखते हैं, क्योंकि नर्स बिना रुपयों के सेवा नहीं करेगी, वह रुपयों से ही ख़रीदी जा सकती है। इसी प्रकार

इन मुसलमानों को भी कांग्रेस ने कभी राष्ट्रीय नहीं माना, क्योंकि वे जानते थे कि वे इसे माँ नहीं मानते, अतः ये लोग तो ख़रीदने पर ही साथ आ सकते हैं।

यदि मुसलमानों को शत्रु समझकर राजनीति के तौर पर दो शत्रुओं में से एक से समझौता कर लेते, तब तो ठीक माना जा सकता है। पर समझौता तो मित्र समझकर किया गया। ग़लत आधार पर किया गया, जिससे अपने देश का एक भाग हमारे हाथ से निकल गया।

लगभग एक हजार वर्ष से इन मुसलमानों से हमारी लड़ाइयाँ चलीं, बहुत सी लड़ाइयाँ जीतीं, बहुत सी हारीं और लगभग हम जीत ही गए थे कि इतने में अंग्रेज़ लोग आ गए और उन्होंने हम दोनों को ग़ुलाम बना लिया। मुसलमान तो फिर भी आज तक उसी आकांक्षा को लिये हुए हैं कि हमने इस देश पर शासन किया है और करेंगे। हम चाहे हिंदू-मुसलिम भाई-भाई क' नारा लगाकर अंग्रेज़ों से लड़ते रहे होंगे। कोई भी नारा लगाया, पर लड़ने का कार्य वास्तविक रूप में किया हिंदू तत्त्वज्ञान वालों ने ही।

भारत में स्वतंत्रता की प्रेरणा हिंदू तत्त्वज्ञान से ही हुई। अनेक क्रांतिकारी गीता की पुस्तक हाथ में ले अपना बलिदान दे गए। तिलक, गांधी आदि ने भी गीता आदि से प्रेरणाएँ लीं। आख़िर हिंदू ही अंग्रेज़ों से लड़ा है। कोई यह कहे कि हिंदू तो लड़ ही नहीं सकता, यह ग़लत है। हिंदू ही लड़ा है। हाँ, कुछ ग़लती की है, जिसके कारण देश का एक भाग हमने खो दिया। यदि हमने एक स्पष्ट दृष्टि रखी होती तो ऐसा नहीं होता। पर कोई बात नहीं, आज भी लड़ाई पूरी नहीं हुई है, समाप्त नहीं हुई है, जो भाग खो गया है उसे वापस लेना है, पर लेगा वही जिसे हिंदुत्व की प्रेरणा है। अनेक बार हमारे हाथ से राज्य गए हैं, पर हमने हार नहीं मानी है। यह लड़ाई राष्ट्रीयता की दृष्टि से है। आज भी महाराणा प्रताप ने जो प्रतिज्ञा की थी, वह अधूरी है। छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंद सिंह की प्रतिज्ञा भी अधूरी है। उसे पूरा करना है। जब माँ के गौरव को फिर से पूरा करना है, यह अच्छी प्रकार से समझ लें।

हमारी यह राष्ट्रीयता हिंदू दर्शन के आधार पर ही है। अन्यथा हम लड़ाई किसके लिए लड़ेंगे? क्या पत्थरों के टुकड़ों के लिए? इन छोटी-छोटी चीज़ों के लिए राष्ट्र जीवित नहीं रहते। कोई भी व्यक्ति जब तक उसका उपयोग है, तब तक जीवित है। जब तक किसी भी वस्तु का उपयोग होता है, भगवान् उसको रखता है, वरना निकाल देता है। दुकानदार भी तो जितने और जिन नौकरों का उपयोग होता है, उतनों और उनको ही रखता है। शेष को यदि पहले रखे हो तो भी निकाल देता है। भगवान् के यहाँ लापरवाही नहीं है। उसकी दुनिया में जो निरुपयोगी होता है, नष्ट हो जाता है। आज हम भी सोचें कि यदि हमारे राष्ट्र का दुनिया को कोई उपयोग नहीं होगा तो भगवान् हमें समाप्त कर देगा। हमारा कोई उपयोग होगा तभी वह रखेगा। तो इस प्रकार की मुर्दा चीज़ें आज नहीं

टिक सकती हैं। हिंदू संस्कृति का संदेश तथाकथित धर्मनिरपेक्षता (सेक्यूलरिज़्म) में नहीं आता। हमारे राष्ट्र की विशेषताएँ तो हैं—त्याग, सेवा, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता। उस आधार पर यदि हम चलें तो दुनिया को हमारी कोई क़ीमत है। आज का भारत तो दुनिया पर एक भार है। हम दुनिया से गेहूँ लाते हैं। शस्त्र लाते हैं और देने को आज कुछ भी नहीं है, क्योंकि देने को हमारे पास जो कुछ भी तत्त्वज्ञान आदि है, वह सब हिंदू नाम से है, जिसे हम दुनिया के सामने नहीं रख रहे हैं।

अतः हम हिंदुत्व का गौरव लेकर चलें, जिससे शक्ति पैदा होकर प्रतिष्ठा और खोई हुई भूमि फिर से प्राप्त कर सकेंगे। यदि हममें हमारे पूर्वजों का रक्त है तो हमें उनसे अधिक कमाना पड़ेगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस संपूर्ण हिंदू समाज को इस सत्य का ज्ञान कराता है, उनमें पुरुषार्थ जाग्रत् करता है। इसी में हमारे जीवन की सार्थकता है। नहीं तो हमारा जीवन भार-स्वरूप हो जाएगा। कम-से-कम संघ का कोई स्वयंसेवक भार-स्वरूप न बने।

—मई 28, 1963

□

14

जौनपुर में हम क्यों हारे : एक विश्लेषण*

अपने पक्ष में परिणाम न आने पर भी मेरा जौनपुर उपचुनाव[1] का अनुभव सुखद रहा। लोगों ने भले ही जनसंघ प्रत्याशी के पक्ष में मतदान न किया हो, परंतु उन्होंने जनसंघ की नीतियों की प्रशंसा की और उसके पक्ष का समर्थन किया। जौनपुर में जनसंघ इसलिए पराजित नहीं हुई, क्योंकि उसे जन समर्थन कम मिला अपितु इसलिए हारी, क्योंकि वह कांग्रेस की कपटपूर्ण चालों का मुक़ाबला न कर सकी। कुछ भी हो, पराजय तो स्वीकार करनी ही होगी। इसके लिए कोई बहाने बनाकर बात टालना ठीक न होगा बल्कि संपूर्ण चुनाव अभियान की बारीक़ी से जाँच करनी होगी, ताकि आगे से इस बार की गई ग़लतियों से बचा जा सके।

मैं 'बाहरी आदमी' था!

जनसंघ ने राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर चुनाव लड़ा। अमरोहा और फर्रुख़ाबाद की तरह ही इसमें भारत की चीन विषयक नीति में परिवर्तन की माँग की गई, कृषि आय पर कर लगाने और अनिवार्य जमा खाता खुलवाने का विरोध किया गया तथा संघ की भाषा विषयक संवैधानिक उपबंधों में बदलाव न करने की माँग रखी गई। लोगों ने

---

* देखें परिशिष्ट III, पृष्ठ 308।

1. 1962 के चीनी आक्रमण के बाद मई 1963 में उत्तर प्रदेश के तीन तथा गुजरात के एक लोकसभा क्षेत्र में उपचुनाव हुए थे। जौनपुर से पं. दीनदयाल उपाध्याय, अमरोहा से आचार्य कृपलानी, फर्रुख़ाबाद से डॉ. राममनोहर लोहिया तथा राजकोट से मीनू मसानी संयुक्त विपक्ष के उम्मीदवार थे। कांग्रेस की चीन नीति, नेहरू का नेतृत्व, स्वर्ण नियंत्रण, अनिवार्य बचत योजना तथा वित्तीय आपातकाल (भारत-चीन युद्ध के दौरान) में लादा गया भारी कर-भार आदि मुद्दों पर चुनाव लड़ा गया था। उप चुनाव में कांग्रेस को मुँह की खानी पड़ी। आचार्य कृपलानी, डॉ. लोहिया तथा मीनू मसानी विजयी हुए, वहीं दीनदयालजी कांग्रेस प्रत्याशी राजदेव सिंह से चुनाव हार गए थे।

सामान्य रूप से जनसंघ के दृष्टिकोण से सहमति जताई।

परंतु कांग्रेस ने अलग तरह की रणनीति अपनाई। उन्होंने नेहरूजी द्वारा दिए गए उस परामर्श को रद्दी की टोकरी में डाल दिया, जिसमें उन्हें पार्टी की विचारधारा मतदाताओं में प्रचारित करने की सलाह दी गई थी। इसके विपरीत उन्होंने मतदाताओं को भ्रमित करने और बरगलाने का काम किया। पहले दिन से ही उन्होंने निकृष्टतम कोटि के क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया। कांग्रेस के ज़िलाध्यक्ष ने एक इश्तहार में कहा कि भारतीय जनसंघ ने 'हज़ारों मील दूर से एक बाहरी प्रत्याशी' का आयात किया है, जबकि कांग्रेस का प्रत्याशी स्थानीय है, इसलिए उसे वोट दीजिए।

उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री अजीत प्रसाद जैन ने इस इश्तहार की निंदा करते हुए एक जनसभा में कहा कि स्वयं उन्होंने लोकसभा के लिए कर्नाटक के तुमकुर से चुनाव लड़ा था और जीता था। लोकसभा के लिए प्रत्याशी का जन्म कहीं भी हुआ हो, वह देश में कहीं से भी चुनाव लड़ सकता है। उन्होंने जनसंघ की इस बात के लिए प्रशंसा की कि इसका चुनाव अभियान मूलतः राष्ट्रीय मुद्दों पर केंद्रित रहा।

जौनपुर एक राष्ट्र?

परंतु इस उपदेश का वहाँ के स्थानीय नेताओं पर कोई असर नहीं पड़ा। वे निरंतर क्षेत्रवाद के आधार पर स्थानीय भावनाएँ भड़काते रहे। यहाँ तक कि चुनाव से एक दिन पहले उन्होंने अपने प्रत्याशी द्वारा स्थानीय लोगों के लिए किए कार्यों पर गीत बनाया। गीत में कहा गया, "यह वह आदमी है जौनपुर में पैदा हुआ, जौनपुर शहर की मिट्टी से बना है, जौनपुर के हवा-पानी से विकसित हुआ है, जो जौनपुर के लिए जिया है और जौनपुर के लिए मरेगा।" गीत में आगे कहा गया था, "जनसंघ का प्रत्याशी एक राष्ट्रीय नेता है, देश में कहीं से भी चुनाव लड़ सकता था, परंतु श्री राजदेव सिंह और कहाँ जा सकते हैं? यदि उन्हें चुना जाना है तो जौनपुर से ही यह होगा अन्यथा वह कभी चुनाव जीतेंगे ही नहीं।"

इस प्रकार जौनपुर को एक राष्ट्र की तरह प्रस्तुत किया गया और कांग्रेस प्रत्याशी को यहाँ के राष्ट्रीय नेता की तरह दरशाया गया। यह सब उस समय किया जा रहा था जब कांग्रेस का केंद्रीय नेतृत्व क्षेत्रीय और संकीर्ण प्रतिबद्धताओं का निषेध कर रहा था और संसद् में पृथकतावाद विरोधी अधिनियम प्रस्तुत करने जा रहा था। यह देखना शेष है कि जौनपुर का विजयी सांसद लोकसभा में जौनपुर के लिए बोलेगा या देश के लिए।

दूसरी बात जिस पर कांग्रेस ने अपने चुनाव अभियान में ज़ोर दिया, वह था अपने प्रत्याशी का 1942 के आंदोलन में योगदान। उन्होंने कभी वर्तमान की बात नहीं की, अतीत को दुहराते रहे। उनका सामान्य नारा था, "हम कांग्रेस के लिए नहीं, राजदेव

सिंह के लिए वोट माँग रहे हैं, इन्हें कांग्रेस ने सदा उपेक्षित किया है। अब उन्हें जीवन में पहली बार अवसर मिला है। कृपया उसे निराश न करें।''

क्या आप जानते हैं कि जनसंघ ने चीन को भारत पर आक्रमण का निमंत्रण दिया था?

इस प्रकार हर तरीक़े से कांग्रेस प्रत्याशी के व्यक्तित्व को ही उभारा गया। वर्तमान मुद्दों पर या तो विचार ही नहीं उभारा गया या फिर उन पर सफ़ेद झूठ बोला गया। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के योजना मंत्री श्री हरगोविंद सिंह ने कार्यकर्ताओं की एक सभा में कहा कि चीन ने भारत पर आक्रमण इसलिए किया, क्योंकि जनसंघ के नेता ने इसके लिए चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई को निमंत्रण पत्र भेजा था। अख़बार में छपी सूचना के अनुसार यू.पी. के वित्त मंत्री कमलापति त्रिपाठी ने अपने भाषण में कहा कि भूमि-कर इसलिए बढ़ाया गया, क्योंकि जनसंघ के एक नेता ने विधानसभा में इसकी माँग की थी।

कांग्रेस नीतियों पर चर्चा बिल्कुल नहीं करती

इन सारे सफ़ेद झूठों पर जनता ने विश्वास बिल्कुल नहीं किया। मैंने इनका जिक्र केवल इसलिए किया, क्योंकि जहाँ तक नीतियों का प्रश्न है, कांग्रेस उनको लेकर बिल्कुल भी आश्वस्त नहीं थी। इसके विपरीत वे जानते थे कि जनता इन नीतियों के बहुत विरुद्ध है, इसलिए वे उनके लिए भी जनसंघ को उत्तरदायी ठहराने में लगे रहे। सहज ही कहा जा सकता है कि कांग्रेस नीतियों की लड़ाई हार चुकी थी। कांग्रेस का आत्मसंशय इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अमरोहा में अपना प्रत्याशी बदलना पड़ा। इस प्रकार चुनाव में जनता का निर्णय कांग्रेस की चीन-नीति, भाषा और कराधान नीति के विरुद्ध था। इस मुद्दे पर जौनपुर के मतदाता अपने फर्रुख़ाबाद और अमरोहा के साथियों से अलग नहीं थे। यदि हम कांग्रेस द्वारा अपनाए गए विभिन्न हथकंडों को अनदेखा भी कर दें, जिनसे उन्हें वोट मिले तो यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि जौनपुर की जनता ने भी कांग्रेस की नीतियों को ठुकरा दिया है।

इन परिस्थितियों में यह आशा करना उचित ही है कि यदि सरकार प्रजातांत्रिक बनी रहना चाहती है तो अपनी नीतियों में बदलाव करेगी। जो प्रवृत्तियाँ इतने स्पष्ट रूप से उभरकर आई हैं, सरकार को उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्हें संविधान की शब्दावली की ओट में नहीं छुपना चाहिए। परंपराएँ संविधान की धाराओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और स्वीकार्य होती हैं। प्रजातांत्रिक परंपराएँ इस बात की माँग करती हैं कि वर्तमान सरकार और उसकी नीतियों में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

जब ऑर्गनाइज़र ने 25 मई को कश्मीरी गेट स्थित पार्टी मुख्यालय में पंडित

दीनदयाल उपाध्याय से यह प्रश्न पूछा कि "जौनपुर उपचुनाव पर मुड़कर देखते हुए क्या उन्हें लगता है कि जनसंघ कुछ ऐसा कर सकती थी, जो उसने नहीं किया और चुनाव जीत सकती थी?"

इस पर बी.जे.एस. महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय का उत्तर था, "मैं सोचता हूँ कि यदि बी.जे.एस. ने भी कांग्रेस की तरह जातिवाद का ज़हर घोला होता और ठाकुर विरोधी भावनाओं और निर्लज्जतापूर्ण प्रचार का सटीक उत्तर दिया होता तो संभव है कि परिणाम बिल्कुल उलट आता।"

उन्होंने कहा, "परंतु जनसंघ ऐसा करने की अपेक्षा एक सीट हारना पसंद करेगी।"

—ऑर्गनाइज़र, जून 3, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

15

संगठित विपक्ष के लिए प्रस्ताव*

आचार्य कृपलानी और डॉ. राममनोहर लोहिया ने दिल्ली में आयोजित एक नागरिक अभिनंदन समारोह में विपक्षी दलों का संगठित मोरचा स्थापित करने की आवश्यकता का सुझाव दिया। उन्होंने उन सभी लोगों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व किया है, जो वर्तमान स्थितियों से पूरी तरह हताश हैं और कांग्रेस के कुशासन से तुरंत मुक्ति चाहते हैं। वे यह भी अनुभव करते हैं कि विपक्षी दल अकेले-अकेले कांग्रेस को पराजित करने में समर्थ नहीं हैं और यदि वे सब एक हो जाएँ तो विरोधी मतों के इकट्ठे होने से वे अपने कांग्रेसी विरोधियों को पराजित कर सकते हैं। हाल ही में संपन्न लोकसभा उप चुनावों के परिणाम इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। इसलिए इन प्रस्तावों पर गंभीरता से विचार करके इस दिशा में प्रयास करना आवश्यक है, ताकि इन्हें व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

हमारे लक्ष्य कितने भी प्रशंसनीय क्यों न हों, उन्हें तब तक प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक हम व्यावहारिक रूप से उनके लिए प्रयास नहीं करते। यहीं आकर एकता के समर्थक ग़लती करते हैं। जिन दलों को एकजुट करना चाहते हैं, उनसे विचार-विमर्श किए बिना ही इन्होंने उन सिद्धांतों और कार्यक्रमों की स्पष्ट घोषणा कर दी है, जिनके आधार पर ये एकता स्थापित करना चाहते हैं। एक जगह तो दल के साधारण कार्यकर्ताओं को उसके नेतृत्व के विरुद्ध भड़काने का काम भी हुआ है। निश्चय ही बिखरे हुए लोगों को एक करने का यह मार्ग नहीं है। इसीलिए लखनऊ में हुए समाजवादी एकता सम्मेलन में आचार्य कृपलानी द्वारा घोषित छह सूत्री कार्यक्रम के अंत पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वास्तव में आचार्य कृपलानी द्वारा सम्मेलन में भाग लेने में नीतिगत चूक हुई। शायद वे इस खेल को समझ नहीं सके अथवा वे भी क्या इस खेल का हिस्सा थे?

---

* देखें परिशिष्ट VI, पृष्ठ 317।

सम्मेलन में दलों की सूची से जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी को दूर रखा गया था। तो अब समाजवादी पार्टी और पी.एस.पी. ही बची रहती थीं। इनकी केंद्रीय कार्यकारिणी ने केवल एकता प्रयत्नों के विरोध में निर्णय ही नहीं लिया था बल्कि अपने कार्यकर्ताओं को एकता सम्मेलन में भाग न लेने के लिए भी कहा था। कुल मिलाकर परिणाम दोनों के मिलन से एक संस्था का निर्माण न होकर एक तीसरी संस्था का निर्माण होगा। क्या आचार्यजी यही चाहते थे?

कोई भी राजनीतिक दल राजनीति से प्रेरित लोगों का समूह मात्र नहीं होता। यह कुछ विचारों का प्रतिनिधि होता है और कुछ नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति भी इनकी प्रतिबद्धता होती है। उन लोगों को छोड़कर जो केवल अवसरवादिता पर जीते हैं, किसी राजनीतिक कार्यकर्ता को उसके इच्छित आदर्शों के अभाव में कार्य के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता। यदि एकता बनाने की प्रक्रिया में कार्यकर्ता हतोत्साहित होते हैं तो लाभ की अपेक्षा हानि होगी। एकता एक जैविक प्रक्रिया है और इसे हिसाब-किताब से नहीं पाया जा सकता। इसके लिए मानवीय कार्यविधि आवश्यक है। अभिमान और पूर्वग्रह मानव स्वभाव के अंग हैं। हम इनकी अनदेखी नहीं कर सकते। हम स्वचालित यंत्रों से काम नहीं ले रहे हैं। व्यक्तियों और समूहों का समाधान आवश्यक है। जनसभाएँ और प्रेस वार्ताएँ इसके लिए सर्वाधिक अनुपयुक्त माध्यम हैं।

हमें एकता के स्थान पर सहयोग के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जब हम एकता अथवा विलय की बात करते हैं तो दलों की आत्मरक्षण की प्रवृत्ति पुनः प्रबल हो उठती है। वास्तव में जो एकता के लिए सबसे अधिक शोर मचा रहे हैं, वे चाहते हैं कि अन्य लोग ग़ुलामों की तरह उनके पीछे चलें। वे आदान-प्रदान के लिए भी तैयार नहीं हैं। इसलिए दलों को वैसे ही बने रहने देना चाहिए, जैसे वे हैं। परंतु वह निश्चित उद्‌देश्यों के लिए अवश्य ही सहयोग कर सकते हैं।

हमें यहाँ एक न्यूनतम साझा कार्यक्रम तय करने की कोशिश करनी चाहिए। यद्यपि मुझे डर है कि हम विफल होने के लिए अभिशप्त हैं। सोशलिस्ट पार्टी और जनसंघ भाषा के मुद्‌दे पर एक साथ आ सकते हैं, स्वतंत्र पार्टी और सोशलिस्ट पाकिस्तान विषयक दृष्टिकोण पर एक हो सकते हैं तथा जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी सहकारी कृषि के मुद्‌दे पर एक साथ हो सकते हैं। हमें अपने किसी कार्यक्रम को त्यागने की ज़रूरत नहीं है। हम जहाँ जुड़ सकते हैं, वहाँ एक हों। जहाँ हमारा मतभेद है, वहाँ हम दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और उसके प्रति सहिष्णु बनें। समय के साथ छिटपुट भेद स्वयं मिट जाएँगे और एक साथ काम करने से नया साहचर्य पैदा होगा तथा हम सद्‌भाव की पर्याप्त पूँजी जमा कर चुके होंगे, जिससे नए प्रयास आगे बढ़ा सकें।

जहाँ तक़ चुनावों का प्रश्न है, आम चुनाव अभी बहुत दूर है। उप चुनावों के लिए

अभी तक व्यावहारिक नज़रिया ही सफल होता रहा है। कोई बैठक या वार्त्ता किए बिना भी आपसी टकराव रोकने में सफलता मिली है। जहाँ दलों ने एक-दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया, लोगों ने उन्हें नकार दिया। जनसंघ ने इस दिशा में पहल की और सफलता भी प्राप्त की है। यदि कहीं-कहीं अन्य दलों से सहयोगात्मक उत्तर नहीं भी मिला तो भी आज उनका उल्लेख इस समय करना आवश्यक नहीं। यदि राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक शक्तियों को सुदृढ किया जा सके तो यह उन लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में निश्चित लाभ होगा, जिनके लिए जनसंघ अस्तित्व में आया है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 10, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

16

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

हम लोग संगठन के काम में लगे हुए हैं। संगठन शब्द का उच्चारण करते ही जो एक सामान्य कल्पना किसी भी व्यक्ति के सामने आएगी कि उसमें एक से अधिक लोग मिलकर काम करते हैं, अर्थात् यह एक प्रकार का समूहवाचक शब्द है। एक समष्टि है। एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं, अनेक को मिलाने का प्रश्न आकर खड़ा हो जाता है। इसलिए व्यक्ति और समष्टि का जो पारस्परिक संबंध है, उसको अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए। क्योंकि इसके बिना स्वयंसेवक के नाते सही व्यवहार संभव नहीं है। इसके द्वारा विश्व के सामने जो जटिल समस्याएँ बनी हुई हैं, उनका भी रास्ता निकाला जा सकता है।

मनुष्य के संबंध में प्रारंभ से ही कहा गया कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। समाज में रहना उसका गुण है, उसकी प्रकृति है। यह जो उसकी प्रकृतिजन्य बात है, उसको कई बार लोग भूल जाते हैं। वास्तव में, 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है', इसका अर्थ यह नहीं और न ही यह लगाना चाहिए। फिर भी कई लोग यह अर्थ लगाते हैं कि समाज मनुष्यों से मिलकर बना है। कारण यह कि मनुष्य दिखाई देता है, समाज दिखाई नहीं देता। समाज एक समूहवाचक सत्ता है, क्योंकि कई चीज़ों को मिलाकर बना है। इस प्रकार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसको समझने में लोगों ने मनुष्य पर अधिक बल दिया है। मनुष्य प्रमुख है और समाज बना है व्यक्ति के लिए, व्यक्ति का भला करने के लिए। व्यक्ति उसे बनाता है, बदलता है तथा बिगाड़ता है। इस प्रकार वे लोग व्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोपरि मानते हैं। उसको सर्वोपरि समझकर वे सारे कार्यकलापों का विचार करते हैं।

व्यक्ति जब से अपने को केंद्र बनाकर चलने लगा है तो सामान्यतः वह समाज को

भूलने लगा है। कई बार लाभ की चीज़ों को भी मनुष्य भूल जाता है। प्रकृति का नियम है कि भूख न हो तो भोजन नहीं करना चाहिए। क्या खाना चाहिए, क्या नहीं, यह बात पशुओं को भी मालूम रहती है। यह ज़हरीली घास है, ऐसा जानवरों को कौन बताने जाता है? ऐसा तो है नहीं कि उसमें विष लिखा रहता है। मनुष्य के लिए जैसे शीशी पर 'विष' या बिजली के खंभे पर 'ख़तरा' लिखा रहता है, ताकि लोगों को पता लग जाए कि इसमें ख़तरा है। पशु-पक्षियों को तो कोई बताता नहीं और उस पर लिखा भी नहीं रहता, लेकिन जंगल में चरनेवाली गाय जहरीली घास नहीं खाएगी। जिससे पशु को कोई बीमारी हो तो वह भोजन पशु नहीं खाएगा। लेकिन मनुष्य भूल जाता है। पेट भरा है, फिर भी मीठी प्लेट आ गई तो खा ही लो। कह नहीं सकते कि यह मनुष्य की मूर्खता है या आदत।

लेकिन भगवान् ने इसके पेट को लचकदार बना दिया है। सामान्यत: वह खा लेता है। शरीर की प्रकृति से संबंधित वस्तुओं को वह भूल जाता है। वैसे ही समाज के बारे में भी यह भूल जाता है कि यह एक लाभ की वस्तु है। समाज से अलग रहकर वह शायद बोल नहीं पाएगा, जिस बच्चे को भेड़िए उठा ले जाते हैं, वह बोल नहीं पाता। हम यदि दो पाँव पर खड़े हैं तो समाज के कारण। एक वैज्ञानिक का तो कहना है कि बुद्धि के विकास का श्रेय दो पाँव पर खड़े होनेवाले मनुष्य को ही है। समाज से अलग रहकर वह शायद इस प्रकार बोल नहीं पाएगा। विचारों को तो व्यक्त करने का प्रश्न ही नहीं, भाषा भी वह समाज से सीखता है। अच्छे-बुरे का ज्ञान भी वह समाज से सीखता है। रॉबिन्सन क्रूसो[1] का जहाज़ एक समुद्र में डूब गया। उसने एक टापू पर आश्रय लिया। उसने वहाँ मकान बनाया, खेती की, लेकिन उसे 'मैं अकेला हूँ' का भाव खटकता रहा। एक बार उसने एक जंगली क़ैदी को देखा, जिसे वहाँ के नरभक्षी मनुष्यों ने क़ैद कर रखा था और वह वहाँ से भागकर आया था। उस छूटे हुए क़ैदी को देखकर उसे असीम आनंद हुआ, यद्यपि वह उसकी भाषा तक को नहीं समझता था। उसके भावों को एक कवि ने व्यक्त किया है, जिसका भाव इस प्रकार है, मैं ही स्वामी हूँ इस भू प्रदेश पर। इतना सब होने पर भी यहाँ की शांति मुझे खा रही है। जिस एकांत के बड़े-बड़े ऋषियों ने गान किए, वे आकर्षण कहाँ हैं? यहाँ का राज्य भी मुझे स्वीकार नहीं। नरक में रहना आसान है।'

इससे स्पष्ट है कि उसे निर्जनता से कितनी पीड़ा है। अकेले में सभी को भय लगता है। दो रहे तो बल आ जाता है। कहते हैं कि मिट्टी के भी दो पुतले होंगे तो उनमें बल होगा। समाज के कारण आज चाहे कितना भी विकार हुआ है, हमारे सब गुण निर्भयता, आत्मविश्वास आदि का भी विकास समाज के कारण ही है। समाज को

---

1. 'रॉबिन्सन क्रूसो' डैनियल डेफो का एक उपन्यास है। यह रॉबिन्सन क्रूसो नामक एक अंग्रेज़ चरित्र की काल्पनिक आत्मकथा है, जो वेनेज़ुएला के निकट एक उष्णकटिबंधीय द्वीप पर 28 साल तक फँसा रहा। इन 28 वर्षों के दौरान उसने वहाँ के मूल निवासियों से संघर्ष किया, अंततोगत्वा वह वहाँ से बच निकला।

निकाल दीजिए धर्म का कोई गुण नहीं रहेगा। धर्म के गुण समाज के कारण ही हैं। दूसरा व्यक्ति ही नहीं तो क्षमा किसको करेंगे? धैर्य की परीक्षा कैसे होगी? रोबिन्सन क्रूसो क्या चोरी करता? अतः यह सब गुण समाज सापेक्ष है। शुचिता भी सामूहिक होती है। धर्म ही समाज के आधार पर खड़ा है।

इतना सबकुछ होने के बाद भी मनुष्य में यह प्रवृत्ति आ जाती है। व्यक्ति—यही सबकुछ है। यह सब मेरे लिए है, यह प्रवृत्ति आई, इसलिए समाज का उपयोग मैं अपने लिए करूँ, यह विचार उठने लगा। भगवान् का भी यदि विचार करें तो 'भगवान् को सब समर्पित कर दूँगा', कहने पर भी अधिकांश यह भावना बनी रहती है कि भगवान् यानी मेरे लिए है भगवान्। ऐसा कर दो, परीक्षा में पास कर दो, यह दु:ख निवारण कर दो, वह कर दो, ऐसी प्रार्थना में समर्पण का भाव नहीं रहता। हम भक्ति करते हैं, इसलिए कि वह हमारा बिना पैसा का बड़ा नौकर है। भगवान् का स्मरण भी तब करते हैं जब ज़रूरत होती है। ऐसा ही भाव समाज के प्रति हो गया है।

व्यक्ति तथा समाज दोनों एक हैं, यह केंद्र का विचार बिगड़ जाने से समाज के प्रति दुर्लक्ष्य हो गया है। एक ऐसी प्रवृत्ति पैदा हो गई कि व्यक्ति की बुराइयों की बाढ़ आ गई है। "Man is a social animal" यह कहने में भी जो मनुष्य को पशु कहा गया, उससे भी एक भाव उत्पन्न हुआ। पशु में भी जो अच्छी चीज़ दिखाई देती है, उसको न ग्रहण करके 'आहार निद्रा भय मैथुनं च' के सामान्य भाव से सुख ग्रहण करने की कल्पना और पुष्ट हो गई। मनुष्य का अपना सुख सामने आ गया और समाज का विचार सामने से हट गया। स्वार्थ बढ़ गया और दूसरों के अधिकारों का अपहरण प्रारंभ हो गया। दूसरों को अपने सुख के लिए ग़ुलाम तक बनाया गया। पहले 'हमारे लिए' यह भाव था, फिर 'मेरे लिए' यह भाव आया। इस प्रकार दूसरों की ओर दुर्लक्ष्य किया जाने लगा। इस प्रकार दस लोगों को तो ख़ूब खाने को मिलने लगा और इसके कारण वे बीमार होकर मरने लगे और शेष नब्बे लोग भूखे रहकर मरने लगे।

लेकिन आख़िर तो मनुष्य में सहानुभूति की भावना भी है। वह सामाजिक प्राणी है। यह विचार आया कि यह प्रकृति के विपरीत है कि दस लोग इसलिए बीमार रहें कि वे अधिक खाएँ, दूसरी ओर नब्बे लोग भूख से मरें। यूरोप वालों ने सोचा कि ये जो दस हैं, ये उत्पादन के साधनों के स्वामी हैं, शेष जीविका के लिए इस पर निर्भर करते हैं। इसलिए वे सब के सब एक ग़ुलाम के रूप में हैं। यदि इनके हाथ से स्वामित्व निकाल लिया जाए तो जो पैदावार होगी, उसका बराबर विभाजन होगा। विषमता मिट जाएगी। कुछ लोगों के हाथ में जो सारी धन-संपत्ति सीमित हो गई है, उसको बाँट दिया जाना चाहिए। अब प्रश्न रहा कि यह बाँटा कैसे जाए और सोचते-सोचते आख़िरी रास्ता जिसे दुनिया के लोग समाजवाद के नाम से कहते हैं, कार्ल मार्क्स ने बताया। उसने कहा कि

दस लोगों से लेकर किसको दें? तो यह राज्य को दे दिया जाए। क्योंकि समाज तो अव्यक्त चीज़ है। समाज को दें अर्थात् किसको दें? अत: उन्होंने राज्य को दें, यह नारा लगाया। अगर यह विषमता समाप्त कर समता लानी है तो इसे राज्य को दे दिया जाए।

जब व्यक्ति का स्वामित्व इन उत्पादनों के साधनों पर हो तो इसे व्यक्तिवाद का नाम दिया गया और समाजवाद इसे अपना विरोधी तथा पूँजीवाद के नाम से मानकर चलता है। पूँजी तो हमारे लिए चाहिए होती है। अत: यह नाम ग़लत हुआ। छोटे-से-छोटे किसान को भी बीज, हल आदि के रूप में पूँजी चाहिए, जो आर्थिक उत्पादन के साधन माने जाते हैं, श्रम, पूँजी तथा भूमि आदि इन सबसे पूँजी का अस्तित्व है। पूँजी से मतलब पूँजीवाद नहीं लेना चाहिए, जिस प्रकार व्यक्ति से मतलब व्यक्तिवाद नहीं होता, संप्रदाय का मतलब संप्रदायवाद नहीं होता, जाति रहने से मतलब जातिवाद नहीं होता। जब ये चीज़ें विकृत रूप से आकर प्रकट होती हैं और शेष विचार पीछे पड़ जाते हैं तो वाद उत्पन्न होता है—पूँजीवाद, व्यक्तिवाद, संप्रदायवाद आदि।

जब सामान्य जीवन की कल्पनाओं की तिलांजलि देकर, दूसरों को कठिनाई देकर भी केवल पूँजी कमाने की धुन हो, तभी पूँजीवाद कहलाएगा। इसमें केवल मुनाफे का विचार होता है। कोई भी ढंग उसके लिए अपनाना पड़े, वह अपनाता है। पूँजीवाद का जो विरोध आया तो इसी रूप में। उसमें से विषमताएँ पैदा हुईं। मनुष्य की सहानुभूति की भावना, चेतना जाग्रत् हुई। इसे घटाना ही चाहिए। बहुत दिनों तक इससे लड़ते रहे। अंत में उत्पादन के साधनों को समाज के हाथों में दे देना चाहिए, यह विचार आया। मार्क्स ने इतिहास का विश्लेषण करके यह बताया कि समाज का इतिहास आर्थिक संघर्ष का इतिहास है। उसने नियम प्रतिपादित किए कि आर्थिक उत्पादन के साधन समाज को दे देने चाहिए। समाज को दे दें अर्थात् किसको दे दें। समाज तो अव्यक्त चीज़ है। जैसे समाज सेवा कहें तो प्रश्न उठता है किसकी सेवा? मार्क्स ने बताया कि राज्य उसका प्रतिनिधित्व करता है। इस पर राज्यवाद का जन्म हुआ।

उन्होंने सोचा कि इससे समस्या हल हो जाएगी। वे भूल गए कि राज्य चलानेवाले भी व्यक्ति होते हैं। जिस पर सत्ता केंद्रित होती है, वे शोषण नहीं करेंगे, इसकी क्या गारंटी है? व्यक्ति का सामान्य आदर्श दान, क्षमा, दया आदि जो पूँजीवाद में थे, वह यद्यपि भौतिक आदर्श ही थे परंतु मार्क्स ने उन्हें भी समाप्त कर दिया। इस प्रकार समाज-निष्ठा के समाप्त हो जाने के कारण जो दूसरे के हित के लिए सोचने की भावना थी, वह भी समाप्त होने लगी। वहाँ प्रचलित संप्रदाय ईसाइयत और इसलाम में भी जो सामान्य पवित्रता है, जैसे दान पद्धति, प्रेम, सेवा, ईमानदारी आदि इनका भी जो भाव समाज में था, अब समाप्त होने लगा। यह सब तो पूँजीवाद की शोषक व्यवस्थाएँ हैं, ऐसा बताकर इन सब सामान्य चीज़ों को भी समाप्त कर दिया गया। इन व्यवस्थाओं के

अनुसार जो छह रोटी वाले थे, उन्हें यह बताया जाता था कि यदि दो रोटी दान करोगे तो ये दो रोटी तुम्हें स्वर्ग में मिलेंगी। वह दो रोटी भी उसने दान देनी बंद कर दी और सोचा कि छह की छह रोटी अपने पास ही रख लीं तो कोई बात नहीं।

दूसरी जो नई ग़लती इस वाद ने की, वह यह थी कि इसने लोगों के सामने भौतिक दृष्टिकोण रखा। इंद्रिय सुख ही ठीक है। यही जीवन का लक्ष्य है। अन्य प्रेरणाएँ, जिनमें मन का सुख प्राप्त होता है, जिसके कारण माँ स्वयं न खाकर बालक को खिलाती है तथा बुद्धि का सुख व आत्मिक सुख इन सबका विचार उसने नहीं किया। सारे विश्लेषण का आधार भौतिक सुख ही रहा। केवल एक ही प्रेरणा बची है, पर उसका विचार शायद मार्क्स ने तो नहीं किया था। उसने यह तो ज़रूर कहा था कि समाज के ठेकेदारों से लड़ना पड़ेगा। उनसे लड़ने को कौन तैयार हुए, जिनको केवल दुःख हुआ था। जो मानवीय सहानुभूति से पूर्ण थे ऐसे वर्ग के लोग, ऐसे वर्ग के लोग जो भूखों को नहीं देख पाते थे, इनकी प्रेरणा भौतिकवादी विश्लेषण के अंतर्गत नहीं आती। जिन्हें सामान्य दुःख हुआ और वह समाज-निष्ठा लेकर खड़े हुए, ऐसे समूह के बलबूते पर एक वर्ग तैयार हुआ, जिसने समाज का विचार किया। समाजवाद में समाज के कल्याण को प्रमुखता दी।

—जून 18, 1963

□

17

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

परसों हम लोगों ने व्यक्ति और समाज इनके पारस्परिक संबंधों को लेकर पश्चिम में किस प्रकार विचार हुआ, वहाँ क्या कुछ प्रतिक्रियाएँ हुईं और किस तरह से समाजवाद या साम्यवाद का विचार सामने आया, इसका सरसरी तौर से कुछ विवेचन किया था।

यह तो स्पष्ट है कि समाजवाद के नाम से जो विषय चल रहा है तथा बहुत ही व्यापक और एक प्रकार से प्रभावी रूप से जिन कम्युनिस्ट देशों में इसका प्रसार होता दीख रहा है, उसमें व्यक्ति का और समाज का भी जैसा भला होना चाहिए, वैसा न होकर दूसरी ओर बुरा हाल है। यह बात अलग है कि देशों ने भौतिक दृष्टि से प्रगति कर ली होगी, लेकिन भौतिक प्रगति को समाजवादी पद्धति से जोड़ नहीं सकते। दुनिया के और भी देश हैं, जैसे अमरीका, उसने भी प्रगति की है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें अमरीका ने रूस से अधिक प्रगति की है। कुछ क्षेत्रों में रूस भी आगे निकल गया है। परंतु इन चीज़ों से विचारधारा के बारे में कोई निष्कर्ष निकालें तो वह ग़लत होगा। ये निष्कर्ष प्रचार की दृष्टि से निकाले जाते हैं।

पिछले दिनों एकाएक समाचार आया कि चीनी लोग एवरेस्ट पर चढ़ गए। कैसे चढ़ गए, इसका पता नहीं। वह पहले चढ़ रहे थे, इसकी भी ख़बर नहीं। फिर समाचार आया कि रात के एक बजे चढ़े। यह भी बताया गया कि उनकी यह विजय कम्युनिस्ट विचारधारा की विजय है। पर जानकार लोगों ने बताया कि इन समाचारों से ही पता लगता है कि ये ग़लत हैं। संभव भी हो तो विचारधारा के साथ तो इसको नहीं जोड़ा जा सकता। लेकिन लोग जोड़ते हैं। अभी अंतरिक्ष में यात्री को भेजा गया, फिर एक महिला को भेजा गया। उसके बारे में भी इसी प्रकार का विचार करते हैं। हमें वास्तविकता का

गंभीरता से विचार करना चाहिए। इसके पीछे तर्क या वैज्ञानिक ढंग के साधन नहीं। ये आधुनिक ढंग की रूढ़ियाँ हैं। जैसे छींक आ गई और लाभ नहीं हुआ तो धारणा हो जाती है कि छींक आ जाने से ही काम बिगड़ा है। यद्यपि इसमें कोई कारण-कार्य संबंध जोड़ा नहीं जा सकता। अनेक बार ऐसे भी हुआ होगा जब छींक आने पर भी काम हुआ होगा, परंतु उसको कौन ध्यान में रखता है। एक जगह समुद्र में एक मंदिर था। उसके पुजारी ने मंदिर में उन सज्जनों की सूची बनाकर टाँगी हुई थी, जिनका समुद्र यात्रा से मंदिर दर्शनार्थ आने पर कुछ न बिगड़ा हो अर्थात् जो डूबे नहीं तथा सकुशल लौट आए थे। इसका मन पर प्रभाव पड़ता है। एक बार एक दार्शनिक ने पुजारी से पूछा, ''जो समुद्र यात्रा पर गए और डूब गए, उनका नाम नहीं लिखा। क्यों?'' वे नाम तो उसके पास नहीं थे। इस प्रकार कुछ को छिपा लिया जाता है और कुछ को प्रकट किया जाता है और फिर ग़लत तरीक़े से उनमें कारण-कर्म भाव ढूँढ़ लिया जाता है। वैसे ही आज भी बहुत सी चीज़ें होती हैं।

हिटलर पिछली बार रूस के ख़िलाफ़ लड़ा और रूस जीत गया। इससे पहले वह जापान से हार गया था।[1] तो एकमेव कारण कि रूस में साम्यवाद के कारण यह विजय हुई, ऐसा बताया जाने लगा। परंतु यदि यही तर्क लगाया जाए तो इंग्लैंड और अमरीका में तो साम्यवाद नहीं था। वे कैसे जीत गए और अमरीका वाले कह सकते हैं कि पिछली लड़ाई में अमरीका के आने के बाद जो हिटलर लड़ा तो वह हारा। तो यह सब हुआ अमरीका के पूँजीवाद के कारण। वह यह कह सकता है, पर इसमें भी कोई बल नहीं।

इन चीज़ों को हटाकर देखें तो पता लगेगा कि जो तथाकथित समाजवादी विचारधाराएँ हैं, उनमें सबसे बड़ी ख़राबी है कि व्यक्ति के स्वरूप का और समाज के स्वरूप का जो सही ज्ञान होना चाहिए, वह उनके पास नहीं। इनमें भी लोग सब ताक़त अपने हाथ में लेकर बाक़ी के समाज को सुख-सुविधाओं से वंचित रखते हैं।

यह विचारधारा वहीं आकर खड़ी हो गई, जहाँ से इसने प्रारंभ किया था। व्यक्ति जितना ग़ुलाम पूँजीवादी यूरोप में था, संभवतः उससे अधिक ग़ुलाम समाजवादी व्यवस्था में आज है। जितनी विषमताएँ पूँजीवादी यूरोप में थीं, उससे अधिक विषमताएँ समाजवादी यूरोप में हैं। विषमताओं का मापदंड बदल लिया गया है, लेकिन उससे अधिक विषमताएँ लाई गई हैं। विषमताओं का रूप बदल गया है। जैसे किसी को सौ रुपया मासिक मिले और किसी को दस हज़ार रुपए तो यह कितनी बड़ी विषमता है। यह विषमता कम होनी चाहिए। लेकिन यदि कोई दस हज़ार रुपए को यह रूप दे कि वेतन मिलेगा दो हज़ार शेष की बाक़ी चीज़ें मुफ़्त, जैसे मकान, यातायात, व्यय आदि। ये सब सरकार

1. रूस तथा जापान के मध्य 1904-05 के दौरान मंचूरिया और कोरिया पर प्रभुत्व जमाने को लेकर युद्ध हुआ। इसमें जापान विजयी हुआ था।

उसे मुफ़्त देगी। नतीजा यही होगा कि विषमता शायद और बढ़ जाएगी। जब अंग्रेज़ यहाँ थे तो उनके वायसराय के एक्ज़ीक्यूटिव के जो मेंबर थे, उनको साढ़े तीन या चार हज़ार तनख़्वाह मिलती थी। इनकम टैक्स देने के बाद बाईस सौ-तेईस सौ रुपया बचता था। नई सरकार ने तनख्वाह को कम कर दिया। तनख्वाह दो हज़ार सात सौ पचास रुपए कर दी, लेकिन इनकम टैक्स माफ़ कर दिया। यदि आप देखेंगे कि ख्रुश्चेव पर कितना ख़र्च होता है तो अनुमान लगेगा कि उसकी तनख़्वाह तो बढ़ी नहीं है। रूस में आज भी आय का अनुपात कुछ के कहने के अनुसार एक और दो सौ है। एक और अस्सी तो स्वीकार किया ही जाएगा।

वे शोषण समाप्त करने की बात कहते हैं। लेकिन आर्थिक क्षेत्र में शोषण समाप्त हुआ मान लिया जाए तो भी राजनीतिक दृष्टि से शोषण प्रारंभ कर दिया है कि मार्क्स ने जो अपने सारे निष्कर्ष निकाले थे तो उसमें 'सरप्लस वैल्यू' का सिद्धांत रखा था। उस अर्थव्यवस्था का आधार था जहाँ मंडी में मूल्य माँग और पूर्ति के संतुलन में तय होता है। फिर वास्तविक मूल्य क्या है, विनियम मूल्य क्या है। वह कितनी मात्रा में सही है। इन सबके पचड़े में मैं नहीं पड़ता। लेकिन कम्युनिस्ट देशों में 'मार्केट इकोनॉमी' नाम की चीज़ है ही नहीं। यह 'सरप्लस वैल्यू' मज़दूर के पास जाती है, यह सच नहीं। यह आज राज्य के पास पहुँच जाती है और फिर कुछ व्यक्तियों के पास जाती है। आरंभ में शक्ति सुविधाएँ कुछ हाथों में केंद्रित थीं। झगड़ा यहीं से प्रारंभ हुआ था कि शक्ति सुविधा कुछ हाथों में नहीं रहनी चाहिए, परंतु शक्ति कुछ ही हाथों में केंद्रित रही और बाक़ी के लोगों में अंतर नहीं आया; बल्कि जिन देशों में कम्युनिस्ट पद्धति नहीं, वहाँ अवश्य कुछ अंतर आया है।

ग़लती यह है कि व्यक्ति और समाज का वास्तविक संबंध क्या है, स्वरूप क्या है, इसको लोग समझ नहीं पाए। समाज लोगों को मिलाकर बना है, यह ग़लत है। व्यक्तियों का समूह समाज नहीं, समाज की अपनी एक सत्ता है, जीवमान सत्ता है उतनी ही, जितनी एक प्राणी की होती है। प्राणी उसका अंग ज़रूर है लेकिन यह एक निर्जीव अंग जैसा नहीं, जैसे कि मोटर के पुर्ज़े होते हैं। यह वैसा ही है जैसा एक पूरा पेड़ होता है और उस पेड़ का एक पत्ता। पत्तों को मिलाकर पेड़ नहीं बनता। कोई यह कहेगा क्या कि हाथ, पैर, नाक, कान मिलाकर व्यक्ति बन जाता है? पुर्ज़ों को मिलाकर मोटर बनेगी, पर मनुष्य शरीर के लिए ऐसा नहीं। 19वीं सदी में यही लोग बोलते थे कि जैसी मशीन है, शरीर भी वैसा ही है, जरा जटिल है। परंतु मशीन तो पुर्ज़े मिलाने से तैयार हो जाती है, शरीर नहीं हो पाता। क्योंकि उसमें प्राण फूँकना जरा टेढ़ा काम है। अभी तक किसी विज्ञानवेत्ता ने इसमें सफलता नहीं पाई।

पंचतंत्र में एक कहानी है कि कुछ पढ़नेवालों में एक को प्राण फूँकने की विद्या

आती थी। उसने रास्ते में हड्डियों को देखा तो जोड़-जोड़कर उसका ढाँचा खड़ा कर दिया। वह व्याघ्र था। जब प्राण फूँकने लगा तो उसका दूसरा साथी जो व्यावहारिक था, उसे मना करने लगा कि यह जीवित हो जाएगा तो तुझे खा जाएगा। उसके न मानने पर साथी तो पेड़ पर चढ़ गया और इधर जैसे ही व्याघ्र में जान आई, उसने सबसे पहले इसी का शिकार किया। यह कहानी केवल इसलिए है कि विद्या के साथ व्यावहारिकता भी चाहिए। व्यावहारिकता ने उसकी जान बचा दी। लेकिन यह तो एक कहानी है। वस्तुतः कोई प्राण फूँक नहीं सकता।

यह तो सत्य है कि शरीर में एक प्राण है। वास्तव में तभी इसके अंग-प्रत्यंग शरीर के सुख-दु:ख को अनुभव करते हैं और इसी नाते सब काम करते हैं। समाज भी एक प्राणवान चीज़ है। समाज में भी वह गुण है, जो व्यक्ति के अंदर है। मनोवैज्ञानिक तो इसको स्वीकार भी करने लगे हैं कि समाज का मस्तिष्क होता है, जिसे group mind नाम दिया गया है। क्योंकि व्यक्तिगत रूप से जो ख़ून देखकर भी घबराएगा, वह भी राष्ट्र के लिए लड़ता है और फ़ौरन उत्साह से लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। जैसे व्यक्ति में भाव होते हैं, कर्म होते हैं, वैसे ही समाज की भावनाएँ होती हैं, कर्म होते हैं। यह समाज के सभी व्यक्तियों के भावों या कर्मों का कुल जोड़ नहीं होता। इसके लिए गणित के अनुसार कैलकुलेशन का विचार नहीं किया जा सकता। यदि सबकी ताक़त को जोड़ दिया जाए, जैसे राष्ट्रीय आय के लिए करते हैं कि प्रत्येक की आय का योग औसत निकाल लिया, वैसे समाज की शक्ति के लिए नहीं होगा।

समाज की एक सत्ता मानने के बाद समाज की शक्ति का अंकन इस प्रकार नहीं होगा। वह भिन्न वस्तु है। हम उसके एक अंग हैं, परंतु वैसे ही हैं जैसे शरीर का हाथ से संबंध होता है। हम उसके एक अवयव हैं, परंतु हमारी एक स्वतंत्र सत्ता भी है। एक प्रकार के लोग तो यह मानते हैं कि समाज एक सत्ता है और मनुष्य एक पुर्ज़ा मात्र है। दूसरे मानते हैं कि व्यक्ति सत्ता है, समाज समूह मात्र है। दोनों ग़लत हैं। व्यक्ति की अपनी सत्ता है, समाज की भी उतनी ही प्राणवान सत्ता है। दोनों एक-दूसरे से संबंधित हैं। हाथ शरीर से संबंधित है, परंतु हाथ की अपनी विशेषता है। प्रत्येक जीवाणु की अपनी सत्ता है। वह शरीर की सत्ता से मिलकर काम करते हैं।

समाज के साथ उस नाते से हमारे आत्मीयता के संबंध हैं। समाज का विचार करनेवालों ने समानता का संबंध रखा। उन्होंने कहा कि सब आदमी बराबर हैं। लेकिन इसका उत्तर देनेवालों ने कहा कि ज़िंदगी में कहीं बराबरी नहीं, कुछ में ज़्यादा शक्ति होती है, कुछ में कम। कुछ मामलों में हम भिन्न हैं। प्रकृति ने सबके अंदर भेद रखा है। सबके गुण और शक्ति अलग-अलग हैं। तो समाज का ही विचार करनेवालों ने पुनः इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि यह भेद समाज व्यवस्था के कारण है। समाज

व्यवस्था के कारण जिसको पढ़ने को मिलता है, उसका विकास हो जाता है। कुछ अपनढ़ रह जाते हैं तो उनका विकास नहीं होता। परंतु यह तर्क भी बहुत दूर तक नहीं चल सकता। यदि ऐसा ही हो तो संपन्न लोगों के यहाँ तो कोई मंदबुद्धि या मूर्ख न रहे। कुछ ने कहा कि पूर्व जन्म के कारण भेद होते हैं तो समाज का विचार करनेवालों ने कहा कि यह पूर्वजन्म का विचार तो ग़रीबों को संतोष कराने के लिए है। किसी कारण से हो, तो भी यह सत्य है कि भेद मौजूद हैं। शक्ति में भेद है। गुण-कर्म में भेद है। मानव के आगे भी विचार करना चाहिए। प्रत्येक जीवमान का एक ही स्तर पर विचार करना चाहिए और कुछ लोग उसका विचार कर भी रहे हैं।

यह सत्य है कि समानता सत्य को प्रगट नहीं करती। आत्मीयता ही आधार हो सकता है। आत्मीयता इसलिए, क्योंकि सबकी आत्मा एक है। जैसे क्या शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में समानता है? क्या सब अंग बराबर हैं? नहीं! फिर कौन सी ऐसी चीज़ है, जिसकी रक्षा करना नितांत आवश्यक है। किसी ने कहा कि हाथ या गले में से एक कटवाना पड़ेगा तो हाथ तो बचेगा, ऐसा सोचकर कोई गला कटवाने के लिए तैयार नहीं होगा। हाथ का दुःख भी मालूम होता है। क्योंकि संपूर्ण शरीर में आत्मीयता का भाव है। समानता का विचार ग़लत है।

समानता कैसी, इसका विचार भी मार्क्स ने किया है। क्या सबको चार रोटी देंगे, इससे समानता हो जाएगी? दो रोटी खानेवाले को चार रोटी खिलाई जाएँ तो अन्याय ही होगा। जैसे कोई दिल्ली के सज्जन एक पठान के साथ मित्रता के कारण उसके देश में गए, बहुत लोगों ने स्वागत किया। लालाजी भोजन के लिए तैयार बैठे थे कि रोटियाँ रख दी गईं। लाला जी ने 'इतनी रोटी नहीं खाई जाएँगी' कहकर आनाकानी की। परंतु उनका आग्रह मानकर खाना प्रारंभ तो कर दिया परंतु आधी रोटियाँ मुश्किल से खाईं और शेष के लिए असमर्थता बताने पर वह पठान बंदूक ले आया और बोला, 'खाता है कि नहीं, वहाँ जाकर बदनामी करेगा कि मुझे भूखा रख दिया।' इस प्रकार दो खानेवाले को चार खिलाना अन्याय हुआ और जो ग़रीब छह खानेवाला है, यदि उसे चार दीं तो वह भूखा रह जाएगा। समानता ऐसे नहीं होती। ऐसी समानता तो जेल में होती है और कपड़ा यदि एक समान दिया तो बड़े शरीर वाले को तो पाजामे का कच्छा ही रह जाएगा और छोटे शरीर वाले की कमीज़ भी बन जाएगी। प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार लेना और उसकी आवश्यकतानुसार उसे देना। यदि यह नहीं हुआ और सबको पाँच घंटे काम करना चाहिए, ऐसा नियम बनाया तो कमज़ोर की तो मुसीबत हो जाएगी। तृतीय वर्ष में शारीरिक करने के पश्चात् कुछ को तो लौटकर आना ही बोझ मालूम देता था और कुछ तो उसके पहले और बाद में भी दंड-बैठक लगाते थे। 'हाथी को मन भर और चींटी को कण भर' इसीलिए कहा है। यदि दोनों का औसत लगा लिया तो हाथी का बीस सेर से

क्या होगा और चींटी तो बीस सेर कभी समाप्त नहीं कर पाएगी। समानता वाले औसत के नियम से ही विषमता बढ़ाते हैं।

प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार, यह सिद्धांत तो बड़ा अच्छा है, पर इसका निर्धारण कैसे हो? योग्यता और आवश्यकता को कौन तय करेगा? उन्होंने कहा, 'राज्य तय करेगा।' राज्य माने सरकारी अधिकारी। वे भी तो मानव हैं। वे पहले अपनी आवश्यकता देखेंगे, फिर अपने आत्मीय जनों की। मान लो, चीनी का परमिट तहसीलदार को बनाना है और उसके मित्र के यहाँ शादी है तो दूसरे नामों से भी वह उसके लिए परमिट काट लेगा। शेष लोगों की आवश्यकता उसे उस प्रकार की नहीं दिखाई देती। सरकार को प्रमुख बना दिया जाए तो प्रत्येक काम में यही बनता है। योग्यता में हम तो चार घंटे भी काम करें तो बहुत हो गया। दूसरों के लिए 'आराम हराम है'[2] का नारा। अपने लिए तो इतना काम करते हैं, क्या चार घड़ी आराम नहीं करेंगे, यह तर्क रहता है।

इस सबका अर्थ यही है कि इस समानता के विचार को बदला जाए। इसको बदलकर आत्मीयता को आधार बनाया जाए। मूलतः ग़लती यहीं पर खड़ी है कि हमने व्यक्ति के सुख-दुःख को प्रमुख रखा और दूसरों के प्रति घृणा फैलाकर कि 'यह तुम्हारे पसीने की कमाई से पल रहा है,' इस तरह संघर्ष को आधार बनाकर यह नारा लगाया कि हम मज़दूरों का संगठन करते हैं। मज़दूर को बताया जाता है कि तुम तो आठ घंटे काम करते हो और यह मैनेजर तो केवल कुरसी पर बैठकर चला जाता है। 'उसे घर जाकर भी चिंता के कारण नींद नहीं आती' इसकी उसे कल्पना नहीं दी जाती। उसे यही कहा जाता है कि तू आठ घंटे काम करता है, काम कम करो और दूसरी ओर मज़दूरी अधिक लो, ऐसी माँग करके संघर्ष करो। इस प्रकार आवश्यकता तो बढ़ती जाएगी और योग्यता कम होती जाएगी, और सारे देश में यही स्थिति रही तो एक दिन किसी को रोटी नहीं मिलेगी।

समाजवादी ढाँचे में अभाव की स्थिति उत्पन्न होगी। दो व्यवस्थाएँ प्रारंभ होंगी। आवश्यकता की दृष्टि से राशनिंग और काम की दृष्टि से जबरदस्ती दबाव। आज कम्युनिस्ट दूसरों को कहता है—हड़ताल करो, लेकिन उसके राज्य में हड़ताल नहीं।

उसके विपरीत हमारा विचार है कि समाज की स्वतंत्र सत्ता है और व्यक्ति की भी स्वतंत्र, समाज की सेवा ही व्यक्ति के जीवन की सार्थकता है। समाज के लिए व्यक्ति के कर्म उसके लिए भगवान् को प्राप्त करने की साधना है। उससे ही वह समाज की सेवा करता है। परिवार में माँ की आवश्यकता क्या है, वह घर में सबको खिलाने के बाद कुछ बच गया तो खाएगी और योग्यता देखिए कि सुबह से शाम तक काम करती है, सबसे पहले जागती है और सबसे अंत में सोती है। कभी अस्वस्थ है तो भी बच्चे को

---

2. 'आराम हराम है' का नारा पं. जवाहर लाल नेहरू ने दिया था।

भूखा नहीं जाने देगी। ममता ही उससे काम कराती है। देने की योग्यता अधिक-से-अधिक और लेने की कम-से-कम। यह रहा तो फिर कभी कमी नहीं रहेगी। जितना दें, देते चले जाएँ। कभी मन में असंतोष नहीं होगा। यहाँ काम करने में भाव का केंद्र समाज बन जाता है। समाज का भाव होता है तो आत्मीयता के कारण।

पूँजीवादी व्यवस्था में भी 'मार्केटिंग इकोनॉमी' की बात सोची जाती है। उसमें कर्म का केंद्र स्वार्थ ही रहता है। परंतु यहाँ तो कुम्हार मटका बनाता था और सोचता था कि यह मटका ख़रीदने के लिए भगवान् आएँगे। इसलिए उसे काम करते हुए भी आनंद आता था और वह प्रयत्न करता था कि वह अच्छे से अच्छा मटका बनाए और अधिक-से-अधिक बनाए। यही भक्ति है। रात में जागकर भी काम करना पड़ेगा तो करेगा। संघ शिक्षा वर्ग में व्यवस्था करनी है तो जिस प्रकार कार्यकर्ता को आनंद होता है, उससे उसका विकास होता है। कार्य करने का खुलकर मौक़ा मिलता है। लेकिन दूसरी व्यवस्था में तो ज़बरदस्ती का भाव रहता है। सारे सूत्र कुछ लोगों के हाथ में रहते हैं। वस्तुतः 'यह काम मेरा है' इसलिए मेरा कर्तव्य हो जाता है कि अधिक-से-अधिक कार्य करें। जिस प्रकार हाथ जितना काम करे, शरीर के लिए उसे आनंद ही होता है। हाथ को डाँटा भी नहीं जाता। यह सब आत्मीयता के भाव के कारण है।

अनेक प्रकार की विचारधाराओं में जो ग़लती है कि वह व्यक्ति और समाज का संतुलन नहीं बना पाते, वहाँ भारतीय दृष्टिकोण दोनों की चैतन्यमयी सत्ता को मानकर आत्मीयता का परस्पर संबंध स्थापित करता है और इस कारण समाज के लिए किए गए कार्य कर्तव्य हैं, वह इसे साधना मानकर चलता है, इसी भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का मैंने प्रयत्न किया है।

—जून 20, 1963

□

18

'अनिवार्य बचत' बात ही अंतर्विरोधी है

जनसंघ ने अनिवार्य बचत योजना के विरोध में राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाने का निर्णय लिया है। आंदोलन का प्रारंभ इस योजना के श्रीगणेश की तिथि 1 जुलाई से होना था। पार्टी के निर्णय की घोषणा दीनदयालजी ने 15 जून को इलाहाबाद में एक पत्रकार वार्त्ता में की। दीनदयालजी का वक्तव्य।

अनिवार्य बचत योजना बात ही अपने आप में अंतर्विरोधी है। बचत सदा स्वैच्छिक होनी चाहिए।

अनिवार्य बचत योजना में जमा राशि पर डाकख़ाने में जमा राशि से अधिक ब्याज मिलेगा। यदि यह खाते, डाकख़ाने में जमा राशि अथवा ऐसी ही योजनाओं से निकाली राशि पर निर्भर होंगे तो इससे सरकार को लाभ के स्थान पर हानि ही होगी।

युद्ध और विकास के लिए जिस बात का सर्वाधिक महत्त्व है, वह है मूल्य-स्थिरता। सरकारी नीतियाँ इस पहल की उपेक्षा करती प्रतीत होती हैं।

राजस्व/आय बढ़ाने के चार उपाय

संसाधन इस तरह एकत्र किए जाने चाहिए, जिससे लोगों की युद्ध से लड़ने की क्षमता अप्रभावित रहे। सरकार को अपना राजस्व बढ़ाने के लिए चार तरह के उपाय करने चाहिए।

सर्वप्रथम सरकार को युद्धपरक अर्थव्यवस्था खड़ी करनी चाहिए। दूसरे, आपात स्थिति में पूर्व योजनाओं की काट-छाँट करनी चाहिए। ऐसी योजनाएँ जो सुरक्षा के लिए

अनावश्यक हैं तथा ऐसी विकासपरक परियोजनाएँ, जिन्होंने देश की सुरक्षा क्षमता को मज़बूत नहीं किया है, उन्हें या तो स्थगित कर देना चाहिए या फिर बंद कर देना चाहिए।

तीसरे, कर चोरी के विरुद्ध सख्त क़दम उठाए जाने चाहिए और बक़ाया कर की उगाही की जानी चाहिए। आयात लाइसेंस, जिनसे आज कुछ विशिष्ट लोगों को कालाबाजारी से अनपेक्षित लाभ होता है, उनकी खुली नीलामी की जानी चाहिए। इस प्रकार की नीलामी से सरकारी ख़ज़ाने को लगभग 300 करोड़ का लाभ होगा।

अनिवार्य बचत योजना से कृषि को भी हानि होगी

अनिवार्य बचत योजना कृषि उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव डालेगी। आख़िरकार उद्योगों की तरह कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए भी पूँजी की आवश्यकता है। स्वर्ण-नियंत्रण आदेश से ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की समस्या बहुत गंभीर हो गई है। अनिवार्य बचत योजना से हालत और अधिक ख़राब होंगे।

इस योजना के विरुद्ध पूरे देश में पहली जुलाई से ही शांतिपूर्ण धरने-प्रदर्शन किए जाएँगे। हमें आशा है कि सरकार अपने प्रस्तावों पर पुनर्विचार करेगी और उनमें बदलाव करेगी।

—ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

19

मुद्रास्फीति और भ्रष्टाचार के चलते कई मोरचों पर हारे

एक जुलाई से जनसंघ ने सरकार की कर नीति और अनिवार्य बचत योजना के विरुद्ध देशव्यापी शांतिपूर्ण अभियान प्रारंभ किया। सरकार के क़दमों के विरुद्ध जनता के रोष को मुखर करने के लिए भारतीय जनसंघ ने धरनों और जनसभाओं का आयोजन किया। इसी क्रम में दिल्ली के दरबार हॉल में आयोजित जनसभा को संबोधित करते हुए दीनदयालजी का वक्तव्य।

यदि पूर्व रक्षा मंत्री देश की सामरिक तैयारियों की उपेक्षा के दोषी हैं तो वर्तमान वित्त मंत्री पर देश के अर्थतंत्र को विनाश की ओर ले जाने का आरोप लगाया जा सकता है।

स्वर्ण नियंत्रण आदेश और अनिवार्य बचत योजना आत्मघाती क़दम थे। इनसे लोगों को अत्यधिक कष्ट हुआ और सरकारी ख़ज़ाने को बहुत कम मिला। यह असमानतापरक और अधिकतर मामलों में प्रतिगामी क़दम था। इन क़दमों से हमारे अर्थतंत्र में पहले से ही मौजूद दबावों और तनावों की धार और तेज़ होगी। सफल सुरक्षा तंत्र के लिए न केवल पूरी तरह सुसज्जित और शक्तिशाली सेना की आवश्यकता होती है, बल्कि इसके लिए सुदृढ अर्थव्यवस्था और स्थिर मुद्रा भी आवश्यक है। मुद्रास्फीति और भ्रष्टाचार अनेक हारों का कारण बने हैं।

वित्त मंत्री के लिए यही उचित होगा कि भाँति-भाँति की नवागत योजनाओं के

साथ प्रयोग करने की अपनी सनक को त्यागकर सरकार के अपने घर को व्यवस्थित करें। प्रशासन में कठोर मितव्ययता, बक़ाया करों की उगाही और कर चोरी पर लगाम लगाने से राष्ट्र की सुरक्षा और विकास के लिए पर्याप्त धन मिल जाएगा।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 8, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

20

मुखर्जी पद्धति

ऐसे समय में जब एक प्रकार के संगठित मोरचे के निर्माण के प्रयत्न हो रहे हैं, हमारा ध्यान अनायास ही डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की ओर जाता है, जिन्होंने प्रथम आम चुनाव के पश्चात्, लोकसभा में विभिन्न राजनीतिक दलों और कुछ स्वतंत्र सांसदों को अद्‌भुत ढंग से एक साथ लाने में सफलता प्राप्त की थी, जिसे 'राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोरचा' का नाम दिया गया था।

इस तथ्य के रहते हुए भी सभी दलों ने पहले 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' पर सहमति बनाई थी, फिर भी मोरचे को एकजुट रखने का वास्तविक कार्य मुखर्जी के व्यक्तित्व ने किया। यही कारण है कि उनके निधन के पश्चात् मोरचा समाप्त हो गया। वर्तमान नेतृत्व की योग्यता और महानता को किसी तरह कम न आँकते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वे यदि उस पुराने विचार को पुनर्जीवित करना चाहते हैं तो मुखर्जी के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं।

डॉ. मुखर्जी का दृष्टिकोण नकारात्मक नहीं, सकारात्मक था। उन्होंने विभिन्न लोगों और दलों को कांग्रेस के विरुद्ध संगठित होने के लिए नहीं कहा, बल्कि उनसे संसद् में अपने दायित्वों को रचनात्मक और सकारात्मक ढंग से निर्वाह करने का आह्वान किया।

राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोरचे के निर्माण के समय उन्होंने चुनाव के पेचीदा प्रश्न को नहीं उठाया। यह मानते हुए भी कि सभी मुख्य राजनीतिक दल उचित ही मुख्य रूप से चुनावों की सोचते हैं, परंतु उनमें इतना उलझे रहना, अभिभूत होना कि स्थितियों का वस्तुनिष्ठ आकलन भी न कर सकें, उचित नहीं है। यदि दल चुनावी समझौता करने में असफल रहें तो भी संसद् से बाहर वे अनेक मुद्दों पर परस्पर सहयोग कर सकते हैं और अधिक आसानी से संसद् के भीतर भी सहयोग कर सकते हैं। डॉ. मुखर्जी ने व्यावहारिक

ढंग से बात आगे बढ़ाई और दलों को कार्यक्रमों के आधार पर संगठित किया।

एक व्यक्ति के रूप में डॉ. मुखर्जी अन्य लोगों से बहुत ऊँचे थे। वे राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोरचे के नेता इसलिए नहीं थे कि किसी ने उन्हें चुना था अपितु वही एकमात्र नेता थे। अपनी महानता के बावजूद डॉ. मुखर्जी प्रकृति से प्रजातांत्रिक थे। उन्होंने अपने नेतापन का प्रयोग नहीं किया बल्कि उसकी सेवा की। उन्होंने इस बात पर कभी ज़ोर नहीं दिया कि विभिन्न दल अपने विशिष्ट पक्षों को त्याग दें।

वास्तव में वे इस बात से कभी चिंतित नहीं हुए कि उनके घोषणा-पत्र में क्या लिखा है और सत्ता में आने पर वे क्या करेंगे। यथार्थवादी होने के कारण उनकी चिंता उस समय लोगों को पेश आनेवाली कठिनाइयों की थी और उन पर बड़ी मात्रा में उन्हें मतैक्य मिला। उनकी चीज़ों को समझने की अद्भुत कुशलता, दूसरों के दृष्टिकोण का सहानुभूतिपूर्वक सम्मान और उसकी व्याख्या तथा विश्लेषण की बड़ी क्षमता ने उन्हें बिखरे हुए लोगों को एकजुट करने में अद्भुत रूप से सक्षम बनाया था।

वे दूसरों से सहयोग माँगते हुए न तो अवमाननापरक व्यवहार करते थे और न ही क्षमा प्रार्थी की तरह। उनका व्यवहार शानदार और सुहावना होता था। राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोरचे का नेता बनने के लिए उन्होंने कभी जनसंघ के अध्यक्ष और नेता पद का त्याग नहीं किया और न ही किसी ने उनके दोनों पदों पर बने रहने पर प्रश्नचिह्न लगाया। जनसंघ उनके लिए जीवन-लक्ष्य था और जो लोग उनके साथ आए, वे जानते थे कि उन्हें नेता बनने का मोह नहीं है।

मोरचे का निर्माण इसलिए नहीं हुआ कि डॉ. मुखर्जी को ऐसा समूह चाहिए था, जिसका वे नेतृत्व कर सकें। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो वे सफल न हुए होते। सहयोग संभव हो सका, क्योंकि न तो उन्होंने ऐसी संस्था का निर्माण करना चाहा, जो अपने घटक दलों की उपेक्षा करे या उन्हें चुनौती दे और न ही उन्होंने दलों और व्यक्तित्वों को महत्त्व दिया।

विभिन्न समूह, जो उनके नेतृत्व में इकट्ठे हुए थे, अकेले-अकेले लंबा रास्ता पार कर चुके हैं। गत दस वर्षों के राजनीति के अनुभवों के पश्चात् भी बहुत कुछ ऐसा है, जो उन्हें एकजुट करने में सफल है। परंतु मुखर्जी के तरीक़े से एक प्रयास किया जाना बहुत आवश्यक है।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 8, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

21

मोरारजी पहले अपना घर सँभालें

प्रत्येक देशभक्त भारतीय को अनिवार्य बचत योजना तथा नए भारी करों के विरुद्ध आवाज़ उठानी चाहिए। इस कारण नहीं कि इन से हमारी आमदनी में कटौती होगी, परंतु इसलिए कि इनसे देश का आर्थिक धरातल ही हिल उठेगा। स्वर्ण-नियंत्रण क़ानून की भाँति अनिवार्य बचत योजना भी स्वयं अपनी कमियों के कारण विफल रहेगी। इससे लोगों की कठिनाइयाँ बढ़ जाएँगी, पर सरकारी कोष में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं होगी। इसका भार समान रूप में सब पर नहीं पड़ेगा। आय कर देनेवालों को तो छूट मिल सकेगी, परंतु मामूली आदमी के लिए तो जबरी लादा गया भार ही होगा। बड़ी-बड़ी पंचवर्षीय योजना के भार के कारण उत्पन्न आर्थिक ढाँचे के तनाव अनिवार्य बचत योजना के कारण और बढ़ जाएँगे।

सफल प्रतिरक्षा व्यवस्था के लिए सुसज्ज सेना के साथ संतोषजनक अर्थव्यवस्था और सिक्के के मूल्य में स्थिरता होना आवश्यक है। मुद्रास्फीति और भ्रष्टाचार के कारण पराजय के अनेक उदाहरण हैं। यदि पहले पिछले वित्त मंत्री महोदय देश की प्रतिरक्षा की अवहेलना करने के दोषी थे तो वर्तमान वित्त मंत्री देश की अर्थव्यवस्था को ध्वंस करने के भागीदार ठहराए जा सकते हैं।

अपनी सनक पूर्ति के लिए नई-नई योजनाएँ लाकर देश के साथ खिलवाड़ करते रहने के बजाय वित्त मंत्री महोदय को अपना घर सँभालना चाहिए। प्रशासन के व्यय में कड़ी बचत, बक़ाया रक़मों की वसूली और टैक्सों की चोरी रोकने से, प्रतिरक्षा और विकास कार्य, दोनों के लिए पर्याप्त धन जुटाया जा सकता है।

विदेशी नीति की भाँति आर्थिक नीतियों का व्यावहारिकता के आधार पर पुनः विचार तथा पुनर्रचना अत्यंत आवश्यक है। आंदोलन छेड़ने का जनसंघ का उद्‌देश्य यही है कि सरकार प्रतिरक्षा आधारित अर्थ योजनाएँ बनाएँ।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 15, 1963

□

22

कम्युनिस्ट पार्टी की चीन से साँठ-गाँठ

बंबई में दीनदयालजी की पत्रकार वार्त्ता।

कम्युनिस्ट अपनी देशभक्ति का कितना ही ढोल क्यों न पीटें, पर यह निर्विवाद है कि चीन के साथ साँठ-गाँठ कर वे चीनी आक्रमण का मार्ग साफ़ कर रहे हैं। इस संबंध में उन पर विश्वास करना देश को संकट में डालना होगा।

भारतीय कम्युनिस्टों की अंतरराष्ट्रीय कार्रवाइयों को सब जानते हैं। सितंबर मास में कम्युनिस्ट पार्टी ने देशव्यापी हड़ताल कराने की योजना बनाई है, जबकि चीनी आक्रमण की शंकाएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में कम्युनिस्ट पार्टी का आंदोलन चीन के साथ एक साँठ-गाँठ है और चीनी आक्रमण के लिए एक प्रकार से मदद भी है।

चीनी आक्रमण के संबंध में भारत सरकार की ढुलमुल नीति निंदनीय है। सरकार आसन्न ख़तरे की गंभीरता की उपेक्षा कर रही है।

भारत को सीमा विवाद के संबंध में चीन से वार्त्ता एकदम बंद कर देनी चाहिए तथा भारत को अपनी सीमाओं के चीन द्वारा ख़ाली कराए जाने के अतिरिक्त किसी भी समस्या के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करना चाहिए। भारत को चीन के साथ दौत्य संबंध अविलंब भंग कर देने चाहिए। चीन द्वारा बलात् अधिग्रहीत भूमि को पुनः प्राप्त करने की ज़िम्मेदारी पूरी तौर से सेना पर छोड़ देनी चाहिए तथा सेना के लिए अनिवार्य भरती प्रारंभ की जानी चाहिए।

अन्य देशों से सैनिक सहायता भारत को, जहाँ से जो भी मिलती हो, स्वीकार करनी चाहिए। इस समय पश्चिमी लोकतंत्रीय देशों से भी सहायता प्राप्त करनी चाहिए।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 5, 1963

□

23

समाज की रक्षा का व्रत ही रक्षाबंधन का संदेश

रा.स्व. संघ, लखनऊ शाखा पर रक्षाबंधन के अवसर पर दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग ।

रक्षाबंधन का त्योहार हमें अपने राष्ट्र जीवन के उन मान-बिंदुओं की रक्षा का स्मरण कराता है, जिनकी रक्षा में ही हमारी रक्षा है। जो व्यक्ति अपनी भी रक्षा का प्रयत्न नहीं करते, वे मानव नहीं हैं, पशु भी नहीं हैं, वे प्राणी भी नहीं हैं। आत्मरक्षा तो जीवन का लक्षण है। आघात का प्रत्याघात होना ही चाहिए। किंतु दुर्भाग्य है कि आज अपना समाज अपने इस मूल कर्तव्य अर्थात् आत्मरक्षा की ओर से भी उदासीन है। आत्महत्या की ओर इस प्रकार से अग्रसर समाज की रक्षा का व्रत ही रक्षाबंधन का वास्तविक संदेश है। संघ के प्रत्येक स्वयंसेवक को इस व्रत का निर्वाह करते हुए समाज को भी इस भावभूमिका पर जाग्रत् करना होगा।

केवल लकीर पीटना नहीं

आज का यह त्योहार हिंदू समाज न मालूम कितने दिनों से मनाता चला आ रहा है और आज भी घर-घर में यह त्योहार मनाया जाएगा। बहनें अपने भाइयों को तथा ब्राह्मण बाक़ी समाज के लोगों को आज राखी बाँधेंगे। इस प्रकार से वे सहस्रों वर्षों में चली आई परंपरा का रूढ़ि के रूप में पालन करते हैं, किंतु इसके पीछे का भाव भूल जाने के कारण यह केवल लकीर पीटने के समान है। लकीर पीटने से यह तो लाभ ज़रूर होता है कि हम एक बात को हमेशा याद रख पाते हैं, पर इतने मात्र से उसका हम समुचित लाभ नहीं उठा पाते।

ममत्व की रक्षा के लिए प्रेरक

आज जब देश की दु:स्थिति की चर्चा होती है, तो लोग इस स्थिति की ज़िम्मेदारी किसी-न-किसी दूसरे व्यक्ति के ऊपर मढ़ देते हैं और स्वयं शांत होकर बैठ जाते हैं। इस प्रकार केवल दूसरों पर ही ज़िम्मेदारी डालने का काम इस बात का परिचायक है कि मानो मातृभूमि से उनका कोई ममत्व ही नहीं है। मुहल्ले में कोई कपूत पड़ोसी यदि अपनी माँ की सेवा-शुश्रूषा न करे, तब तो एक बार यह मान्य हो सकता है कि लोग ऐसे कपूत की निंदा करके अपना समाधान कर लें, किंतु मातृभूमि के संबंध में इस प्रकार की बात कभी भी शोभा नहीं दे सकती। ममता ही रक्षा की प्रेरक होती है। यही बात मातृभूमि के संबंध में भी है। दूसरे करते हैं अथवा नहीं, यह हमारे विचार का विषय नहीं, हम करेंगे, क्योंकि मातृभूमि हमारी है, अपनी है। चित्तौड़ के प्रति अति ममत्व की भावना ने ही राणाप्रताप को दुसह दु:ख सहने की प्रेरणा दी थी।

जो किसी ने नहीं किया, वह संघ कर रहा है

रा.स्व. संघ किसी कहानी के उस 'लखटकिया राजा' के समान है, जो अपना राज्य छिन जाने पर एक अन्य राजा के यहाँ इस शर्त पर नौकर रखा गया था कि जो काम कोई नहीं कर सकता, वह काम वह करेगा और कहानी में ऐसा वर्णन भी आता है कि उसने ऐसे-ऐसे साहसी काम भी किए, जिसे अन्य कोई नहीं कर सकता था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देश में शुद्ध राष्ट्रभाव पर आधारित एक सामर्थ्यशाली संगठन निर्माण कर रहा है। आज देश में कोई ऐसी संस्था नहीं है, जो इस प्रकार केवल संगठन का कार्य कर रही हो। वस्तुत: किसी में यह करने की सामर्थ्य ही नहीं। केवल संघ इस कठिन कार्य को कर रहा है।

कुछ लोग बड़ी जल्दबाज़ी में संगठन खड़ा करने के लिए अन्य मार्गों के अनुसरण की बात करते हैं। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि संगठन कार्य की यह पद्धति संघ के द्वारा अनुभूत है। संघ ने जिस पद्धति को अपनाकर समग्र राष्ट्र को संगठन के सूत्र में बाँधा है, उसमें बदलाव लाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सत्य है कि आज अधिक संकट उपस्थित हैं। हमें अपना संगठन खड़ा करने में शीघ्रता करनी होगी, पर शीघ्रता का अभिप्राय यह तो नहीं है कि जो हमारी पद्धति है, हम उसे ही छोड़ बैठें। ऐसा सोचना या करना तो ऐसे ही होगा जैसे कि कोई व्यक्ति गाड़ी पकड़ने के लिए अपनी गति तीव्र करने के बजाय कैसे गाड़ी मिलेगी, कैसे गाड़ी मिलेगी, यही रट लगाता रहे। सामने यदि अधिक संकट है और समय कम है तो हमें अपने कार्य में तेज़ी लानी होगी। तेज़ी करने से समय की कमी पूरी की जा सकती है। अन्य कोई उपाय नहीं है।

भविष्य की आशा–संघ

आज जब शेष समाज अपनी मोहनिद्रा में ग्रस्त है अथवा अन्य जाग्रत् लोग अपने स्वार्थों के लिए लड़ते–झगड़ते हुए दीखते हैं, ऐसी स्थिति में देश के भविष्य का ज़िम्मेदार कौन होगा? केवल संघ के स्वयंसेवक, जो आज इस समय अपने देश के प्रति कर्तव्य के लिए जाग्रत् हैं। हमें स्वयं और भी जागरूकता और उत्तरदायित्व के साथ समाज को जगाना होगा। संघ जागेगा तो समाज जागेगा। मोहल्ले–मोहल्ले में लगनेवाली शाखा उनके नानाविधि उत्साहपूर्ण कार्यक्रमों को देखकर समाज का मनोबल बढ़ेगा और समाज भी उठ खड़ा होगा। मोहल्ले–मोहल्ले में पहरेदार की भाँति जागती रहनेवाली शाखाएँ ही इस बात का प्रमाण होंगी कि समाज जाग रहा है। इस प्रकार जाग्रत् समाज की ओर कुदृष्टि उठाने का साहस फिर किसी को भी नहीं हो सकता। निराशा आशा में बदल जाएगी, हम विजयी होंगे।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 12, 1963

□

24

यह सरकार के अंत की शुरुआत है

आचार्य कृपलानी का पंडित नेहरू की सरकार के विरुद्ध लोकसभा में विचारार्थ स्वीकार किया गया 'अविश्वास प्रस्ताव' लोकसभा के इतिहास में चर्चा के लिए प्रथम स्थान पर रहेगा।

मतदान के समय इसका परिणाम पूर्व निर्धारित ही था। केवल असावधान और बातूनी लोगों को ही इससे अफ़सोस हुआ होगा। जब तक कांग्रेस का एक बड़ा वर्ग सबको आश्चर्य में डालते हुए प्रस्ताव के पक्ष में अपनी पार्टी के विरुद्ध मतदान नहीं करता, तब तक इस प्रस्ताव के पारित होने की कोई संभावना नहीं थी। परंतु यह और भी आश्चर्यजनक होता, यदि कांग्रेसी ऐसा आश्चर्यजनक कार्य करने में सक्षम होते। यदि वे ऐसा करने में सक्षम होते तो निंदा प्रस्ताव लाने की आवश्यकता ही न पड़ती। स्थितियों में बहुत पहले सुधार हो गया होता।

चार दिन की बहस ने विपक्ष को सरकार की कमियों को रेखांकित करने का अवसर दिया है। इस प्रस्ताव के पक्षधर विपक्षी दल विविध प्रकार के थे। इनके सैद्धांतिक और कार्यक्रमपरक भेद सर्वविदित हैं। परंतु ग़ैर साम्यवादी विरोधी दलों के वक्ताओं को यह श्रेय देना होगा कि सरकार की नीतियों पर प्रहार करते हुए उन्होंने आपसी भेदों को उस क्षण में भुला दिया और जब हम देखते हैं कि यह सब बिना किसी पूर्व सहमति और विचार-विमर्श के हुआ तो हमें भारतीय राजनीति के भविष्य के विषय में आशा बँधती है।

विपक्ष के प्रदर्शन के ठीक विपरीत कांग्रेस के वक्ता, कांग्रेस संसदीय कार्यालय द्वारा दिए गए शब्दाडंबरपूर्ण वक्तव्यों के रहते हुए भी संगठित रूप से सरकार के पक्ष

में तथ्य न जुटा पाए अथवा तर्क न दे पाए। उनके अधिकांश भाषण यदि वक्ताओं का नाम हटाकर छापे जाएँ और उसमें नेहरू के समर्थन में यहाँ-वहाँ कृत्रिम रूप से पिरोए गए वाक्य संपादित कर दिए जाएँ तो वे आसानी से विपक्षियों के भाषण समझे जा सकते हैं, क्योंकि मंत्रियों ने अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुए दोष अन्य मंत्रियों पर लगाए।

मंत्रिमंडल में सामूहिक दायित्व की भावना का अभाव इतना स्पष्ट था कि उसे कोई अनदेखा नहीं कर सकता।

सरकारी पक्ष का मूल स्वर यह था कि जनता ने कांग्रेस को पिछले चुनावों में चुना था, परंतु डॉ. लोहिया ने ठीक ही याद दिलाया कि तब से जमुना में बहुत पानी बह चुका है। अक्तूबर-नवंबर की घटनाओं ने पंडित नेहरू और कांग्रेस के अनेक समर्थकों का मोहभंग किया है।

सभी निहित स्वार्थियों की तरह कांग्रेस भी अपने अतीत से चिपके रहना चाहती है और गतिशील विश्व की स्थितियों का उत्तर नहीं देना चाहती। यदि गतिशीलता नहीं होगी तो प्रजातंत्र कम प्रजातांत्रिक रहेगा। प्रजातंत्र ऐसे लोगों के हाथों में सुरक्षित नहीं है, जो निष्क्रिय हो चुके हैं और जिनके विचारों में जड़ता आ चुकी है।

जब कुछ कांग्रेसियों ने विपक्ष की तथाकथित कमियों के आधार पर अपने आपको उचित सिद्ध करने का प्रयास किया तो यह वास्तव में हास्यप्रद लगा। पांडुरोग के रोगियों को आम लोगों में घुलने-मिलने देने और उनको नियंत्रित करने का अधिकार केवल इस आधार पर नहीं दिया जा सकता कि उनमें से भी कुछ को खुजली होती है या उनमें कुछ पांडुरोग ग्रस्त हैं। इससे भी बढ़कर बात यह है कि यहाँ विपक्ष में विश्वास की बात नहीं हो रही, यहाँ सरकार में अविश्वास की चर्चा हो रही है। वर्तमान सरकार के बने रहने के पक्ष में कोई तर्क नहीं दे पाए।

प्रस्ताव पर चर्चा समाप्त हो चुकी है। परंतु क्या उन लोगों के प्रयत्नों पर भी विराम लग जाएगा जो पचास से अधिक ग़ैर-साम्यवादी, विरोधी दलों के सांसदों को प्रस्ताव के पक्ष में लाने में सफल हुए? नहीं, निश्चित रूप से नहीं। इस प्रस्ताव से सरकार के अंत का प्रारंभ माना जाना चाहिए, जिसे लोहिया ने ठीक ही 'राष्ट्रीय अपमान' कहा है। ऐतिहासिक प्रस्ताव इतिहास के निर्माण में सहायक होगा।

चर्चा के समय विपक्षियों का काम बहुत आसान रहा, परंतु चर्चा के पश्चात्, अब उनकी परीक्षा की घड़ी है। क्या वे अब और अधिक निकट आएँगे या फिर बिखर जाएँगे? विपक्ष के नेता उस कार्य को संपन्न करेंगे, जो भाग्य से उनके हिस्से आया है, यदि वे बदलते समय की चुनौतियों को स्वीकार करेंगे।

यह एक व्यावहारिक प्रश्न है और इसका उत्तर सहज-ज्ञान से मिलेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि विभिन्न विपक्षी दलों की अनौपचारिक बैठकों ने जो भूमिका आज तक निभाई है, वह आगे भी जारी रहेगी और वे संयुक्त कार्रवाई का कोई ऐसा रास्ता खोजेंगे, जिससे वर्तमान कांग्रेस सरकार का विकल्प तैयार किया जा सके।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 26, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

25

कामराज-योजना पर एक दृष्टि

त्याग की कामराज योजना[1] से या वास्तव में यदि इसमें त्याग की महान् भावना हो तो इसे यतिराज योजना कहना चाहिए। धारदार बनी पंडित नेहरू की कुल्हाड़ी का प्रथम प्रहार 6 केंद्रीय मंत्रियों और उतने ही राज्यों के मुख्यमंत्रियों पर हुआ है। यह हथकंडा जर्जर कांग्रेस को भ्रष्टाचार तथा सत्तालोलुपता के जीर्ण रोग से मुक्त करने के लिए अपनाया गया है।

इसके एक क्रांतिकारी पग होने का दावा किया जा रहा है। किंतु सनसनी पैदा करने का अर्थ क्रांति नहीं है और न क्रांति का अर्थ आवश्यक रूप से प्रगति ही है। इन बारह विश्वस्तों या एक दर्जन अभिशप्त व्यक्तियों को अब आप चाहे जिस दृष्टि से देखें के बहिर्गमन से भरभराकर ढहती कांग्रेस को कैसे जीवनदान मिलेगा? यदि ये लोग इतने ही योग्य और अच्छे प्रशासक हैं, तो इनके चले जाने से सरकार ऐसे योग्य व्यक्तियों की सेवाओं से वंचित हो जाएगी। और इस कठिन घड़ी में देश इस प्रकार के विलास को वहन करने की स्थिति में नहीं है। किंतु यदि उन्हें इस कारण पदच्युत किया गया है कि वे बोझ बन गए थे, तो वे पतनोन्मुख कांग्रेस की क्या सेवा कर सकेंगे? रोगाणुयुक्त रक्त यदि किसी रोगी के शरीर में प्रविष्ट कराया जाए तो वह रोगी के लिए घातक ही सिद्ध होगा।

अ.भा. कांग्रेस कमेटी ने 'विक्टोरिया क्रॉस' या 'अशोक चक्र' (?) प्रदान करने के लिए ऐसे वीरों को चुन लेने का सर्वाधिकार पंडित नेहरू को दे दिया। उन्होंने पहली

---

1. 1962 के युद्ध में मिली पराजय, उत्तर भारत में अन्य दलों की बढ़ती ताक़त और उपचुनाव में मिली करारी हार से हताश कांग्रेस पार्टी में नई जान फूँकने के लिए मद्रास के तत्कालीन मुख्यमंत्री कुमारस्वामी कामराज ने पं. नेहरू को एक योजना पेश की। इसके अनुसार तत्कालीन केंद्रीय मंत्रियों तथा मुख्यमंत्रियों को पद छोड़कर संगठन के लिए काम करना था। इसके बाद अगस्त 1963 में नेहरू ने छह कैबिनेट मंत्रियों (मोरारजी देसाई, लाल बहादुर शास्त्री, एस.के. पाटिल, जगजीवन राम, बी. गोपाल रेड्डी तथा के.एल. श्रीमाली) और छह मुख्यमंत्रियों (के. कामराज, जे.बी. पटनायक, बख़्शी गुलाम मोहम्मद, सी.पी. गुप्ता, बिनोदानंद झा तथा पी.ए. मंडलॉय) के इस्तीफ़े ले लिये थे।

सूची प्रस्तुत करने की कृपा कर दी है। अब यह तो अनुमान लगाने की बात है कि क्या वह चुनाव यथार्थपरक दृष्टि से किया गया है? उनमें से कुछ ने अपना नाम सूची में सम्मिलित किए जाने पर आश्चर्य व्यक्त किया, उससे यह प्रकट है कि वे अपने त्याग-पत्र को वास्तविक अर्थ में त्याग-पत्र नहीं मानते थे। स्पष्ट है कि वे नया कार्यभार उस निष्ठा के साथ नहीं सँभालने जा रहे हैं, जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है, अर्थात् सत्तर वर्षीय कांग्रेस में नया जीवन और नई शक्ति फूँकने का कार्य। वे विश्वासाभिव्यक्ति की चाल के शिकार बन गए हैं।

केवल अनभिज्ञ या भोले-भाले व्यक्ति ही इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि कांग्रेस सरकार की व्याधियाँ केवल ऐसे कुछ लोगों के बहिर्गमन से दूर हो सकती हैं, जो अपने नेता द्वारा आकल्पित और निर्धारित नीतियों के केवल क्रियान्वयनकर्ता थे। मंत्री आए हैं और चले गए हैं, किंतु स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। यह सर्वज्ञात है कि प्रधानमंत्री को छोड़कर अन्य मंत्रियों का कोई विशेष मूल्य नहीं है। कश्मीर-समस्या, नेहरू-लियाक़त-समझौता,[2] पंचशील संधि, पंचवर्षीय योजनाएँ, समाजवादी ढाँचे का उद्देश्य और वॉयस ऑफ अमरीका कांड—ये सभी बातें इस तथ्य का द्योतन करती हैं कि मंत्रिमंडल के संयुक्त उत्तरदायित्व का कभी निर्वाह नहीं किया गया। आज कामराज योजना के बाद भी, पंचवर्षीय योजनाएँ और उनके धर्मपिता ज्यों के त्यों हैं। प्रधानमंत्री का व्यक्तिगत प्राबल्य भी यथावत् है। लोगों को दुष्प्रभावित करनेवाली नीतियाँ भी ज्यों की त्यों हैं। इसके विपरीत, जैसा कि श्री एन.वी. गाडगिल ने बताया था, इस सबसे प्रधानमंत्री को और अधिक अधिकार मिल जाएँगे। वस्तुतः कामराज योजना ही उसी लक्ष्य से बनाई गई थी। इसका उद्देश्य यही था कि लोकसभा में अविश्वास-प्रस्ताव के कारण पंडित नेहरू का जो तेज छूट गया था, उसे फिर से जाग्रत् किया जा सके। किंतु कांग्रेस की अन्य योजनाओं के समान ही यह योजना भी असफल हो जाएगी।

बहुत पहले, 1947 में, कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस सरकार को कांग्रेस संस्था का अनुवर्ती बनाना चाहा था। किंतु पंडित नेहरू सहमत नहीं हुए। गांधीजी उसे लागू नहीं करा सके। और आचार्य कृपलानी को त्याग-पत्र[3] देना पड़ा।

---

2. 8 अप्रैल, 1950 को नई दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाक़त अली ख़ान के बीच दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के अधिकार को सुरक्षित रखने, लूटी गई संपत्ति की वापसी और जबरन धर्म परिवर्तन पर रोक के उद्देश्य से समझौता हुआ, जिसे 'नेहरू-लियाक़त पैक्ट' या 'दिल्ली समझौता' कहा जाता है। लेकिन इस पैक्ट में पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से निष्कासित होकर पश्चिम बंगाल आए क़रीब दस लाख से ज़्यादा हिंदू शरणार्थियों के मुद्दे को शामिल न करने के विरोध में तत्कालीन उद्योग व आपूर्ति मंत्री डॉ. श्यामाप्रसाद मुख़र्जी तथा वित्त मंत्री क्षितिज चंद्र नियोगी ने नेहरू कैबिनेट से इस्तीफ़ा दे दिया था। श्यामा बाबू हिंदुओं पर हो रहे दमन व निष्कासन के लिए पाकिस्तान को ज़िम्मेदार मानते थे।
3. आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस से त्याग-पत्र देकर जून 1951 में किसान मज़दूर प्रजा पार्टी (के.एम.पी.पी.) की स्थापना की थी। आगे चलकर सितंबर 1952 में सोशलिस्ट पार्टी तथा इसका विलय हुआ और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी बनी।

इतने पर भी प्रधानमंत्री को यह अधिकार देने के बदले कि वे उन लोगों का चुनाव करें कि कौन-कौन त्याग-पत्र दें, यदि यह अधिकार कांग्रेस-अध्यक्ष को दिया गया होता तो स्थिति अलग होती। स्पष्ट ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अपने अध्यक्ष में विश्वास नहीं है या उसमें इसे अभिव्यक्त करने का साहस नहीं है और जब अ.भा. कांग्रेस कमेटी का एक रबर-स्टांप से अधिक कोई व्यक्तित्व नहीं है, या जब वह कोई स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकती, तो उसके प्रस्तावों का कोई अर्थ नहीं है।

यद्यपि हमारे मन में इस योजना के उद्देश्य की सफलता के बारे में संदेह बना हुआ है, तथापि स्थिति सुधारने की दिशा में प्रधानमंत्री तथा उनके कांग्रेसी साथियों के प्रयत्नों की सफलता की हम कामना करते हैं। किंतु हम जनता को यह चेतावनी भी देना चाहते हैं कि वे आत्मतुष्ट न बनें और अपनी सतर्कता में शिथिलता न आने दें। जिनको कोई व्यसन लग जाता है, उनका सुधरना सरल नहीं, और बाद में पश्चात्ताप करने तथा अपने को कोसते बैठने की अपेक्षा सतर्क और सशक्त रहना अच्छा है।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 2, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

26

क्या हमने चीनी आक्रमण से शिक्षा ली?

गत वर्ष उत्तर-पूर्वी सीमांत (N.E.F.A.) और लद्दाख में हमारे सैनिक पराभव की जाँच की रिपोर्ट जनता और संसद् को न बताते हुए प्रतिरक्षा मंत्री ने जाँच के मोटे-मोटे निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के लिए कहा है। उनके वक्तव्य के अनुसार जाँच का उद्देश्य उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति की खोज करना नहीं, बल्कि उससे शिक्षा लेना है। अत: प्रतीत होता है कि उत्तरदायी व्यक्ति की ओर इंगित करने के स्थान पर प्रतिवेदन में केवल गोलमटोल बातें हैं। इस प्रकार के झाड़ूफेर ढंग के निष्कर्षों से कुछ थोड़े लोगों की रक्षा तो हो जाती है, किंतु सभी लोगों पर अपराध का कलंक लग जाता है। इसका कर्तव्यनिष्ठों पर अनुत्साहकारक प्रभाव पड़ता है, जबकि लापरवाह व्यक्ति दंड से बच जाता है। इसमें कर्तव्यच्युत व्यक्ति की कोई शिक्षा लेने की संभावना नहीं है, विशेषकर तब जब उसे पश्चात्ताप नहीं हो। हम आशा करते हैं कि दोषी व्यक्ति को संरक्षण देने का प्रयास नहीं किया जाएगा।

प्रतिरक्षा मंत्री के वक्तव्य से जहाँ तक आभास मिलता है, रिपोर्ट में कोई ऐसी बात नहीं कही गई है, जो पहले कही गई हो। अब तक अधिकृत प्रवक्ता के अनुसार भूभाग-विशेष की कठिनाइयाँ, उपकरणों की कमी, सैनिक संख्या की कमी और आक्रमण की आकस्मिकता आदि हमारे पराभव के कारण थे। किंतु लोगों को कुछ और बात का भी संदेह था और जाँच से यह बात प्रकट है कि सर्वोच्च स्तर पर घटना के पूर्वज्ञान का अभाव था। रिपोर्ट में ऊँचे सैनिक अधिकारियों पर निचले एवं स्थानीय स्तर पर युद्ध-कार्य में हस्तक्षेप करने के आरोप लगाए गए हैं। वक्तव्य के अनुसार ये सब बातें प्रचलित संहिता और पद्धति के परित्याग की सूचक हैं।

जाँच में स्पष्ट रूप से नीति निर्माताओं पर सेना का समुचित निर्देशन करने में विफल रहने का दोष लगाया गया है। वक्तव्य में कहा गया है कि बड़ी-से-बड़ी और

सर्वोत्तम प्रकार से सुसज्जित सेनाओं को भी अपनी सरकारों से समुचित मार्गदर्शन तथा महत्त्वपूर्ण निर्देश प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है।

स्पष्ट ही सेना नहीं, सरकार भी दोषी रही। सरकार ने और प्रतिरक्षा मंत्रालय ने, जिसके प्रधान उस समय श्री वी.के. कृष्ण मेनन थे, कम्युनिस्ट चीन के साथ युद्ध की संभावना कभी मान्य नहीं की। परिणामस्वरूप, सेना युद्ध की दृष्टि से तैयार नहीं थी। इसमें आश्चर्य नहीं है कि आरंभ में हमारी सेनाओं को बुरी स्थिति में अच्छी कारगुजारी कर दिखाने का प्रयास करते हुए पराभव सहना पड़ा। किंतु इसके पूर्व कि वे अपने साधन सुधार सकें और युद्ध की गति बदल दें, अपमानास्पद एकपक्षीय युद्ध विराम स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार हमारी प्रतिरक्षा सेनाओं पर जो कलंक का टीका लगा हुआ है, उसके लिए सरकार उत्तरदायी है।

इस संबंध में इस बात के संकेत नहीं हैं कि सरकार ने अतीत के अनुभवों से कोई शिक्षा ग्रहण की है। क्या सेना को कम्युनिस्ट चीन के साथ युद्ध के बारे में स्पष्ट निर्देश दिए गए थे? प्रधानमंत्री की उक्तियाँ गोलमोल हैं और वे सारे प्रश्न को मेघाच्छादित कर देती हैं। शत्रु से पहल छीन लेने और खोए क्षेत्र को पुनः हस्तगत करने की बात तो दूर, प्रधानमंत्री चीनी उद्देश्यों के बारे में 1963 के सितंबर में भी उतने ही भ्रम में हैं, जितने वे 1962 के सितंबर में थे। राज्यसभा में विदेश-संबंधों पर बहस के समय वे कम्युनिस्ट चीन के साथ 'सीमा-मतभेदों' को सुलझाने के लिए शांतिपूर्ण उपायों की ही रट लगाते रहे। भारत सरकार अभी भी कोलंबो प्रस्तावों से चिपकी हुई है और किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा मध्यस्थता के लिए भी तैयार है। ये सब सैनिक दृष्टि से किए गए विचार नहीं हैं और मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक दृष्टि से देश को तथा सशस्त्र सेनाओं को चीनी ख़तरे का सामना करने के लिए तैयार नहीं कर सकते।

प्रतिरक्षा मंत्री के वक्तव्य भी इसी बात के संकेत दे रहे हैं कि सरकार ने इस विषय में कोई नीति नहीं निर्धारित की है। चतुर्थ डिवीजन को गत नवंबर में प्राप्त अपयश से मुक्त करते हुए प्रतिरक्षा मंत्री ने यह आशा व्यक्त की, "सुप्रसिद्ध चतुर्थ डिवीजन, यदि कभी भविष्य में हमारे देश पर कोई आक्रमण हुआ तो, अन्य अनेक युद्ध जीतने के लिए जीवित रहेगा।" इस प्रकार उद्धार की आशा हमारी ओर से किसी दृढ कार्रवाई में नहीं, बल्कि चीन द्वारा भविष्य में और आक्रमण किए जाने में निहित है।

इन सबका अर्थ गत वर्ष की अपमानास्पद और दुःखद घटनाओं को अनदेखा कर देना है। खोए हुए क्षेत्र और खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से प्राप्त करने की सरकार की कोई इच्छा नहीं प्रतीत होती। यह गत नवंबर की तुलना में बहुत नीचे खिसक आना है। यह वही स्थिति है, ज़िसे सरकार ने भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री के दुष्प्रभाव के अंतर्गत अपनाया था। जब तक इसमें परिवर्तन नहीं होता, तब तक सरकार की प्रतिरक्षा नीति

उपयोगी नहीं बन सकेगी। वह लोगों को प्रेरणा नहीं दे सकेगी। श्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण[1] ने प्रतिरक्षा मंत्री का पदभार ग्रहण करते समय देश की परंपराओं का उल्लेख किया था। उन्हें अपने को उनके अनुरूप सिद्ध करना चाहिए।

यह आश्चर्यजनक है कि प्रधानमंत्री ने चीन और पाकिस्तान के प्रति व्यवहार में दो मानदंड अपनाए हैं। वे पाकिस्तान की बढ़ रही शत्रु-भावना को ठीक-ठीक समझते हैं और कहते हैं, 'यह स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थितियों में, अर्थात् जब पाकिस्तान चीन के साथ अधिकाधिक मैत्री का प्रयत्न कर रहा है, पाकिस्तान के साथ संतोषजनक निपटारे की आशा नहीं है।' उनका यह भी मत है कि किसी भी समझौते पर पहुँचने से पूर्व यह आवश्यक है कि पाकिस्तान अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करे।

इस संबंध में पाकिस्तान का उतना ही दोष है जितना चीन का। यदि अपनी भारतद्वेषी मनोवृत्ति के कारण पाकिस्तान चीन के साथ साँठ-गाँठ कर रहा है, तो चीन भी पाकिस्तान से हाथ मिला रहा है। स्पष्ट ही, चीन के साथ कोई समझौता किया जा सके, इसके पूर्व चीन के रुख में भी परिवर्तन होना चाहिए। इसलिए क्या प्रधानमंत्री को पाकिस्तान की भाँति ही चीन के साथ भी समझौते की संभावना को समाप्त नहीं मानना चाहिए? केवल यही सम्मानास्पद और यथार्थ होगा।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 9, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

---

1. वी.के. कृष्ण मेनन द्वारा रक्षा मंत्री का पद छोड़ने के बाद महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण (1913-1984) को भारत का रक्षा मंत्री बनाया गया। वे इस पद पर 1962 से 1966 तक रहे थे।

27

श्री केनेडी के रुख़ में कमी क्या है

राष्ट्रपति केनेडी और प्रधानमंत्री मैक्मिलन ने एक बार फिर भारत और पाकिस्तान से कश्मीर समस्या को आपसी वार्त्ता से सुलझाने का आग्रह किया है। इस विषय में उनके विचार सर्वविदित हैं, परंतु उनसे चिपके रहना और ऐसे समय में उन्हें दुहाराना जबकि सभी वार्त्ताओं में पाकिस्तान का दुराग्रह स्पष्ट हो चुका है और वह पश्चिम के साथ सहमति के बावजूद चीन के साथ तरह-तरह के संबंध बना रहा है और उससे समझौते और संधियाँ कर रहा है, यह कुछ हैरान कर देनेवाला व्यवहार है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो उन्होंने पाकिस्तान के दुष्कर्मों से आँख मूँद रखी है या फिर वे पाकिस्तान की ब्लैकमेल की चालों के शिकार हो गए हैं। स्पष्ट है कि जो शक्तियाँ साम्यवाद के क्रूर कृत्यों पर अंकुश लगाने में प्रयत्नशील हैं, उन्हें इससे न ताक़त मिलेगी और न उनका आत्मविश्वास जगेगा। कहा जा रहा है कि राष्ट्रपति केनेडी ने कहा है कि अमरीका चाहेगा कि भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर समस्या का समाधान हो जाए, क्योंकि अमरीका की दृष्टि में इस उपमहाद्वीप को साम्यवाद के शैतानी पंजों से मुक्त रखने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। किसी भी पुरानी समस्या का समाधान सदा ही अच्छा होता है, परंतु यह आशा करना कि इस समस्या के समाधान से पाकिस्तान और भारत की चीन से रक्षा में सहायता मिलेगी, शायद न्यायसंगत नहीं है। वास्तव में साम्यवाद पर लगाम तभी लगाई जा सकती है, जब इसके सारे ख़तरनाक आयामों को पूरी तरह समझ लिया जाए और अन्य समस्याओं को गौण स्तर पर रखा जाए। परंतु यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि पाकिस्तान की रुचि साम्यवादी विस्तारवाद को रोकने में कम और कश्मीर हड़पने में ज़्यादा है।

पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब ख़ाँ ने पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तावित अनाक्रमण संधि का प्रस्ताव ठुकरा दिया, परंतु ऐसी ही संधि चीन से की है। वे एक साझे सुरक्षा समझौते

पर भी हस्ताक्षर करने जा रहे हैं और अलग-अलग अथवा इकट्ठे होकर भारत पर आक्रमण का षड्यंत्र कर रहे हैं। चीन और पाकिस्तान द्वारा अग्रिम आक्रमण के लिए सेनाएँ अपनी सीमाओं के साथ-साथ तैनात कर दी गई हैं, पाकिस्तानी जासूसों की गतिविधियाँ भारत में प्रकाश में आई हैं और भारत में सी.पी.आई. के रहते चीन की जासूसी विषयक क्षमताओं का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। स्पष्ट रूप से पाकिस्तान साम्यवाद के विरोध में नहीं है, भारत विरोधी है।

शायद यह उसकी जन्मजात प्रकृति है। परंतु उससे बातचीत करते समय हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा। पश्चिम ने इसी तथ्य की अनदेखी की है। भारत को हानि पहुँचाने के लिए पाकिस्तान किसी भी सीमा तक जा सकता है। इसके लिए वह पवित्र क़समों को तोड़ सकता है और अंतरराष्ट्रीय संधियों का उल्लंघन कर सकता है। वह भारत से द्वेष निभाने के लिए एक धोखेबाज़ शक्ति को गले लगाने को तैयार है, भले ही वह उसकी पीठ में छुरा घोंप दे। क्या यह सब विस्तारवादी साम्यवाद की चुनौती से लड़ने की प्रतिबद्धता अथवा इच्छा का भी सूचक है?

कुछ लोग यह मानते हैं कि पाकिस्तान की वर्तमान चालबाज़ियाँ कश्मीर समस्या के न सुलझने के कारण हैं। यदि एक बार इस विषय में वह संतुष्ट हो गया तो उसका दृष्टिकोण बदल जाएगा। तब भारत और पाकिस्तान साम्यवादी चीन के विरुद्ध एक होकर लड़ेंगे। हम इस बात से सहमत नहीं हैं और पाकिस्तानी नेताओं के कथन हमारे इस मत को पुष्ट करते हैं। पाकिस्तान के विदेश मंत्री भुट्टो ने घोषणा की है कि यदि पाकिस्तान को पूरा कश्मीर भी मिल जाए तो भी वह भारत से सहयोग नहीं करेगा। कारण कुछ भी हो, यह बात स्पष्ट है कि पाकिस्तान युद्धप्रिय चीन से टकराने में सक्षम नहीं है। गत अक्तूबर-नवंबर में भारत के दुःखद अनुभव ने दक्षिण-पूर्व एशिया के चीन के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। वे सब हतोत्साहित हैं। और पाकिस्तान भी, अमरीका से मिलनेवाली भरपूर सैनिक सहायता के बावजूद इसका अपवाद नहीं है। यदि उसे कश्मीर चाँदी की तश्तरी में रखकर पेश कर दिया जाए तो भी चीन के प्रति उसकी दृष्टि में परिवर्तन नहीं होगा। वह केवल गत पतझड़ की घटनाओं के प्रभाव को निरस्त करके ही संभव है। जैसी स्थितियाँ हैं, उनमें भारत ही एकमात्र देश है, जो अन्य प्रजातांत्रिक देशों से कुछ सहायता पाकर साम्यवादी चीन पर अंकुश लगा सकता है। अन्य राष्ट्र यदि वे चाहें तो भी भौतिक दृष्टि से असमर्थ हैं और इतनी शक्ति नहीं जुटा पाएँगे कि चीन जैसे आक्टोपस पर अंकुश लगा सकें। यही कारण है कि कम्युनिस्ट चीन की शक्ति के विरुद्ध खड़े किए अनेक क़िले बुरी तरह ध्वस्त हुए हैं। पाकिस्तान की वर्तमान नीति के मूल में दो मनोग्रंथियाँ हैं, एक है भारत के प्रति गहरी घृणा और दूसरी दबंग के आगे समर्पण। जब तक चीन को भारत से किए दुर्व्यवहार के लिए सबक नहीं

सिखाया जाता, तब तक किसी प्रकार की ख़ुशामद अथवा बलप्रयोग से दक्षिण-पूर्व एशिया के देश दबंग और न सुधरनेवाले चीन के विरुद्ध मिली-जुली सुरक्षा व्यवस्था की किसी नीति पर चलने को तैयार न होंगे।

इससे भी बढ़कर पाकिस्तान को अपने पक्ष में करने की चिंता में हम किसी ऐसे क़दम की कल्पना नहीं कर सकते, जिससे साम्यवादी आक्रांता से लड़ने की हमारी इच्छा और क्षमता को आघात पहुँचे। वर्तमान में जो स्थिति है, उसमें कुछ मित्रों द्वारा कश्मीर समस्या के जो समाधान सुझाए गए हैं और आश्चर्य है कि राजगोपालाचारी ने भी जिन पर सहमति जताई है, उनसे लोगों का मनोबल टूटेगा। पिछली भारत-पाक वार्त्ता में युद्ध विराम रेखा के साथ-साथ बस्तियाँ बसाने का प्रस्ताव भारत द्वारा रखा गया था। परंतु पाकिस्तान इससे संतुष्ट न था। राष्ट्रवादी भारत इस छूट को कभी सहज रूप से स्वीकार नहीं करता, क्योंकि यह आक्रमणकारी को पुरस्कृत करना होता। इससे लोग हतोत्साहित होते और भारत के साम्यवादियों ने भी साम्यवादी चीन के साथ ऐसे ही समझौते के लिए शोर मचाया होता। यह सब भारत के सम्मान और अपनी क्षेत्रीय एकता-अखंडता रक्षा के दृढ निश्चय के अनुरूप न होता।

आइए, वे सब लोग जो साम्यवादी चीन के शैतानी इरादों को मात देना चाहते हैं, व्यामोहग्रस्त पाकिस्तान को अनावश्यक महत्त्व देना बंद करें और इसकी जगह भारत को नैतिक, सैनिक, आर्थिक दृष्टि से मज़बूत करने पर ध्यान केंद्रित करें, ताकि साम्यवादी चीन को झटका दे सकें और सत्तालोलुप चीन द्वारा जो संतुलन नष्ट किया गया है, उसे पुनः स्थापित करें। इसी से पाकिस्तानी नेताओं का मनोवैज्ञानिक असंतुलन भी ठीक होगा। पश्चिम द्वारा पाकिस्तान को अपने पक्ष में करने का यही एकमात्र मार्ग है और पाकिस्तान के नेताओं को भी तभी भारत से सद्भावना और समझदारी विकसित करने की ज़रूरत महसूस होगी जो कि भारत और पाकिस्तान की चली आ रही शेष समस्याओं को सुलझाने और दोनों देशों के शांतिपूर्ण विकास के लिए अनावश्यक है।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 16, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

28

अमरीका यात्रा से पूर्व वक्तव्य

अमरीकी 'फ्रेंड्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' के निमंत्रण पर दीनदयालजी 6 सप्ताह के लिए अमरीका गए थे।[1] यात्रा के पूर्व लखनऊ के नगरप्रमुख डॉ. पुरुषोत्तमदास कपूर द्वारा दिए गए एक विदाई समारोह में अपनी यात्रा के उद्देश्यों पर उन्होंने प्रकाश डाला। दीनदयालजी का वक्तव्य ।

जनतंत्र के प्रति समान निष्ठा ही भारत-अमरीका के संबंधों का आधार है। यह संबंध आज की स्थिति में अधिक परिपुष्ट होने चाहिए। भारत के प्रति आत्मीयता एवं सहानुभूति होते हुए भी कश्मीर जैसे कुछ मामलों में अमरीकावासी भारत का दृष्टिकोण समझने में असमर्थ रहे हैं। उनकी इस ग़लतफ़हमी के लिए कुछ अंशों तक हमारे भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री श्री मेनन भी उत्तरदायी हैं। मैं इस संबंध में वहाँ के प्रमुख राजनेताओं को भारतीय जनमानस से परिचित कराने का प्रयास करूँगा।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 23, 1963

□

1. सितंबर 1963 में दीनदयाल उपाध्याय छह सप्ताह की विदेश यात्रा पर अमरीका के साथ इंग्लैंड, जर्मनी और पूर्वी अफ्रीका भी गए थे। इनके लंदन प्रवास के समय उनकी यात्रा का विवरण प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने (7 नवंबर, 1963) लिखा, ''युवा भारत इनके राष्ट्रवादी आह्वान के इर्दगिर्द एकत्र हो रहा है, श्री उपाध्याय ध्यान देने योग्य व्यक्ति हैं।''

29

लोकतांत्रिक राष्ट्रवादी, लोकतांत्रिक समाजवादी और राष्ट्रवादी समाजवादी

आधुनिक विश्व का राजनीतिक विकास तीन अवधारणाओं से प्रभावित और निर्मित हुआ है, वे हैं—राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समाजवाद। कालक्रम के अनुसार इनमें राष्ट्रवाद सबसे पहले आया और समाजवाद सबसे बाद में। इस दृष्टि से यदि यूरोप को प्रतिनिधि मान लें तो हम देखते हैं कि तेरहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक यूरोप का मानचित्र राष्ट्रीय इच्छाओं के अनुसार बार-बार बदलता रहा। राष्ट्रवाद ने लोगों को एकसूत्र में बाँधा और विभिन्न रियासतों के लोगों को अपनी स्वायत्तता त्यागकर राष्ट्रीय सरकारें बनाने के लिए प्रेरित किया। राष्ट्रवाद एक जनसमूह को दूसरे से अलग पहचान देता है और हम देखते हैं कि धीरे-धीरे व्यक्तिगत सनक की अपेक्षा युद्ध और शांति के मुद्दे राष्ट्रीय हितों से परिचालित होने लगे। ज्यों-ज्यों राष्ट्रों की अलग पहचान आकार लेने लगी, त्यों-त्यों सरकारों के स्वरूप में लोगों की रुचि बढ़ी और उस पर विवाद बढ़ने लगा। जब अलेक्जेंडर पोप ने सरकारों के स्वरूप विषयक सारे विवादों को सिरे से नकारा तथा वह अर्धचेतन रूप से इस विषय में अपनी रुचि ही प्रकट कर रहे थे। उन्होंने लिखा—

"सरकार के स्वरूप को लेकर
मूर्खों को झगड़ने दो,
कुशल प्रशासन ही
श्रेष्ठ प्रशासन है।"

पोप ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया—

प्रश्न है, परंतु पोप ने इस जटिल समस्या का उत्तर नहीं दिया कि किस प्रशासनिक

व्यवस्था में हम कुशल प्रशासन पा सकते हैं अथवा पाने की आशा कर सकते हैं? उन दिनों राजतांत्रिक व्यवस्था का ही प्रचलन था और सरकार की सारी बुराइयाँ इसी कारण थीं या ऐसा प्रतीत होता था कि उसी व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं। इससे भी बढ़कर अधिक से अधिक राजनीतिक चिंतकों ने राजाओं के शासन करने के दैवी अधिकारों पर प्रश्न लगाने प्रारंभ कर दिए थे। सभी मनुष्य समान माने जाने लगे। इन सबसे प्रजातांत्रिक विचारों का जन्म हुआ। यूनान के नगर गणराज्यों में रुचि बढ़ी फ्रांस की क्रांति होने तक, प्रजातंत्र आकार लेकर शताब्दी पुराना हो चुका था और यूरोप के अनेक देशों में जड़ें जमा चुका था।

औद्योगिक क्रांति के विकास के साथ-साथ यह अनुभव किया जाने लगा कि वास्तविक शक्ति कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रित है। केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, राजनीतिक क्षेत्र में भी शोषण होता है। साधारण आदमी को या तो मताधिकार से वंचित रखा जाता है या फिर ऐसी स्थितियाँ पैदा की जाती हैं कि वह अपने मताधिकार का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक न कर सके। सामाजिक न्याय की बलवती इच्छा ने उस राजनीतिक दर्शन को जन्म दिया, जिसे समाजवाद कहा जाता है। मार्क्स द्वारा एक विचार प्रणाली के रूप में सुगठित करने से पूर्व यह समाजवाद एक अस्पष्ट सी प्रवृत्ति थी, जो अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं, औद्योगिक मज़दूर संगठनों के नेताओं और राजनीतिक दार्शनिकों के काल्पनिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती थी। ऐसा नहीं है कि मार्क्स विवेचित दर्शन में इनमें से किसी बात का अभाव था अथवा समाजवाद कुछ ज़्यादा व्यावहारिक बन गया। परंतु उन्होंने समाजवाद को एक विश्लेषण और सिद्धांत दिया, जिसके परिणामस्वरूप यह सुनिश्चित राजनीतिक दर्शन की श्रेणी में पहुँच गया। मार्क्स के पश्चात् भी अनेक समाजवादी हुए, जिनका उनसे मतभेद था। परंतु अपनी मूल अवधारणाओं और अंतिम लक्ष्यों की वृद्धि से वे अपना विशिष्ट प्रभाव नहीं छोड़ पाए। मार्क्सवादी कार्यपद्धति से समाजवाद अनेक लोगों के लिए अभिशाप बन गया और उसने इसे राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र के प्रतिकूल बना दिया।

राष्ट्रवाद एक तथ्य है

राष्ट्रवाद आज भी विश्व की सरकारों को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला एकमात्र तत्त्व है। परंतु बहुत कम इसे मानवता के लिए अभिशाप मानकर समाप्त कर देना चाहते हैं। परंतु वे इस मूलभूत प्रवृत्ति से अपने को मुक्त करने में सफल नहीं हुए, उन्होंने अनेक प्रकार की मनोग्रंथियों का निर्माण किया और इस प्रकार अपनी राष्ट्रीय नीतियों को कमज़ोर किया है। वर्तमान में अधिकांश लोग इन दोनों आदर्शों को मिश्रित रूप में अपनाने का दावा करते हैं और वे इस प्रकार लोकतांत्रिक राष्ट्रवादी, लोकतांत्रिक समाजवादी

और राष्ट्रवादी समाजवादी हैं। यदि इन्हें एक-एक विचारधारा से संबद्ध माना जाए तो ये केवल राष्ट्रवादी, समाजवादी और लोकतांत्रिक देश हो सकते हैं।

आज़ाद दुनिया के अधिकांश राष्ट्रों को प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। वे राष्ट्रवाद को स्वयंसिद्ध मानकर लोकतंत्र को अपना आदर्श कहते हैं। यहाँ पर लोग समाजवाद पर मोहित नहीं हैं और कुछ तो इसे लोकतंत्र में बाधक भी मानते हैं। नाज़ीवाद और फासीवाद, समाजवाद के ही रूप थे। साम्यवादी रूस, चीन और युगोस्लाविया आदि को भी राष्ट्रवादी-समाजवादी कहा जा सकता है। इनमें अंतर केवल इतना ही है कि ये राष्ट्रवाद का दैवीकरण नहीं करते, परंतु राष्ट्रवाद का प्रभाव यहाँ भी देखा जा सकता है। हिटलर ने राष्ट्रवाद पर अनावश्यक बल देकर अपने लोगों को तो उत्साहित किया, परंतु अन्य लोगों को अपना शत्रु बना दिया। साम्यवादी देश कुछ अधिक चालाकी से काम लेते हैं। वे अपने को अंतरराष्ट्रीय आंदोलन घोषित करते हैं और इस प्रकार अन्य राष्ट्रों की राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं की उपेक्षा करते हैं तथा अपने विस्तारवादी लक्ष्यों को पूरा करते हैं

समाजवाद धोखा है

एशिया और अफ्रीका के जो देश पश्चिमी उपनिवेशवादी राष्ट्रों से मुक्त हुए हैं, वहाँ का प्रचलित राजनीतिक दर्शन 'लोकतांत्रिक समाजवाद' है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रतीत होता है कि वे राष्ट्रवाद को भूल गए हैं, जो वास्तव में उनके स्वाधीनता-संग्राम की मूल प्रेरणा था। पश्चिम के संपर्क में रहने के कारण उनकी आस्था लोकतंत्र में है, परंतु उसके साथ ही वे समाजवाद के फैशनपरक नारे के प्रदर्शनपरक प्रभाव से भी बच नहीं सके। इसके साथ ही समाजवाद ऐसे समूहों की सत्तालोलुपता को संतुष्ट करता है, जो आम लोगों को भ्रमित कर उन पर राज करते हैं। जिन समाजों में निर्धनता और अज्ञानता का राज है, वहाँ समाजवाद के प्रति आकर्षण है, परंतु यह इसका इलाज नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्व के स्वतंत्र और विकसित राष्ट्र राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक हैं। कठोर श्रेणीबद्ध राष्ट्र चाहे विकसित हों या फिर विकासशील, राष्ट्रवादी-समाजवादी हैं अथवा साम्यवादी हैं और स्वतंत्र परंतु विकासशील राष्ट्र लोकतांत्रिक समाजवादी हैं। ये मुख्य वर्ग हैं। परंतु कुछ देश इसका अपवाद भी हैं, जिन्हें तीनों में से किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, जैसे कि पाकिस्तान। वह न तो राष्ट्रवादी समाजवादी है और न ही राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक देश है।

लोकतंत्र एक लक्ष्य है

कांग्रेस के सत्ता में रहते भारत को एक लोकतांत्रिक समाजवादी देश कहा जा

सकता है। वर्तमान में देश की अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के चलते और आज़ादी के प्रारंभिक कालखंड में होने के कारण तथा अंग्रेज़ों की संसदीय संस्थाओं की विरासत के रहते हम समाजवादी भी हो सकते हैं और लोकतांत्रिक समाजवादी भी। वर्तमान में इसका अर्थ मात्र इतना ही है कि सरकार आर्थिक क्षेत्र में विकास की कुछ ज़िम्मेदारियाँ अपने ऊपर ले। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ निजी पूँजी अर्थव्यवस्था के अविकसित होने के कारण अपने सीमित साधनों के रहते प्रवेश नहीं कर सकती। राज्य सरकारों को वहाँ पदार्पण करना होगा। साथ ही असमानताओं को कम करने का प्रश्न भी है। इन क्षेत्रों को समाजवादी होना ही होगा। परंतु इसके कुछ दुष्प्रभाव भी हैं। सर्वप्रथम तो समाजवाद में सरकारें ऐसे बड़े क्षेत्रों पर अधिकार जमा लेती हैं, जहाँ निजी उद्यमी सरलता से कार्य कर सकते हैं और इस राष्ट्र का भला कर सकते हैं। सरकारी गतिविधियाँ एकाधिकारवादी हो जाती हैं। यहाँ भी कुछ कट्टरपंथी समाजवादियों की इच्छाओं की पूर्ति के लिए सरकार पहले से ही निजी क्षेत्र में विकसित अन्य उद्यमों का राष्ट्रीयकरण करके या उन्हें अपने संरक्षण में लेकर अपनी शक्ति को ग़लत दिशा में लगा देते हैं। आर्थिक गतिविधियों में संपूरक की भूमिका निभाने की जगह जो कि विकासशील देश में सरकार की सही भूमिका है, सरकारें पहले से विकसित उद्यमों को हथियाने लगती हैं।

भारतीय दल कहाँ खड़े हैं

ज्यों-ज्यों हम समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ते जाते हैं, प्रशासनिक गुटों के हाथों में शक्तियाँ अधिकाधिक केंद्रित होती जाती हैं, नौकरशाही का आशातीत विस्तार होता है और व्यावहारिक रूप में नागरिकों के लिए अपनी स्वतंत्रता का उपभोग कर पाना समाप्त हो जाता है। इस प्रकार जैसे-जैसे समाजवाद विस्तार पाता है, लोकतंत्र सिकुड़ता जाता है। प्रथम पक्ष (समाजवाद) वास्तविक लक्ष्य बन जाता है और द्वितीय पक्ष (जनता) गौण हो जाता है। इस प्रकार के सब लोग जो 'लोकतांत्रिक समाजवाद' के समर्थक हैं, उन्हें देर सवेर दोनों में से एक को त्यागना पड़ता है। जैसी स्थितियाँ हैं, लोकतंत्र ही शिकार बनेगा। प्र.सो.पा. और समाजवादी पार्टी इस दृष्टि से कांग्रेस से भिन्न नहीं है, सिवाए इसके कि पहले बताए दल समाजवाद पर अधिक बल देते हैं और बाद में बताया दल (कांग्रेस) लोकतंत्र पर।

ये दल कुछ समय पहले तक राष्ट्रवाद पर ध्यान नहीं देते थे। ये उसे स्वयंसिद्ध मानकर चलते थे। यद्यपि समाजवादी दल इस पर कुछ ध्यान अवश्य देता था। परंतु फिर भी यह देखना शेष है कि यह सब उनकी रणनीति का हिस्सा है अथवा सैद्धांतिक है।

जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी

जिन दलों की प्रजातंत्र में आस्था है, वे स्वाभाविक रूप से ग़ैर-समाजवादी वर्ग

के हैं। भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी को इस वर्ग में रखा जा सकता है, परंतु दोनों दलों में इस मुद्दे पर बल देने की दृष्टि से अंतर है। स्वतंत्र पार्टी उस सीमा तक ही ग़ैर-समाजवादी है, जहाँ तक वह सरकार द्वारा वंचित लोगों के उत्थान के लिए किए जा रहे सभी कार्यों का विरोध करती है, ताकि यथास्थिति को बदला न जाए। जनसंघ समाजवाद की सर्वसत्तावादी अवधारणा के विरोध तक ग़ैर-समाजवादी है, अन्यथा वह निश्चय ही सामाजिक न्याय, असमानताओं को कम करने और अधिकांश विषयों में यथास्थितिवाद समाप्त करने की पक्षधर है। ग़ैर-समाजवाद से उसका अभिप्राय अहस्तक्षेपपरक पूँजीवाद नहीं है।

स्वतंत्र पार्टी पश्चिम के औद्योगिक जगत् की विकासयात्रा से भिन्न किसी विकास प्रक्रिया को स्वीकार नहीं करती। उसे राष्ट्रवाद की भी चिंता नहीं है। इसलिए वह लोकतांत्रिक दल है, परंतु इसे राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक दल नहीं कह सकते। भारतीय जनसंघ राष्ट्रवाद और लोकतंत्र पर समान बल देती है और मानती है कि भारत के विकास की वर्तमान स्थिति में समाजवाद की भी कुछ भूमिका है।

इस प्रकार हमारे पास समाजवादी दल है, जो न लोकतांत्रिक है और न ही राष्ट्रवादी, कांग्रेस, पी.एस.पी. और समाजवादी पार्टी तथा अन्य छुटपुट दल, लोकतांत्रिक समाजवादी हैं और इसलिए वे राष्ट्रवाद की चिंता नहीं करते। स्वतंत्र पार्टी पूरी तरह से लोकतंत्रवादी और ग़ैर-समाजवादी है, वह अधिकांश में राष्ट्रवाद के प्रति उदासीन है, और भारतीय जनसंघ जो मुख्य रूप से राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक है और समाजवाद की वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार ग़ैर-समाजवादी है, परंतु अपनी वैचारिक और भावात्मक अपील के अनुसार समाजवाद को स्वीकारती है।

भारतीय जनसंघ द्वारा स्वीकृत राष्ट्रवाद में अन्य दलों के राष्ट्रवाद से अंतर है। जनसंघ को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रपरक राष्ट्रवाद के समर्थक हैं। जनसंघ 'सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद' में विश्वास रखती है। अन्य मानते हैं कि राष्ट्र का निर्माण किया जाना है और भारतीय जनसंघ मानती है कि भारत युग-युगांतरों से राष्ट्र है। इसलिए वह राष्ट्रीय जीवनधारा से प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकती है, जबकि अन्य दल कभी-कभार भावुकतावश ऐसा करते हैं, अन्यथा राष्ट्र की विशाल विरासत से शक्ति और प्रेरणा पाने में असफल रहते हैं। इस प्रकार वे न केवल आधुनिक विज्ञान और तकनीक में मार्गदर्शन के लिए पश्चिम का मुँह ताक़ते हैं बल्कि अर्थशास्त्र, राजनीति और समाज संबंधी सभी विषयों में उधर देखते हैं। अन्य सभी दलों की अपेक्षा जनसंघ सर्वाधिक भारतकेंद्रित है।

—ऑर्गनाइज़र, दीवाली, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

30

स्वयंसेवक*

नैरोबी (अफ्रीका) में भारतीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग ।

हम सब अपने आपको स्वयंसेवक कहते हैं। मैं समझता हूँ कि इस शब्द का अर्थ हम अच्छी तरह समझते होंगे। सामान्यतया स्वयंसेवक का अर्थ लोग बिना पैसे का मज़दूर समझते हैं। समझा जाता है कि स्वयंसेवक से बिना पैसे (फ्री सर्विस) काम लिया जा सकता है। कुछ संस्थाएँ अपने कार्यक्रम की पूर्ति के लिए भी स्वयंसेवक बनाती हैं और कार्यक्रम की समाप्ति पर स्वयंसेवकों का स्वयंसेवकत्व भी समाप्त हो जाता है।

परंतु हम लोग अपने लिए जो 'स्वयंसेवक' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह न तो थोड़ी देर के लिए है, न बिना पैसे काम करने के लिए है और न बिना अनुमति लिये कहीं भी घुस जाने के लिए ही है। यह सब स्वयंसेवक के लिए बनी हुई छोटी व्यवस्था है। हम तो बड़ी व्यवस्था करने के लिए स्वयंसेवक बने हैं। बहुत बड़ी व्यवस्था करना बहुत बड़ा कार्य है। उसी को संपन्न करने के लिए ही हम स्वयंसेवक बने हैं। हमें अपने समाज का संगठन करना है। अपना समाज जिस चीज़ को लेकर उत्पन्न हुआ है, उसी ध्येय को, उसी तत्त्व को हमें संपूर्ण मानव जाति तक पहुँचाना है।

हम लोग अपने को हिंदू कहते हैं। हिंदू का अर्थ क्या है? कुछ लोग कहते हैं, जो मुसलमान नहीं, वह हिंदू या जो ईसाई नहीं, वह हिंदू। परंतु यह व्याख्या ठीक नहीं। हिंदू जीवन का एक भाव लेकर चलता है। संपूर्ण समाज जब एक ही भाव लेकर चलता है तो उसे एक नाम प्राप्त होता है। उसके लिए हम सर्वस्व बलिदान के लिए तत्पर रहते हैं।

---

* देखें परिशिष्ट X, पृष्ठ 324।

जीवन वही दे सकता है

यदि हम अपने जीवन के महान् ध्येय, महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं, तो हम श्रेष्ठ हैं। यही हमारा वास्तविक स्वयंसेवकत्व है। अपने समक्ष जो आदर्श के नाते खड़े हैं, वे हैं परमपूज्य डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार। उन्होंने सभा-संस्थाओं के मौसमी स्वयंसेवकों को एक ओर हटाकर हमें स्थायी स्वयंसेवकत्व प्रदान किया। उन्होंने समाज के लिए, देश के लिए ज़िंदा रहनेवाले लोग पैदा किए। उन्होंने कहा कि देश के लिए मरनेवाले लोग श्रेष्ठ हैं, पर उनसे भी श्रेष्ठ हैं समाज के लिए जीनेवाले। वास्तव में जो धर्म और समाज के लिए जीता है, वही धर्म और समाज के लिए मरता भी है। जिसने अपना संपूर्ण जीवन धर्ममय बिताया है, समाजमय बिताया है, वही आख़िरी समय पर समाज के लिए जीवन दे सकता है। इसके अंदर एक ध्येयवाद, एक निस्स्वार्थ सेवा का भाव और कर्तव्यपरायणता होती है।

हमारा हिंदुत्व ही हमारा स्वयंसेवकत्व है। हम शाखा में ही स्वयंसेवक नहीं हैं, शाखा के बाहर भी हैं। जहाँ हिंदू इकट्ठे होते हैं, वहीं हम हिंदू नहीं हैं, उनके बीच में भी हम हिंदू हैं जो कि हिंदू नहीं हैं। हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि उन्हें लगे कि हिंदू तेजस्वी होता है। हम तो यह मानकर चले हैं कि हिंदू संस्कृति, हिंदू परंपरा, हिंदू धर्म, हिंदू जीवनधारा और हिंदू व्यवहार इन सबके हम प्रतिनिधि हैं। इस नाते हमारा यह स्वयंसेवक अधिकाधिक तेजस्वी बने और अधिकाधिक लोगों को जुटाकर एक साथ खड़ा कर सके, यह भाव, यह विचार, यह ध्येय बराबर अपने मन में जाग्रत् रखते हुए हमें अपना कार्य करना है।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 25, 1963

□

31

भारतीय जनसंघ को कांग्रेस का विकल्प बनाएँ

विदेश यात्रा के दौरान दीनदयालजी ने महाराष्ट्र प्रदेश जनसंघ के अधिवेशन में अपना संदेश भेजा।

पाश्चात्य जगत् के प्रवास में यहाँ किसी-न-किसी निमित्त आए हुए व्यक्तियों से बहुत संख्या में स्थान-स्थान पर मिलने का अवसर मिला। सभी ओर लोगों के मन में देश के भविष्य के संबंध में चिंतापूर्ण उत्सुकता है, वे सभी भारतीय जनसंघ की ओर बड़ी आशा भरी नज़र से देख रहे हैं। निश्चित ही हमारे ऊपर एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आ गई है।

आज हमें जनसंघ को कांग्रेस के पर्याय के रूप में विकसित करना होगा, यह कार्य गाँव-गाँव में फैले हुए कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम एवं अथाह उत्साह के बल पर ही संभव है। यहाँ के राजनीतिक पक्षों के अध्ययन एवं उनके नेताओं के साथ बातचीत के बाद मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हम सिद्धांत, नीति और कार्यक्रम सभी में उनसे अधिक प्रगतिशील एवं आगे हैं। आधुनिकता और प्रगतिवाद की कसौटी पर जनसंघ खरा उतरा है। केवल ज़रूरत है कि विश्वास और निष्ठा के साथ हम अपने गाँवों में जाकर उन्हें सचेत और सचेष्ट करें और बलपूर्वक अपने सशंक एवं संत्रस्त देशबंधुओं को विश्वास दिलावें कि जनसंघ उनके सभी प्रकार के प्रश्नों को हाथ में लेकर प्रभावी रूप से हल करने को तैयार है, कार्यकर्ताओं की कार्यशक्ति पर विश्वास है। निश्चित ही उनके द्वारा उनके अपने को एवं उनके माध्यम से देश के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण होगा।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 2, 1963

□

32

हिंदू भावना कोई राजनीतिक इकाई नहीं है

अपनी अमरीका यात्रा के पश्चात् दीनदयालजी 16 नवंबर को पूर्वी अफ्रीका गए। नैरोबी हवाई अड्डे पर वहाँ बसे भारतीय समाज के अनेक प्रतिनिधियों ने उनका हार्दिक अभिनंदन किया। केन्या इंडियन कांग्रेस, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, भारतीय स्वयंसेवक संघ आदि संस्थाओं के प्रमुखों द्वारा पुष्पहारों से स्वागत के बाद नैरोबी के लिए वे मोटरकारों के एक जुलूस में प्रस्थित हुए।

आर्य समाज (कॉलेज सेक्शन) में दीनदयालजी ने नैरोबी के अनेक प्रभावी हिंदू भाइयों से परिचय किया। सायंकाल भारतीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं की विशेष बैठक हुई। रात्रि भोजन के बाद केन्या की तत्कालीन परिस्थिति और मुख्य समस्या "यहाँ बसे भारतीय केन्या की स्वतंत्रता के बाद यहाँ की नागरिकता लें या नहीं"—इस पर देर तक बातचीत होती रही। रविवार 17 नवंबर को भारतीय स्वयंसेवक संघ की नैरोबी शाखा का वार्षिकोत्सव था। दीनदयालजी ने स्थानीय परिस्थिति जानने के उद्देश्य से केन्या इंडियन कांग्रेस के प्रधान श्री शिवा भाई अमीन और प्रधानमंत्री जामोकेन्याता के पार्लियामेंटरी सचिव श्री चानन सिंह के घर जाकर विचार-विमर्श किया।

17 नवंबर, रविवार को भारतीय स्वयंसेवक संघ की नैरोबी शाखा का वार्षिकोत्सव था। सायंकाल सवा चार बजे से ही सब स्वयंसेवक गणवेश में संघस्थान पर उपस्थित थे। सवा पाँच बजे

उत्सव आरंभ हुआ। इस समारोह में 2000 आमंत्रित नागरिक तथा 600 स्वयंसेवक उपस्थित थे।

अध्यक्षीय प्रणाम और ध्वजारोहण के बाद स्वयंसेवकों द्वारा पी.टी. और खेलों के प्रदर्शन हुए। तत्पश्चात् संघ-प्रमुख श्री जगदीश मित्रजी द्वारा माननीय अतिथि का परिचय कराने के बाद दीनदयालजी के भाषण के अंश।

यद्यपि मैं भारत के एक राजनीतिक दल से संबंध रखता हूँ, पर मैं यहाँ राजनीति पर कुछ कहने नहीं आया हूँ। इतना होते हुए भी यह तो निश्चित ही है कि भारत के बाहर बसे हुए अपने भाइयों के सुख-दुःख के विषय में भारतीय उदासीन नहीं हैं।

थोड़े ही दिन के बाद यह देश स्वतंत्र होने जा रहा है। अपने देश से हज़ारों मील दूर आकर जिस देश को आपने कर्मभूमि बनाया और अपने पुरुषार्थ का परिचय देकर समृद्ध किया, उस देश की स्वतंत्रता के इस सुअवसर पर मैं आप सबको बधाई देता हूँ।

हिंदू शब्द राजनीति का प्रतीक नहीं

भारत को एक देश के रूप में हम देखते हैं। पर यदि भौगोलिक दृष्टि से भी देखें तो वह नदी, पहाड़, मिट्‌टी और जंगल मात्र ही नहीं है। वह तो एक विशेष धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए जब हम भारतीय कहते हैं तो यह शब्द राजनीतिक संबंधों का प्रदर्शन नहीं करता। लाहौर, रावलपिंडी, ढाका, चटगाँव में बसे हिंदुओं का राजनीतिक अस्तित्व यद्यपि 15-8-47 के बाद से अलग हो गया है, फिर भी हम उनसे अपनेपन का नाता तो अनुभव करते ही हैं। यह अनुभव ही बता रहा है कि हिंदू भावना एक राजनीतिक इकाई नहीं है।

भगवा ध्वज समन्वय का प्रतीक

आज संसार में ईश्वर, देश, समाज, कुटुंब और शरीर आदि की निष्ठाओं में हमें संघर्ष दिखाई देता है। कोई किसी पर बल देता है तो कोई किसी पर। किंतु हम जिस संस्कृति को लेकर चले, उसने इन सब निष्ठाओं के बीच ऐसा समन्वय किया है कि हमारे लिए ये निष्ठाएँ एक-दूसरे की विरोधी नहीं हैं। हम कम्युनिस्टों की तरह घृणा और संघर्ष को जीवन का आधार बनाकर नहीं चलते, अपितु हम एकता और समन्वय को जीवन का आधार समझते हैं। आपके सामने यह भगवा ध्वज उसी एकता, आत्मीयता और समन्वय का प्रतीक है।

कम्युनिज़्म नहीं, कुटुंब की भावना

अनेक लोग आजकल समानता का नारा लगाते हैं, जैसे सबको चार रोटी बराबर

मिलें। हमारी संस्कृति कभी समानता का नारा नहीं लगाती। वह तो आत्मीयता का नारा लगाती है। अर्थात् एक कुटुंब की तरह सबको आवश्यकतानुसार मिले।

शक्ति निर्माण की बात

आज अपने को कमज़ोर समझ दूसरों को साथ मिलाकर शक्ति खड़ी करने की बातें होती हैं। किंतु हमारी संस्कृति कहती है कि मूल में कमज़ोरी का भाव रहा तो कभी सच्ची शक्ति निर्माण नहीं हो सकती। गुरु गोविंद सिंह ने अपने को कमज़ोर समझकर संगठन खड़ा नहीं किया। नहीं तो वे दूसरों में तेज व निर्भयता कभी न भर सकते। दुर्बलता का विचार ही हमारे धर्म, संस्कृति और परंपरा के विपरीत है। हम लोग प्रतिवर्ष विजयादशमी का उत्सव मनाते हैं, जो हम में पराक्रम का भाव ही भरता है। यह पराक्रम दूसरों को दबाने में नहीं किंतु ईश्वरीय गुणों का अपने में विकास करने में प्रकट होता है। हम निरुपयोगी होंगे तो भगवान् हमें नष्ट कर देंगे। भगवान् ने हमें किसी उद्देश्य से जन्म दिया है और एक विशेष परंपरा का वारिस बनाया है। इस सत्य की गंभीरता को हम समझें।

भौतिकता भी, आध्यात्मिकता भी

पश्चिम को हम भौतिकवादी कहते हैं। इसका ग़लत अर्थ यह लिया जाता है कि भारत केवल आध्यात्मिक है और वहाँ केवल लोग रामनाम ही लेते हैं। क्रियात्मक बातों से वास्ता नहीं रखते। इस भ्रम को हमें दूर करना चाहिए। भारतीय संस्कृति तो भौतिकता और अध्यात्म दोनों को साथ लेकर चलती है। जैसे पुत्र माता और पिता दोनों को प्यार करता है, दोनों की सेवा करता है, उसी प्रकार भारतीय आदर्श शरीर और आत्मा दोनों को संस्कृत करना और शोभायुक्त बनाना है। यह सम्यक् दृष्टि सबको देना ही भारतीयता है। कंजूस की तरह हम अपनी संस्कृति पर साँप बनकर बैठे रहना नहीं चाहते।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 9, 1963

□

33

अमरीका में भारत के प्रति घोर अज्ञान

नागपुर के हिस्लॉप महाविद्यालय के राज्य शास्त्र विभाग की ओर से आयोजित एक विशेष समारोह में दीनदयालजी का 'अमरीका की दृष्टि में भारत' विषय पर भाषण।

अमरीकी जनता में भारत के प्रति भले ही सद्भावना हो, फिर भी वहाँ भारत-पाकिस्तान के संबंध में अज्ञान अधिक दिखाई देता है। यहाँ हिंदुओं का 'भारत' तथा मुसलमानों का 'पाकिस्तान' इस प्रकार का परिचय जानबूझकर दिया जा रहा है।

अधिकतर जनता वहाँ भारत-पाक के संबंध में अनभिज्ञ है। इसीलिए यह कहा जाता है कि भारत को पाक के साथ समझौता कर लेना चाहिए। यह स्थिति पाकिस्तान द्वारा किए गए अपप्रचार के कारण उत्पन्न हुई है। पाकिस्तान के प्रचार से वहाँ यह भ्रम निर्माण हो गया है कि भारत पाकिस्तान पर आक्रमण करना चाहता है।

अमरीकी जनता के अनुसार पाकिस्तान भारत से यदि अच्छे संबंध प्रस्थापित करना चाहता है तो उसे कश्मीर का प्रश्न हल कर लेना चाहिए।

कश्मीर में मुसलमानों की संख्या अधिक है, इसलिए कश्मीर पाक को दिया जाए। इस प्रकार के प्रचार को अमरीका सत्य मानकर चल रहा है। भारत में साढ़े चार करोड़ मुसलमान हैं, उपराष्ट्रपति मुसलमान हैं।[1] भारत के अमरीका स्थित वकील (राजदूत) श्री छागला[2] भी मुसलमान थे। इसका हमारे अमरीकी भाइयों को पता ही नहीं है।

---

1. डॉ. ज़ाकिर हुसैन (1897-1969) सन् 1962 से 1967 तक भारत के उपराष्ट्रपति रहे थे।
2. सन 1948 से 1958 तक बंबई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहे महोम्मेदाली करीम छागला (1900-1981) ने सेवानिवृत्ति के बाद 1958 से 1961 तक संयुक्त राज्य अमरीका में भारतीय राजदूत के रूप में कार्य किया था। इसके बाद अप्रैल 1962 से सितंबर 1963 तक ये ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त रहे। वापस लौटने के तुरंत बाद इन्हें केंद्रीय शिक्षा मंत्री बनाया गया। इस पद पर ये 1966 तक बने रहे।

इसलिए कश्मीर पाक को दिया जाए, ऐसा आग्रह अमरीकी जनता द्वारा किया जा रहा है। अमरीका में भारत के न्यायपूर्ण पक्ष के प्रति यह अज्ञान हमारी सरकार की, विशेषकर पर-राष्ट्र विभाग के प्रचार विभाग की असफलता का ही द्योतक मानना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 9, 1963

□

34

संकटकाल में राष्ट्रवादी शक्तियों का दायित्व

कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण से उत्पन्न स्थिति को राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन स्थिति घोषित करने पर समाज में सारी नीतियों का पुनर्निरीक्षण करने की और युद्धबंदी की घोषणा के बाद पुनः द्विविधापूर्ण उदासीनता के भावों की जो निर्मिति हुई है, उसी की आधार-भूमिका में दूरदृष्टि दौड़ा कर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल चीन की ओर देखने से पाकिस्तान का दुर्लक्ष्य हो गया है। कुछ लोग तो कुछ ले-देकर पाकिस्तान से मित्रता करने तक की बात करते हैं। पर वास्तव में ऐसा करना बिल्कुल ग़लत होगा।

सभी स्थितियों का सही मूल्यांकन आवश्यक

देश की सर्वांगीण सुरक्षा की दृष्टि से विचार करते समय सभी क्षेत्र और अपनी वास्तविक शक्ति का यथोचित आकलन कर लेना नितांत आवश्यक होता है। क्षणिक संकट से दूरगामी परिणाम नहीं निकालना चाहिए। केवल बाहरी संकटों का ही नहीं तो आंतरिक संकटों का भी विचार करना होगा। अपनी शक्ति, अपनी कमज़ोरी दोनों पर दृष्टि रखना तथा आंतरिक व बाह्य शत्रुओं का यथोचित विचार करना भी इस दृष्टि से अनिवार्य होगा।

आज समस्त देशवासी किसी निश्चित विचार निष्ठा के आधार पर संगठित नहीं हैं। अतएव ऐसी स्थिति में हमें राजनीतिक-वैचारिक स्वतंत्रता, व्यावहारिकता एवं भौगोलिक स्थितियों की दृष्टि से विचार करते हुए पड़ोसी राष्ट्रों के निर्माण की वास्तविक आधार पीठिका को यथार्थ रूप में समझ लेना आवश्यक है।

पाकिस्तान हमारा शत्रु है

जहाँ तक राजनीतिक दृष्टिकोण का संबंध है, हमारे देश पर कम्युनिस्ट चीन ने आक्रमण किया है; यह देश का व्यक्ति-व्यक्ति भलीभाँति समझ चुका है। पर पाकिस्तान की ओर से भी हमारे देश पर संकट की घटाएँ छाती जा रही हैं; यह भूलना अथवा इस बात की उपेक्षा करना सर्वथा अनुचति ही होगा। पाकिस्तान न केवल कश्मीर ही हड़पना चाहता है अपितु इसके अतिरिक्त उसके कुछ और भी विचार हैं, जिन्हें वह उपयुक्त अवसर मिलने पर पूर्ण करने का प्रयास करेगा।

वैचारिक दृष्टि से भी चीन व पाकिस्तान हमारे शत्रु हैं। पड़ोसी राष्ट्र प्राकृतिक शत्रु होते हैं। इसका कारण उनके व्यक्तिगत हितों में पारस्परिक टकराव होते रहना है। पड़ोसी से सतर्क रहना एक सामान्य नियम है।

विश्वास किस पर करें?

व्यावहारिक दृष्टि से सच्चे व्यक्ति से भी सतर्क रहना चाहिए। जब तक कोई यह सिद्ध न कर दे कि वह प्रामाणिक है, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से पहले से ही रोक लगा रखना (Prevention) तथा घटना हो जाने के बाद सतर्कता बरतना आवश्यक है। चीन और पाकिस्तान दोनों पड़ोसी देशों की प्रकृति ही शत्रुतापूर्ण है। उनके साथ सामान्य रूप से मित्रता नहीं निभाई जा सकती। मित्र तो वे तभी बन सकते हैं, जबकि हम ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दें; जिसमें कि वे शत्रुता करके कहीं रह ही न सकें।

सशक्त प्रतिरोध आवश्यक

भौगोलिक दृष्टि से भी पाकिस्तान की निर्मिति का कोई सुदृढ आधार नहीं है। सीमाओं के निर्धारण और सुरक्षा के दृष्टिकोण का भौगोलिक दृष्टि से कोई भी उचित आधार नहीं अपनाया गया है।

सत्य तो यह है कि अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान की निर्मिति ही भारत के विरोध के आधार पर हुई है। भारत की मान्यताओं, निष्ठाओं, प्रणालियों, सभी का घोर विरोध करके 'इसलाम का राज्य' स्थापित किया जाए; इस आकांक्षा से ही पाकिस्तान का निर्माण हुआ है। हिंदुओं के साथ मिलकर नहीं रह सकते, इस आकांक्षा से पाकिस्तान की माँग करनेवालों की भारतीय परंपरा का विरोध करने की सदा ही प्रवृत्ति रही है। उनकी आँखों में तो यही चित्र रहता था कि किसी समय उन्होंने यहाँ पर राज्य किया था और पुनः वह स्थापित हो सके, इस मनोकांक्षा की पूर्ति का ही पहला चरण पाकिस्तान का निर्माण है। 'हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिंदुस्तान' यह नारा उनकी सारी भावनाओं का

द्योतक है। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए ही समय-समय पर डरा-धमकाकर दुनिया भर में चिल्ला-चिल्लाकर, आसाम में घुसपैठ करने, कश्मीर पर आक्रमण करने आदि के कुकृत्य करते रहते हैं। उनकी भूख कुछ दे देने से ही मिट नहीं सकती। उनकी यह प्रकृति तभी नष्ट हो सकती है, जबकि उनकी इस आकांक्षा को धूल में मिला देनेवाले लोग सुसंगठित हों। प्रबल शक्तिशाली स्वरूप का प्रकटीकरण करें। पिछले 16 वर्षों में पाकिस्तान में कई सरकारें बदल जाने[1] के बाद भी भारत के प्रति उनका व्यवहार रंचमात्र भी नहीं बदला।

रूस व चीन का लक्ष्य एक, पर साधन भिन्न हैं

चीन की हालत भी पाकिस्तान जैसी ही है। साम्यवाद में सह-अस्तित्व नहीं है। वे कभी भी अपने स्वार्थ के लिए उसका उपयोग कर सकते हैं। वह साम्यवाद और साम्यवादी के अतिरिक्त किसी को रहने देना नहीं चाहता। इस दृष्टि से रूस और चीन में कोई अंतर नहीं है। उनमें अंतर केवल साधनों का है, लक्ष्य का नहीं, क्योंकि रूस और चीन की परिस्थितियों में काफ़ी अंतर है। रूस अगर युद्ध-मारकाट व बर्बरतापूर्ण साधन अपनाएगा तो उसे सारे यूरोप और अमरीका से लड़ना पड़ेगा। इसीलिए उग्र युद्ध को टालने के लिए वह निरंतर शीतयुद्ध करता रहा है और प्रत्यक्ष युद्ध टालता रहा है। रूस अमरीका से अभी भी लड़ना नहीं चाहता। पर चीन की परिस्थितियाँ रूस से सर्वथा भिन्न हैं। चीन बहुत बड़ी लड़ाई करने में तो हिचकता है, परंतु जहाँ काफ़ी बड़ा युद्ध नहीं करना होता, वहाँ वह थोड़ा-थोड़ा बढ़ता जाता है। छुट-पुट युद्ध करता है। चीन यह नहीं चाहता कि एक ओर वह अकेला रहे और दूसरी ओर सारे साम्यवाद विरोधी देश। इस प्रकार उग्र युद्ध रूस और चीन दोनों ही टालना चाहते हैं; किंतु उनकी डिग्री में अंतर है। चीन जानता है कि भारत में सशस्त्र संघर्ष करने पर भी कोई बड़ा युद्ध नहीं होगा। इसी मनोभूमिका को लेकर ही उसने भारत पर आक्रमण किया है। किंतु जब युद्ध बढ़ने का ख़तरा उसे महसूस होने लगा तब वह रुक गया। निरंतर लड़ाई करते रहने में चीन ख़तरे का अनुभव करता है; यह उसकी प्रवृत्ति से स्पष्ट हो जाता है।

---

1. 1947 में पाकिस्तान निर्माण के साथ ही राजनीतिक अस्थिरता का दौर भी शुरू हो गया। प्रथम प्रधानमंत्री लियाकत अली ख़ान की 1951 में हत्या के बाद सिर्फ 7 वर्ष में देश को 7 प्रधानमंत्री मिले—
ख्वाजा नज़ीमुद्दीन (17 अक्तूबर, 1951-17 अप्रैल, 1953)
मुहम्मद अली बोगरा (17 अप्रैल, 1953 -12 अगस्त, 1955)
चौधरी मुहम्मद अली (12 अगस्त, 1955 -12 सितंबर, 1956)
हुसैन शहीद सुहरावर्दी (12 सितंबर, 1956-17 अक्तूबर, 1957)
इब्राहिम इस्माइल चुंद्रिगर (17 अक्तूबर, 1957-16 दिसंबर, 1957)
फिरोज़ ख़ान नून (16 दिसंबर, 1957- 7 अक्तूबर, 1958)
1958 में सेना प्रमुख अयूब ख़ान ने सैन्य तख्तापलट कर नून सरकार को अपदस्थ कर दिया तथा स्वयं प्रमुख बन बैठे।

पंचमांगी बनाम पाकिस्तानी

आंतरिक शक्तियों का विचार करते समय प्रखर राष्ट्रवादियों को यह स्मरण रखना होगा कि पाकिस्तानी तत्त्व पंचमांगी के रूप में कार्य कर रहे हैं। हमें इनके प्रति अत्यधिक सतर्क रहना आवश्यक है। आज कोई क्या कर रहा है, केवल इसी का नहीं; वह कल क्या करेगा, इसका भी विचार होना चाहिए।

सारे पाकिस्तानी तत्त्व इस दृष्टि से पंचमांगी हैं। इस समाज की ओर देखने से यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उस वर्ग ने अपना अस्तित्व बना रखा है। कांग्रेस द्वारा सभी सुविधाएँ दिए जाने के बाद भी उन्होंने कांग्रेस के साथ अपने को मिलाया नहीं। पार्टियों से सौदेबाज़ी करते रहते हैं। 1906 से 1947 तक मुसलिम लीग ने जैसे क़दम उठाए थे, उन्हीं को दोहराते हुए अपने को वे उसी के साथ मिलाकर रखे हुए हैं। आज मज़हब ही नहीं, सामाजिक और राजनीतिक अस्तित्व भी बनाए रखने की कोशिश करते हैं; चाहे किसी दल में रहें। उनका यह प्रयास सभी स्थानों पर चलता रहता है। कश्मीर में उनकी संख्या अधिक होने के कारण वे अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।

देशघाती कम्युनिस्टों का नग्न स्वरूप

चीन के साथ कम्युनिस्ट पार्टी भी स्वतंत्र रूप से संपूर्ण भारत में अपनी वैचारिक मनोभूमिका को लोगों के सामने रखने का प्रयास कर रही है। इनके द्वारा अपनी प्रगति का झूठा प्रचार बहुत अधिक किया जाता है। इतिहास को देखने पर पता चलता है कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सदा ही देशघाती कार्य करती रही है। तेलंगाना का षड्यंत्र, जिसका कि लौहपुरुष सरदार पटेल ने अपने सफल प्रयास द्वारा दमन कर दिया था, कम्युनिस्टों की देशघाती प्रवृत्ति का ज्वलंत प्रमाण है। जब से तिब्बत पर चीन का आक्रमण हुआ, उस समय से कुछ लोगों ने उनकी सही हालत समझी। किंतु उनका प्रयास दबता रहा। कम्युनिस्टों ने ऐसे समय में भी देश की जनता में विभिन्न प्रकार के भेदभावों को उभाड़ने का प्रयत्न किया। सांप्रदायिक दंगे खड़े करने का प्रयास किया। स्थान-स्थान पर पाकिस्तानी तत्त्वों के साथ मिलकर उन्होंने झगड़ों को प्रोत्साहन दिया। देश के इस संकट काल में विभिन्न राजनीतिक विचार वाले लोगों को न जाने क्यों यह बात समझ में नहीं आती कि ये कम्युनिस्ट और पाकिस्तानी तत्त्व समय-समय पर आपस में मिलकर देशघाती षड्यंत्र करते रहते हैं। कश्मीर के संबंध में पाकिस्तान की माँग का कम्युनिस्टों द्वारा समर्थन किया जाना भी इसका स्पष्ट प्रमाण है। प्रारंभ में ही इन्होंने कश्मीर विभाजन और शेख़ अब्दुल्ला का पूर्ण समर्थन किया था। इसी प्रकार कम्युनिस्टों और इन पाकिस्तानी तत्त्वों के बीच एक गुप्त दुरभिसंधि का भी अति स्पष्ट आभास होता है। पाकिस्तान से आकर आसाम में बसे हुए पाकिस्तानियों को भारत से

निकाले जाने का कम्युनिस्टों द्वारा विरोध किया जाना उनकी इस मनोवृत्ति का ही परिचायक है। दोनों ही इस बात पर एकमत हैं कि भारत में जितनी गड़बड़ी पैदा की जा सके, करें। अतएव यह भी संभव है कि चीन-पाकिस्तान की यह दोस्ती इनकी ही साँठ-गाँठ के योजनाबद्ध स्वरूप का ही कोई अंग हो।

चीन द्वारा तिब्बत पर क़ब्ज़ा कर लिये जाने से साम्यवाद के घोर विरोध का भाव सारे देश में उग्रतर होता गया। सभी दलों का एक साथ ही प्रयास होने लगा। दालाईलामा के प्रति सभी दलों ने सहानुभूति प्रकट की। दलाईलामा द्वारा ही सबको यह पता लग सका कि चीन तिब्बतियों की परंपरा व संस्कृति को भी नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुला हुआ है। कम्युनिस्ट लोग विविध स्थानों पर कम्युनिज़्म के प्रचार के हेतु कम्युनिस्ट समस्या न खड़ी करके सांप्रदायिक झगड़े उत्पन्न करवाते हैं।

चीनी आक्रमण के बाद वह अलग-थलग पड़ गया। हो सकता है इसको ख़त्म करने के लिए वह फिर कोई नई समस्या लाए। हो सकता है कि सांप्रदायिकता की समस्या लाए और उसमें मसुलमान सहायक हों, जिसके लिए संघ, जनसंघ, हिंदू-महासभा के नाम दें, अलग-थलग करने की यह रस्साकशी है।

कांग्रेस इनके आगे झुक जाती है

साम्यवादी और पाकिस्तानी तत्त्व दोनों ही भारत की राष्ट्रीय निष्ठाओं के विरोधी हैं। कांग्रेस और पी.एस.पी., कम्युनिस्ट या मुसलमानों के साथ प्रत्यक्ष रूप में भले ही खड़ी न की जाती हों, पर फिर भी इनमें से किसी में ऐसी हिम्मत नहीं है कि वे जिन बातों को मान्यता देते हैं, उन बातों को वे निर्भीकता से बोलें। राजनीतिक कारणों से वे झुक जाते हैं किंतु उनके साथ प्रत्यक्षतः खड़े नहीं हैं।

इनकी उपेक्षा न करें

ये दल उनके साथ हैं, इसलिए उनको छोड़ दें, यह ठीक नहीं। कांग्रेस, सो.पा., प्र.सो.पा. और कम्युनिस्ट एक नहीं हैं। उसमें साम्यवादी और राष्ट्रवादी दोनों हैं। किंतु बीच के लोग किधर खड़े होंगे, यह महत्त्वपूर्ण है। वे यदि उनके साथ खड़े होंगे तो उनकी ताक़त बढ़ेगी। वर्तमान काल इस दृष्टि में अच्छा काल है कि बीच के लोगों को राष्ट्रवादी बनाएँ, क्योंकि चीन के आक्रमण के कारण यह वर्ग निश्चेष्ट सा खड़ा है। वह राष्ट्रवादियों की क़ीमत को जानता है।

सभी ओर परिवर्तन हो रहा है

रेडियो व अख़बारों का अवलोकन करें तो पता चलेगा कि जिन्हें प्रतिगामी कहा जाता था, उन्हीं से प्रेरणा ली जा रही है। यह वातावरण इस हवा के कारण हैं। इसे लोगों

ने स्वाभाविक रूप से ग्रहण किया है। प्रतापसिंह कैरो[2] ने कहा, ''हमें 10 वर्ष तक अहिंसा शब्द शब्दकोश से निकाल देना चाहिए।'' इस वैचारिक दृष्टि से आए परिवर्तन को अवश्य ही गहराई से देखना चाहिए। यही नहीं तो लोकसभा में सुभद्रा जोशी[3] द्वारा कम्युनिस्टों के समर्थन में भाषण दिए जाने पर उनकी बड़ी दुर्गति हुई और इतना घोर विरोध हुआ कि वे भाषण न दे सकीं। यह इस बात का प्रतीक है कि आज के समाज में वैचारिक क्रांति आती जा रही है। इसका कारण यह है कि लोग विगत 16 वर्षों के इतिहास और भविष्य के संबंध में विचार करने लगे हैं। श्री दिनकर[4] ने तो चीन के इस आक्रमण के संबंध में हमारे अपने देशवासियों की वैचारिक भूमिका और भूलों को ही दोषी ठहराया है। अतएव संकटों का विचार करते समय इस स्थिति का भी विचार करना चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय मित्र जुट जाएँगे

अपने लिए सहायक मित्रों के होने न होने का जहाँ तक प्रश्न है, अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी कुछ ही समय में हम अपने दो-चार मित्र जुटा सकते हैं। परंतु ऐसे स्थान पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए। वे लोग तो मित्रता का हाथ बढ़ाकर हमारे राष्ट्र के निकट आ सकते हैं, पर हमारे राष्ट्र का व्यवहार कहीं ऐसा न हो, जिससे कि सच्ची मित्रता खंडित हो जाए। उन निकट आनेवालों को हम अपने दुर्व्यवहार से दूर न कर दें; यह ध्यान रखना आवश्यक है। विचारपूर्वक अनुकूल वातावरण का लाभ न उठाने की भयंकर भूल हमें नहीं करनी चाहिए। इसी दृष्टि से आगे आनेवाली सभी कठिन परिस्थितियों का मुक़ाबला करने के लिए समस्त राष्ट्रवासियों को कटिबद्ध होना पड़ेगा।

कांग्रेस पर कम्युनिस्टों की स्थिति

इन सभी वैचारिक क्रांतियों के बावजूद राष्ट्रवादियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि कम्युनिस्टों का संगठन दुर्बल हो गया है। यह ठीक है कि कम्युनिस्टों और जनता के विचारों के बीच की दरारें काफ़ी बढ़ गई हैं, लेकिन यह बात भी कम महत्त्व की नहीं है कि समाज में उनका जो स्थान था, उसमें भी काफ़ी बदलाव आया है। प्रखर राष्ट्रवादी विचारकों के प्रति भी समाज में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इस बदलाव के बारे में हमें

---

2. सरदार प्रताप सिंह कैरों (1901-1965) संयुक्त पंजाब के 1956 से 64 तक मुख्यमंत्री रहे।
3. सुभद्रा जोशी (1919-2003), भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नेता, जो 1962 के चुनाव में बलरामपुर लोकसभा क्षेत्र (उत्तर प्रदेश) से चुनाव जीती थीं।
4. रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908-1974) हिंदी के प्रमुख कवि। चीनी आक्रमण के समय राज्य सभा सदस्य थे। दिनकर चीन के विश्वासघात से आहत थे। उनका राष्ट्रप्रेम प्रचंड रूप में जाग्रत् हो उठा और उन्होंने इसी भावभूमि पर कई कविताएँ लिखीं, जो 'परशुराम की प्रतीक्षा' शीर्षक संग्रह में संकलित हैं। भारत-चीन युद्ध के समय इन्होंने अपनी कृतियों से समूचे देश को जाग्रत् किया था।

गहराई से देखना पड़ेगा। अब कांग्रेस में भी ऐसी स्थिति नहीं है कि जो नेहरूजी कहेंगे वही होगा। कृष्ण मेनन और मालवीय का नेहरूजी की इच्छा न होने पर भी हटाया जाना[5] इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। समाचार-पत्रों के क्षेत्र में भी कम्युनिस्टों की स्थिति गिरी ही है और मज़दूर क्षेत्र में भी। इस प्रकार हम देखेंगे कि साम्यवाद के विरोध के कार्य और शक्ति में मज़बूती आई है। अब रह गया प्रश्न कम्युनिस्टों की केंद्रीय संगठित शक्ति को निर्मूल करने का—यह तो देशव्यापी राष्ट्रवादियों की संगठित शक्ति के द्वारा कितना काम हो रहा है, हम कितना प्रयास कर रहे हैं, इसी बात पर निर्भर करता है।

पूरी शक्ति से जुट जाएँ

जैसे वर्षा के बाद किसान घर पर बैठना पसंद नहीं करता, वैसे ही परिवर्तन के कारण इस अनुकूल परिस्थिति का राष्ट्रवादियों ने यदि लाभ उठाया तो निःसंदेह देश में प्रखर राष्ट्रीयता के भाव उद्दीप्त कर सकेंगे।

देश पर छाए संकटों और संकटकाल का जहाँ तक प्रश्न है, वास्तविकता तो यह है कि संकट अभी समाप्त नहीं हुआ है। संकटों का मुक़ाबला करने के लिए समस्त राष्ट्रवादी शक्तियों को सतत प्रयत्नशील रहना है। देश और समाज को राष्ट्रवादियों से बहुत सी अपेक्षाएँ हैं। उन्हें चाहिए कि इन अपेक्षा करनेवालों को भी वे अपने साथ लाकर खड़ा करें और इस दृष्टि से राष्ट्रवादी तत्त्व अपना आत्मालोचन भी करें।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 23, 1963

□

---

5. चीन से मिली पराजय के बाद जनता के गुस्से को शांत करने के लिए तत्कालीन रक्षा मंत्री वी.के. कृष्ण मेनन ने 9 नवंबर, 1962 को इस्तीफ़ा दे दिया था। दूसरी ओर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जाँच में भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध हो जाने के पश्चात् केंद्रीय खनन व ईंधन मंत्री केशव देव मालवीय को 24 जून, 1963 को इस्तीफ़ा देना पड़ा था।

35

भारतीय जनसंघ वार्षिक राष्ट्रीय अधिवेशन, अहमदाबाद महामंत्री प्रतिवेदन*

दीनदयालजी का यह प्रतिवेदन मौखिक था। टंकित प्रति उपलब्ध हुई।

देश में आपातकालीन स्थिति के कारण जो एक गंभीर वातावरण व्याप्त था, उसकी पृष्ठभूमि में हम लोगों ने कुछ निर्णय लिये थे। हमने यह तय किया था कि भारतीय जनसंघ इस समय देश पर आक्रमण से उत्पन्न संकट की अवस्था में दलीय दृष्टिकोण को एक ओर रखकर संपूर्ण राष्ट्र में एकता स्थापित करेगा और शत्रु का विरोध करेगा, डटकर खड़े होने की संकल्प शक्ति जाग्रत् करेगा। उस समय अपने प्रधान आचार्य रघुवीर, जो सुरक्षा के प्रश्न पर एक विशेषज्ञ की हैसियत से बोल सकते थे, हम लोगों को मार्गदर्शन के लिए विद्यमान थे और उन्होंने जो सुझाव उस दृष्टि से दिए, वे निश्चित ही भारत की सुरक्षा व्यवस्था के संबंध में सही रूप से सोचनेवालों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

अधिवेशन से जाने के तुरंत बाद ही हम लोगों के सामने एक प्रश्न आकर खड़ा हो गया। कोलंबो में एशिया और अफ्रीका के कुछ देशों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए और उन्होंने भारत तथा चीन, दोनों के बीच में विद्यमान संघर्ष को टालने के विचार से कुछ प्रस्ताव रखे। उन प्रस्तावों के संबंध में भारतीय जनसंघ की नीति का निर्धारण करने के

---

* देखें परिशिष्ट XIII, पृष्ठ 332।

हेतु प्रधानजी ने कार्यसमिति की आवश्यक बैठक बुलाई और हम इस निर्णय पर पहुँचे कि भारत शासन को इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि इन प्रस्तावों को स्वीकार करने के उपरांत हमारी स्थिति में परिवर्तन हो जाएगा और देश के संकल्प में ढिलाई पैदा होगी।

उन प्रस्तावों में चीन को आक्रमणकारी घोषित नहीं किया गया था, इसलिए आक्रमणकारी और आक्रामक दोनों को एक ही स्तर पर रखकर जो बातचीत का सुझाव रखा गया है, वह हमको अमान्य था। हमने कहा था कि यदि उन प्रस्तावों को मान लिया गया तो जहाँ आज चीन आक्रमणकारी है, कल वे क्षेत्र सीमा संबंधी विवाद का रूप धारण करके रह जाएँगे। इन प्रस्तावों के अनुसार चीन भारत की भूमि को पूर्णतया छोड़कर, हमारी सीमाओं से पीछे नहीं हटता था और इसलिए भारत शासन के द्वारा ऐसी किसी भी स्थिति को स्वीकार करना, जिसमें चीन भारतभूमि पर बना रहे और हम बातचीत करें, यह भारत की सार्वभौम प्रभुसत्ता के प्रति हमारी दृष्टि में अपमान है। इसलिए हमने इसे कभी स्वीकार नहीं किया।

इस निर्णय के उपरांत हमने यह भी उचित समझा कि दूसरे दल भी इस प्रकार का निर्णय लें और संसद् में सब लोग इस स्थिति का विरोध करें। यह सौभाग्य का विषय है कि जिस प्रकार हमने सोचा, उसी प्रकार कम्युनिस्टों को छोड़कर बाक़ी देश में अन्य दलों ने भी निर्णय लिया और इसलिए जब संसद् में यह प्रस्ताव आया तो पहली बार ग़ैर कम्युनिस्ट विरोधी दल एक आवाज़ से सरकार के विचारों का, सरकार की नीतियों का विरोध करने के लिए खड़े हुए।

इसके कारण संभवतः शासन को कुछ चिंता भी पैदा हुई और मैं तो कहूँगा, इसलिए उन्होंने राष्ट्रवादी और प्रजातंत्रीय विरोधी दलों की एकता में दरार डालने के लिए कुछ प्रयत्न प्रारंभ किए और जिस भाषा विधेयक को शासन ने आपातकालीन स्थिति होने के बाद स्थगित कर दिया था, उसको फिर से लेने की घोषणा की। हमने शासन को यह बताने का प्रयत्न किया कि भाषा के संबंध में चाहे जो नीति हो, किंतु अंग्रेज़ी को सदा के लिए भारत की सखी राजभाषा बनाने के लिए कम-से-कम 26 जनवरी, 1965 तक टाला जा सकता है। इस समय तक संविधान में जो व्यवस्था की गई है, वह क़ायम रहेगी और यदि संविधान की भाषा संबंधी धाराएँ लागू होंगी तो 26 जनवरी, 1965 के बाद होंगी। इसलिए यदि कोई कठिनाई या ऐसा प्रस्ताव प्रस्तुत हो, जिसकी दृष्टि से भाषा नीति के संबंध में पुनर्विचार करना पड़े तो वह उस समय प्रस्तुत होगा। किंतु शासन ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और विवादग्रस्त प्रश्न को खड़ा कर दिया।

हम लोगों के सामने धर्मसंकट था। इसलिए यदि प्रश्न का विरोध नहीं करें तो जिसको हम समझते हैं कि भारत की स्वतंत्रता का एक आवश्यक अंग है, उसकी हम

अवहेलना कर देंगे, इसलिए हमने उस विधेयक का विरोध करने का निर्णय कर लिया। आचार्य रघुवीर जो अनेक प्रदेशों में गए, वहाँ भाषा सम्मेलनों का आयोजन किया और केवल हिंदी भाषा-भाषियों ने ही नहीं बल्कि अहिंदी भाषा-भाषियों, साहित्यिकों और विचारकों आदि का उन्हें सहयोग प्राप्त हुआ और उन्होंने यह निर्विवाद रूप से बता दिया कि हिंदी का विरोध कितना निराधार है। साथ ही उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि संघर्ष हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं के बीच नहीं, हिंदी और अंग्रेज़ी के बीच है और इस नाते से हम यह कह सकते हैं कि प्रादेशिक भाषाओं के अनेक समर्थक हमारे इस विचार के पक्ष में आकर खड़े हुए।

इस विधेयक के साथ ही केंद्र का जो बजट प्रस्तुत हुआ, उसमें बहुत से नए कर लगाए गए। अनिवार्य बचत योजना लागू की और उससे पूर्व स्वर्ण नियंत्रण आदेश भी जारी किया गया। उन सबसे देश की अर्थव्यवस्था पर एक बहुत भारी बोझा पड़ा। यद्यपि यह सब सुरक्षा के नाम पर किया गया किंतु यह स्पष्ट था कि ऐसा कोई भी क़दम, जो देश की अर्थव्यवस्था को कमज़ोर करेगा, जो देश की अर्थव्यवस्था में ऐसा तनाव उत्पन्न कर दे, जो इसको किसी भी धक्के को सहन करने के लिए दुर्बल बना दे, वह सुरक्षा के लिए सहायक नहीं हो सकता।

इसलिए भारत को सुरक्षा की आवश्यकताओं, देश के विकास की आवश्यकताओं और सामान्य जनजीवन की आवश्यकताओं पर विचार करके, हम लोगों ने यह निर्णय लिया कि इस प्रश्न को अर्थात् नए करों का एवं अनिवार्य बचत योजना का डटकर विरोध किया जाए। इस दृष्टिकोण से कार्यक्रम बनाए गए, गाँव-गाँव में लोग गए, कुछ प्रदेशों में हस्ताक्षर आंदोलन हुए, प्रदर्शन भी आयोजित किए गए और जैसा कि निर्णय किया गया था। दिल्ली में इस विषय पर दिल्ली और आसपास के क्षेत्र से बहुत बड़ी संख्या में प्रदर्शनकारियों ने संसद् भवन के सामने प्रदर्शन किया।

प्रदेशों में लगान की बढ़ोतरी की थी, इसका भी विरोध किया गया और इन सबके परिणामस्वरूप आज यह कहा जा सकता है कि भारत को और प्रदेशों के शासनों को अपनी इस नीति के संबंध में पुनर्विचार करना पड़ा। अनिवार्य बचत योजना को जहाँ तक इनकम टैक्स न देनेवालों का संबंध है, रद्द कर दिया गया और इस प्रकार जो भू-राजस्व में कई प्रांतों में वृद्धि हुई थी, वह भी समाप्त कर दी गई। स्वर्ण नियंत्रण क़ानून में कुछ संशोधन हुए किंतु वे संशोधन ऐसे नहीं थे कि हमारे स्वर्णकार भाइयों की समस्या हल हो जाए; इस संबंध में यदि कुछ समाधान चाहते हैं तो और जन-जागृति करने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा।

इन प्रश्नों के साथ एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न आ गया था कि संसद् में जो वर्षाकालीन अधिवेशन हुआ, उस समय यह निर्णय लिया गया कि उस समय के केंद्रीय मंत्रिमंडल के

विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जाए। आप जानते हैं, लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव तब तक विचार के लिए नहीं लाया जा सकता, जब तक पचास सदस्यों का समर्थन प्राप्त न हो और आप जानते हैं कि किसी भी विरोधी दल के इतने सदस्य नहीं हैं। इसलिए विरोधी दलों को इस दृष्टि से आपस में मिलना बहुत ही आवश्यक हो जाता है। भारतीय जनसंघ ने प्रयत्न भी किया। लोकसभा में हमारे दल के नेता बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी[1] ने अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस दिया और बाद में दूसरे दलों के साथ बातचीत की। उनके इन प्रयत्नों का यह परिणाम निकला कि जहाँ एक ओर हमने कम्युनिस्टों का अविश्वास प्रस्ताव मतों के अभाव में गिरा दिया, वहाँ सभी विरोधी दलों को फिर से एक साथ मिलाकर केंद्रीय मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव खड़ा कर दिया।

जब यह प्रस्ताव आ रहा था, उस समय हम लोगों का प्रदर्शन भी आयोजित था। इसलिए हमने यह तय किया कि यह प्रदर्शन जब एक ओर अनिवार्य बचत योजना आदि प्रश्नों की ओर संसद् सदस्यों का ध्यान आकर्षित करेगा, वहाँ दूसरी ओर इस अविश्वास प्रस्ताव के संबंध में संसद् के बाहर जनता के व्यापक समर्थन को भी प्रकट करेगा।

इसके उपरांत उस समय हम लोगों की प्रतिनिधि सभा की बैठक हुई। उसमें यह निर्णय लिया गया कि इन प्रस्तावों को गाँव-गाँव में ले जाया जाए और कम-से-कम एक लाख गाँवों में जनसभाएँ करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इससे पहले कि यह कार्यक्रम शुरू होता, केंद्रीय मंत्रिमंडल में अनेक परिवर्तन आए और उनकी नीतियों में ऐसी घोषणाएँ हुईं, जिन घोषणाओं को कम-से-कम देखने से यह कहा जा सकता है कि जनता की माँगें स्वीकार करने की कोशिश की है।

इन प्रस्तावों के साथ हमने यह भी निर्णय किया कि सरकार की नीतियों का यह अवश्यंभावी परिणाम होगा कि देश में महँगाई बढ़े। उसकी चेतावनी भी शासन को दे दी थी। यदि माँगें बढ़ेंगी तो उससे जो सामान्य जन को तकलीफ़ होगी, उसको दूर करने के लिए कुछ कार्यक्रम स्थान-स्थान पर आयोजित हुए। और मैं समझता हूँ कि जो प्रतिनिधि आए हुए हैं, वे अपने क्षेत्र में इस विषय पर जो कार्यक्रम लिए हैं, उनको छोड़कर आए हुए हैं। शायद लौटने पर अपने उन प्रस्तावों को और आगे ले जाकर अपने आंदोलन को गति देनी पड़ेगी।

आसाम घुसपैठ

एक और प्रश्न है, जिसकी ओर भारतीय जनसंघ ने ध्यान आकर्षित किया और आज फिर जनसंघ उसको अत्यंत गंभीर प्रश्न समझकर आंदोलन का विषय बनाकर चल रहा है। वह प्रश्न है पाकिस्तान से अवैध रूप में आनेवाले तथा आसाम, त्रिपुरा और

1. उमाशंकर मुल्जिभाई त्रिवेदी मंदसौर निर्वाचन क्षेत्र (मध्य प्रदेश) से तीसरी लोकसभा में सदस्य थे।

बंगाल आदि क्षेत्रों में बसे हुए इन व्यक्तियों को बाहर निकालने का। आप बहुतों को स्मरण होगा कि जब कोटा में भारतीय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन हुआ था, उस समय आसाम के प्रदेश संगठन मंत्री श्री रमेश कुमार मिश्र ने सबका ध्यान इस प्रश्न की ओर खींचा था। अन्य लोगों ने उस समय कहा था कि हम लोग जो व्यर्थ में अपने सांप्रदायिक दृष्टिकोण के कारण, जैसा वे कहते हैं, हम मान लेते हैं। आज हम इस प्रश्न को खड़ा नहीं कर रहे हैं, किंतु आज यह कहा जा सकता है कि जिसको उन्होंने पहले सांप्रदायिक कहा था, उसको वे सभी लोग अब लेकर चल रहे हैं। अभी आसाम में उस विषय में एक निर्दलीय समिति भी बनाई गई है। उस संबंध में देशव्यापी आंदोलन करना होगा। इसका विचार आप करेंगे, इस संबंध में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।

कुछ दूसरे प्रश्न हैं, जो भारतीय जनसंघ के संगठन से संबंध रखते हैं। कुछ दूसरे दलों के साथ मेलजोल की भारतीय जनसंघ की नीति रही है। विभिन्न प्रश्नों पर दूसरे दलों के साथ सहयोग करें, ऐसा हमने समय-समय पर प्रयत्न किया। भाषा के प्रश्न पर समाजवादी दल के साथ मिलकर काम कर सके। कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध भारत की दृढ नीति रहे, इस प्रश्न पर प्रजातंत्रीय विरोधी दलों के साथ काम करना संभव हुआ है। यह सहयोग कितना आगे बढ़ेगा, यह कहना कठिन है किंतु एक नीति जनसंघ की है। हम धीरे-धीरे इस प्रकार, ऐसे सहयोग के वातावरण को और मज़बूत करें, किंतु यह कि प्रस्तावों और कार्यक्रमों के अनेक प्रश्न हैं, जिन पर भिन्न-भिन्न दल अपने-अपने अलग-अलग दृष्टिकोण रखते हैं। लोग उन आदर्शों के संबंध में विचार नहीं करते। वह कई बार सद्भावना के आधार पर यह सोचते हैं कि सभी दल एक साथ हो जाएँ तो बहुत अच्छा होगा। यह तो बहुत अच्छा चिंतन है किंतु वह मूलभूत बातें होती हैं, जिसके आधार पर वह बने हैं, इसलिए यह सद्भावना से बात पूरी नहीं हो पाती।

इसलिए हमने तय किया कि हम कोरी कल्पना तक सीमित नहीं रहेंगे या ऐसा काम नहीं करेंगे, जिसमें असफलता हाथ लगे। इससे तो अच्छा यह होगा कि जहाँ हम एकमत हों, वहाँ मिलकर काम करें, जहाँ नहीं, वहाँ अपने-अपने मंच पर से चलें। इस प्रकार के कुछ प्रयत्न चुनावों में हुए भी। यह वैधानिक रूप में नहीं हुआ। कांग्रेस के विरुद्ध जितने भी प्रजातंत्रीय विरोधी दल थे, वे एक होकर खड़े हो गए और उसमें कुछ सफलता भी मिली, यह अच्छा है।

एक बात मुझे ज़रूर कहनी होगी, किंतु जहाँ तक भारतीय जनसंघ का ताल्लुक है, पिछले कुछ वर्ष में जहाँ-जहाँ इस प्रकार के प्रयत्न हुए हैं, उन प्रयत्नों में जनसंघ को चुनावों की दृष्टि से कोई लाभ नहीं हुआ, सफलता नहीं मिली। किंतु फिर भी हमने अपनी इस नीति में परिवर्तन नहीं किया और हम इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि यदि यह सहयोग कुछ थोड़ा-बहुत आगे बढ़ सके तो बढ़ना चाहिए।

पिछली बार हमने संगठन की दृष्टि से निर्णय लिया था कि संगठन को आगे बढ़ाएँ और जहाँ संगठन नहीं है, वहाँ शाखाएँ प्रतिष्ठापित करें। ज़िलों में जाएँ, मंडलों में जाएँ, गाँवों में और प्रांतों में जाएँ। प्रदेश स्तर पर प्रदेश मंत्री कह सकते हैं, किंतु आज उड़ीसा और आसाम जिन दोनों प्रदेशों में भारतीय जनसंघ की समितियाँ नहीं थीं, वहाँ दोनों स्थानों पर समितियाँ बनाई गईं। इसी प्रकार आपको यह जानकर हर्ष होगा, समाचार-पत्रों से भी विदित हुआ होगा कि जम्मू और कश्मीर राज्य में प्रजा परिषद् जो भारतीय जनसंघ के साथ काम करती थी, वह अब प्रजा परिषद् के नाम से काम नहीं करेगी, भारतीय जनसंघ के नाम से काम करेगी और जनसंघ की वैधानिक दृष्टि से वैसी शाखा होगी जैसे अन्य प्रांतों में। इसलिए अब पं. प्रेमनाथ डोगरा जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् के न होकर भारतीय जनसंघ के नाते से माने जाएँगे।

एक छोटी सी घटना का उल्लेख करता हूँ कि हिंदू महासभा, रामराज्य परिषद् और भारतीय जनसंघ इनके बीच में कोई ऐसा सामंजस्य हो जाए, जिससे राजनीतिक प्रश्न टाले जा सकें, वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ किंतु धीरे-धीरे जो स्थिति पैदा हुई है, उससे एक बात साफ़ हो गई है कि अनेक हिंदू महासभा के कार्यकर्ता यह अनुभव करने लगे हैं कि राजनीतिक दृष्टि से अलग रहने के व्यापक हितों का विचार करते हुए लाभ नहीं है, इसलिए उत्तर प्रदेश के विधानसभा में हिंदू महासभा के दो विधायक उत्तर प्रदेश के जनसंघ दल के सहयोगी सदस्यों के रूप में काम करेंगे। इसी प्रकार मध्य प्रदेश में भी वहाँ के हिंदू महासभा के अनेक प्रमुख कार्यकर्ताओं ने अभी पिछले दिनों यह निर्णय लिया कि आपस में अलग रहकर काम करना ठीक नहीं है और वह जनसंघ में सम्मिलित हुए। मध्य प्रदेश विधानसभा के पहले जो विरोधी दल के नेता थे श्री निरंजन वर्मा, वह भी भारतीय जनसंघ में आ गए हैं। अखिल भारतीय कार्यसमिति के प्रमुख सदस्य श्री उदयभानजी मेहता भी आ गए हैं और भी कार्यकर्ता चले आ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि यह ऐसी दिशा में क़दम है कि इस प्रदेश में राष्ट्रीय शक्तियों को बल मिलेगा और भारतीय जनसंघ भारतीय जनता का प्रभावी नेतृत्व करने में समर्थ हो सकेगा।

आचार्य रघुवीर

अभी हाल में कुछ प्रादेशिक अधिवेशन हुए। ऐसे अधिवेशन उड़ीसा और आसाम में हो चुके हैं। पंजाब में भी हो चुके हैं। दूसरे प्रांतों में इसके बाद होंगे। अपने-अपने स्वास्थ्य के अनुसार लोगों ने तिथियाँ निश्चित कीं और वह उसी के अनुसार हुए। इस वर्ष हम लोगों का कुछ दुर्भाग्य रहा। अपने पिछले वर्ष जो अध्यक्ष चुने गए थे आचार्य रघुवीर, उनके कारण हमारे संगठन में कितना चैतन्य आया था। यह सब लोगों को पता है, अपने निर्वाचन के उपरांत ही उन्होंने सारे देश में मद्रास से गुवाहाटी तक, त्रिपुरा से

राजस्थान तक, सब जगह मैं समझता हूँ कि दो–चार महीनों में एक तूफ़ानी दौरा किया। इससे उन्होंने कार्यकर्ताओं को झकझोरकर खड़ा कर दिया था, किंतु हम लोगों का दुर्भाग्य है कि वे पिछली मई में जब जौनपुर के चुनाव आंदोलन से लौटकर फर्रुख़ाबाद जा रहे थे, उस समय मोटर दुर्घटना में कराल काल ने छीन लिया। जनसंघ के ऊपर यह बहुत बड़ा वज्रपात था किंतु जो विधि का विधान है, उसके सामने सिर झुकाने के अतिरिक्त और कोई उपाय रहता नहीं।

इसके उपरांत जब हम लोगों की कार्यसमिति की बैठक प्रयाग में आचार्यजी के प्रथम मासिक श्राद्ध दिवस के अवसर पर हुई तो उस समय सबने आचार्य देवा प्रसाद घोष से प्रार्थना की कि वे उस आड़े वक्त पर धीरज बँधाएँ और कार्य सँभालें और आप जानते हैं कि आचार्य देवा प्रसाद घोष जो जनसंघ के साथ प्रथम दिन से हैं और जो जनसंघ का काम बढ़ाने में सदैव सबसे आगे रहते हैं, उन्होंने इस दायित्व को स्वीकार किया और इतने दिन तक कार्यकारी अध्यक्ष के नाते से हम लोगों का मार्गदर्शन करते रहे। इस वर्ष जो चुनाव हुआ तो उस चुनाव में भी सभी प्रतिनिधियों ने यह उपर्युक्त समझा कि आज जब देश चौराहे पर खड़ा है, एक संकट की स्थिति में से गुज़र रहा है, लोग हतप्रभ हैं, जो एक इतने दिन से शासनरूढ़ दल था, जिसमें अनेक बुराइयाँ हैं और उनके बावजूद चल रहा था, लोग व्याकुल थे रास्ता ढूँढ़ने के लिए तो उस समय भारतीय जनसंघ की नाव को खेने के लिए जब चारों ओर भँवर हो, मगरमच्छ हों, हमें कुशल कर्णधार की आवश्यकता हुई, और स्वाभाविक है हमारी दृष्टि वयोवृद्ध नेता की ओर जाती और आप जानते हैं कि आचार्य देवा प्रसाद घोष लगातार चार वर्ष तक हमारा नेतृत्व कर चुके हैं, इसलिए सबने यह निर्णय लिया कि वे ही इस आगामी वर्ष में हम लोगों का नेतृत्व और मार्गदर्शन करें। मैं सभी प्रतिनिधियों की ओर से, भारतीय जनसंघ की ओर से आचार्यजी से अब यह प्रार्थना करता हूँ कि इस वर्ष के अध्यक्ष के नाते से वे कार्य का संचालन करते हुए हम लोगों का मार्गदर्शन करते रहें।

—दिसंबर 28, 1963

□

36

मिथ्या पाकिस्तानी प्रचार हिंदुस्तान पाकिस्तान पर हमला करेगा

लखनऊ विश्वविद्यालय छात्र यूनियन की ओर से आयोजित 'विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह' के अंतर्गत भाषण।

यूरोप, अमरीका एवं अफ्रीकी देशों के भ्रमण से लौटा हूँ। अमरीका तथा यूरोप में भारतीय समाचार बहुत कम प्रकाशित होते हैं। इस कारण यहाँ के समाचार वहाँ नहीं मिल पाते। जैसे विद्यार्थी नेताओं के जेल में बंद होने का समाचार भी यहीं आकर मिला। वहाँ केवल छात्र आंदोलन के विषय में संक्षिप्त समाचार मिला था, पर उसके विषय में कोई विशेष विवरण नहीं मिला।

पाक और चीन पर ही चर्चा

अमरीका में भ्रमण के समय मैं अनेक विश्वविद्यालयों में गया तथा वहाँ के विद्यार्थियों व अध्यापकों से चर्चा हुई। अधिकतर विद्यार्थी राजनीति तथा अंतरराष्ट्रीय अध्ययन विभाग के थे। चर्चा का प्रमुख विषय चीन तथा पाकिस्तान रहता था।

अमरीकी जनता में भ्रम

अमरीका के लोग चीन द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण को मानते हैं तथा उसके विरुद्ध भारत की सहायता करने के लिए भी तत्पर हैं। पर वे यह नहीं मानते कि पाकिस्तान से भी कोई संकट है। वे भारत द्वारा पाकिस्तान पर संकट तो मान सकते हैं, पर पाकिस्तान द्वारा भारत पर नहीं।

दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो कि एक समय में एक संकट को ही देख सकते हैं, दूसरे को नहीं। भारत में भी कुछ ऐसे लोग हैं जो कि चीन तथा पाकिस्तान के दो आक्रमण के संकटों में से केवल एक संकट को देख पाते हैं, दोनों को नहीं।

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ जब कि वहाँ के एक प्रमुख सज्जन ने कहा कि पाकिस्तान भारत से बहुत अधिक डरता है। टेलीविजन पर हुई एक भेंट में पाकिस्तान के श्री अयूब ने कहा कि हिंदुस्तान पाकिस्तान पर आक्रमण करेगा। पर ये बातें तथ्यों के एकदम विपरीत हैं। भारत द्वारा पाकिस्तान पर आक्रमण करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि हम तो अभी पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर की भूमि को वापस लेने के लिए भी तैयार नहीं हैं। पाकिस्तान के नेता, नाज़ी नेता हिटलर और गोएबल्स[1] का अनुसरण करते हुए यह मिथ्या प्रचार कर रहे हैं कि भारत पाकिस्तान पर आक्रमण करेगा। इस प्रचार का ही परिणाम है कि अमरीका का जनसाधारण पाकिस्तान को आक्रमणकारी न समझकर भारत को समझता है।

भारत पाकिस्तान पर हमला नहीं करेगा

मैंने अमरीका के लोगों से कहा कि पाकिस्तान को भारत से डरने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि पाकिस्तान का निर्माण भारत के तत्कालीन नेताओं की स्वीकृति से ही हुआ है। यदि भारत पाकिस्तान पर आक्रमण करना चाहता तो बहुत पहले ही वह ऐसा कर सकता था। 1947 में पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण के समय भारत ने अपनी सेनाएँ केवल कश्मीर में ही भेजीं, पश्चिमी या पूर्वी पाकिस्तान में नहीं। यदि भारत चाहता तो 1950 में पूर्वी बंगाल में हुए उपद्रवों के समय अपनी सेनाएँ ढाका में भेज सकता था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।

पाकिस्तान अनाक्रमण संधि का प्रस्ताव मान ले

पाकिस्तान को भारत से बहुत अधिक डर है तो उस डर को समाप्त करने का एक साधन यह है कि वह भारत के प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित भारत-पाकिस्तान अनाक्रमण संधि को मान ले। यदि उसका विश्वास भारतीय नेताओं पर नहीं है तो उसे भारत और अमरीका की परस्पर इस संधि का विश्वास तो करना चाहिए, जिसके अंतर्गत भारत अमरीका द्वारा प्राप्त सैनिक सहायता का प्रयोग पाकिस्तान के विरुद्ध नहीं करेगा। यदि इतना कुछ होने पर भी वे पाकिस्तान पर भारत द्वारा संकट की बात को मानते हैं तो वे

---

1. पॉल जोसफ़ गोएबल्स (1897-1945), एडोल्फ हिटलर के क़रीबी सहयोगी जो 1933 से 1945 तक जर्मनी के सार्वजनिक प्रबुद्धता तथा प्रचार मंत्री रहे। इनका कहना था कि एक ही झूठी बात को सौ बार दुहराने से वह सच बन जाती है।

स्वयं भी पाकिस्तान के दुष्प्रचार में सहायक हैं या उससे प्रभावित हैं या फिर उन्हें पाकिस्तान की और अपनी शक्ति पर भी विश्वास नहीं है।

लोग पाकिस्तान से समझौते की बात करते हैं। भारत सदा समझौते के लिए तैयार रहा है। पर हम भारत के हितों का बलिदान करके समझौता नहीं कर सकते।

विश्वविद्यालय के डीन आश्चर्यचकित

अमरीका में भ्रम है कि पाकिस्तान का निर्माण हिंदू-मुसलिम आधार पर हुआ था। वहाँ ऐसा समझा जाता है कि केवल कश्मीर में ही कुछ मुसलमान रहते हैं, शेष भारत में नहीं।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डीन से बातचीत करते समय उन्होंने कहा कि हमें विदेशी विद्यार्थियों को निवास के विषय में उस समय बहुत कठिनाई होती है, जबकि एक यहूदी विद्यार्थी अरब विद्यार्थी के साथ या अरब यहूदी के साथ रहना पसंद नहीं करता। यहूदी अरब तथा क्रिश्चियन विद्यार्थी एक-दूसरे के कार्यक्रमों में सम्मिलित नहीं होते। पर भारतीय तथा पाकिस्तान के विद्यार्थियों के विषय में ऐसी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। वे दोनों बहुत घुल-मिलकर रहते हैं। हम केवल उनके नाम जानकर यह समझ पाते हैं कि यह विद्यार्थी भारत का है या पाकिस्तान का। इस पर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ तो मैंने पूछा कि नाम जानकर आप कैसे पता लगाते हैं कि यह विद्यार्थी भारतीय है या पाकिस्तानी? उन्होंने उत्तर दिया कि यह तो बहुत सरल बात है। जिस विद्यार्थी का नाम हिंदू जैसा हो वह भारतीय और जिसका मुसलमान जैसा हो वह पाकिस्तानी। इस पर मैंने उन्हें बताया कि हिंदुस्तान में भी मुसलमान रहते हैं। उन्होंने कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है? तब भारतीय विद्यार्थियों के नाम देखकर वे बहुत अधिक आश्चर्यचकित हुए।

इस प्रकार का पाकिस्तान द्वारा किया मिथ्या प्रचार विदेशों में पाकिस्तान का पक्ष मज़बूत कर रहा है।

तुष्टीकरण से परिवर्तन असंभव

लोग यह कहते हैं कि हमें चीन का सामना करने के लिए पाकिस्तान से समझौता कर लेना चाहिए। पर वह हिंदुस्तान जो कि पाकिस्तान के साथ सौदा करके चीन के आक्रमण का सामना करना चाहेगा, ऐसा हिंदुस्तान कभी चीन का मुक़ाबला नहीं कर सकेगा। हम एक आक्रमणकारी का मुक़ाबला दूसरे आक्रमणकारी के सामने झुककर नहीं कर सकते, भारत को दोनों आक्रमणों को स्वीकार कर उनका दृढता के साथ सामना करना पड़ेगा।

पाकिस्तान का निर्माण ही भारत के विरोध के आधार पर हुआ है। हाँ, अनेक सरकारें पलट चुकी हैं, पर भारत के विरुद्ध जेहाद का नारा लगातार लग रहा है और लगता रहेगा। उससे समझौता नहीं हो सकता। नहरी पानी समझौता नहीं करा सका और अन्य अनेक समझौते पाकिस्तान की भारत विरोधी प्रवृत्ति को न बदल सके।

यदि यह मान भी लिया जाए कि पाकिस्तान में परिवर्तन हो जाएगा तब भी चीन का सामना करने के लिए सैनिक सामर्थ्य, राष्ट्रीय एकता तथा दृढ संकल्प की आवश्यकता है। एक के भी अभाव में शेष व्यर्थ है। किसी एक से समझौता करने पर राष्ट्रीयता व संकल्प में कमी आ जाएगी। चीन का सामना पाकिस्तान से समझौता करके नहीं किया जा सकता।

जर्मनी में एकीकरण की तीव्र भावना

वहाँ पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी के लोगों में अब भी एकता की भावना है। भारत के विभाजन के समय का यह विचार कि भविष्य में भारत और पाकिस्तान एक हो जाएँगे, हम भूलते जा रहे हैं। पर जर्मनी में एकता की आशा है।[2]

अथक परिश्रम ही प्रगति का रहस्य

अमरीका में भारतीय विद्यार्थियों ने शिकायत की कि यहाँ हमें प्रतिदिन सोलह घंटे से भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, जो कि मुझे संपूर्ण पश्चिमी देशों में और अफ्रीका में भी अनुभव हुई। इन देशों की सफलता का रहस्य यह घोर परिश्रम ही है। वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति, विद्यार्थी, अध्यापक, किसान, श्रमिक, इंजीनियर, व्यापारी, डॉक्टर और वैज्ञानिक आदि सब घोर परिश्रम करते हैं। वह अफ्रीका, जिसे अंधकारमय दुनिया कहा जाता है, भारत से क्रियाशीलता में अधिक है। अमरीका के लोगों में यह भावना कार्य कर रही है कि हम दुनिया के सब लोगों से आगे निकल जाएँ। दूसरे देशों को नीचा करके नहीं, बल्कि स्वयं उनसे आगे निकलकर।

---

2. द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी के आत्मसमर्पण के पश्चात् जून 1945 में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को चार भागों में बाँट दिया और उन पर सैनिक शासन लगा दिया गया। इनमें एक हिस्से पर अमरीका, दूसरे पर ब्रिटेन, तीसरे पर सोवियत संघ और चौथे पर फ्रांस ने अपना अधिकार जमाया। इसके बाद जर्मनी को दो भागों पश्चिमी व पूर्वी में बाँट दिया गया। पश्चिमी जर्मनी ने पूँजीवादी तथा पूर्वी जर्मनी ने साम्यवादी शासन वाला संविधान स्वीकारा। विभाजन के पश्चात् सैकड़ों कारीगर और व्यवसायी प्रतिदिन पूर्वी जर्मनी को छोड़ पश्चिमी भाग में जाने लगे। अनेक लोग राजनीतिक कारणों से भी पूर्वी जर्मनी को छोड़ पश्चिमी जर्मनी जाने लगे। इसी प्रवासन को रोकने के लिए सोवियत नेता निकिता ख्रुश्चेव की मंजूरी पर अगस्त 1961 में बर्लिन की दीवार का निर्माण हुआ। इसके विरोध में जर्मनी के लोगों में राष्ट्रवाद की भावना उग्र होती गई। 1980 के दशक में सोवियत आधिपत्य का पतन होने से पूर्वी जर्मनी में राजनीतिक उदारीकरण शुरू हुआ। अंततः 9 नवंबर, 1989 को बर्लिन की दीवार गिरा दी गई तथा 3 अक्तूबर, 1990 को पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण हो गया।

रूस द्वारा गेहूँ माँगने पर अमरीका के लोग आनंदित हुए। उन्होंने इस बात में गर्व समझा कि हम रूस के लोगों का पेट भर सकते हैं। कुछ लोगों ने अमरीका के लोगों को सलाह दी कि वे रूस को गेहूँ न दें, जिससे वहाँ के लोग भूखे मरेंगे तथा क्रांति होगी। क्रांति होने पर ख्रुश्चेव[3] की सरकार पलट जाएगी और कम्युनिज़्म समाप्त हो जाएगा। पर उन्होंने कहा कि हम कम्युनिज़्म को इस प्रकार समाप्त नहीं करना चाहते।

क्यूबा में भूकंप के समय सहायता तथा भारत की चीन के आक्रमण के विरुद्ध सहायता उन्होंने इसी भावना से की कि वे संसार को बताना चाहते हैं कि वे कितने उन्नत हैं। उनकी इस उन्नति व प्रगति का रहस्य घोर परिश्रम ही है। वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति सोलह घंटे से अधिक कार्य करता है। इसी कार्य के फलस्वरूप उनकी समृद्धि व प्रगति का निर्माण हुआ है।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 30, 1963

□

3. निकिता सरगेयेविच ख्रुश्चेव (1894–1971) सोवियत साम्यवादी पार्टी के प्रथम सचिव रहे। साथ ही, 1958 से 1964 तक सोवियत संघ के प्रधानमंत्री थे।

37

मेरी विदेश यात्रा*

अपनी विदेश यात्रा पूर्ण करने के बाद 'कुछ धारणाएँ' शीर्षक से दीनदयालजी ने चार आलेख लिखे, उनमें यह प्रथम आलेख है।

अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी और पूर्वी अफ्रीका की यात्रा समाप्त कर लगभग एक मास पूर्व मैं भारत वापस आया। अपनी इस यात्रा से वापस आकर मैं जिन-जिन स्थानों पर गया, वहाँ के लोगों ने एक ही प्रश्न किया कि इन देशों का भारत के बारे में क्या मत है? वैसे यह एक प्रकार का फैशन हो गया है कि इस प्रकार की यात्राओं से लौटकर अपने अनुभव लिखे जाएँ। संभवतः इसी आशा से मेरे कुछ मित्रों एवं सहयोगियों ने इस विलंब के लिए शिकायत भी की है। विलंब के लिए उनसें मैं क्षमा चाहता हूँ। इस लेखन कार्य में संगठन कार्य की व्यस्तता के अतिरिक्त मेरी झिझक भी एक बाधा थी। पश्चिमी देशों का जीवन अत्यधिक तीव्र गति से चलता है। उनकी सभी गतिविधियों को देख पाने के लिए मेरे पास केवल नौ सप्ताह का ही समय था। अगर मैं कुछ और पहले प्रस्थान कर सका होता तो मुझे तीन सप्ताह का समय और मिल जाता एवं कुछ अन्यान्य देश तथा स्थानों का अवलोकन किया जा सकता था। ख़ैर जो भी हो, भारत में अनेक बाधाएँ भी तो हैं, कुछ सरकारी, कुछ लाल फीताशाही, जिन में होकर किसी भी विदेश जानेवाले को गुज़रना पड़ता है। फलस्वरूप इसने ज़्यादा समय ले लिया। जिससे पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों में बाधा उत्पन्न हो गई और थोड़े ही समय में जल्दी-जल्दी यात्रा पूरी करनी पड़ी।

मेरी व्यस्तता

विभिन्न देशों में अतिथियों द्वारा नियोजित कार्यक्रमों के अतिरिक्त वहाँ स्थित

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ 323, परिशिष्ट X, पृष्ठ 324 एवं परिशिष्ट XII, पृष्ठ 328।

भारतीयों द्वारा भी बहुत से कार्यक्रम आयोजित किए गए। एक के बाद एक कार्यक्रमों के लिए भाग-दौड़ इतनी अधिक थी कि इस कारण किसी पर भी अधिक ध्यान देना संभव न था। कार्यक्रमों के स्वरूप भी इतने भिन्न प्रकार के थे कि मेरे मस्तिष्क में उनकी एक असंबद्ध सी स्मृति है। फलतः जो लोग किसी अधिकृत वक्तव्य या परिस्थितियों की संपूर्ण व्याख्या की आशा करते होंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा। समझता हूँ कि मेरी व्यस्तता एवं समयाभाव ही इसका प्रमुख कारण है।

विदेश और भारत

इन सब देशों में मुझे यह देखने को मिला कि भारत के प्रति वहाँ अत्यधिक सहानुभूति है। जहाँ कहीं मतभेद है, वहाँ भी वे हमारे दृष्टिकोण को समझने के लिए उत्सुक हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि वहाँ के लोगों के मस्तिष्क में भारत के प्रति एक ग़लत धारणा की निर्मिति हो गई है। किसी लंबी दाढ़ी वाले योगी या मदारी या किसी बनजारे के चित्र इतनी अधिक मात्रा में वहाँ प्रचलित किए गए हैं कि अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि ये सब चीज़ें भारतीय जीवन की वास्तविकता से परे हैं।

इसके अतिरिक्त श्री वी.के. कृष्ण मेनन और जान फॉस्टर डलेस[1] ने कुछ राजनीतिक भ्रम भी उत्पन्न कर दिए हैं। भारत पर चीनी आक्रमण एवं पाक-चीन गठबंधन के विषय में राजनीतिक भविष्यवाणियों के फलस्वरूप वहाँ के लोग भारत की ओर विशेष दृष्टि से देखने लगे हैं। हमारा प्रचार विभाग अत्यंत कमज़ोर है और इसीलिए हमें अपने विचारों के प्रचार के लिए अधिक सक्रिय क़दम उठाने चाहिए। पाकिस्तान, अमरीका का सैनिक गठबंधन[2] के कारण मित्र बन गया है। इस कारण उसको कुछ लाभ अवश्य है। लेकिन हम अपनी इस कमी को पूरा कर सकते हैं, क्योंकि तर्क एवं सत्य दोनों हमारे पक्ष में हैं। अमरीकावासियों के मन में, हम लोगों के सैनिक गुट से अलग होने के कारण, एक सच्ची मित्रता की भावना है। यदि इस भावना को ठीक प्रकार से विकसित किया गया तो किसी भी प्रकार की ऐसी भ्रांत धारणा नहीं उत्पन्न हो सकती कि जिससे हमारा पक्ष कमज़ोर हो जाए।

अमरीका में भारत के प्रति सहानुभूति

यद्यपि यह सत्य है कि प्रत्येक अमरीकी नागरिक को अधिक कर देना पड़ता है, फिर भी अमरीका में यह आम धारणा है कि अधिक कर देते हुए भी भारत या अन्य

---

1. जॉन फॉस्टर डलेस (1888-1959) सन् 1953 से 1959 तक संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश मंत्री रहे।
2. पाकिस्तान ने अमरीका के साथ 1954 में म्युचुअल डिफेंस असिस्टेंस एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर किया, जिसके तहत पाक सैनिक प्रशिक्षण के लिए अमरीका गए तथा अमरीका ने रावलपिंडी में मिलिटरी असिस्टेंस एडवाइज़री ग्रुप (एम.ए.ए.जी.) की स्थापना की थी।

अर्ध-विकसित देशों की यथासंभव सहायता की जाए। हमारी अन्य समस्याओं के प्रति भी उनको सहानुभूति है और वे हरसंभव सहायता देकर यह चाहते हैं कि हम विजयी हों। कांग्रेस द्वारा समय-समय पर जो विदेशी सहायता में कटौती की जाती है, वहाँ की जन भावनाओं का प्रतीक नहीं है। मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसने कांग्रेस की इस नीति के विरुद्ध असंतोष व्यक्त न किया हो।

कुछ स्थानों पर यह भी धारणा है कि सहायता के बदले में भारत से कुछ लिया जाए। एक अमरीकी प्रोफेसर ने यह स्वीकार किया कि 'यदि भारत की भौतिक उन्नति के लिए अमरीका मदद करता है तो उसके प्रतिदान में भारत को अमरीकी जनता को यह शिक्षा देनी चाहिए कि किस प्रकार एक शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है। किंतु क्या हम उनकी यह भूख शांत कर सकते हैं? क्या हम उन्हें अपना यह महान् संदेश दे सकते हैं? इन दोनों देशों के जीवन दर्शन निश्चित ही परस्पर पूरक हैं और यदि इसके विकास के लिए उचित पग उठाए गए तो इससे न केवल दो महान् राष्ट्रों की भिन्न जीवन प्रणालियों को जोड़ने का ही काम करेंगे, वरन् मानवता की शांति की दिशा में भी यह एक महान् योगदान होगा।

अमरीका विश्व में अपनी उच्च स्थिति के संबंध में प्रयत्नशील है, यह बहुत सरलतापूर्वक अनुभव किया जा सकता है। उसकी अधिकांश नीतियाँ आर्थिक और राजनीतिक हितों पर निर्धारित रहती हैं। किंतु जनता सदा ही इन नीतियों को सहयोग नहीं देती। अमरीका के इस दृष्टिकोण में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पर्याप्त परिवर्तन आया है। कुछ लोग हैं, जो यह सोचते हैं कि अमरीकी सरकार का यह दृष्टिकोण सद्भावनापूर्ण है। जैसे कि अंग्रेज़ों की धारणा थी कि विश्व को सभ्य बनाने का दायित्व 'श्वेतों' को ही है और इसी दायित्व के निर्वाह के लिए वे भिन्न देशों पर शासन करते हैं। यद्यपि मैं यह अनुभव करता हूँ कि बदली हुई परिस्थितियों में और अमरीका की इस अत्यधिक भौतिक उन्नति के कारण इस बात की तनिक भी संभावना नहीं है कि अंग्रेज़ों के इस इतिहास की पुनरावृत्ति हो सके।

क्यूबा को राष्ट्रीय संकट के समय दी गई अमरीकी सहायता एवं कम्युनिस्ट रूस को अमरीका द्वारा दिया गया गेहूँ उसकी इस भावना का द्योतक है कि संकट काल में सहायता के लिए आगे आना चाहिए। यदि इस भावना को ठीक दिशा दी गई तो यह न केवल दूसरे देशों के लिए ही अपितु अमरीका के लिए भी लाभप्रद हो सकेगी।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 30, 1963

□

38

अफ्रीका की जय हो!*

एक के बाद एक अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता[1] न केवल वहाँ के नागरिकों के लिए आनंद का विषय है बल्कि स्वतंत्रता कामी विश्व भर के लोगों के लिए यह आनंद का विषय है। विश्व-राष्ट्रों की मंडली में इन सभी का स्वागत है।

अफ्रीका अपना स्वरूप ले रहा है। अब यह वह अधंकारमय द्वीप नहीं रहा, जहाँ गोरे अप्रवासियों और दास व्यापारियों का वर्चस्व था। अफ्रीकी लोग आज अपने भाग्य-निर्माता स्वयं हैं। जिन नेताओं ने विभिन्न देशों में शासन सत्ता सँभाली है, उन पर आज विशेष दायित्व आया है। उन्हें एक ओर अफ्रीकी देश के जटिल संबंधों में अपने लोगों के लिए स्थान बनाना है तो दूसरी ओर विश्व के अन्य देशों से संबंध स्थापित करने हैं। जो संविधान उनके लिए और उनके द्वारा स्वीकार किया गया है, उसकी धाराओं को उन्हें लागू करना है। उन्हें लोगों के जीवन में इस प्रकार का समायोजन करना है कि उनकी आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके।

नई सरकारों द्वारा इन समस्याओं तथा इनसे जुड़ी अन्य बहुत सी समस्याओं के समाधान का स्वाभाविक कार्य किया जाना है। इनमें सफलता ही उनकी आज़ादी की सफलता का सही मापदंड है। आज़ादी के लिए लड़नेवाले नेताओं से कुछ और अधिक और भिन्न कार्य अपेक्षित है, जिसका कि उनको अभ्यास रहा है। गुलामी से आज़ादी पाना एक

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ 323, परिशिष्ट X, पृष्ठ 324 एवं परिशिष्ट XII, पृष्ठ 328।

1. अफ्रीकी देशों के लिए 60 का दशक स्वर्णिम युग रहा। इस दौरान लगभग 35 देश गुलामी की जंजीरों को तोड़ते हुए स्वतंत्र हुए थे। इनमें ब्रिटिश उपनिवेशवाद से स्वतंत्र होनेवाले देशों में केन्या, युगांडा, तंज़ानिया, सिएरा लियोन, नाइजीरिया, सोमालिया, घाना, सूडान, ज़ांबिया, बोट्सवाना, मॉरिथस, मालावी के नाम शामिल हैं। जबकि फ्रांसीसी उपनिवेशवाद से मोरक्को, ट्यूनीशिया, गुएना, केमेरून, सेनेगल, टोगो, माली, मेडागास्कर, बेनिन, नाइजर, बुर्किना फासो, चाड, गाबोन, अल्जीरिया स्वतंत्र हुए। बेल्जियम के उपनिवेशवाद से स्वतंत्र होनेवाले देशों में रवांडा, बुरुंडी तथा कांगो के नाम प्रमुख हैं।

क्रांतिकारी परिवर्तन है। आंदोलनकारियों और योद्धाओं को एकाएक प्रशासक और व्यवस्थापक बनाना है। असहमति को सहमति में बदलना है। लोगों की आकांक्षाओं की निरंतर पूर्ति से सतत प्रयत्न और लगातार परिश्रम करने का भाव पुष्ट होता है और जो कुछ भी प्राप्ति होती है, उससे संतोष का भाव उत्पन्न होता है। अभी यह कह पाना कि अफ्रीका के यह नए नेता अपने दायित्वों के निर्वाह में कितने सफल होंगे, जल्दबाज़ी होगी, परंतु इनमें से कुछ नेता जिस प्रकार आगे बढ़ रहे हैं, उससे उज्ज्वल भविष्य की आशा निश्चित रूप से बँधती है।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, वह इनसे एकाधिक सूत्रों से बँधा है। हम एक जैसे विदेशी शासन के अधीन रहे, इसलिए हम चाहे किसी भी कालखंड में स्वतंत्र हुए हों, सभी ग़ुलाम राष्ट्रों को उपनिवेशवाद के विरुद्ध आज़ादी की लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी है। निश्चय ही यह महान् संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ। अब तक जीती गई लड़ाइयाँ बहुत अधिक हैं और आगे लड़ी जानेवाली लड़ाइयाँ बहुत कम, इसलिए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक शासन समाप्त होकर रहेगा। अफ्रीका का हर नेता अपनी आज़ादी की लड़ाई में भारत का योगदान स्वीकार करता है और गांधीजी को अफ्रीका की आज़ादी की लड़ाई का प्रेरक मानता है। आगे चलकर आज़ाद होने के पश्चात् भारत ने इनमें से अनेक राष्ट्रों की आज़ादी की लड़ाई का केवल नैतिक समर्थन ही नहीं बल्कि प्रभावी समर्थन किया। नैरोबी में भारत के राजदूत अप्पा पंत[2] का नाम इतिहास के पृष्ठों में कीनिया और उसके निकटवर्ती राज्यों की आज़ादी के लिए लिखा जाएगा। जहाँ तक उन भारतीयों का प्रश्न है, जो इन देशों में बस चुके हैं, उनमें से कइयों ने देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आज़ादी के लिए संघर्ष किया और शासकों के अत्याचार सहे। अब जबकि वे देश आज़ाद हो गए हैं, वहाँ बसे भारतीय भी नागरिकों की तरह आनंद और उपलब्धि का अनुभव करते हैं।

इसलिए जब श्रीमती इंदिरा गांधी अपनी अज्ञानता के कारण यह कहती हैं कि वहाँ बसे भारतीय वहाँ के स्थानीय लोगों के साथ एक लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी नहीं हैं तो यह सुनकर बहुत कष्ट होता है। उनका कथन ग़ैर-राजनीतिक और सच्चाई से दूर है। कुछ आंदोलनकारियों और जनोत्तेजक राजनेताओं को छोड़कर कोई समझदार अफ्रीकी नेता इस विचार से सहमत न होगा। निश्चय ही भारत के प्रतिनिधि, भारत के किसी नेता को उन ग़ैर-ज़िम्मेदार लोगों के भाषणों से संकेत लेकर अपने विचार नहीं बनाने चाहिए, जो कि उन देशों में बसे मूल निवासियों और भारतीय के मूल लोगों में स्थापित सामंजस्यपूर्ण

---

2. आपा साहेब बाला साहेब पंत (1912–1992) गांधीवादी लेखक, स्वतंत्रता सेनानी तथा भारतीय राजनयिक थे। इन्होंने कई अफ्रीकी देशों में भारतीय आयुक्त के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं। ये इंडोनेशिया (1961–64), नॉर्वे (1964–1966), मिस्र (1966–1969), यूनाइटेड किंगडम (1969–1972) और इटली (1972–1975) के राजदूत भी रहे।

सिद्धांतों को छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं।

इन देशों में बसे भारतीय समुदायों में, विशेषकर हिंदुओं में, अपने भविष्य को लेकर कुछ संदेह पैदा हुए हैं। यह सब पहले तो स्वाधीनता से उत्पन्न अनिश्चितता के कारण है, दूसरे कुछ अफ्रीकी नेताओं के कथनों को लेकर है, जो उन्होंने एकीकरण आदि को लेकर दिए हैं। परंतु जो लोग सत्तारूढ़ हुए हैं, वे इन संदेहों को दूर करने में जुटे हैं।

वहाँ पर भारतीय समाज को पूरे विश्वास के साथ भविष्य के लिए मार्गदर्शन करनेवाला कोई नहीं है, इसलिए कभी-कभार भारतीय समुदाय के लोग दिग्भ्रमित दिखाई पड़ते हैं। उनमें से कुछ ने अफ़वाहों का शिकार होकर ऐसा व्यवहार भी किया जो कि उनके हित में ठीक नहीं था और उन्हें उससे बचना चाहिए था। 'ईस्ट अफ्रीकन ज्वॉइंट कमेटी' (पूर्वी अफ्रीकी संयुक्त समिति) की सदस्यता से एक हज़ार लोगों का सामूहिक त्याग-पत्र ऐसे ही कार्य का उदाहरण है। वहाँ बसे भारतीयों की समस्याओं की सहानुभूतिपूर्ण समझ तथा उन्हें सकारात्मक और संयत मार्गदर्शन की ज़रूरत है। इसके स्थान पर उन्हें डाँटा जाता है, उलाहने दिए जाते हैं और उपदेश सुनाए जाते हैं; मज़े की बात यह है कि यह सब वह सरकार (भारतीय) कर रही है, जो उनके हितों की रक्षा का कोई दायित्व लेने को तैयार नहीं है।

यह सच है कि उन देशों में बसे भारतीय उन्हीं देशों के नागरिक हैं और विभिन्न क्षेत्रों की सरकारों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वे अपने-अपने संविधानों के अनुसार, सभ्य व्यवहार के नियमों के अनुसार तथा यू.एन. के मानवाधिकार घोषणा-पत्र के अनुसार उनके कल्याण के लिए उत्तरदायी हैं, परंतु क्योंकि वे भारतीय मूल के हैं, इसलिए सरकार इस विषय में उदासीन नहीं रह सकती।

जब मैं पूर्वी अफ्रीका में था तो मैंने पाया कि भारत के उप विदेश मंत्री श्री दिनेश सिंह, जो पहले भी वहाँ रह चुके थे, के कुछ वक्तव्य वहाँ बसे भारतीयों के लिए आम तौर पर चिंता का विषय बने हुए थे। श्री दिनेश सिंह ने अपनी ग़लतियों का यह कहकर सुधार किया कि उनके कथन ग़लत सूचनाओं के कारण हुए थे।

अफ्रीका में, सच्चाई तो यह है कि सभी देशों में, विभिन्न वर्गों के विचारों और नीतियों के निर्माण में भावनाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि वाद-विवाद और क़ानूनी बारीक़ियाँ हमारे विचारों की अभिव्यक्ति को प्रभावित न करें। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे कथनों से अन्य लोगों की संवेदनाएँ कैसे प्रभावित होंगी। भारत को इन देशों की सरकारों से यह सुनिश्चित करवाना चाहिए कि भारतीय मूल के लोगों के जान-माल और आज़ादी की रक्षा उन देशों में होगी।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 3, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

39

कश्मीर और पूर्वी बंगाल की बात बहुत आगे जा चुकी है और बहुत देर से हो रही है!*

एक बार फिर पाकिस्तान कश्मीर समस्या को सुरक्षा परिषद् में ले गया है। उसने कश्मीर के संविधान में प्रस्तावित कुछ परिवर्तनों पर आपत्ति उठाई है। तकनीकी और क़ानूनी तौर पर पाकिस्तान के विरोध का कोई औचित्य नहीं है। भारत संघ के उसके अपने किसी राज्य से संबंद्ध हमारा आंतरिक विषय है। भारत किसी विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप को इसमें सहन नहीं कर सकता। पाकिस्तान प्रदेश की वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था निर्धारण का अंग नहीं थी और न ही केंद्र और जम्मू-कश्मीर के संबंधों में उसकी भूमिका थी। पाकिस्तान के वर्तमान पक्ष से क्या हम यह निष्कर्ष निकालें कि पाकिस्तान ने वर्तमान संबंधों को स्वीकार कर लिया है? यदि वह यह मान रहा है कि प्रदेश के लोगों ने पूरी तरह वैध तरीक़े से अपने आत्म-निर्णय के अधिकार का प्रयोग करते हुए वयस्क मताधिकार द्वारा चुनी गई अपनी संविधान सभा द्वारा प्रदेश के विलय की भारत में स्वीकृति दी है तो हम मान सकते हैं कि पाकिस्तान ने अपने पुराने पक्ष में संशोधन किया है। परंतु एक ऐसी सरकार से इस प्रकार की आशा करना जो सदा से हर विषय में दुराग्रही रही है, ज़्यादती होगा।

पाकिस्तान ने कश्मीर मुद्दा पुनः सुरक्षा परिषद् में ले जाने का निर्णय पूर्वी बंगाल में अपनी आपराधिक गतिविधियों पर परदा डालने के लिए किया गया है। पूर्वी बंगाल में हिंदुओं का जीवन और संपत्ति सुरक्षित नहीं है। कितने लोग मारे गए, इसका ब्योरा उपलब्ध नहीं है, परंतु वहाँ से निरंतर आनेवाले शरणार्थियों की संख्या 50 लाख से

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ 323, परिशिष्ट XIV, पृष्ठ 336 परिशिष्ट XV, पृष्ठ 338 एवं परिशिष्ट XVII, पृष्ठ 342।

अधिक हो चुकी है। यह कहना है कि वहाँ की इसलामिक सरकार उनकी सुरक्षा में असमर्थ रही है, उससे 'जिहाद' की योजना को पूरा करने का श्रेय छीनना होगा। पाकिस्तान इन सारे अमानवीय अपराधों में भागीदार रहा है। वे योजनापूर्वक हिंदुओं को देश छोड़ने को विवश करते रहे हैं और वे तब तक ऐसा करते रहेंगे, जब तक वहाँ एक भी हिंदू है। इसलाम के देश अर्थात् 'दार-उल-इसलाम'[1] में काफ़िरों के लिए कोई जगह नहीं है। कहीं भारत इस मुद्दे को वैश्विक संगठन में न ले जाए, इसलिए पाकिस्तान ने संसार का ध्यान बँटाने के कश्मीर का मुद्दा उठाया है।

भारत को जहाँ सुरक्षा परिषद् में अपने पूर्णतया या उचित न्यायपूर्ण संवैधानिक दृष्टि से वैध और राजनीतिक दृष्टि से ठीक निर्णय का बचाव करने में कोई कठिनाई नहीं होगी, वहीं उसे पूर्वी बंगाल के हिंदुओं के नागरिक अधिकारों की रक्षा, जीवन की पूर्ण सुरक्षा, स्वतंत्रता, सम्मान और संपदा की रक्षा सहित करनी होगी। दो ही रास्ते भारत के सम्मुख हैं—या तो भारत स्वयं पाकिस्तान को सुधरने के लिए विवश करे या फिर संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप की माँग करें। पाकिस्तान ने इस विषय में साझा अपील तक करने से इनकार कर दिया है। पाकिस्तान के शासक इस सीमा तक जा सकते हैं, क्योंकि यों भी जहाँ समझौते, संधियाँ और सौगंधें असफल हो चुकी हैं, वहाँ साझी अपील से किसी चमत्कार की आशा नहीं की जा सकती। परंतु ऐसा प्रस्ताव ठुकराया जाना महत्त्वपूर्ण है। परंतु हमें पाकिस्तान को कुछ सिखाने की ज़रूरत नहीं है। संविधान में लिखित अपने सिद्धांतों पर दृढ रहते हुए हमें पाकिस्तान से उस भाषा में बात करने के उपाय खोजने की ज़रूरत है, जो वह समझता है।

सुरक्षा परिषद् की बहस ने पश्चिम के देशों को दोनों देशों के प्रति दृष्टिकोण को पुनः स्पष्ट करने का अवसर दिया है। अभी तक पश्चिम एक मित्र विश्वशांति के लिए प्रतिबद्ध और प्रजातांत्रिक परंपरा से जुड़े देश की अपेक्षा अपने सैनिक समझौतों में बँधे देश के पक्षधर रहे हैं। अब पाकिस्तान ने चीन के साथ मित्रता की है और सैनिक समझौतों सहित अनेक समझौते किए हैं तथा अपने अनधिकृत अधिकार वाले, सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कश्मीर का 2000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र उसे हस्तांतरित कर दिया है इसलिए पश्चिम के प्रजातांत्रिक देशों को पुनर्विचार करना चाहिए, जो अब तक इस मामले में अपनी विवशता जताते रहे हैं।

इसके विपरीत वे पाकिस्तान के तुष्टीकरण के लिए भारत पर दबाव डालते रहे हैं। चीन द्वारा 'नेफा' और 'लद्दाख' में भयंकर आक्रमण के समय उन्होंने हमें पाकिस्तान

---

1. इसलामिक समाजशास्त्र के अनुसार दार-उल-इसलाम वह क्षेत्र है, जहाँ इसलाम का शासन (शरीयत क़ानून) चलता है, जहाँ क़ुरान तथा अल्लाह में आस्था रखनेवालों का बहुमत हो। सभी इसलामिक देश इस परिभाषा के तहत आते हैं।

के साथ वार्त्ता करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने पाकिस्तान द्वारा राजशाही में हमारे उप दूतावास को बंद करने की प्रतिक्रियास्वरूप शिलांग में उसके उप दूतावास को बंद न करने की सलाह दी। अब संकेत यही हैं कि वे हमें कश्मीर राज्य के भारत में विलय के कोई क़दम न उठाने की सलाह देंगे।

न केवल यह भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का प्रश्न है बल्कि ऐसा करने से हम राज्य के प्रति अपने सारे दायित्वों को भुला रहे होंगे। कश्मीर में जो कुछ हो रहा है, भारत उसका मूक दर्शक कैसे रह सकता है? यदि लोगों की राज्य की सरकार में आस्था समाप्त हो चुकी है, जैसा कि सभी राजनीतिक दलों के नेताओं के कथन से स्पष्ट है तो केंद्र का यह दायित्व है कि वह लोग का विश्वास पुनः बनाए। उस प्रदेश में अव्यवस्था की स्थिति हमारे दुश्मनों के लिए ही लाभप्रद है। अमरीका और ब्रिटेन पाकिस्तान पर यह दबाव क्यों नहीं डाल सकते कि वह भारत की परेशानी के समय लाभ उठाने का प्रयत्न न करे? क्या हम यह निष्कर्ष निकाल लें कि ये दोनों शक्तियाँ पाकिस्तान के सम्मुख विवश हैं? हमारे इस निष्कर्ष को पुष्ट करनेवाले किसी तर्कपूर्ण आधार के न होने पर भी लोग उन लोगों के इस दुष्प्रचार के शिकार हो सकते हैं, जो कि भारत और पश्चिम के संबंधों को बेहतर होते नहीं देखना चाहते, कि पश्चिमी देश पाकिस्तान से मिले हुए हैं।

सुरक्षा परिषद् की बहस यद्यपि अनावश्यक है, तो भी वह पश्चिमी राष्ट्रों को इस ग़लतफ़हमी को दूर करने का अवसर प्रदान करती है। यदि वे मानते हैं कि पाकिस्तान का व्यवहार मूर्खतापूर्ण है तो उन्हें यह खुलकर और साहसपूर्वक कहना चाहिए। जो बात वह निजी बातचीत में कहते हैं, वही उन्हें सार्वजनिक तौर पर बल देकर करनी चाहिए। इससे उनकी परेशानी का अंत होगा, पाकिस्तान सुधरेगा, और उन्हें भारत के स्वतंत्रताप्रेमी लोगों द्वारा सम्मान मिलेगा। यह विचार भी है कि पाकिस्तान पश्चिमी शक्तियों को ब्लैकमेल कर रहा है। यदि ऐसा है तो किसी ब्लैकमेलर के आगे समर्पण करना उचित नहीं। जितना अधिक आप झुकेंगे, उतनी अधिक कठोर उसकी माँगें होती जाएँगी।

पश्चिम का निर्णय जो भी हो, भारत को पाकिस्तान की दबंगई की चालों के आगे झुकना नहीं चाहिए। हमें इस विचार से मूर्ख नहीं बनना चाहिए कि हम बड़े भाई हैं और सारे त्याग हमें ही करने हैं। एक के बाद एक अपने वैध अधिकारों को छोड़ने के कारण बड़ा भाई सिमटता गया है। आइए, हम इस ग्रंथि से मुक्ति पा लें। हमें दृढ रहना चाहिए। चीन के आक्रमण से कश्मीर पर हमारे अहरणीय अधिकार में कोई बदलाव नहीं आया है। यदि कोई परिवर्तन आया है तो वह यही है कि हम आक्रांता का सामना और अधिक दृढता से करते हुए अपने देश की अखंडता की रक्षा करें। अब पाकिस्तान

के तुष्टीकरण के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसा करने से हमें दुगुनी हानि होगी। इससे चीन के एक साथी को बल मिलेगा, आक्रांता को दुसाहसी बनाएगा और भारत की आक्रांता से लड़ने की इच्छाशक्ति को कम करेगा। जो लोग पाकिस्तान के घृणित इरादों में उसकी सहायता करना चाहते हैं, वे भारत के दृढ निश्चय को कमज़ोर करते हैं। हमें इससे बचकर रहना चाहिए।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 3, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

40

कश्मीर में विषाद*

गत दो माह से कश्मीर विषादग्रस्त है। हज़रत बल की दरगाह से पवित्र-निशानी के ग़ायब होते ही मानो राज्य प्रशासन भी वहाँ से ग़ायब हो गया। लोगों को संदेह है कि वहाँ के सत्ताधारी लोगों का इस चोरी में कुछ हाथ अवश्य है। अब तक पवित्र बाल मिल चुका है। उसका सत्यापन करने के पश्चात् उसी जगह स्थापन भी हो चुका है। अपराधियों के नाम भी सार्वजनिक किए जा चुके हैं। परंतु इतना कुछ होने पर भी राज्य में शांति स्थापित नहीं हुई। जुलूस, सभाएँ और हड़तालें हर रोज़ हो रही हैं। यद्यपि क़ानून-व्यवस्था चरमराई नहीं है परंतु कोई क़ानून दिखाई भी नहीं पड़ता। लोगों की एकता, उनकी अच्छे पड़ोसियों की तरह रहने की इच्छा और उनके केंद्र सरकार में विश्वास ने शांति स्थापित करने में सहायता की है और स्थिति को अव्यवस्थित होने से रोका है।

लंबे समय तक इस स्थिति को बने रहने नहीं दिया जा सकता। हम उस स्थिति में भी नहीं पहुँचे हैं, जहाँ राज्य-सत्ता समाप्त हो जाती है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि राज्य में अनेक राष्ट्र विरोधी तत्त्व मौजूद हैं, जो इस अव्यवस्था का लाभ उठाने को तत्पर हैं। पाकिस्तान शरारत करने पर उतारू है और उसके रेडियो से विषाक्त प्रचार दिन-रात लोगों के कानों में उड़ेला जा रहा है। यह एक चमत्कार ही है कि कश्मीर के लोग इस अत्यधिक उत्तेजित मनःस्थिति में भी पाकिस्तान के बहकावे में नहीं आए। एक बार फिर यह भ्रम टूटा है कि घाटी में पाकिस्तान समर्थक नागरिक बड़ी मात्रा में फैले हैं। उन्होंने इतने असंदिग्ध रूप से भारतीय नेतृत्व में अपनी आस्था प्रकट कर दी है कि अब उन पर संदेह करना अन्यायपूर्ण होगा।

जहाँ केंद्र में उनके विश्वास पर संदेह नहीं किया जा सकता, वहीं राज्य सरकार से

* देखें परिशिष्ट XIV, पृष्ठ 336, परिशिष्ट XV, पृष्ठ 338 एवं परिशिष्ट XVII, पृष्ठ 342।

उनका विश्वास उठ गया है, इसमें भी संदेह नहीं। वे इस सत्ता को सहन नहीं कर सकते। यह जानना उत्साहवर्धक है कि इस विषय में पूरे राज्य की जनता एकमत है। केवल कुछ गिने-जुने लोगों को छोड़कर जिन्हें बख़्शी परिवार के संरक्षण से लाभ पहुँचा है, राज्य का हर नागरिक चाहता है कि यह शासन समाप्त हो। 1947 में जब यहाँ के लोग पाकिस्तानी आक्रांताओं के विरुद्ध खड़े हुए थे, उसके पश्चात् पहली बार लोगों में ऐसी एकता देखने में आई है। भारत सरकार का दायित्व था कि वह लोगों की इस एकता को और मज़बूत करे।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत सरकार ने परिस्थिति का बिल्कुल ग़लत आकलन किया। सदा से इसकी नीति अस्थिरता की रही है। मज़बूत और ठोस क़दम उठाने की जगह यह सदा 'देखो और इंतज़ार करो की नीति' पर चलती आई है, जिसके परिणामस्वरूप जिन लोगों ने केंद्र सरकार में अपनी आस्था प्रकट की थी और माना था कि न्याय होगा, अब उनका मोहभंग होने लगा है। अब वे अनेक तरह की अवांछित शक्तियों के शिकार हो रहे हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि पाकिस्तानी तत्त्वों को इससे शह मिल रही है। अब्दुल्ला समर्थक भी सक्रिय हो गए हैं। वे सांप्रदायिक तत्त्व, जो उन नौ दिनों में जब कि लोग पवित्र निशानी के खो जाने का शोक मना रहे थे, अपना सिर उठाने का साहस न कर सके, अब गड़बड़ी करना चाहते हैं। ऐसे पोस्टर जिनमें हिंदुओं को घाटी छोड़कर चले जाने की चेतावनी दी गई, घाटी में सब जगह चिपके हैं। भय का वातावरण है और यदि लोगों में विश्वास स्थापित नहीं होगा तो घाटी से हिंदुओं का बड़ी मात्रा में पलायन होगा। बिना विभाग के केंद्रीय मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को कश्मीर की स्थिति का अध्ययन करने और इस उलझी समस्या का समाधान खोजने के लिए कश्मीर भेजा गया है। वे अनेक लोगों से मिले हैं। लोगों की घाटी और जम्मू में एक माँग यह थी कि वर्तमान शासन को भंग कर कश्मीर में सदर-ए-रियासत का राज्य स्थापित किया जाए। श्री शास्त्री ने इसकी जगह 28 फरवरी को चुने जानेवाले नए नेता के अधीन मंत्रिमंडल के गठन का प्रस्ताव किया है। जो हालात हैं, उनमें लगता है कि श्री जी.एम. सादिक़ मंत्रिमंडल के मुखिया होंगे। नए मंत्रिमंडल का स्वरूप क्या होगा, यह पता नहीं। स्वाभाविक रूप से वह संयुक्त मंत्रिमंडल होगा, क्योंकि श्री शास्त्री का दावा है कि वे नेशनल कॉन्फ्रेंस के दोनों धड़ों में समझौता करवाने में सफल हो गए हैं। इस प्रकार नई बोतलों में फिर वही पुरानी शराब होगी अर्थात् सत्ता पक्ष में वही लोग होंगे, जो कामराज योजना से पहले सत्ता में थे। केवल एकमात्र संभावित परिवर्तन यही होगा कि पहले जी.एम. बख़्शी उनके नेता थे, अब जी.एम. सादिक़ होंगे।[1]

---

1. ग़ुलाम मोहम्मद बख़्शी 1953 से 1963 तक जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री रहे तथा ग़ुलाम मोहम्मद सादिक़ ने 1964-65 में राज्य का नेतृत्व किया था।

क्या इस समाधान से कश्मीर में शांति व्यवस्था स्थापित हो सकेगी? क्या श्री सादिक़ को प्रदेश के दो प्रमुख क्षेत्रों के लोगों का विश्वास प्राप्त है? जहाँ तक जम्मू का प्रश्न है, सरकार ने उनका विश्वास प्राप्त करने की कभी चिंता नहीं की है। कट्टर राष्ट्रवादी होने के कारण वे भारत के साथ निकट संबंध बनाने में जुटे रहे हैं। अपनी देशभक्ति के कारण उन्हें अपमान और उपेक्षा सहनी पड़ी है। उनके साथ हर प्रकार का भेदभाव हुआ है—सांप्रदायिक, क्षेत्रीय और दलीय। अपने दु:खों से एकमात्र सात्त्विक संतोष वे यही प्राप्त कर सकते हैं कि उनके दु:खों से देश को संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की आवश्यकता, उपयुक्तता और औचित्य का विश्वास हो गया है। श्री जी.एम. सादिक भी इस विचार के प्रबल समर्थक रहे हैं। यदि वे इस दिशा में शीघ्र क़दम बढ़ाते हैं तो वह प्रदेश की जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की ही पूर्ति करेंगे।

श्री लाल बहादुर शास्त्री द्वारा किया गया समाधान परिस्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति न करने के कारण निराशाजनक है। स्पष्ट है कि वे प्रदेश के राजनीतिक रोग के निदान में असफल रहे हैं। इसलिए उनके उपाय प्रभावी नहीं होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि वह लोगों के असंतोष की गहराई और व्यापकता को समझ नहीं सके और न यह समझ सके कि प्रदेश प्रशासन कितना नीचे गिर चुका है। उनका समाधान कुछ लोगों को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कुछ ठुकराए हुए लोगों को पुन: उन पर थोपा जा रहा है। इससे भी बढ़कर यह प्रतीत होता है कि श्री शास्त्री कांग्रेस के सम्मान को पुन: स्थापित करने के लिए अधिक चिंतित थे, जिसे श्री बख़्शी ने ठेस पहुँचाई थी, इसलिए सादिक़ को दल का नेता उनके स्थान पर चुनवाया। ऐसा उन्होंने लोगों की उन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नहीं किया, जो उन्होंने बलपूर्वक, असंदिग्ध रूप से 'सदर-ए-रियासत' का शासन स्थापित करने के लिए प्रकट की थीं।

ठीक काम नहीं किया गया। परंतु वर्तमान समाधान को परीक्षण से पूर्व ही ठुकरा देना भी उचित नहीं। नेतृत्व की अपेक्षा, मंत्रिमंडल की बनावट, उसकी नीतियों और प्रशासन के रंग-ढंग का महत्त्व अधिक होगा। यदि श्री सादिक़ इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन ला सके तो शायद लोगों के भ्रम दूर हो जाएँगे। यह उन पर निर्भर करता है कि लोगों को अपना पक्षधर बनाते हैं या विरोधी।

यद्यपि सादिक़ साम्यवादी दल के पंजीकृत सदस्य नहीं हैं, परंतु उनका झुकाव वामपंथ की ओर माना जाता है। यदि वह अपने समय में साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं तो उनको केरल के ई.एम.एस. नंबूदरीपाद[2] जैसी स्थिति का सामना

---

2. एलामकुलम मनक्कल शंकरन नंबूदिरीपाद (1909–1998) भारतीय कम्युनिस्ट नेता और विचारक, जो 1957–59 में केरल के पहले मुख्यमंत्री रहे तथा इन्होंने फिर से 1967–69 तक राज्य की कमान सँभाली थी।

करना पड़ेगा। परंतु यदि वे दलीय निष्ठाओं से ऊपर उठकर बिना किसी वैचारिक पक्षपात के अपना दायित्व निर्वाह कर सके तो वे जनता का विश्वास पाने में सफल हो सकते हैं।

लोग धैर्यपूर्वक देखेंगे और प्रतीक्षा करेंगे। वे बड़ी सूक्ष्मता से जाँचेंगे और अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा नहीं करेंगे।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 2, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

41

बजट पर कुछ विचार

वित्त मंत्री श्री टी.टी. कृष्णामचारी के 1964-65 के बजट प्रस्ताव प्रयोगों, चुनिंदा क्षेत्र में अतिरिक्त बोझ और पूर्व में त्याग दिए गए उपायों का पुनः प्रयोग, राहत और छूट आदि का ऐसा विचित्र मिश्रण है कि उन पर दी गई पहली प्रतिक्रिया सामान्यतः लक्ष्य से भटकी ही होगी। चतुर और व्यावहारिक लोग, जो व्यापार और राजनीति में हैं, इस विषय पर बहुत सावधान हैं, यहाँ तक कि मौन साधे हैं। दूसरों ने इस पर प्रतिक्रिया दी, वह भी मुसीबत में सुख की तलाश जैसी ही है, ''ईश्वर का धन्यवाद। यह बहुत बुरा नहीं है।''

अपने पूर्ववर्ती द्वारा डाले गए गत वर्ष के भारी बोझ के मुक़ाबले श्री कृष्णामचारी द्वारा लगाए करों से मात्र 40.27 करोड़ की वृद्धि से आघातजन्य प्रतिक्रियाएँ नहीं हुईं। संसद् में आलोचना भी अधिकतम वित्तीय आधार पर न होकर सैद्धांतिक आधार पर हुई। नवसमाजवादियों और साम्यवादियों को लगा कि इस बजट में भुवनेश्वर जैसी भावना नहीं है और स्वतंत्र पार्टी के महासचिव ने घोषित किया कि यह 'वहशी' और 'मुक्त' उद्यम को नष्ट करनेवाला बजट है।

उचित निदान अनुचित उपचार

यह मताग्रही और पक्षपातपूर्ण यहाँ तक कि रुग्ण मानिसकता के विचार दर्शक दीर्घा के लिए दिए गए भाषण को रंगीन बनाने में उपयोगी हो सकते हैं। एक-एक नियोजित अर्थव्यवस्था में बजट का निर्धारण योजना की मूलभूत अभिधारणाओं और असंतुलन को दूर करने के व्यावहारिक उपायों तथा अर्थव्यवस्था में विद्यमान तनावों और दबावों को दूर करने के उपायों से होता है। बजट सरकार के हाथ में एक शक्तिशाली साधन होता है, जिससे लोगों के आर्थिक निर्णयों को ऐसी दिशा में मोड़ा जा सकता है, जिससे वे विकास और स्थिरता में सहायक हों। निपुण वित्त मंत्री ने कितनी दक्षता से

इनका उपयोग किया है, इसकी जाँच होनी है।

शायद ही कोई देश के 1963-64 के आर्थिक सर्वेक्षण से असहमत होगा। परंतु हैरानी इस बात को लेकर होती है कि जो डॉक्टर रोग की सही पहचान करने में सफल रहा, वह उपयुक्त दवा लिखना भूल गया। वित्त मंत्री द्वारा मूल्यवृद्धि और भुगतान संतुलन की तीन समस्याओं को स्वीकार किया गया। बेकारी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। परंतु हम उसका ज़िक्र न होने की बात समझ सकते हैं, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था अभी विकास के उस स्तर पर नहीं पहुँची है, जहाँ वार्षिक बजट का मूल्यांकन पूर्ण रोज़गार के लक्ष्य की प्राप्ति की कसौटी पर किया जा सके। यहाँ तक कि तीनों समस्याओं को सुलझाने के लिए भी वित्त मंत्री ने कुछ नहीं किया। समस्या को गंभीरता को देखते हुए छिटपुट और जोड़-जाड़ के उपायों से समस्या समाधान न होगा। यह ठीक है कि तीनों समस्याएँ परस्पर संबद्ध हैं। परंतु सरकार की नीति आज तक एक को दूसरे पर अधिमान देने की रही है। पूरी अर्थव्यवस्था पर सम्यक् दृष्टि नहीं डाली गई।

गत आठ वर्षों से मूल्यवृद्धि हो रही है। गत वर्ष से मूल्यों में उछाल अत्यधिक परेशान करनेवाला है। उत्पादन में कमी, सरकार के अनुत्पादक ख़र्चों में वृद्धि तथा एक बड़ी सीमा तक अप्रत्यक्ष करों के कारण बढ़ती उत्पादन लागत तथा जनसंख्या वृद्धि और उपभोग की आदतों में बदलाव के कारण माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि मूल्य वृद्धि के प्रमुख कारण हैं।

शेनॉय के विवेकपूर्ण सुझाव

सरकार जो एक काम कर सकती है और उसे अवश्य करना चाहिए, वह है अनुत्पादक ख़र्चों में कटौती। मितव्ययता की प्रतिबद्धता जताते हुए भी वित्त मंत्री इस दिशा में कुछ भी सकारात्मक कर पाने का दावा नहीं कर सकते। सीमाओं पर साम्यवादी चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के बढ़ते ख़तरों के कारण यह अनुभव किया गया कि योजना-ख़र्च में परिवर्तन किया जाए तथा कम महत्त्वपूर्ण और अनावश्यक ख़र्चों को बहुत कम किया जाए। परंतु सरकार ने इसके अनुरूप योजना पुनर्गठित करना उचित नहीं समझा। माना कि योजना कार्यक्रमों, रक्षा-आवश्यकताओं और ब्याज का भुगतान तो पूरा करना ही होगा, परंतु ग़ैर-सैनिक और ग़ैर-योजना परक ख़र्च में निरंतर वृद्धि का क्या औचित्य है?

1964-65 के बजट में इस शीर्षक के अंतर्गत 147.14 करोड़ की वृद्धि दिखाई गई है, जो 670.21 करोड़ से (1963-64 संशोधित) 817.35 करोड़ (बजट 64-65) हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार मितव्ययता की बजाय जनता के पैसे को नालियों में बहा रही है।

'प्रणाली एवं संगठन' विभाग ने न तो विभिन्न विभागों को संगठित किया और न

ही उन्हें प्रणालीबद्ध किया। श्री बी.आर. शेनॉय[1] ने सुझाव दिया था कि सरकारी ख़र्च को योजना-पूर्व के स्तर पर लाया जाए। यदि यह उन्हें अत्यधिक कठोर लगता है तो उन्हें और अधिक वृद्धि पर एकदम रोक लगानी चाहिए। यदि सरकार की यह फ़िज़ूलख़र्ची रोकी जा सके तो करों में कटौती के लिए निश्चित रूप से संभावना है और इसी से मूल्य कम होंगे और विकास उत्प्रेरित होगा।

गत वर्ष वित्त मंत्री ने वित्त वर्ष के भीतर 265.90 करोड़ के नए कर लगाने का प्रस्ताव किया था। परंतु संशोधित अनुमानों के अनुसार इनसे आय 77.50 करोड़ रुपए और अधिक होगी। वास्तव में आय शायद और अधिक हो। इन परिस्थितियों में कम-से-कम कुछ अप्रिय शुल्क कम करने का अवसर था। परंतु वित्त मंत्री न 750.39 करोड़ के कुल शुल्क में मात्र 8.70 करोड़ का शुल्क कम करना ही उचित समझा। 8.70 करोड़ की नाममात्र की राहत के सम्मुख उन्होंने 28.24 करोड़ का अतिरिक्त शुल्क लाद दिया है। इस प्रकार इसमें 19.24 करोड़ रुपए की शुद्ध अभिवृद्धि हुई है।

आम आदमी को कोई राहत नहीं

यदि हम वस्तुओं को देखें, तो पाएँगे कि आम उपभोग की वस्तुओं, जैसे मिट्टी का तेल, चीनी, माचिस, कपड़ा, चाय, सीमेंट, साबुन, काग़ज़ और सब्ज़ियों पर पहले की तरह ही भारी कर लग रहा है। सूत के धागे के मूल्य में हुए न्यूनतम परिवर्तन का प्रभाव सूती कपड़े के मूल्य पर पड़ा है। 750.39 करोड़ के संपूर्ण राजस्व में से 548.91 करोड़ का राजस्व दैनिक प्रयोग की मात्र 14 वस्तुओं से आता है। जब तक इन वस्तुओं पर बड़ी शुल्क छूट नहीं दी जाती, मूल्यों के कम होने में संदेह है, आम आदमी को राहत देने के मामले में वित्त मंत्री ने कंजूसी से काम लिया, परंतु यह समझ नहीं आता कि बाहर से निर्मित कारों पर तटकर 150 प्रतिशत से 60 प्रतिशत क्यों कर दिया गया। इस निर्णय के लिए कौन से वित्तीय अथवा आर्थिक आधार थे?

प्रत्यक्ष करों में परिवर्तन का निवेशकों ने स्वागत नहीं किया है। इन क़दमों से निवेश का क्षेत्र सिकुड़ेगा, जैसा कि गत कुछ वर्षों के अनुभव से स्पष्ट है। 'एकाधिकार आयोग' द्वारा जाँच दल का गठन उन्होंने अपने हानिकारक प्रस्तावों को छुपाने के लिए किया है। सालाना निधि की योजना सी.डी.एस. के समान ही परेशान करनेवाली है। यद्यपि यह एक नव परिवर्तन है। आयकर की दरों में बदलाव भी मध्य आर्य वर्ग के हितों के विरुद्ध है।

राजस्व के अनुमान कम करके दिखाना भी एक पुरानी बीमारी है। सार्वजनिक

---

1. बेल्लिकोथ रघुनाथ शेनॉय (1905-1978) उदारवादी अर्थशास्त्री थे। भारत में परंपरागत उदारवाद के एक अत्यंत प्रभावशाली समर्थक रहे। साथ ही, भारतीय आर्थिक संघ के अध्यक्ष और अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों की संस्था 'मोंट पेलेरिन सोसाइटी' के सदस्य भी थे।

लेखा समिति भी अपनी 21वीं रिपोर्ट में बजट अनुमानित और वास्तविक आय में बढ़ते अंतर से बहुत परेशान दीखती है। 1960-61 में यह अंतर 50 करोड़ रुपए था, जो कि 1962-63 में बढ़कर 212.43 करोड़ रुपए हो गया और यह 6 से 15 प्रतिशत हो गया। वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में इस तथ्य को स्वीकार किया और इसे सुधारने की बात कही। परंतु वित्त मंत्री का यह दावा कि वर्तमान बजट से उत्पादन में बढ़ोतरी होगी, उनके दिए राजस्व आय के अनुमान से पुष्ट नहीं होता। इस सबके लिए दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है और यह नौकरशाही के मशीनी तरीक़ों से पैदा नहीं की जा सकती, जिसे भारत सरकार अपनाती आ रही है।

राज्यों को केंद्र सरकार का अनुमान निरंतर बढ़ता जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 141.97 करोड़ रुपए का अनुदान राज्यों को केंद्र से दिया गया था। परंतु अब 1964-65 में एक वर्ष में 1173.57 करोड़ रुपए का भारी अनुदान राज्यों में दायित्व वहन की भावना का क्षरण करेगा।

फिक्की सही है

जहाँ तक देश की रक्षा का प्रश्न है, यह मानना पड़ेगा कि इस मद में ख़र्च अधिक ही करना होगा। यह जानकर दुःख होता है कि रक्षा विभाग पूँजीगत बजट में इसके लिए स्वीकृत राशि को भी ख़र्च नहीं कर पाया है। निश्चय ही कुछ परियोजनाओं को लागू करने में देरी हुई है। अपनी सीमाओं पर खड़े ख़तरों को देखते हुए इस देरी को चुपचाप सहन नहीं किया जा सकता।

भारत की फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री ने बजट पर अपने एक प्रस्ताव में वित्तीय और कराधान नीति के मूलाधारों में बार-बार किए जानेवाले परिवर्तनों पर चिंता व्यक्त की है। इसने यह प्रार्थना की है कि इसमें नीतिगत स्थिरता और क्रियान्वयन में निरंतरता बनी रहनी चाहिए।

केंद्र से राज्यों को स्थानांतरित होनेवाले संसाधनों में निरंतर वृद्धि, रक्षा बजट में दीर्घकाल तक ख़र्च में बढ़ोतरी किए जाने की आवश्यकता तथा विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप कर प्रणाली पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। साल-दर-साल तत्कालीन वित्त मंत्री की मनमर्ज़ी के अनुसार मनमाने परिवर्तन किए जाते रहे हैं। हमें इस विषय में कठोर नहीं होना चाहिए। परंतु नमनीयता का अर्थ भी मनमर्ज़ी नहीं होना चाहिए। इसलिए एक कराधान जाँच आयोग के गठन की आवश्यकता है, जो कराधान प्रणाली पर पूरी तरह पुनर्विचार कर एकीकृत कर प्रणाली विकसित करे।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 16, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

42

अमरीकी तीन प्रश्न पूछते हैं

अपने विदेश दौरे से लौटने के पश्चात् जिन लोगों से भी मिला, वे प्राय: यह प्रश्न पूछते हैं कि भारत के बारे में अमरीका का रवैया कैसा है। मेरा सामान्य उत्तर यही रहा है, ''भारतवर्ष के विषय में वहाँ बहुत सद्भाव है। परंतु मैं देख सकता था कि इस औपचारिक और सामान्य उत्तर से शायद ही वे संतुष्ट होनेवाले थे। वे इससे अधिक कुछ चाहते हैं। यहीं पर कठिनाई पैदा होती है।''

एक मेज़बान देश का आपके प्रति रवैया कैसा है, इसे समझ पाना आसान नहीं है। अमरीकी लोगों ने किसी तरह अनौपचारिक व्यवहार की आदत अपना ली है और वे अपनी वास्तविक भावनाओं को प्रकट भी नहीं होने देते। अंग्रेज़ प्राय: अल्पभाषी होते हैं। यदि वे आपसे बात करेंगे भी तो मौसम इत्यादि पर करेंगे। अमरीकी आपसे किसी भी विषय पर बातचीत कर सकते हैं, परंतु यदि आप उससे उनके असली विचारों का निष्कर्ष लगाने का विचार कर रहे हैं तो आपकी मानव प्रकृति की समझ अपरिपक्व है।

कुछ लोग हैं जिनके विचार उनकी आंतरिक प्रवृत्ति से निकलते हैं और ऐसे लोग भी हैं, जिनके शब्द केवल होंठों से झरते हैं। परंतु अमरीकियों के विषय में कहा जाता है कि अमरीकियों पर दोनों में से एक भी बात लागू नहीं होती। वे स्वभाव से ही विनम्र और शिष्ट हैं। यदि वे आपसे सहमत भी हैं तो भी वे अपनी असहमति जताकर आपको नाराज़ नहीं करेंगे। जब वे आपसे सहमति जताते हैं, तब भी शायद ही कभी उन्होंने अपने विचार पर ध्यान दिया होता है।

यदि मुझसे पूछे जानेवाले प्रश्न उनकी भारत में रुचि का कोई संकेत करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि वे पूछते हैं कि नेहरू के पश्चात् कौन उत्तराधिकारी होगा, साम्यवादी चीन और साम्यवाद को रोकने में चिंता जताते हैं, भारत-पाक मैत्री के प्रति भी उनका लगाव है और उसमें सहायता भी करना चाहते हैं। पंडित नेहरू के उत्तराधिकार

का प्रश्न बैठे-ठाले की जिज्ञासा समझकर छोड़ा जा सकता है। परंतु इस प्रश्न पर अमरीका में इतना अधिक लिखा और बोला जा चुका है कि अमरीकी लोग इसके दीवाने हो चुके हैं और यदि आप इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं देते तो वे समझेंगे कि आप उन्हें टाल रहे हैं। आपका कोई स्पष्टीकरण उन्हें संतुष्ट नहीं करेगा। परंतु यदि आप किसी व्यक्ति का नाम ले देते हैं और उसका औचित्य भी तर्कसहित दे देते हैं तो मान लिया जाएगा कि आपकी भारत विषयक बातों पर पकड़ है और प्रश्नकर्ता भी पूरी तरह संतुष्ट हो जाएगा। परंतु आपको सावधानीपूर्वक वी.के. कृष्ण मेनन का नाम देने से बचना होगा। यदि आप ऐसा करते हैं तो कुछ गंभीर और शांत क्षणों के पश्चात् आपको विषय बदल देना चाहिए। यदि अमरीकी किसी एक भारतीय से घृणा करते हैं, उसे नापसंद करते हैं तो वह व्यक्ति कृष्ण मेनन है। उनके नाम से लोगों को नफ़रत है। यदि व्यक्तियों और मानसिक झुकावों का अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर कोई असर होता है तो कहा जा सकता है कि भारत और अमरीका में मतभेद पैदा करने में वी.के. कृष्ण मेनन का बहुत बड़ा हाथ है।

पश्चिम के नीति निर्माताओं के लिए यह निरर्थक जिज्ञासा का प्रश्न नहीं है। वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर ही उनकी भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया संबंधी नीति का मुख्य बिंदु तय करेगा। यद्यपि वे यह मानते हैं कि भारत आज तक प्रजातांत्रिक आदर्शों को मानता रहा है, परंतु उनके मन में यह बात दबी हुई है कि हम ऐसा राष्ट्रीय परंपरा और प्रजातांत्रिक स्वभाव के कारण नहीं कर रहे बल्कि यह पंडित नेहरू और उनकी अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा के कारण हो रहा है। वे सोचते हैं कि अन्य देशों की तरह ही भारत में भी प्रजातंत्र शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। पंडित नेहरू का लंबा कार्यकाल भी इस विचार को बल देता है। परंतु वे आसानी से भूल जाते हैं कि रुज़वेल्ट के चार बार राष्ट्रपति रहने के उपरांत भी अमरीका में प्रजातंत्र ही बना रहा। सशक्त विपक्ष का अभाव और किसी दल के विकल्प के रूप में न उभर पाने के तर्क भी इस बात को पुष्ट करने को दिए गए। परंतु यहाँ भी हम जानते हैं कि यह स्थिति उस विशेष चुनावी क़ानून के कारण है, जो हमने अंग्रेज़ी संविधान से लिया है। जहाँ तक लोगों का प्रश्न है, उन्होंने अपने मत वैभिन्न्य का परिचय किसी-न-किसी प्रतिपक्षी प्रतिनिधि को अपना मत देकर साबित कर दिया है। इस प्रकार प्रतिपक्ष की संख्या भले ही कम हो परंतु वह निश्चय किसी भी अन्य देश की अपेक्षा अधिक सबल है और प्रभावी है। यह अवश्य समझना चाहिए कि दलीय आधार पर संगठित होना प्रजातांत्रिक और चुनावी परंपराओं का प्रतीक है, न कि प्रजातंत्र का प्राण तत्त्व। सभी प्रजातांत्रिक देश में राजनीतिक दलों और उनके स्वरूप में परिवर्तन प्रायः सभी देशों में होते रहे हैं। अमरीकी 'रिपब्लिकन' और 'डेमोक्रेटिक पार्टियाँ' एक शताब्दी पूर्व दलों के बिखराव और पुनर्गठन से बनी हैं।

यह जिज्ञासा वृत्ति राष्ट्र विशेष के संवैधानिक ढाँचे के कारण भी हो सकती है। अमरीका में राष्ट्रपति का व्यक्तित्व चुनावों पर सर्वाधिक हावी रहता है। दल और अन्य प्रतिनिधि गौण हो जाते हैं। भारत के विषय में भी यह सच है कि गत तीन आम चुनावों में कांग्रेस की विजय के लिए पंडित नेहरू का व्यक्तित्व अकेला सबसे बड़ा कारण रहा है। परंतु इस कारण का महत्त्व निरंतर घटता गया है। कुछ अन्य कारक भी हैं, जो आनेवाले समय में अधिक प्रभावी होंगे। इसलिए अमरीकी परंपरा को भारतीय भूमि में पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता। भारत में राजनीतिक दल व्यक्ति विशेष से अधिक महत्त्वपूर्ण रहेंगे। इसमें कभी-कभार अपवाद हो सकते हैं, परंतु अपवाद भी नियमों को ही सिद्ध करेंगे।

अमरीकियों के इस प्रश्न में उलझे रहने से उनकी अपने और बाहरी देशों विषयक सिद्धांत और व्यवहार में अंतर भी स्पष्ट होता है। वे अपने देश में प्रजातांत्रिक लोग हैं। परंतु अपने अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विषय में उनका नीति निर्धारण केवल अपने राष्ट्रीय हितों से होता है, एकांत सिद्धांतों से नहीं। इसके विपरीत हो सकता है कि यह केवल संयोग ही हो कि ग़ैर-यूरोपीय क्षेत्र में अमरीका के जिन भी देशों के साथ संबंध हैं, उन सबने प्रजातंत्र को छोड़ दिया है। एक प्रजातांत्रिक अमरीका हर जगह तानाशाहों के साथ है।

उसके सारे सैनिक संधियों वाले साथी निरंकुश शासक हैं। शायद उनके विदेश विभाग को उन्हें वश में रखना आसान लगता है। अपने देश में वे जनमत के प्रति संवेदनशील रह सकते हैं, परंतु अन्य देशों में जहाँ उन्हें केवल एक व्यक्ति को सँभालना होता है, वे आसानी से जनमत की उपेक्षा कर सकते हैं। इसलिए अमरीका के विषय में यह कहा जाता है कि वह कुछ देशों को जीतता है, परंतु वहाँ के लोगों को खो देता है। उन्हें लोगों का मन जीतने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वे उन देशों के लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं और आकांक्षाओं को समझें। इस आधार पर टिकी मैत्री अधिक गहरी और दीर्घजीवी होगी।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 23, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

43

परंपरावाद और यथास्थितिवाद

यह वर्ष प्रतिपदा के दिन (मार्च 15) को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दिल्ली प्रांत में दीनदयाल उपाध्याय का बौद्धिक है। डॉ. एन.सी. चटर्जी, लाला हंसराज गुप्ता और प्रकाश दत्त भार्गव भी समारोह में उपस्थित रहे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परंपरावाद और यथास्थितिवाद के विचार की पोषक नहीं है। जीवन गतिशील है स्थिर नहीं, इसलिए जो लोग परंपरावाद के नाम पर हर पुरानी वस्तु से चिपके रहना चाहते हैं, वे हमारे प्राचीन जीवन मूल्यों के प्रति न्याय नहीं करते।

जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आंदोलन प्रारंभ हुआ तो लोगों को यह देखकर धक्का लगता था कि स्वयंसेवक अपने शिविरों और जुलूसों में एक साथ मिलकर भोजन करते हैं और इस बात की बिल्कुल चिंता नहीं करते कि उनकी जातियाँ कौन सी हैं। ये परंपरावादी इस बात से हैरान थे कि डॉ. हेडगेवार, जो कि हिंदू धर्म और संस्कृति के प्रति इतनी अधिक श्रद्धा रखते हैं, ऐसी बातों को बढ़ावा कैसे दे सकते हैं। परंतु डॉ. हेडगेवार चुपचाप यह कार्य करते रहे। इस विषय में उनके विचार स्पष्ट थे। उन्होंने कोई 'जातपाँत तोड़ो मंडल' (जातपाँत के विनाश के लिए समिति) नहीं बनाया, परंतु प्रभावी रूप में आर.एस.एस. से जातिवाद को समाप्त कर दिया।

उनके अनुसार राष्ट्र के अतीत पर अभिमान की भावना अपने आप में लक्ष्य नहीं है। न ही लोगों को उज्ज्वल भविष्य के सपनों में मग्न रहना चाहिए। उज्ज्वल अतीत और उससे भी उज्ज्वल भविष्य में आस्था का राष्ट्रीय जीवन में तभी तक महत्त्व है, जब वे वर्तमान में हमें और अधिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करें। संघ के स्वयंसेवक इस श्रेणी के परंपरावादी हैं।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 23, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

44

हमेशा 'हिंदू' भारत और 'मुसलिम' पाकिस्तान होता है

यह लेख 'पोलिटिकल डायरी' (पुस्तक), 1971 में 'भारत, पाकिस्तान और अमरीका' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ।

कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के विरुद्ध भारत के प्रति अमरीकी जनता की सहानुभूति है, किंतु उसके मन में यह संदेह भी काम कर रहा है कि शायद हम चीन का समुचित रीति से सामना करने के इच्छुक नहीं हैं। हमारी पिछली नीति, जो निश्चित रूप से और निर्लज्ज तरीक़े से चीन समर्थक रही, और आक्रामक के प्रति हमारी नरमी का वर्तमान रुख़ बड़ी सीमा तक इस भावना का कारण है। इसके लिए यह समझ पाना कठिन है कि जिस देश पर हम आक्रामक होने का आरोप लगा रहे हैं, उसके साथ हम कूटनीतिक संबंध क्यों बनाए रखे हुए हैं? कोलंबो-प्रस्तावों के प्रति हमारे रुख़ को वे पसंद नहीं करते। वस्तुतः हमारी चीन-नीति उनके लिए एक पहेली है, असंगत और विरोधाभास-युक्त है। यह वह नीति है, जो ऐसे राष्ट्र की नीति नहीं हो सकती, जो अपने को आक्रांत मानता है, जिसे भविष्य में भी ख़तरा दिखाई देता है और जो स्थिति को बदल देने की इच्छा रखता है। इससे हमारा पक्ष दुर्बल हुआ है।

अमरीकी गुप्तचर विभाग के इस मत ने कि निकट में कम्युनिस्ट चीन का नया आक्रमण होने की संभावना नहीं है, और भारत सरकार की नीति ने भी अपने देश में उस उत्साह को ठंडा कर दिया है, जिस उत्साह के साथ वह अक्तूबर-नवंबर 1962 में हमारी सहायता के लिए दौड़ पड़ा था। भारत को सैनिक सहायता के प्रश्न को एक तात्कालिक विपत्ति के विरुद्ध अविलंब तैयारी की अपेक्षा दीर्घकालिक सामरिक तैयारी

की पृष्ठभूमि में लिया जा रहा है। इन परिस्थितियों में वह भारत को शस्त्रास्त्र न देने की पाकिस्तान की माँग को स्वीकार करने में कोई भी हानि नहीं देखता।

पूर्व-पश्चिम के बीच तनाव में कमी और चीन-रूस के बीच फूट के कारण भी इस नीति को बल मिलता है। अमरीका में अब यह भावना दृष्टिगोचर हो रही है कि अब दो ध्रुवों वाला विश्व नहीं रह गया है। क्यूबा में रूस के पीछे हटने के कारण भी अमरीका में आत्मविश्वास जाग्रत् हुआ प्रतीत होता है। अब एक बाज़ी जीत लेने के बाद वह दूसरी बाज़ी लगाने का ख़तरा मोल लेने को तैयार नहीं है। शीतयुद्ध की गर्मी से उसकी इच्छा एवं व्यूहरचना की पूर्ति हो जाती है। वर्तमान मन:स्थिति में अमरीका निश्चय ही भारत के साथ मैत्री करना चाहता है, परंतु वह यह भी नहीं चाहता कि भारत अमरीकी गुट में शामिल हो, जिससे रूस की बेचैनी बढ़ जाए। यह विचित्र दिखाई पड़ता है, परंतु है बिल्कुल सही कि पश्चिम अब भारत की गुटविहीनता की नीति से खिन्न नहीं अनुभव करता। कुछ सीमा तक यह उसके लिए अनुकूल भी है। मैं अमरीका में अनेक लोगों से मिला, जिन्होंने अपनी इस भावना को छिपाकर नहीं रखा।

पश्चिमी विश्व कम्युनिस्ट ब्लॉक में फूट बढ़ने से स्वाभाविकतया ही प्रसन्न है। यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि अंतत: यदि कम्युनिस्ट और ग़ैर-कम्युनिस्ट विश्व के बीच सशस्त्र युद्ध छिड़ा तो एक ही ब्लॉक के आंतरिक मतभेद आड़े नहीं आएँगे। पर अब सशस्त्र युद्ध की संभावना कम हो गई है और उस संभावना को समुचित नीति-निर्णयों के द्वारा और कम किया जा सकता है। चूँकि कम्युनिस्ट चीन ने कम्युनिस्ट विश्व के एकमेव मार्गदर्शक होने के सोवियत दावे को चुनौती दी है, उस पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना होगा। यदि चीन की रूस से ठन जाए, तो उस समय पश्चिमी देश खुलेआम चीन की पीठ भले न थपथपा सकें, वे चीन की पीठ में छुरा भोंकनेवाला भी कोई काम नहीं करेंगे। उनमें से कुछ तो कुछ सीमा तक चीन की पीठ भी ठोकेंगे, ताकि वह लड़खड़ाकर फिर से रूस के पैरों पर न गिर पड़े। इसमें इन सब बातों का उत्तर मिल जाता है कि उस समय कुओमिंतांग को चीन की मुख्य भूमि पर क्यों आक्रमण नहीं करने दिया गया, जब वह पश्चिमी सीमा पर उलझा हुआ था या भारत के विरुद्ध बर्बर आक्रमण के बाद ब्रिटेन ने चीन को विमानों की आपूर्ति करने का क्यों निर्णय किया, और फ्रांस ने अब तक के अपने प्रिय मित्र च्यांग काई शेक के साथ विश्वासघात करके भी कम्युनिस्ट चीन के साथ क्यों कूटनीतिक संबंध स्थापित किया।

इससे इस बात का भी यथार्थ उत्तर मिल जाता है कि कम्युनिस्ट चीन के साथ पाकिस्तान की मैत्री को अमरीका क्यों सहन कर रहा है। जहाँ तक अमरीकी जनता का संबंध है, वह पाकिस्तान की भँड़ैती से क्रुद्ध है। पाकिस्तान को केवल कम्युनिस्ट-विस्तारवाद को रोकने के लिए आनखशिख शस्त्रसज्ज किया गया था। किंतु ऐसे समय

पर, जब एक ग़ैर-कम्युनिस्ट देश भारत कम्युनिस्ट शक्ति के आक्रमण का शिकार हुआ, तब पाकिस्तान न केवल इस का निष्क्रिय दर्शक बना रहा बल्कि उसने भारत से शत्रुता चुकाने के लिए उसे एक स्वर्णावसर समझा। ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है, जिनका कहना था कि पाकिस्तान मूर्ख है, कृतघ्न है और अविश्वसनीय है।

किंतु अमरीकी प्रशासन का यह मत नहीं है। उसका परराष्ट्र विभाग अब भी पाकिस्तान को एक मित्र राष्ट्र मान रहा है और वह चीन के साथ पाकिस्तान की साँठ-गाँठ या चीन को पाकिस्तान भू-क्षेत्र दिए जाने पर चिंतित नहीं है।

वाशिंगटन के नीति-निर्माता यह चाहते हैं कि भारत कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध तो दृढ रुख़ अपनाए, पर साथ ही पाकिस्तान के प्रति नरम रहे। दूसरी ओर, पाकिस्तान के चीन के प्रति नरम रुख़ रखने और भारत के साथ कठोर रुख़ रखने पर उसे आपत्ति नहीं है। इसमें स्पष्ट विरोधाभास है, पर यही उसके लिए अनुकूल है।

जहाँ तक चीन का संबंध है, पश्चिमी शक्तियाँ अब वही भूमिका निभा रही हैं, जो पिछले वर्षों में भारत निभाता रहा है। अंतर इतना ही है कि भारत सरल भाव से, बल्कि निर्बोध भाव से, वैसा करता रहा। भारत की चीन-नीति को पश्चिमी ब्लॉक के भागीदारों में से एक देश का आशीर्वाद प्राप्त था। अनेक प्रसंगों में भारत ने ब्रिटेन का अनुकरण किया या उसके साथ लग गया। फिर भी, भारत ने आवश्यकता से अधिक अपनी भूमिका निभाई और इसलिए उसे कष्ट भी उठाना पड़ा। अब चूँकि भारत और चीन के संबंध तनावपूर्ण हो गए हैं, पाकिस्तान को उस भूमिका-निर्वाह करने के लिए चुना गया है। पाकिस्तान के साथ पश्चिमी देशों को एक सुविधा यह भी है कि वह सदैव ही संकेत ग्रहण करेगा, जब कि अनेक अवसरों पर भारत ने स्वतंत्र मार्ग अपनाया था और कई बार तो उसके कार्यों से पश्चिमी देशों को विरक्ति हुई और परेशानी भी उठानी पड़ी।

अमरीका की जनता और सरकार दोनों भारत-पाक एकता के लिए उत्सुक हैं। किंतु वे भारत का दृष्टिकोण पसंद करने की बात तो दूर, उसे समझने में विफल हैं। न केवल सर्वसाधारण अमरीकी, बल्कि वहाँ के विश्वविद्यालय-प्राध्यापक जैसे उच्च-शिक्षित व्यक्ति भी भारतीय जीवन के तथ्यों के बारे में सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वहाँ यह भावना व्यापक रूप में विद्यमान है कि भारत का विभाजन हिंदू-मुसलिम आधार पर हुआ था, और भारत में कोई मुसलमान नहीं रहता। एक विश्वविद्यालय में विदेशी छात्रों के एक डीन के साथ वार्त्ता करते समय मैंने उनसे पूछा कि विभिन्न देशों से आनेवाले छात्रों से क्यों उन्हें कोई कठिनाई अनुभव होती है? उन्होंने उत्तर दिया—अरब छात्र इज़राइल के यहूदी छात्रों के साथ रहना पसंद नहीं करते। मैंने उनसे पुनः यह प्रश्न किया कि क्या भारत और पाकिस्तान से आनेवाले छात्रों के बारे में भी उनका यही अनुभव है, तो उन्होंने इसका नकारात्मक उत्तर दिया और कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि

दोनों देशों के बीच तनावपूर्ण संबंध होते हुए भी भारतीय और पाकिस्तानी छात्र मैत्री की भावना के साथ कैसे रह लेते हैं।

मैंने उनको यह कहकर पूर्ण स्थिति समझाने का प्रयत्न किया कि भारत का विभाजन कृत्रिम आधार पर हुआ है और पूरे इतिहास में हम एक ही रहे हैं, अतः केवल एक राजनीति रेखा जनता को विभाजित नहीं कर सकती। मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि वहाँ का कोई व्यक्ति उनके पास आ जाए तो वे शायद ही यह पहचान पाएँ कि वह भारतीय है या पाकिस्तानी। उन्होंने कहा, "क्यों, यह तो बिल्कुल सरल बात है।" मैंने पूछा कि 'आप कैसे पहचानेंगे?' उन्होंने कहा, "बहुत सरल है। यदि उसका नाम मुसलमानी है तो वह निश्चय ही पाकिस्तानी है, अन्यथा भारतीय है।" मुझे यह अँगूठाछाप सरल तरीक़ा सुनकर बड़ा आघात लगा। मैंने उनसे विश्वविद्यालय के भारतीय छात्रों की एक सूची देने का अनुरोध किया। उन्होंने वह सूची प्रदान करने का आदेश दिया। उसमें लगभग एक दर्ज़न मुसलिम छात्र थे। मैंने पूछा कि क्या यह सूची है, क्योंकि इसमें कई 'पाकिस्तानी नाम' ग़लती से शामिल हो गए प्रतीत होते हैं। उन्होंने उसके सही होने की गारंटी दी। तब मैंने उनको वे मुसलिम नाम दिखाए और उनसे पूछा कि क्या वे यह जानते हैं कि मुसलिम छात्र हैं, और तब भी उनके नाम भारतीय सूची में शामिल हैं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि ये मुसलिम नाम हैं, किंतु वे यह नहीं बता सके कि सूची में कैसे हैं। वे कुछ चकित और हतप्रभ दिखाई पड़े। जब मैंने उन्हें यह बताया कि उसी सूची में मुसलिम नामों का शामिल होना ग़लत नहीं है, क्योंकि भारत में अब भी 4.5 करोड़ मुसलमान रहते हैं, तब कहीं जाकर वे सूची के शुद्ध होने के बारे में आश्वस्त हो पाए। उनके लिए यह एक नई जानकारी थी।

वे लोग भी, जो इन विद्वान् डीन की भाँति अनभिज्ञ नहीं हैं, भारत-पाक समस्याओं को हिंदू और मुसलिम की दृष्टि से ही देखते हैं। 'न्यूयॉर्क टाइम्स' का एक स्तंभ लेखक 'हिंदू' विशेषण जोड़े बिना भारत का उल्लेख नहीं कर सकता। वह सदैव 'हिंदू भारत' 'मुसलिम पाकिस्तान' लिखता है, विशेषतः कश्मीर के विषय में लिखते समय। मैंने उसके संपादकीय विभाग के एक सदस्य से इस परंपरा के बारे में प्रश्न किया कि क्या वे जानते हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, और वहाँ 4.5 करोड़ मुसलमान रहते हैं। उस सदस्य ने कहा, "हाँ, हम जानते हैं कि भारत में मुसलमान रहते हैं, परंतु उससे क्या? उसका देश निसदंग्धि रूप से वैसे ही एक हिंदू देश है, जैसे पाकिस्तान एक मुसलिम देश है।"

मुझे यह बात याद हो आई कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सदैव इससे इनकार किया कि वह एक हिंदू संगठन है और उसने सदैव मुसलिम लीग को उसके मुसलिमों का एकमात्र प्रतिनिधित्व करने के दावे पर चुनौती दी। अपने इस कथन की पुष्टि के

लिए उसने मुसलमानों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से न्यायोचित हिंदू-हितों की उपेक्षा तक की, परंतु अंग्रेज़ों ने कांग्रेस को सदा एक हिंदू संगठन और मुसलिम लीग को मुसलिम संगठन के रूप में ही मान्य किया। पुराना इतिहास अपने को फिर दुहरा रहा है। भारत यह दिखाने के लिए कि वह हिंदू देश नहीं है, चाहे जो करे, विश्व उस पर विश्वास नहीं करेगा। पाकिस्तान भी चाहे जितना इसलाम रहित बने, विश्व उसे मुसलमानों का देश मानेगा। अमरीका में ऐसे बहुत से लोग थे, जिन्हें यह ज्ञात नहीं था कि श्री छागला, जो अमरीका में भारत के राजदूत थे, मुसलमान हैं, और जब उनको यह बताया गया तो उन्हें इस पर विश्वास नहीं हुआ। जो लोग इसे जानते थे, वे भी यह मान्य करने को तैयार नहीं थे कि केवल इसी कारण भारत हिंदू राष्ट्र नहीं है।

जब मैंने इस विषय पर एक अन्य प्रोफेसर से चर्चा की, तब उन्होंने मुझसे कहा-और मैं समझता हूँ कि ठीक ही कहा कि मुसलमानों को भारत में रहने देने में और उनमें से योग्य व्यक्तियों को विभिन्न कामों के लिए चुनने में कोई ग़लती नहीं है। उन्होंने कहा कि जब किन्हीं विशेष पदों के लिए विदेशी नागरिकों को नियुक्त किया जा सकता है, तो यदि आपने अपने ही नागरिकों को नियुक्त किया तो उसमें ग़लत क्या है। किंतु उन्होंने यह भी कहा कि ''छागला ने यदि हिंदू भारत का प्रतिनिधित्व नहीं किया तो और किसका प्रतिनिधित्व किया?'' और यह भी कि ''कुछ समय के लिए लार्ड माउंटबेटन को गवर्नर जनरल रखकर भारत अंग्रेज़ों का देश तो नहीं बन गया?'' मैंने उनसे कहा कि यह तुलना सही नहीं है। भारत के मुसलमान अन्य देशी नहीं हैं। उन्होंने कहा, ''मैं यह बात मानता हूँ। परंतु जब तक भारत और पाकिस्तान मिलकर फिर से एक नहीं हो जाते, वे हिंदू-मुसलिम देश बने रहेंगे।'' मुझे प्रसन्नता हुई कि कम-से-कम ऐसे व्यक्ति से तो मेरी भेंट हुई जो 'अखंड भारत' को असंभव नहीं मानता। यह आश्चर्य की ही बात है कि जब कांग्रेसी नेता अखंड भारत का विरोध करते हैं, तब वे अपने रुख़ की सुस्पष्ट विसंगति को नहीं देख पाते। विभाजन और धर्मनिरपेक्षता में कोई मेल नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 30, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

45

आर्थिक प्रगति की समस्याएँ

ऑर्गनाइज़र के संपादक के.आर. मलकानी द्वारा दीनदयालजी का साक्षात्कार। यह साक्षात्कार ऑर्गनाइज़र के स्थायी स्तंभ पोलिटिकल डायरी के अंतर्गत प्रकाशित हुआ तथा पुनः 1971 में पोलिटिकल डायरी पुस्तक में भी छपा।

प्रश्न : क्या आप देश की आर्थिक प्रगति से संतुष्ट हैं ?

उत्तर : नहीं, मैं संतुष्ट नहीं हूँ।

प्रश्न : आपके विचार में क्या और कहाँ ग़लती है ?

उत्तर : मेरे विचार से हमारे विकास-कार्यों को पूँजी पर कम और श्रम पर अधिक निर्भर होना चाहिए। मैं यह भी सोचता हूँ कि इसे कम आयातोन्मुख भी होना चाहिए।

प्रश्न : क्या आप कुछ ठोस उदाहरण दे सकते हैं ?

उत्तर : निश्चय ही। हम अपने बाँधों को ही लें। हमने उन्हें बनाने के लिए ख़र्चीली मशीनें आयात की हैं। मैं समझता हूँ कि हमें बाँधों को बनाने के लिए अधिक श्रमिकों का उपयोग करना चाहिए था। मैं देखता हूँ कि चंबल-योजना पर कार्य करनेवाले मैसूरी इंजीनियरों ने अपनी स्थानीय योजनाओं के अनुभव पर वैसा कर दिखाया। मेरी इच्छा है कि देश के अन्य बाँधों पर भी वैसा ही किया गया होता।

मैं यह भी सोचता हूँ कि हमें छोटी बाँध-योजनाओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए था। उसमें कम ख़र्च होता, अधिक गति से उपयोग होता

और निश्चय ही वे जल्दी भी संपन्न होतीं तथा अपेक्षाकृत अधिक लाभ होता।

प्रश्न : कोई अन्य उदाहरण ?

उत्तर : हाँ, हाँ । मैं देखता हूँ कि हम बहुत सारे भवन बनवा रहे हैं और हम उन्हें पूरे का पूरा सीमेंट से बनवाते हैं। हम स्थानीय रूप से तैयार की गई ईंटों का उपयोग क्यों नहीं कर सकते? उससे न केवल सीमेंट के परिवहन का रेलवे पर पड़ रहा दबाव घट जाता, बल्कि स्थानीय विकेंद्रीकृत ईंट-भट्ठा उद्योग को भी प्रोत्साहन मिलता।

हम जहाज़ों का निर्माण करने के लिए जहाज़गाह (शिपयार्ड) बनवा रहे हैं, ताकि हम अपना व्यापार चला सकें। शायद इस स्तर पर हमारे लिए जहाज़ ख़रीद लेना अधिक सस्ता पड़ेगा। हम अपने न्यून पूँजी-साधन को फँसा रहे हैं। हमारा विनियोजन इस दृष्टि से होना चाहिए कि हमारा कामकाज शीघ्रता से प्रारंभ हो जाए। मेरा विचार है कि सरकार छोटे उद्योगों की ओर उतना ध्यान नहीं देती, जितना देना चाहिए।

प्रश्न : कोई उदाहरण ?

उत्तर : हमारे हल्के इंजीनियरिंग उद्योग ने बहुत अच्छा काम किया है। वे विद्युत् मोटर, पंप आदि निर्यात कर रहे हैं, पर उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार इस्पात का कोटा मिलने में कठिनाई होती है। बल्कि बहुधा ऐसा होता है कि सच्चे उपभोक्ताओं को लाइसेंस देने के बदले 'राजनीतिक व्यवसायियों' को दे दिया जाता है।

इस त्रुटिपूर्ण विकास का एक गंभीर परिणाम यह हुआ है कि आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति कम हो जाती है, इसलिए उपभोक्ता सामान के मूल्य लगातार बढ़ते जा रहे हैं।

प्रश्न : क्या आप ऐसा नहीं समझते कि मोटे तौर पर लोग पहले की अपेक्षा अच्छी तरह जीवन-यापन कर रहे हैं ?

उत्तर : भिन्न-भिन्न वर्गों में स्थिति भिन्न-भिन्न है। भूमिहीन श्रमिक की दशा अत्यंत ख़राब है। संपूर्ण वेतनजीवी समाज अर्थात् समाज के बँधी आय वाले वर्ग की भी वही दशा है। मध्यम वर्ग के किसान की दशा पहले से अधिक ख़राब नहीं है। बड़े किसान को सबसे अधिक लाभ हुआ है। कारख़ाने में काम करनेवाले कामगारों की हालत छोटे नगरों की अपेक्षा बड़े नगरों (Cities) में अच्छी है। व्यवसायों की दशा अच्छी चल रही है। वरिष्ठ वकीलों, डॉक्टरों आदि की दशा भी अच्छी है। पर आप देखेंगे कि जनता के अधिकांश भाग

की हालत पहले की अपेक्षा बुरी है। पहले क्लर्क और शिक्षक एक 'छोटा साहब' माना जाता था। आज वह साफ़ वस्त्रधारी मात्र रह गया है बस। उसकी कोई बचत नहीं, उसका कोई स्तर नहीं।

प्रश्न : यदि ऐसा है, तो वे आंदोलन क्यों नहीं करते ?

उत्तर : तीन वर्ष पहले केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों की जो हड़ताल हुई थी, वह इस गहरे असंतोष की ही एक अभिव्यक्ति थी। कार्यकाल में उनका इतना समय लग जाता है और कार्यालय जाने और कार्यालय से आने में भी इतना समय लग जाता है कि उनके पास आंदोलन करने के लिए बहुत कम समय या शक्ति रह जाती है। शायद ऐसा भी है कि श्वेत वस्त्रधारी वर्ग के लिए आंदोलन सामाजिक दृष्टि से उतना सम्मानास्पद नहीं माना जाता।

प्रश्न : क्या वेतनभोगी वर्ग पहले से अच्छा नहीं दिखाई देता ?

उत्तर : हाँ, दृश्य बदल गया है। उपभोग का मानदंड बदल गया है। महीने में एक बार सिनेमाघर जाना अनिवार्य सा बन गया है। किंतु उनके बच्चों को पीने के लिए दूध नहीं मिलता। यह मत भूलिए कि सन् 1939 से अब तक मूल्य बढ़कर पाँच गुने हो गए हैं, किंतु एक क्लर्क का मासिक वेतन 40 रुपए से केवल 105 रुपए तक ही पहुँच पाया है। केरल और मैसूर आदि में ग्रेजुएटों का प्रारंभिक वेतन 70 रुपए है।

प्रश्न : संभवतः आज अधिक गृहणियाँ काम में लगी हैं ?

उत्तर : बहुत अधिक नहीं, और देश के अधिकांश भाग में भी नहीं।

प्रश्न : अब खाद्यान्न के मूल्य ऊँचे हैं। फिर यह कैसी बात है कि किसान को अब भी पहले की अपेक्षा अधिक पैदावार करने के लिए प्रोत्साहन नहीं है ?

उत्तर : किसान पहले से अधिक उत्पादन कर रहा है। और उसे जो मूल्य मिलंता है, वह ऊँचा नहीं है। वह केवल 'ठीक-ठाक' है। उसकी आवश्यकता-पूर्ति की लागत भी उसे ज़्यादा पड़ रही है।

प्रश्न : मूल्य-स्तर के संबंध में खाद्यान्नों का मूल्य सबसे प्रमुख समस्या है। खाद्यान्नों का मूल्य ऊँचा होने के कारण ही अन्य वस्तुओं के मूल्य ऊँचे चढ़ रहे हैं और वेतनभोगी पिस रहे हैं। आप जितना ही किसान को देते जाएँगे, उतना ही क्लर्क को कष्ट पहुँचाते जाएँगे।

उत्तर : इससे बचने का भी एक मार्ग है। सरकार को एक निश्चित मात्रा में, उदाहरण के तौर पर दो सौ रुपए प्रति मास से, कम आय वालों के लिए खाद्य-वस्तुओं पर आर्थिक सहायता (सब्सिडी) देनी चाहिए। सरकार प्रशासन-व्यय में,

जिसमें सरकारी राजस्व का 20 प्रतिशत खप जाता है, कमी करके इसके लिए सरलता से धन जुटा सकती है। सरकारी कार्यालयों की बेशुमार वृद्धि में कटौती आवश्यक है।

प्रश्न : क्या आप मानते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूर्ण शक्ति से योगदान कर रहा है? क्या देश में अत्यधिक अकर्मण्यता नहीं है?

उत्तर : हाँ, वह बड़ी मात्रा में है।

प्रश्न : क्या आप ऐसा समझते हैं कि सादगी और त्याग का आदर्श इसका कारण है? क्या हमें इस त्याग की भावना का ही त्याग नहीं कर देना चाहिए?

उत्तर : सुनने में बड़ा आकर्षक लगता है। परंतु मैं समझता हूँ कि हमारे समाज ने कई आदर्श रखे हैं। धन कमाने को स्वयं में कोई अच्छी बात नहीं माना गया है। हमारे समाज को कार्यक्षम बनाने का सर्वोत्तम मार्ग है एक महान् राष्ट्रीय लक्ष्य की ओर लोगों के मस्तिष्क को मोड़ देना। उदाहरणार्थ, भारत और पाकिस्तान का पुनः एकीकरण एक लक्ष्य हो सकता है। भारत को चीनी आक्रमणों से दूर करना भी एक लक्ष्य हो सकता है।

प्रश्न : समाजवाद के एक प्रेरणास्पद लक्ष्य बन सकने की संभावना के बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि समाजवाद का अर्थ लगभग आधा दर्जन भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न वस्तु है। यह स्पष्ट है कि इसने किसी को प्रेरणा नहीं दी है। जब समाजवाद का अर्थ 'राष्ट्रीयकरण' है और राष्ट्रीयकरण का अर्थ गिने-चुने कृपाभाजनों को लाइसेंस देना है, जैसे कि खाद्यान्न-व्यापार के बारे में राजस्थान में हुआ—तब यदि समाजवाद से किसी को प्रेरणा नहीं मिलती, तो इसमें आश्चर्य भी क्या है।

प्रश्न : क्या आप विकास की गति को तीव्र बनाने के लिए कोई अन्य ठोस सुझाव दे सकते हैं?

उत्तर : वर्तमान में आयकर और निगम कर इतना ऊँचा है कि लोग कर चोरी करते हैं। इसका परिणाम है कि भारी मात्रा में काला धन, जो सट्टेबाज़ी के द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न करता है। मेरी इच्छा है कि सरकार कालडोर के सुझावों की पूरी योजना को स्वीकार करे और कराधान को घटाकर अधिकतम 45 प्रतिशत पर ले आए। फिर 250 प्रतिमास की न्यून आय पर भी कर की आवश्यकता नहीं है। कम-से-कम इससे दूनी आय पर

कर लगना आरंभ होना चाहिए। इससे आयकर-अधिकारियों को ऐसे अधिक कार्य से मुक्ति मिल जाएगी, जिससे बहुत कम आय होती है। मेरा यह भी सुझाव है कि नाममात्र की कर-दर को काटने के बाद सरकार घोषित आय को सच मान्य करे। बानगी के तौर पर जाँच के समय जो लोग करचोरी के दोषी पाए जाएँ, उनके विरुद्ध कठोर कार्रवाई की जा सकती है। मेरा विचार है कि इस प्रकार की पद्धति अपनाने पर सरकारी कोष में वर्तमान कर-पद्धति की तुलना में, जिसमें हर करदाता के साथ एक ठग के रूप में व्यवहार किया जाता है, अधिक राजस्व आ सकेगा।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 13, 1964

□

46

परिसंघ

भारत-पाकिस्तान और हिंदू-मुसलिम समस्या पर 12 अप्रैल को नई दिल्ली में दीनदयाल उपाध्याय और राममनोहर लोहिया का संयुक्त वक्तव्य।

पूर्वी पाकिस्तान में बड़े पैमाने पर दंगों से विवश होकर दो लाख से अधिक हिंदू तथा अन्य अल्पसंख्यक भारतीय सीमा में आए हैं जिससे स्वाभाविक रूप से भारत में उत्तेजना है। स्थिति पर नियंत्रण पाने और उचित उपाय खोजने के लिए आवश्यक है कि इस रोग का उचित निदान किया जाए। मानसिक पीड़ा के इन क्षणों में भी अपने राष्ट्रीय जीवन के मूलभूत मूल्यों की उपेक्षा न की जाए।

यह हमारा दृढ विश्वास है कि पाकिस्तान में स्थित हिंदुओं और अन्य अल्पसंख्यकों के जान-माल की रक्षा की ज़िम्मेदारी भारत सरकार की है। इस मामले को एक सरल, क़ानूनी ढंग से समझते हुए यह पक्ष लेना कि पाकिस्तान में रह रहे हिंदू पाकिस्तानी नागरिक हैं ख़तरनाक होगा और इसके परिणामस्वरूप हत्याएँ होंगी तथा दोनों देश में न्यूनाधिक मात्रा में प्रतिशोधपूर्ण कार्रवाइयाँ होंगी। जब भारत सरकार पाकिस्तान में रह रहे अल्पसंख्यकों के प्रति अपना दायित्व निभाने में असफल रहेगी तो लोग स्वाभाविक रूप से क्रुद्ध होंगे। हमारी लोगों से प्रार्थना है कि वे अपना गुस्सा भारतीय मुसलमानों की ओर न मोड़कर सरकार पर केंद्रित करें। यदि गुस्सा भारतीय मुसलमानों पर उतरता है तो सरकार को अपनी अकर्मण्यता को ढकने का लबादा बन जाएगा और उसे लोगों को बदनाम कर उनका दमन करने का अवसर मिलेगा।

जहाँ तक भारतीय मुसलमानों का प्रश्न है, यह हमारा निश्चित मत है कि उनके

जान-माल की रक्षा हर हालत में की जानी चाहिए। कोई घटना या कोई तर्क इस सच्चाई को झुठलाने का कारण नहीं हो सकता। एक ऐसा राज्य जो अपने नागरिकों के जान-माल की रक्षा नहीं कर सकता और ऐसे नागरिक जो अपने पड़ोसियों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं कर सकते, असभ्य युग में जी रहे माने जाएँगे। नागरिक का धर्म कोई भी हो, उसकी आज़ादी और सुरक्षा भारत की पवित्र परंपरा रही है। हम इस विषय में भारतीय मुसलमानों को पुन: आश्वस्त करते हैं और यह संदेश हर हिंदू घर तक पहुँचना चाहिए कि यह हमारा नागरिक के रूप में राष्ट्रीय दायित्व है कि इस आश्वासन को पूरा करें।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 20, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

47

अब्दुल्ला से बातचीत नहीं

भारत और जम्मू सरकार के आधिकारिक प्रवक्ताओं के इस बयान के पश्चात् कि वे सुरक्षा परिषद् में भारत के प्रतिनिधि श्री एम.सी. छागला के उचित बयान के पूरी तरह साथ हैं, किसी को इस विषय में संदेह नहीं रहना चाहिए। परंतु जिस तरह से इन्होंने शेख़ अब्दुल्ला के मामले में व्यवहार किया है तथा उसे और उसके साथियों को सार्वजनिक रूप से अलगाववाद के प्रचार का अवसर दिया है, उससे लोगों के मन में राज्य के भविष्य को लेकर शंका उत्पन्न हुई है। सरकारी नीतियों की घोषणाओं और क्रियान्वयन में इतना अधिक अंतर है कि दोनों में समन्वय बिठाना कठिन है। कठोर कार्रवाई के अभाव में शब्दों ने अपने अर्थ खो दिए हैं। कोई प्रशासक और कार्यपालिका इस भाव को विकसित नहीं होने दे सकती कि इसकी कथनी और करनी में अंतर है।

शेख़ अब्दुल्ला को रिहा किया जाना चाहिए था अथवा नहीं, यह प्रश्न कालबाह्य हो चुका है। घटना घट जाने के पश्चात् हर व्यक्ति बुद्धिमान बन सकता है। किसी अन्य को निर्णय के लिए उत्तरदायी ठहराना भी आसान है। केंद्र और राज्य सरकार विरोधी तथा सत्तापक्ष सभी ज़िम्मेदारी दूसरे पर डाल रहे हैं। परंतु यह स्पष्ट है कि इस विषय में ज़िम्मेदारी पूरी तरह से कुछ लोगों और अधिकारियों की है। जनसंघ को छोड़कर अधिकांश समूहों और लोगों ने शेख़ अब्दुल्ला की रिहाई की माँग की थी। जनसंघ ने अपनी चिंताओं और आकांक्षाओं से परिचित अवश्य करवाया था। परंतु इसने उतनी तत्परता से रिहाई का विरोध नहीं किया, जितने दृढ आग्रह के साथ 1953 में उसने शेख़ अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री पद से हटाने और जेल में डालने की बात कही थी। अप्रैल माह के प्रारंभ में उसकी रिहाई से ठीक पहले राज्य और देश में जो राजनीतिक वातावरण बना था, सरकार के किसी भी निर्णय का डटकर विरोध करना व्यक्तिगत और राजनीतिक शत्रुता करार दिया जाता। हम चेतावनी देने से अधिक कुछ नहीं कर सकते।

भारतीय जनसंघ ने स्पष्ट रूप से सरकार से कहा था कि शेख़ अब्दुल्ला और साथियों को जेल से मुक्त कराने के राजनीतिक निर्णय की अपेक्षा उस पर और उसके साथियों पर चल रहे मुक़दमों में तेज़ी लाकर इस विषय में न्यायालयों का फ़ैसला करने दे। क्योंकि सच्चाई यह थी कि अभियुक्तों पर राष्ट्रद्रोह के गंभीर मुक़दमे थे, इसलिए उन्हें रिहा करना ख़तरनाक था। परंतु जब सरकार ने शेख़ अब्दुल्ला को जेल से रिहा करने का निर्णय ले लिया[1] तो हमने उससे कहा था कि वह उसे मुक्त, अनुच्छेद 370 हटाने और संभव हो तो राष्ट्रपति शासन लागू करने के बाद करे। इससे अब्दुल्ला के लिए शरारत करने का कोई मौक़ा न रहता। परंतु सरकार ने हर परामर्श की उपेक्षा की। उन्होंने न केवल उसे आज़ाद करने का निर्णय लिया बल्कि इससे पूर्व उसका स्वागत भी किया, यह सब न तो राजनीतिक दृष्टि से ठीक था और न सामान्य व्यवहार की दृष्टि से।

यह जानना मुश्किल है कि क्या सरकार को जेल में बंदी शेख़ अब्दुल्ला की मानसिकता के बारे में ग़लत सूचनाएँ मिलीं या उन्होंने जानबूझकर उनके ग़लत अर्थ निकाले। शेख़ अब्दुल्ला के साथियों ने यह जताया कि जेल में शेख़ अब्दुल्ला बिल्कुल बदल चुका है और वह बाहर आकर भारत सरकार की सहायता करेगा तथा बख़्शी सरकार के पतन के पश्चात् तो इस बात में कोई तुक नहीं है कि वह अपने व्यक्तिगत प्रभाव से लोगों में नई सरकार के प्रति विश्वास पैदा करने में सहायता न करे। आगामी घटनाओं ने सिद्ध किया कि या तो शेख़ उनसे अधिक चालाक निकला या फिर उन्होंने जानबूझकर लोगों को भ्रम में रखा। कारण जो भी हो, पंडित नेहरू ने स्वीकार किया कि यह 'जाना-बूझा ख़तरा' था और उन्होंने उसे उठाया।

परंतु यदि निश्चित ख़तरा था भी तो भी पंडित नेहरू द्वारा अब्दुल्ला को निमंत्रित करने का कोई औचित्य नहीं था। पंडित नेहरू के समय में अब्दुल्ला से बड़े लोगों ने श्रेष्ठतर लक्ष्यों के लिए बंदी जीवन जिया है। परंतु नेहरू ने उसकी रिहाई पर उन्हें निमंत्रित करने की विनम्रता कभी नहीं दिखाई।

कश्मीर आंदोलन प्रारंभ करने से पूर्व डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस समस्या पर चर्चा के लिए अनेक बार समय देने की वकालत की थी। परंतु किसी-न-किसी कारण से प्रधानमंत्री इनकार करते रहे। यहाँ तक कि अंत में प्रधानमंत्री ने लिखा कि उन दोनों के बीच सहमति का कोई बिंदु नहीं है, इसलिए मिलने का कोई अर्थ नहीं है। इस पर

1. 29 अप्रैल, 1958 को कश्मीर षड्यंत्र कांड व राज्य के ख़िलाफ़ साज़िश के आरोप में जनमत संग्रह मोरचा के अध्यक्ष शेख़ अब्दुल्ला को दूसरी बार गिरफ्तार किया गया था। इससे पहले इनकी गिरफ़्तारी 1953 में हुई थी। लगभग ग्यारह वर्ष जेल में रहने के बाद पं. नेहरू और राज्य के मुखिया ग़ुलाम मोहम्मद सादिक़ ने राजनीतिक निर्णय लेते हुए 8 अप्रैल, 1964 को कश्मीर षड्यंत्र केस के सभी आरोपों को वापस ले लिया तथा शेख़ अब्दुल्ला को रिहा कर दिया था।

डॉ. मुखर्जी ने उत्तर दिया कि कम-से-कम उनके बीच जन्मभूमि और उसका हित तो साझा है और इसके लिए उन्हें वार्त्तालाप द्वारा समस्या के समाधान का प्रयास करना चाहिए। यहाँ तक कि इस अपील को भी अनदेखा किया गया। यह हैरानी की बात है कि शेख़ अब्दुल्ला के हाल के वक्तव्यों के पश्चात् भी नेहरूजी को उनके और अपने बीच कुछ साझा लगता है। प्रधानमंत्री जी से श्रीगुरुजी ने भी मिलने का समय माँगा था, परंतु उनके लिए प्रधानमंत्री ने अत्यधिक व्यस्त और अस्वस्थ होने की बात कही। परंतु उनके पास शेख़ अब्दुल्ला से मिलने का समय अवश्य है, जो कि 1953 में उनके विषय में दूसरी छवि बनने के बाद घृणा करता है।

शेख़ अब्दुल्ला के वक्तव्यों का विश्लेषण व्यर्थ है। वह सीधे देशद्रोह है। उसने हर विषय में भारत के दृष्टिकोण पर प्रश्नचिह्न लगाया है। गत 17 वर्षों में जो संवैधानिक परिवर्तन हुए हैं और राज्य का भारत में विलय भी वह मानने को तैयार नहीं है। वह अपने को राज्य के लोगों का एकमात्र प्रतिनिधि और उनके भाग्य का एकमात्र निर्णायक मानता है। उसकी दंभी बनकर भारत और पाकिस्तान को सलाह देने की आदत बन गई है और अपने को दोनों के बीच मध्यस्थ मानकर चलता है। उसने जैसे दिल्ली में पंडित जवाहर लाल नेहरू से बातचीत की है, वैसे ही वह रावलपिंडी जाकर राष्ट्रपति अयूब से बातचीत करना चाहता है। (भारत ऐसे क़दम की इज़ाजत कैसे दे सकता है?) उसके कुछ वक्तव्यों का उपयोग वहाँ से विदेशी मंत्री भुट्टो द्वारा सुरक्षा परिषद् में कर लिया जाए, इससे अधिक उनका कोई महत्त्व नहीं है। वह जनमत संग्रह निरस्त करने को तैयार है, वह पाकिस्तान में भी नहीं जाना चाहता, वह भारत के साथ भी रहना नहीं चाहता उसने इस बात का भी खंडन किया है कि वह स्वतंत्र कश्मीर के पक्ष में है। वह वास्तव में चाहता क्या है, यही रहस्य है।

- कश्मीर का भविष्य कुछ भी हो परंतु जनमत संग्रह के नाम पर शेख़ अब्दुल्ला अपना हिस्सा चाहता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत में भी कुछ लोग इस आत्मनिर्णय के दोधारी सिद्धांत से धोखा खा जाते हैं। श्री जयप्रकाश नारायण जो कि एक सज्जन के रूप में लोगों में पसंद किए जाते हैं और लोकप्रिय हैं, परंतु समस्याओं के काल्पनिक समाधानों के कारण अधिक गंभीरता से नहीं लिए जाते, वे भी इसका समर्थन कर रहे हैं। स्वतंत्र पार्टी जिसने निर्लज्ज होकर, पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जुड़ने के लिए भारत के हितों से समझौता किया है, वह भी अब्दुल्ला के पक्ष में है। पी.एस.पी. के अध्यक्ष श्री एस.एम. जोशी ने भी नैतिक भंगिमा अपनाते हुए जनमत संग्रह का पक्ष लिया है। ये सब लोग भूल जाते हैं कि 'आत्मनिर्णय' का यह विचार भारतीय संविधान के विरुद्ध है।

'आत्मनिर्णय' केवल राष्ट्रीय इकाई पर लागू होता है, किसी राष्ट्र की क्षेत्रीय इकाइयों पर नहीं। यदि ऐसा होगा तो भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। श्री जी.एम.

सादिक़ ने ठीक ही कहा है कि संपूर्ण भारत इस बात का निर्णय करेगा कि भारत के साथ क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए। जैसा हम जानते हैं, इसका निर्णय पहले ही हो चुका है। कश्मीर में चुनाव ठीक से हुए या उनमें धाँधली हुई, इस बात से कश्मीर के भारत विलय पर आँच नहीं आती। राज्य के महाराजा हरि सिंह[2] द्वारा राज्य का भारत में विलय पूर्ण, अंतिम और अपरिवर्तनीय है। यह और बात है कि 'संविधान सभा' भी इसका अनुमोदन करती तो बात भिन्न होती। यह कार्य इस दृष्टि से प्रासंगिक नहीं था। हम अप्रासंगिक आधार पर अपने मत का निर्णय नहीं कर सकते।

शेख़ अब्दुल्ला के इन समर्थकों का मानना है कि भारत ने 'जनमत संग्रह' का प्रस्ताव रखा था और इसलिए उसका अनुपालन भारत के लिए आवश्यक है। मैं उनकी मूल अवधारणा पर ही इस विषय में प्रश्नचिह्न लगाता हूँ। यू.एन. का वह प्रस्ताव जो कि लोगों का मत जानने की किसी विधि का निरूपण करता है, स्पष्ट कहता है—(1) विलय की संधि के कारण यह राज्य भारत का अंग है। (2) कि पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया। (3) कि पाकिस्तान हथियाए गए क्षेत्रों से अपनी सेना पीछे बुलाएगा और सुरक्षा संबंधी अपने दायित्व पूरे करेगा; (4) पूरा राज्य विधि सम्मत सरकार के अधीन आएगा; (5) जो लोग भी राज्य से पलायन कर गए हैं, उन्हें वापस बुलाकर पुनः बसाया जाएगा। इन सारी बातों की पूर्ति के पश्चात् ही लोगों की राय जानने की कोई प्रक्रिया प्रारंभ की जाएगी। अब चाहे अमरीका और इंग्लैंड की सरकारें हों, जो कि भारत को जनमत संग्रह का वायदा पूरा करने के लिए कहती हैं या फिर प्रकाश नारायण जैसे बड़े लोग हों, जो इस माँग के समर्थक हैं, वे पाकिस्तान को हस्तगत किए क्षेत्र ख़ाली करने के लिए कभी नहीं कहते। स्वाभाविक रूप से वे न तो निष्पक्ष हैं, न उस वस्तुनिष्ठ। वे धकियाकर भारत को एक अन्यायपूर्ण बात मानने को विवश करना चाहते हैं।

यह आश्चर्यजनक बात है कि शेख़ अब्दुल्ला और उनके समर्थक पंथनिरपेक्ष होने का दम भरते हैं, परंतु कश्मीर समस्या को केवल सांप्रदायिक दृष्टि से देखते हैं। वे यह जानते हैं कि अपने लेखन और वक्तव्यों से वे भारत के पंथनिरपेक्ष ढाँचे को नष्ट कर रहे हैं।

कश्मीर में क्षेत्र से कहीं बड़ी चीज़ ख़तरे में है। कोई भी क़दम जो कश्मीर के भारत में पूर्ण विलय से कम है, अलगाववाद को बढ़ावा देगा और पृथकतावादी भावनाओं को पुष्ट करेगा। यह आक्रमण और पृथकतावाद को पुरस्कृत करने जैसा होगा। हम

---

2. महाराज हरि सिंह (1895–1961) जम्मू और कश्मीर रियासत के अंतिम शासक महाराज थे। ये राजा अमर सिंह के सबसे छोटे पुत्र थे। इन्हें जम्मू-कश्मीर की राजगद्दी अपने चाचा महाराजा प्रताप सिंह से विरासत में मिली थी। इन्होंने 26 अक्तूबर, 1947 को भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 के तहत विलय-पत्र पर हस्ताक्षर किया था।

अपनी अखंडता के साथ खिलवाड़ नहीं होने दे सकते।

शेख़ अब्दुल्ला दिल्ली आ रहा है। क्या प्रधानमंत्री को उससे मिलना चाहिए? मेरा कहना है, जब तक वह भारत के साथ राज्य के समान संबंध को पूरी तरह नहीं मान लेता, बिल्कुल नहीं मिलना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे सीधे जेल में डालना चाहिए। जो लोग हमें धैर्य रखने और उसे अपनी भड़ास निकालने का अवसर देने की बात इस आधार पर कर रहे हैं कि वह तुनकमिज़ाज व्यक्ति है और ग्यारह वर्ष बाद जेल से निकला है, वे ख़तरनाक खेल खेल रहे हैं। वे लोग भोले हो सकते हैं, परंतु शासन कला भोलेपन पर आश्रित नहीं हो सकती। इससे भी बढ़कर समझौता-वार्ता के रूप में उससे नहीं होनी चाहिए। वह लोकप्रिय अवश्य हो सकता है, परंतु उसकी कोई आधिकारिक स्थिति नहीं है। यह राजनीतिक और संवैधानिक दृष्टि से ग़लत होगा। यदि पंडित नेहरू का उस व्यक्ति से बहुत प्यार है तो वह उसकी आवभगत करें, परंतु भारत के प्रधानमंत्री के रूप में उन्हें ऐसे व्यक्ति से राज्य के भविष्य विषयक बात करने के लिए सोचना भी नहीं चाहिए, जिसकी भारत और उसके संविधान के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

शेख़ का जो भी हो, भारत सरकार को राज्य को भारत में शीघ्र मिलाने के क़दम उठाने चाहिए। धारा 370 हटाने में बिल्कुल समय नहीं गँवाना चाहिए। इससे ही सिद्ध होगा कि भारत सरकार दृढ है और इससे शेख़ अब्दुल्ला के भाषणों से उत्पन्न अस्थिरता समाप्त होगी। भारत सरकार को सशक्त और सुदृढ होना होगा।

हमें भयभीत और संत्रस्त नहीं होना चाहिए। परंतु लापरवाह होना भी ठीक नहीं। भारत सरकार क़दम पीछे नहीं हटा सकती। लोग इसे सहन नहीं करेंगे। यह आशंका जताई जा रही है कि जब नेहरू शेख़ अब्दुल्ला से मिलेंगे, वे उसको ख़ुश करने का प्रयास करेंगे। शेख़ अब्दुल्ला के पक्ष में अंतरराष्ट्रीय दबाव पहले ही पड़ रहे हैं। परंतु राष्ट्रवादी भारत इस विषय में दृढता का व्यवहार चाहता है। यदि पंडित नेहरू दबाव में आते हैं तो यह भारत के आंतरिक मामलों में भी स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकार का अंत होगा। भारत के लोग हमारी इस संप्रभुता पर अनधिकार हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करेंगे।

हमें यह देखना होगा कि राज्य के भारत में विलय के लिए दिए गए हज़ारों स्वतंत्रता सेनानियों और सबसे महान् डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का बलिदान व्यर्थ न जाए। हम चाहते हैं कि सरदार पटेल और रफी अहमद किदवई की पुण्य स्मृति रहस्यमय अब्दुल्ला से बात करते समय नेहरूजी को प्रेरित करे।

दो मोर्चों पर मुसीबत

कांग्रेस संसदीय दल के सचिव श्री रघुनाथ सिंह ने 21 अप्रैल को, दल की कार्यकारिणी के प्रारंभ में बताया कि पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब और चीन के प्रधानमंत्री

चाऊ एन लाई ने अपनी पिछली मुलाक़ात में यह तय किया था कि नेहरू के भारत के राजनीतिक क्षितिज से हटते ही वे भारत पर आक्रमण करेंगे।

अगले दिन न्यूयॉर्क टाइम्स को एक साक्षात्कार देते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा कि भारत के पास इस बात की पुख़्ता जानकारी है कि पाकिस्तान ने चीन को यह विश्वास दिलाया है कि वह अमरीका से प्राप्त हथियारों का प्रयोग उसके विरुद्ध न करके 'भारत के विरुद्ध संतुलन बनाए रखने के लिए करेगा, न कि साम्यवाद को रोकने के लिए।' उन्होंने आगे कहा कि 'हमें संदेह है कि जब चीन भारत पर आक्रमण करेगा, तभी पाकिस्तान भी करेगा।'

जिन स्रोतों से यह समाचार आए हैं, हम इन्हें केवल अफवाहें नहीं मान सकते। फिर भी ऐसा कोई संकेत नहीं है कि इस गंभीर स्थिति से निपटने के लिए सरकार क्या करने जा रही है। हमारे यहाँ संसदीय शासन प्रणाली है। परंतु शासक दल के प्रचंड बहुमत के कारण यह सरकार मात्र दलीय सरकार बन गई है, जहाँ सारे निर्णय दल की बैठकों में लिए जाते हैं, संसदीय समितियों में नहीं। पंडित नेहरू की दुर्दमनीय स्थिति ने इसे व्यक्ति सरकार बना दिया है। नेहरूजी के अस्वस्थ और वृद्ध होने के कारण सारा राजकार्य थम गया है। किसी में भी चीज़ों को समझकर तर्कसंगत परिणाम तक पहुँचाने, नीति निर्धारित करने और संसाधन जुटाने की क्षमता और अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

प्रधानमंत्री बुज़ुर्ग हो चुके हैं। हमारे भारत में बुज़ुर्गों का सम्मान करने की परंपरा है। उनकी वृद्धावस्था का पूरा सम्मान करते हुए हम निवेदन करना चाहते हैं कि अब उनके लिए सबकुछ छोड़ने का समय आ गया है। एक अपेक्षाकृत स्वस्थ और युवा व्यक्ति नए विचारों और नए शासनादेश तथा स्वच्छ मन से इस दुहरे संकट से निपटने के लिए आवश्यक निर्णय ले सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 27, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

48

उपाध्याय ने स्वतंत्र पार्टी पर वचनभंग का आरोप लगाया

12 मई को दीनदयालजी भीलवाड़ा में थे। वहाँ उन्होंने एक चुनावी सभा को संबोधित किया। दीनदयालजी का वक्तव्य।

स्वतंत्र पार्टी के महामंत्री एम.आर. मसानी ने हमारे साथ उपचुनावों के विषय में लिखित समझौता किया था। समझौते की एक शर्त यह थी कि उपचुनाव के लिए यदि कोई स्थान ख़ाली होता है तो वहाँ पर चुनाव लड़ने का प्रथम अधिकार दोनों में से उस दल को मिलेगा, जिसने 1962 में वहाँ से चुनाव लड़ा हो। इस समझौते के अनुसार भीलवाड़ा में हो रहे उपचुनाव में जहाँ भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी के प्रत्याशी एक-दूसरे के विरुद्ध चुनाव लड़ रहे हैं, वहाँ ऐसा नहीं होना चाहिए था और उनके अनुसार यह स्थान भारतीय जनसंघ के लिए छोड़ा जाना चाहिए था। स्वतंत्र पार्टी की कार्रवाई अनुचित और अनैतिक थी।

स्वतंत्र पार्टी के लोग मुझे दिल्ली में मिलने आए थे और उन्होंने मुझे बताया था कि नाथू सिंह उनके प्रत्याशी नहीं हैं, परंतु वे चुनाव लड़ने की ज़िद पर अड़े हैं। तब उन्होंने सुझाव दिया कि दोनों दल अपने प्रत्याशी बिठा देते हैं और नाथू सिंह को स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ने देते हैं, परंतु जनसंघ इस प्रस्ताव को कैसे मान सकता था। अब वही नाथू सिंह स्वतंत्र पार्टी के प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ रहे हैं।

जहाँ तक कश्मीर में हुई जाँच का प्रश्न है, कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी दोनों ही जाँच

में गड़बड़ी की ज़िम्मेदार हैं। कश्मीर समस्या का समाधान एक ओर दिल्ली में नेहरू और अब्दुल्ला के बीच हो रहा है, दूसरी ओर मद्रास में राजाजी और अब्दुल्ला के बीच हो रहा है। जनसंघ कश्मीर को बचाने के लिए कोई कसर न उठा रखेगी।

—ऑर्गनाइज़र, मई 13, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

49

पंडितजी, कश्मीर से दूर रहें!*

पंडित नेहरू ने शेख़ अब्दुल्ला से हुई अपनी बातचीत के विषय में संसद् को और उसके माध्यम से पूरे देश को विश्वास में लेने से इनकार कर दिया है। पूरे मामले पर रहस्य का परदा सा पड़ा है। प्रधानमंत्री ने दोनों सदनों में मात्र यही घोषणा की है कि कश्मीर के विषय में जो भी फ़ैसला लिया जाएगा, वह दोनों सदनों की सहमति से होगा। यह वक्तव्य न कोई आश्वासन देता है और न ही किसी दिशा की ओर इंगित करता है।

यह कहना कि संसद् की स्वीकृति ली जाएगी, घिसा-पिटा उत्तर है। जब हम संसदीय लोकतंत्र में आस्था जताते हैं तो यह कहने का कोई अर्थ नहीं कि देश के सभी मामलों में अंतिम निर्णय संसद् का होगा। परंतु प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट नहीं किया कि संसद् के साथ बेरूबारी मामले की तरह बरताव किया जाएगा अथवा समझौता संसद् में व्यक्त विचारों के अनुरूप होगा। यदि सचेतक जारी करेंगे तो प्रधानमंत्री किसी भी अधमतम कार्य के लिए दुर्दम बहुमत के आधार पर ग़ुलाम की तरह सांसदों की स्वीकृति प्राप्त कर लेंगे। जब तक संसद् में विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले विभिन्न वर्गों की सहमति न होगी, तब तक यह कहना निरर्थक है कि संसद् की उपेक्षा नहीं की जाएगी। यदि ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय संसद् में धाँधली से अथवा बहुमत से थोपा जाता है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा।

सार्वजनिक रूप से सुरक्षा परिषद् में कश्मीर समस्या पर बहस हो रही है और निजी रूप से तीन मूर्ति भवन में श्री एम.सी. छागला ने सुरक्षा परिषद् में हमारा पक्ष दृढता से और प्रभावी ढंग से रखा है। उन्होंने सुरक्षा परिषद् को ठीक ही कहा कि वह अपनी बहस को भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण तक सीमित रखे और जहाँ तक राज्य के भारत के साथ संबंधों का प्रश्न है, उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि राज्य के साथ भारत के

* देखें परिशिष्ट XIV, पृष्ठ 336, परिशिष्ट XV, पृष्ठ 338 एवं परिशिष्ट XVII, पृष्ठ 342।

संवैधानिक संबंधों का विषय भारत का आंतरिक मामला है और राज्य के भारत के साथ विलय की प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया जाएगा। उन्होंने भारत का पक्ष उचित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए भारतीयों की भावनाओं को प्रतिबिंबित किया है। परंतु तीन मूर्ति में जो हो रहा है, वह एम.सी. छागला के कथन के बिल्कुल विपरीत है।

सरकार की कथनी और करनी में सदा से भारी अंतर रहा है। भारत ने पाकिस्तान और भारत के लिए संयुक्त राष्ट्र के आयोग के गठन का विरोध किया, परंतु यदि वे भारत में आना चाहें तो उनसे बातचीत करना स्वीकार कर लिया। भारत ने मध्यस्थता को अस्वीकार कर दिया, परंतु जब सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष जनरल मैकनॉटन ने ऐसा करने का प्रयास किया तो स्वीकार कर लिया। उसने सर ऑवेन डिक्सन की नियुक्ति को अस्वीकार किया। परंतु उन्हें सारा क्षेत्र दिखाने पर सहमति जता दी, जिसका व्यावहारिक अर्थ था विचार-विमर्श। भारत ने अनुच्छेद 370 समाप्त करने के अपने अधिकार को जताया, परंतु ऐसा करने के लिए क़दम नहीं उठाए, उलटा प्रधानमंत्री और सदर-ए-रियासत के पदनाम बदलने का मामला भी संसद् की विशेष समिति को सौंप दिया। अब श्री छागला ने पाकिस्तानी आक्रमण को समाप्त करने की माँग रखी, परंतु प्रधानमंत्री शेख़ अब्दुल्ला के अनिष्ट प्रभाव के कारण पाकिस्तान से इस विषय में वार्त्ता पर विचार कर रहे हैं। इस कमी के कारण ही सुरक्षा परिषद् में विश्व हमारे दावों को गंभीरता से नहीं ले रहा। उन्होंने समझ लिया है कि हमारी कथनी में दम नहीं है। हमें अपने दावों के विपरीत दिशा में धकेला जा सकता है।

शेख़ अब्दुल्ला ने श्री छागला को कही हर बात को झुठला दिया है। शेख़ अब्दुल्ला हमें आक्रमण भूल जाने को कहता है, जबकि छागला का कहना है कि मुख्य मुद्दा ही आक्रमण है। श्री छागला ने पाकिस्तान द्वारा अपने साथ साम्यवादी चीन को कश्मीर का भू-क्षेत्र देने का विरोध किया है। जबकि अब्दुल्ला पाकिस्तान की कार्रवाई को उचित ठहराते हैं। छागला ने पाकिस्तान पर अल्पसंख्यकों के नरसंहार का आरोप लगाया है। शेख़ अब्दुल्ला ने भारत को ही कठघरे में खड़ा कर दिया है। श्री छागला ने भारत का जो पक्ष इतनी कुशलता से खड़ा किया, उसे जानबूझकर शेख़ अब्दुल्ला मिटा रहा है। शेख़ अब्दुल्ला को अधिक गंभीरता से लिया जा रहा है, क्योंकि उसे प्रधानमंत्री की मौन स्वीकृति प्राप्त है।

शेख़ अब्दुल्ला के साथ हुई बातचीत पर प्रधानमंत्री भले ही मौन हों, परंतु छनकर पर्याप्त ख़बरें आ रही हैं, जिससे उस नीचतापूर्ण योजना की गंध आती है, जिस पर वे कार्य कर रहे हैं। संक्षेप में ये जम्मू-कश्मीर राज्य को ऐसे प्रशासन के अधीन करने की सोच है, जो पाकिस्तान को भी स्वीकार्य हो। यह ऐसा प्रशासन हो सकता है, जो नाम को आज़ाद हो परंतु व्यवहार में पाकिस्तान की कठपुतली हो या फ़िर यह ऐसा

'सहशासन' की पद्धति के अनुरूप मिश्रित शासन हो। दोनों स्थितियों का अर्थ है भारत द्वारा घुटने टेकना। समझौते अथवा बीच का रास्ता निकालने का दिखावा अधिक दिनों तक नहीं चलेगा, कश्मीर शीघ्र ही पाकिस्तान का हिस्सा बन जाएगा। हमें सहशासन का अनुभव है, जबकि लार्ड वेवेल द्वारा मुसलिम लीग को सहसत्ता में लाया गया था। एक 'स्वतंत्र कश्मीर' किसी भी तरह पाकिस्तानी आधिपत्य वाले 'आज़ाद कश्मीर' से भिन्न नहीं होगा। जिस भारतीय में रत्ती भर भी अक्ल है, वह ऐसे समाधानों के झाँसे में नहीं आएगा।

शेख़ अब्दुल्ला हमारे कानों में पंथनिरपेक्षता के उपदेश ठूँस रहा है। परंतु हम जानते हैं कि वह कट्टर सांप्रदायिक था और आज भी है। तो फिर यह पंथनिरपेक्षता की चर्चा क्यों? इस बातचीत के पीछे ख़तरनाक चाल है। एक समाजवादी का मुखौटा लगाकर वह पंडित नेहरू, जयप्रकाश नारायण और विनोबा भावे का विश्वास जीत रहा है। और पंथनिरपेक्षता के नाम पर वह कश्मीर घाटी ही नहीं, पूरे जम्मू और लद्दाख क्षेत्र को पाने की आशा कर रहा है।

प्रधानमंत्री ने कश्मीर को विशेष दर्जा देने की माँग इस आधार पर स्वीकार कर ली, क्योंकि घाटी मुसलिम बहुल है, परंतु वह सांप्रदायिक आधार पर कश्मीर के तीन भाग करने से घृणा करते हैं। 1947 की पुरानी ग़लती को दुहराया जा रहा है, जब द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत पर पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली गई, परंतु सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया गया और वहाँ के हिंदुओं को पाकिस्तानी भेड़ियों को सौंप दिया गया। अब फिर केवल पंथनिरपेक्षता के दिखावे के लिए जम्मू-कश्मीर का बलिदान दिया जा रहा है। यह पंथनिरपेक्षता नहीं है। हमें अपने को धोखे में नहीं रखना चाहिए। यह प्रधानमंत्री शेख़ अब्दुल्ला को पंथनिरपेक्ष रहने के लिए समझाने में नाकाम रहे हैं। तो उन्हें यह खुलकर स्वीकार करना चाहिए, न कि राज्य के हिंदुओं के साथ खिलवाड़ करना चाहिए। हमें सावधान रहना चाहिए।

कश्मीर का अभ्यर्पण होने जा रहा है। यदि राष्ट्र अपनी सत्ता मनवाना चाहता है तो उसका क्षण आ गया है। यदि हम आत्मतुष्ट और भोले-भाले बने रहे तो बहुत पछताना पड़ेगा। इस दलदल से निकलने का एक ही उपाय है कि प्रधानमंत्री से कहा जाए कि वे शेख़ अब्दुल्ला से बातचीत करना बंद करें। उसने पहले ही बहुत गड़बड़ियाँ की हैं। प्रधानमंत्री शेख़ अब्दुल्ला के प्रति अपनी मुग्धता और अपने दिमाग़ में ठुँसे विचारों के कारण स्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने में असमर्थ हैं। दृढ कार्रवाई उनके स्वभाव में नहीं है। आज हमें दृढ निर्णय और उसके प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता है। रीढ़विहीन पंडित द्वारा हठी अब्दुल्ला को सँभाल पाना संभव नहीं है।

ऐसे लोग हैं, जो पश्चिम की शक्तियों से चिल्लाकर कह रहे हैं 'कश्मीर से दूर

रहो!' आज हमारे बीच सरदार पटेल अथवा रफी अहमद किदवई[1] नहीं हैं। परंतु नंदा, छागला और शास्त्री मिलकर इस स्थिति से प्रभावी ढंग से निपट सकते हैं। पूरा देश उनके साथ होगा।

कांग्रेस का शैतान-तंत्र

उत्तर प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में कांग्रेस के चुनावों में अशोभनीय झगड़ों का प्रभाव दलीय सीमाओं के बाहर भी होगा। एक ओर गुप्ता गुट ने 311 के मुक़ाबले 318 मतों से अध्यक्ष पद जीत लिया है, दूसरी ओर कमलापति त्रिपाठी के गुट ने चार में से तीन उपाध्यक्ष पद जीते हैं और उस पर तुर्रा यह कि कोषाध्यक्ष का पद भी जीता।

चुनाव होना ठीक है। यह प्रजातंत्र के फेफड़े होते हैं। परंतु जिस आक्रामकता के साथ ये चुनाव लड़े गए हैं, उससे चुनावों पर ही प्रश्नचिह्न लग सकता है। ये अत्यधिक अशोभनीय इसलिए भी हो गए, क्योंकि इनमें कोई सिद्धांत निहित न था। ऐसे चुनाव थे, जो किसी सार्वजनिक मुद्दे पर नहीं लड़े गए बल्कि पद और सरपरस्ती के लिए हुए। इस संघर्ष के अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे, जाली सदस्यता, जातीय अपील, धनबल और राजसत्ता का प्रयोग। भारत सेवक समाज के चुनाव अधिकारी नंदाजी ने जिस तरह परमिटधारियों के मतदान निषेध की शर्त को निरस्त किया, उससे स्पष्ट होता है कि उच्चतम अधिकारी किस तरह की कटुता से इन चुनावों को देख रहे थे।

चुनावों को सरलता से और सभ्यता से कराने का कोई आसान रास्ता नहीं है। मूलतः यह स्तर को ऊँचा उठाने पर निर्भर करता है और स्तर आजकल गिरता जा रहा है। परंतु हमारा निश्चित मत है कि इस प्रकार का दलीय प्रजातंत्र, प्रजातंत्र के मूलभूत आदर्शों को खंडित करता है और प्रजातंत्र को शैतानी-तंत्र में बदल देता है। संभवतः मतदाताओं की उच्चतर योग्यता पी.सी.सी. अध्यक्ष का दीर्घतर कार्यकाल रखने से जनता को बार-बार ये अभद्र दृश्य देखने से मुक्ति दिला सके। शायद सभी राज्यों में बारी-बारी से राष्ट्रपति शासन लगाना ज़रूरी है, जिससे व्यावसायिक राजनीति कुछ समय के लिए अवकाश ग्रहण कर सके।

अंततः प्रतिमाओं को हटाया जाएगा

आज़ादी के सत्रह वर्ष पश्चात्, एकाधिक प्रतिमाओं के चेहरे पर कालिख पोतने और जूतों का हार पहनाने के पश्चात् अंततः सरकार ने अंग्रेज़ों की बची-खुची प्रतिमाओं को दिल्ली के सार्वजनिक स्थलों से हटाने का निर्णय ले लिया है। कहीं ऐसा न लगे कि सरकार ने यह क़दम जनमत के दबाव में लिया है, इसलिए ये प्रतिमाएँ छह माह में हटाई जाएँगी।

---

1. रफ़ी अहमद क़िदवई (1894-1954) स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। आज़ादी के बाद देश के प्रथम संचार मंत्री बने। 1952 में उत्तर प्रदेश के बाराबंकी से लोकसभा सदस्य चुने गए। इसके बाद इनके पास कृषि व खाद्य का प्रभार था।

इन हटाई जानेवाली प्रतिमाओं में इंडिया गेट पर लगी जॉर्च पंचम की प्रतिमा भी है। हम आशा करते हैं कि सरकार ख़ाली हुए स्थलों का सदुपयोग करेगी। उदाहरण के लिए, लोग इंडिया गेट पर शिवाजी की प्रतिमा लगाने की सराहना करेंगे। यह वह व्यक्ति था, जो गांधी द्वारा ब्रिटिश शासन की समाप्ति के प्रतीक से भी अधिक भारतभूमि से विदेशी मुसलिम शासन की समाप्ति का प्रतीक था। वह जाग्रत् भारत का महान् प्रतीक था।

हम चाहते हैं कि सरकार राजधानी की सड़कों के पुन: नामकरण में भी कुछ ऊर्जा लगाए। हमारी सड़कों के नाम क्लाइव, डूप्ले और अल्बकर्क जैसे लुटेरों के नाम रहना भारत को लूटने का निमंत्रण देने जैसा है। न ही किसी कर्ज़न, वेलेज़ली अथवा डलहौजी के लिए दिल्ली में कोई स्थान है। हैरानी तो इस बात की भी है कि सड़कों के नाम ऐसे आदमियों के नाम पर भी हैं, जिनके विषय में किसी को पता नहीं कि वे क्या थे। यह सारी बकवास समाप्त होनी चाहिए और जितना शीघ्र हो, उतना ही अच्छा है।

एक और रूसी प्रस्ताव

बताया जाता है कि रूस ने भारत को 1000 कि.वा. के मध्यम तरंग का ट्रांसमीटर बेचने का प्रस्ताव किया है। रुपया मुद्रा में देय उसका मूल्य लगभग एक करोड़ होगा। यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो यह दो वर्ष में तैयार होने की संभावना है।

हम प्रस्ताव का स्वागत करते हैं। हम आशा करते हैं कि इसका सदुपयोग दक्षिण-पूर्व एशिया, अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों को भारत की नीतियाँ सूचित करने के लिए होगा। यह वॉयस ऑफ अमरीका द्वारा दिए गए पिछले वर्ष के प्रस्ताव से बेहतर है, क्योंकि इस पर हमारा पूर्ण अधिकार होगा और उसका मूल्य भी वॉयस ऑफ अमरीका के समान है, जो हमने नहीं लिया। परंतु हमने जिस प्रकार ए.आई.आर. तथा वी.ओ. आई. समझौता किया और उसे तोड़ा, उससे देश को सरकार के व्यवहार से असुविधा महसूस होती रहेगी।

—ऑर्गनाइज़र, मई 18, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

50

यदि सरकार अपना पक्ष बदलती है तो सत्याग्रह होगा!

नई दिल्ली, 25 मई। जनसंघ की कार्यकारी समिति की जो दो दिवसीय बैठक यहाँ संपन्न हुई, उसमें यह निर्णय लिया गया कि यदि सरकार जम्मू-कश्मीर विषयक अपनी प्रतिबद्धताओं से पीछे हटती है तो जनसंघ सत्याग्रह करेगा।

यदि सरकार कश्मीर पर अपने पक्ष में कोई बदलाव करती है तो जनसंघ का केंद्रीय कार्यालय अपनी सभी राज्य इकाइयों को निर्देश जारी करेगा और उनसे 7 जून को 'शपथ दिवस' के रूप में मनाते हुए 'शांतिपूर्ण जन संघर्ष' के लिए सत्याग्रही जुटाने का आह्वान करेगा।

संवाददाताओं के समक्ष कार्यकारी समिति का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय ने यह स्पष्ट किया कि अभी तय नहीं है कि यह सत्याग्रह क्या आकार लेगा। उन्होंने 7 जून को 'शपथ-दिवस' मनाकर यह बताने का निर्णय लिया है कि कश्मीर के भारत में विलय विषयक सरकार के पक्ष में कोई बदलाव नहीं होने दिया जाएगा।

कार्यकारी समिति ने माँग की है कि पाकिस्तानी आक्रमण वाले क्षेत्र ख़ाली करवाए जाएँ और संविधान की धारा 370 को निरस्त किया जाए। सरकारी पक्ष में किसी प्रकार की ढील नई कठिनाइयाँ और समस्याएँ पैदा करेगी। प्रस्ताव में कहा गया कि कश्मीर भारत की स्वतंत्रता और अखंड रहने की इच्छा का प्रतीक बन गया है।

कार्यकारी समिति अनुभव करती है कि कश्मीर की स्थिति को लेकर हमारे पक्ष में किसी प्रकार का परिवर्तन ख़तरनाक परिणाम देगा। इससे राज्य में अल्पसंख्यकों के जीवन और सम्मान पर संकट आएगा। शेख़ अब्दुल्ला के जेल से छूटने के पश्चात् 1000

से अधिक परिवार पहले ही कश्मीर से पलायन कर चुके हैं। उपाध्यायजी ने कहा कि जम्मू-कश्मीर में भूमि की क़ीमत बहुत अधिक बढ़ गई है।

प्रस्ताव में कहा गया कि सशस्त्र बलों को कश्मीर से हटाने से सेना का मनोबल गिरेगा। यह मानना कि कश्मीर समस्या के किसी समझौते पर भारत और पाकिस्तान में तनाव समाप्त हो जाएगा, आत्मप्रवंचना और दिवास्वप्न देखना होगा।

जब नदी जल समझौता हुआ तब भी ऐसी ही आशा की गई थी। चीन के विरुद्ध भारत-पाक सैनिक सहयोग निरर्थक हो गया, जब पाकिस्तान ने चीन से समझौता कर लिया। पाकिस्तान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत उसे संतुष्ट करने के लिए कुछ भी करे, वह चीन के विरुद्ध युद्ध नहीं करेगा।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, मई 26, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

51

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : राजस्थान

हम लोग हिंदू समाज को सुखी, वैभव-संपन्न और प्रगतिशील बनाने का उद्देश्य लेकर संगठन का कार्य कर रहे हैं। हम यह जानते हैं कि राष्ट्र-जीवन की सम्मानपूर्ण स्थिति शक्ति के बिना नहीं आ सकती, और शक्ति बिना संगठन के नहीं आ सकती। अत: हमारा यह संगठन का काम शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से है।

समाज की स्वाभाविक अवस्था

समाज की संगठित अवस्था ही समाज की वास्तविक अवस्था है। संगठन का अभाव समाज की स्वाभाविक स्थिति के अभाव का द्योतक है। बिखरे हुए लोगों के समूह को समाज नहीं कहते। मिट्टी के अनेक बिखरे कण, पत्थर या ईंट नहीं कहलाते। जब तक ये बिखरे हुए कण जुड़कर अभिन्नता को प्राप्त नहीं होते, वे ईंट नहीं बन सकते। यदि वे अलग-अलग मिट्टी के कण होंगे तो उनमें शक्ति नहीं होगी, उनसे कोई निर्माण कार्य नहीं होगा, कोई उनकी चिंता नहीं करेगा। ईंट या पत्थर सामने होंगे तो सब उनका महत्त्व समझेंगे या बचकर निकलेंगे, परंतु मिट्टी के कण-धूल को तो सब कुचलकर ही निकलेंगे। अत: सामूहिकता समाज की स्वाभाविक अवस्था है।

किंतु इस सामूहिकता के साथ हमें एक बात का और भी विचार करना पड़ता है। हम हिंदुस्थान के रहनेवाले जो 'हिंदू' नाम से जाने जाते हैं, ऐसे हम चालीस करोड़ लोग केवल इकट्ठे हो जाएँ और कहें कि 'हम एक हैं', इतना कहना मात्र संगठन के लिए पर्याप्त है क्या? 'हम सब-के-सब एक हैं' यह तब तक संभव नहीं जब तक हमें यह ज्ञात न हो कि हमें एक बनानेवाली, हमें जोड़नेवाली वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं।

भावात्मक और अभावात्मक विचार

अभी तक हमारे सामने एकता का जो विचार आता है, वह भावात्मक (Positive) नहीं, अभावात्मक (Negative) है। कई लोग राष्ट्र की कल्पना को ही विरोधात्मक कल्पना मानते हैं, अविरोधात्मक नहीं। जैसे चीन का आक्रमण हुआ तो राष्ट्रभाव की बात आई। कई लोग कहते हैं, हमला होने पर हम एक राष्ट्र बन जाएँगे। यह विदेशी कल्पना है। इंग्लैंड में हमला हुआ तो राष्ट्रवाद जाग्रत् हुआ। एक अंग्रेज़ी कहावत है—'Nations die in peace and live in war.' अर्थात् शांतिकाल में राष्ट्र मर जाते हैं और युद्धकाल में जीवित रहते हैं। युद्ध के समय हम मिल जाएँ यह ठीक है, किंतु केवल युद्ध ही हमें जोड़नेवाली चीज़ हो, यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं है। हमारा राष्ट्रजीवन, जो हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है, यदि इसका आधार विरोध, युद्ध या विपत्ति ही हो तो ठीक नहीं।

हम भावात्मक आधार पर खड़े हैं। जीवन की एक दृष्टि हमारे सामने है। हम संसार में पैदा हुए हैं तो किसी का विरोध करने के लिए नहीं। हमारे सामने एक विधायक (positive) विचार है कि हम जोड़नेवाले हैं, तोड़नेवाले नहीं। जो विधायक विचार नहीं करते, वे चाहे जैसा कुछ कहते हैं। एक सज्जन ने कहा कि आप लोग संगठन इसलिए करते हैं कि मुसलमानों को मारेंगे, ऐसा संगठन क्यों करते हैं? परंतु उनकी यह बात ठीक नहीं। कसाई को छुरी पर धार लगाते देखकर यदि कोई कहे कि वह बकरे का गला काटेगा, तो ठीक माना जा सकता है किंतु यदि डॉक्टर अपनी छुरी को पैना करता है, तो उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी का गला काटेगा। छुरी किसके पास है? इससे उसके उद्देश्य का पता लगता है। कसरत करनेवाले पहलवान के लिए हम नहीं कह सकते कि वह चोरी ही करेगा।

हिंदू संस्कृति

जब हम संगठन का कार्य करने चले हैं तो हमें अपने को हिंदू समाज से जोड़नेवाली चीज़ हिंदू संस्कृति—जिसे कई लोग हिंदू धर्म भी कहते हैं—का विचार करना पड़ता है। आजकल कई लोग पूछते हैं कि आप किस वाद में विश्वास करते हैं? हम किसी वाद को नहीं मानते। हम तो हिंदू संस्कृति, हिंदू विचार में विश्वास करते हैं। उसे हिंदूवाद कह सकते हैं। फिर वे कहते हैं कि हम आधुनिक वादों—समाजवाद, पूँजीवाद, अराजकतावाद, अधिनायकवाद आदि में से किस पर विश्वास करते हैं? तो इनमें से किसी में भी नहीं। ये सब वाद बाहर की उपज हैं। हम तो अपने घर की वस्तु, जो हमारे यहाँ पैदा होती है, वह पसंद करते हैं। विदेशों में लोगों ने मुझसे पूछा, आप बीयर पीएँगे या शैंपेन? ये दोनों भिन्न प्रकार की शराब हैं। लेकिन मैंने दोनों का निषेध किया। इसी

प्रकार अपने देश में कुछ लोग कहते हैं कि आप पूँजीवाद में विश्वास करते हैं। हम कहते हैं—नहीं। तो साम्यवाद में करते होंगे? यह माना जाना कि इन दोनों में सबकुछ है, यह सत्य नहीं। संसार में इनके अलावा दूसरे विचार भी हैं। ये सब 'वाद' बाहर के हैं। हम तो अपनी चीज़ को मानते हैं।

वैसे हम सत्य को सब जगह से ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि सत्य किसी स्थान विशेष का नहीं होता। जैसे हमने रेलगाड़ी को स्वीकार किया। परंतु पश्चिम के जितने भी दर्शन हैं, वे अधूरे हैं। वे संपूर्ण जीवन का विचार नहीं करते, किसी एक अंग का ही विचार करते हैं। इसलिए हम उनको स्वीकार नहीं करते। हमारी संस्कृति की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जीवन का संपूर्ण विचार किया गया है।

पश्चिम : टुकड़ों में देखने की प्रवृत्ति

जब मैं कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ता था तो उसमें प्रारंभ में एक पाठ था, जिसमें उसकी परिभाषा बताते हुए उसे कला या विज्ञान कहा जाता था। उसे ही जीवन का मुख्य केंद्र तथा बाक़ी सब विषयों को उससे संबंधित बताया गया। जब तर्कशास्त्र पढ़ता तो उसके संबंध में भी यही पढ़ा। इस प्रकार पश्चिम में किसी एक विषय को लेकर उसी को जीवन का केंद्र मान लिया जाता है। उसी एक रंगीन चश्मे से सबको देखा जाता है। पश्चिम में हर चीज़ को टुकड़ों में देखने की आदत है। हम सब बातों के संपूर्ण पहलुओं का विचार करते हैं। हमने जीवन को पूरे रूप में देखा है। हाँ, कभी समझने के लिए एक-एक टुकड़े का विचार भी किया होगा। जैसे दरज़ी कमीज़ का ध्यान रखते हुए भी एक-एक टुकड़े का विचार करते हुए उसको सीता है। एक क़िस्सा पढ़ा होगा कुछ अंधों और एक हाथी का। प्रत्येक ने उसका भिन्न-भिन्न वर्णन किया। वास्तव में अंधों में पूरे हाथी को ठीक रूप से बताने की क्षमता नहीं होती। पूरी-की-पूरी कल्पना टटोलने से नहीं आती। टटोलने से तो ग़लती भी हो सकती है। पश्चिम की यही समस्या है।

ज्ञानेंद्रियों से अपूर्ण ज्ञान

वहाँ का ज्ञान केवल ज्ञानेंद्रियों पर ही निर्भर है, लेकिन केवल ज्ञानेंद्रियों से संपूर्ण ज्ञान नहीं होता। जैसे आरंभ से सभी चीज़ें दिखाई नहीं देतीं और दिखाई देनेवाली प्रत्येक वस्तु ठीक रूप में भी दिखाई नहीं देती। उसके लिए उन्होंने कुछ यंत्र भी बनाए हैं किंतु उनकी भी कुछ सीमाएँ हैं। जैसे आकाश के कुछ तारे हैं, जिनका प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचते-पहुँचते सौ वर्ष लग जाते हैं। पता नहीं अब वह तारा वहाँ है भी या नष्ट हो गया। फिर भी प्रकाश दिखता है। इसी प्रकार रेलगाड़ी में बैठने पर पेड़ दौड़ते दिखाई देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आँखों से ठीक वस्तु दिखाई नहीं देती। आँखों की इस

कमी की पूर्ति के लिए दूरदर्शक एवं सूक्ष्मदर्शक यंत्र बनाए गए। परंतु सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु देखने का यंत्र माइक्रोस्कोप अमर्यादित क्षमता का नहीं बन सका। टेलीस्कोप भी अपूर्ण ही रहा। इस प्रकार ज्ञानेंद्रियों से बाहर देखने से अधूरा ज्ञान प्राप्त होता है।

अत: हमारे यहाँ कहा गया, इनके अंदर की ओर देखो। प्रज्ञा के द्वारा देखो। पूर्ण ज्ञान प्रज्ञा से ही आता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने अंदर की ओर देखकर समग्रता के दर्शन किए। इस समग्रता को देखना कठिन अवश्य है, परंतु बहुत कठिन नहीं। प्रयत्न करने पर देख सकते हैं। जैसे अच्छा वैद्य रोगी की नाड़ी देखकर शरीर के सब रोगों का पता लगा लेता है, इसी प्रकार संपूर्ण मनुष्य जीवन को—वर्तमान, भूत, भविष्य—सबको मिलाकर पूर्णता का दर्शन होता है। हमारा केंद्र है पूर्णता। हमारे विचार का आधार है—एकता, संघत्व। अन्य लोगों का आधार एकांगी है।

व्यक्ति स्वतंत्र नहीं

पश्चिम में विचार चल रहा है कि व्यक्ति बड़ा है या समाज? कई लोग कहते हैं, व्यक्ति स्वतंत्र है। पर व्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्ण रूप से कहाँ है? व्यक्ति सबके साथ खड़ा है, अकेला कुछ नहीं कर सकता। उसका खाना, पीना, उठना, बैठना सब दूसरों पर निर्भर होता रहा है। किसान अनाज पैदा करता है, पर कपड़े के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। मनुष्य जब पैदा होता है तो सबसे असहाय पैदा होता है। उसे चलना, बोलना, खाना, पढ़ना सब दूसरों के द्वारा सिखाया जाता है। व्यक्ति का सुख-आनंद भी दूसरों पर निर्भर करता है। अकेले खाने, पीने, घूमने, फिरने, मेले-ठेले में जाने से आनंद नहीं आता। ब्याह-शादी आदि जैसे शुभ अवसरों पर हमारे यहाँ जब चार आदमी आते हैं तो हमारा सुख बढ़ता है। इसी प्रकार बीमारी, मृत्यु आदि दु:ख के प्रसंग पर कुछ लोग आते हैं तो सहायता की बजाय कभी-कभी वे समस्या बन जाते हैं। फिर भी दूसरों का साथ होने से दु:ख हल्का पड़ जाता है, राहत मिलती है। तो व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। भौतिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टियों से व्यक्ति दूसरों पर निर्भर है। अत: 'व्यक्ति स्वतंत्रता' का नारा व्यर्थ है।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी एक कविता में लिखा है कि व्यक्ति स्वतंत्र कहाँ है? भगवान् भी सृष्टि-निर्माण का बंधन अपने ऊपर लेता है। वह जलनेवाले को जलने से नहीं बचा सकता। केवल विशेष प्रकार का 'केमिकल' लगाने से ही बचा जा सकता है। कोई कहते हैं, भगवान् सबकुछ कर सकता है; लेकिन यह भी ठीक नहीं। भगवान् अन्याय नहीं कर सकता, करेगा तो वह शैतान है। भगवान् तो न्याय ही करेगा। वह निरंकुश नहीं, नियम में बँधा है।

पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद व्यक्तिवाद आदि विचारधाराएँ

कई लोग स्वतंत्रता को निरंकुशता मानते हैं। पश्चिम का विचार है 'समाज, प्रकृति, सृष्टि सब चीज़ मेरे लिए।' वे कहते हैं, 'प्रकृति पर विजय प्राप्त करो।' अंग्रेज़ी में शब्द प्रयोग होता है Exploiting the natural resources, अर्थात् हर वस्तु का अपने लिए उपयोग। सब पशुओं को काटो और खाओ, क्योंकि सब मेरे लिए हैं। यह उनकी कल्पना है। मैं बड़ा हूँ, अत: सब मेरे लिए। संसार में जो अन्य वस्तुएँ दिखती हैं, उनसे मनुष्य बड़ा अवश्य है, परंतु हमारे यहाँ बड़े की कल्पना यह है कि 'जो सबके लिए है, जो सबकी सेवा करे।'

वे प्रकृति 'विजय' की बात करते हैं। वे एवरेस्ट पर चढ़ने को 'एवरेस्ट-विजय' (Conquest of Everest) कहते हैं। हम लोग भी हिमालय पर गए, अनेक चोटियों पर चढ़े, किंतु तपस्या करने का भाव लेकर। 'मैं जीतूँगा, मैं ही सबसे बड़ा हूँ, सब मेरे लिए है' यह भावना अहंकार को जन्म देती है। इसी अहंकार में से पूँजीवाद आया, इसी में से समाजवाद आया।

समाजवाद भी जो आज का है, वह सच्चे अर्थों में समाजवाद नहीं है। यह भी एक प्रकार का व्यक्तिवाद है। वे कहते हैं, 'मशीनवाला व्यक्ति को मज़दूर रखता है। मज़दूर को थोड़ा पैसा देता है। स्वयं अधिक उपभोग करता है।' ऐसा कहकर वे मज़दूर में ईर्ष्या जगाते हैं कि 'तेरे सहारे ये मोटर में घूमते हैं। मेहनत तू करता है, पर तू अकेला होने से कमज़ोर है। तुम सब मज़दूर मिल जाओ।' इसमें समाज की कल्पना नहीं। ईर्ष्या का भाव ही प्रधान है।

साम्यवाद में भी मज़दूरों की सत्ता है, समाज की नहीं। मज़दूर एकत्र मिलता है तो मज़दूर रूप में कुछ नहीं कर सकता। उसे कहा जाता है कि तुम अपनी सारी ताक़त मुझे दे दो। इस प्रकार से स्वतंत्रता भी चली जाती है। अत: यह भी एक समूह की तानाशाही (dictatorship of the proletariat) है, समाज की वास्तविक भावना नहीं है। यह भी व्यक्तिवादी विचारधारा है। फिर आगे जाकर व्यक्ति-स्वातंत्र्य भी छिन जाता है। यह विचारधारा संघर्ष पर आधारित है।

पूँजीवाद विचार में भी संघर्ष है। प्रतियोगिता इसका आधार है। इसमें भी 'सबल ही जीवित रहेगा' (Survival of the fittest) का सिद्धांत खड़ा होता है। साम्यवादी 'प्रतियोगिता' पर नहीं, 'वर्ग संघर्ष' पर विश्वास करते हैं। यहाँ भी वर्ग की प्रतियोगिता हो जाती है। इस प्रकार पश्चिम में पूर्णता का विचार नहीं होता, टुकड़ों-टुकड़ों में होता है। हमारी दृष्टि में अपूर्णता का विचार अधूरा है।

संघर्ष नहीं, सहयोग

दुनिया में समर्थ (·fittest) ही जिंदा (Survive) नहीं रहता, कमज़ोर भी जिंदा रहता है। सभ्यता का अर्थ ही यही है कि कमज़ोर की भी रक्षा हो। आयुर्वेद, चिकित्सा शास्त्र (Medical Science) आदि की आवश्यकता इसीलिए है कि दुर्बल भी जीवित रह सके। सबल तो अपने आप जीवित रह लेगा। पुलिस भी इसलिए होती है कि दुर्बल की रक्षा हो। मत्स्य न्याय न रहे, इसीलिए राज्य की स्थापना है। समर्थ दुर्बल को समाप्त न करे, इसलिए हम नियम व समाज बनाते हैं।

अत: जीवन का, समाज का आधार संघर्ष नहीं, सहयोग है। प्रकृति भी सहयोग के आधार पर चलती है। वनस्पति और मनुष्य-प्राणिमात्र एक-दूसरे के पूरक बने हैं। दोनों में संघर्ष नहीं। हमें ऑक्सीजन की आवश्यकता है, जो हमें वनस्पति जगत से प्राप्त होती है तथा वनस्पति को आवश्यक कार्बनडाई-ऑक्साइड प्राणिजगत् से प्राप्त होती है।

इस प्रकार वनस्पति और मनुष्य एक-दूसरे के पूरक हैं।

दैवी और आसुरी भाव के कहीं-कहीं भेद व संघर्ष भी दिखते हैं, पर वे मूल में नहीं हैं, ऊपरी-ऊपरी हैं। भिन्नताएँ दिखती हैं, पर वे पूरक भी हो सकती हैं। लँगड़े व अंधे की प्रकृति भिन्न है। दोनों अकेले-अकेले नहीं चल सकते, परंतु दोनों सहयोग द्वारा चल सकते हैं। भगवान् की सृष्टि में किसी में कोई कमी है तो किसी में कोई। प्रकृति का अर्थ यही है कि अंधे और लँगड़े को जोड़ो, पूरकता पैदा करो। यही 'दैवीभाव' है। जहाँ पूरकता पैदा न हो तो वह 'आसुरी भाव' है। हमारे यहाँ पर कहा गया है कि कोई भी वनस्पति ऐसी नहीं है, जो औषधि का काम नहीं देती हो। आक नामक वनस्पति वैसे ही खा जाना हानिकारक है; परंतु उसकी औषधि बनाकर रोगी को देना लाभदायक है, तो रोगी और औषधि का मेल बिठाना आवश्यक है।

पश्चिमी द्वैत और भारतीय अद्वैत

अत: सृष्टि में संघर्ष ढूँढ़ना ठीक नहीं। जहाँ संघर्ष हो वहाँ भी एकता निर्माण करना, यह हमारी परंपरा है। पश्चिम ने 'भेद' को ढूँढ़कर उसे बढ़ाने की सोची। 'सबको हटाकर मैं जीवित रहूँ' यह परंपरा भेद उत्पन्न करने की है। वहाँ द्वैतभाव प्रारंभ से है। कुछ कहते हैं, बाइबिल में भगवान् व शैतान की कल्पना से ही यह द्वैतभाव आया। इसी प्रकार की डार्विन और मार्क्स की कल्पना है। हमारे यहाँ अद्वैत है, अभेद है। द्वैत जो कुछ दिखता है, वह बाहरी है। उनमें एकता कैसे पैदा की जाए। विवाह से पति और पत्नी दो होते हुए भी हमारे यहाँ एक हो जाते हैं। परंतु पश्चिम में दोनों समझौते में बँधते हैं, पर एक नहीं होते। वे इसे समझौता (contract) मानते हैं, जब

तक निभे ठीक है, आगे टूट भी सकता है। हम पति-पत्नी को एक मानते हैं—इस जीवन में, पिछले जीवन में और भावी जीवन में भी एक सती पार्वती ने पूर्व जन्म में भी शिव से विवाह किया था, अगले जीवन में भी शिव से ही विवाह किया। तो जीवन की यह एकता, पूर्ण अभेदता हमारे जीवन की विशेषता है।

पश्चिम का आधार : संघर्ष

पश्चिम में सभी बातों में भेद है। साम्यवाद में भी साम्य नहीं है। वर्ग-भेद और संघर्ष ही उसका आधार है। प्रजातंत्र में भी राजा और प्रजा का भेद है। संघर्ष हो, इनमें से कोई एक आगे आएगा। एक राजा का पक्ष होगा, एक प्रजा का पक्ष। दोनों अपनी-अपनी जीत चाहते हैं। अतः संघर्ष होता ही है। ईर्ष्या उत्पन्न होती है। इस प्रकार संघर्ष को आधार माना है।

हमारा आधार एकात्मक

हमने संघर्ष को आधार नहीं माना। संघर्ष यहाँ भी हो सकता है, पर वह हमारी प्रकृति नहीं, आधार नहीं। हमने ईर्ष्या, द्वेष आदि को षड्‌रिपु माना। पश्चिम में इस संघर्ष को स्थायी बताया गया और 'प्रजा के राज्य' का नियम निकला। प्रजा ने राजा चुना, वह जब निरंकुश हुआ तो उसको हटाया गया। हमने इस संघर्ष को, दुर्गुण को—आधार नहीं बनाया। हमारा आधार एकात्मकता का है, सद्‌गुणों का है। यहाँ भी छुआछूत, जाति-पाँति आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए; परंतु हमने उन्हें मिटाने के प्रयत्न किए। जैसे संत रामानंद[1] ने कहा—

जाति पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि को होई॥

आजकल संघर्ष बढ़ाने का भी प्रयत्न चल रहा है। दक्षिण भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण का बड़ा भेदभाव है। उस भेद को बनाए रखने हेतु एक मनगढ़ंत कहानी कही जाती है। एक बार अगस्त्य ऋषि[2] समुद्र का पान कर गए। उसके किनारे एक चिड़िया

---

1. स्वामी रामानंद को मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का महान् संत माना जाता है। उन्होंने रामभक्ति की धारा को समाज के निचले तबके तक पहुँचाया। वे पहले ऐसे आचार्य हुए, जिन्होंने उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, जैसे छुआछूत, ऊँच-नीच और जात-पाँत का विरोध किया था।
2. भारतीय पौराणिक मान्यताओं के अनुसार समुद्रस्थ राक्षसों के अत्याचार से घबराकर देवताओं ने जब अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की, तब जन कल्याण के लिए ये सारा समुद्र पी गए, जिससे सभी राक्षसों का विनाश हो गया था। अगस्त्य मुनि का सप्तर्षियों में स्थान है, ये भगवान् सूर्य की विनती पर विंध्याचल पर्वत को निम्न स्थिर करने हेतु दक्षिण में जा बसे थे। महर्षि केरल के मार्शल आर्ट कलरीपायट्टु की दक्षिणी शैली वर्मक्कलै के संस्थापक आचार्य एवं आदिगुरु हैं, साथ ही दक्षिणी चिकित्सा पद्धति 'सिद्ध वैद्यम्' के भी जनक माने जाते हैं।

ने अंडे दे रखे थे। उसने जब त्राहि-त्राहि मचाई तो दया करके ऋषि ने पेशाब कर दिया। अतः समुद्र का पानी खारा हो गया (अर्थात् पहले मीठा था) कहा जाता है कि देखो, ये ब्राह्मण कितने दुष्ट हैं कि समुद्र के मीठे पानी को भी खारा कर दिया। यह संघर्ष को बढ़ाने का ढंग है। परंतु हमारा वास्तविक कार्य तो एकात्मता बढ़ाने का ही है।

स्वार्थ और परमार्थ

हम न पूँजीवाद को मानते हैं, न समाजवाद को, हम तो एकात्मवाद को मानते हैं। एकता संघता को मानते हैं। हममें एक आत्मा है। इस एकात्म्य में दैवी संपत्ति है। हम दैवी भावों को प्रमुख मानकर, आधार मानकर प्रगति करते हैं। पश्चिम वाले आसुरी भावों को आधार बनाकर चलते हैं। उन्होंने स्वार्थ को प्रमुख माना, हमने परमार्थ को प्रधानता दी। मनुष्य में स्वार्थ व परमार्थ दोनों होते हैं। लेकिन परमार्थ भाव प्रमुख है। यह दैवी कल्पना है।

पश्चिम ने परमार्थ को भी स्वार्थ के आधार पर माना है। उनका राज्यशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र—सब स्वार्थ (Self interest) पर आधारित है। वहाँ दस लोग इसलिए मिलते हैं कि उसमें अपना कितना हित है। अकेले या दस मिलकर हम आग से अपनी रक्षा नहीं कर सकते, यह विचार रखकर निजी स्वार्थ के लिए सौ लोग मिल जाते हैं, सेवा के उद्देश्य से नहीं। आक्रमण से रक्षा के लिए अनेक मिल जाते हैं। आक्रमण न हो तो दूसरे पर आक्रमण कर देते हैं। परंतु हमारा परमार्थ विधायक है—सेवाभाव व परोपकार पर आधारित है। सुख में तो सेवा करेंगे ही, दुःख उठाना पड़े तो भी सेवा करेंगे। वहाँ किसान को कहा जाता है कि जीवन-स्तर (standard of living) बढ़ाने के लिए अधिक अन्न पैदा करो। वहाँ काँटे-छुरी से खाना खाए तो वह प्रगति का द्योतक माना जाता है; परंतु यदि नर-मास भक्षी कोई व्यक्ति काँटे-छुरी से खाना खाता है तो क्या उसे प्रगति का प्रतीक कहेंगे? वहाँ किसान इसलिए अधिक अन्न पैदा करता है, ताकि वह अधिक कमाकर अधिक सुखी हो सके; पर हमारे यहाँ किसान उसे अपना कर्तव्य समझकर सबको—चींटी, चिड़िया, गाय, कुत्ता, मनुष्य—को खिलाने की इच्छा से यज्ञकर्म समझकर अन्नोत्पादन करता है।

हमारी प्रकृति ब्रह्मनिष्ठ

पश्चिम की संपूर्ण संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ है। हमारी संस्कृति तो समाजनिष्ठ से भी बढ़कर ब्रह्मनिष्ठ है। एक अर्थशास्त्री मुझसे मिले, कहने लगे, 'हिंदुस्थान में लोग चींटी और बंदरों को जितना खिलाते हैं, वह बंद कर दें तो भूख से मरनेवालों की संख्या

आधी रह जाएगी।' मैंने कहा, 'यदि आप सब एक माह में चार दिन उपवास करें तो कितनों को भोजन मिल जाए? बीमार होने पर दवा न लें तो कितनी बचत हो जाए?'

इस प्रकार हमारी प्रकृति ब्रह्मनिष्ठ है। जिनको हम देख नहीं पाते, ऐसे सबको—संपूर्ण सृष्टि को—केंद्र मानकर चलते हैं। हम केंद्र की ओर चलते हैं, वे बाहर की ओर चलते हैं। केंद्र की ओर चलने से हम केंद्र के निकट आते हैं। वहाँ जितने व्यक्ति उतने ही केंद्र हैं, वे केंद्र से बाहर चलते हैं, अतः केंद्र से दूर चले जाते हैं। हमारे यहाँ केंद्र ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म—कुछ भी कहें—है। इसलिए हम सबमें एक आत्मा मानते हैं। पश्चिम वाले सबको यंत्रवत् मानते हैं, समाज भी उनके लिए एक यंत्र है। हम समाज, राज्य, राष्ट्र सब में ईश्वर या चैतन्य मानते हैं। हम संपूर्ण विश्व में एक चैतन्य की कल्पना करते हैं—ईश्वर सब में मौजूद है। हम आत्मवादी हैं, वे अनात्मवादी हैं, जड़वादी हैं। हम समाज-राष्ट्र को भी आत्म-ईश्वर का रूप मानकर चलते हैं, वे केवल यंत्रवत् राष्ट्र की कल्पना लेकर चलते हैं।

समानता नहीं, आत्मीयता

वे ज़्यादा-से-ज़्यादा समानता (Equality) का नारा लगाते हैं। हम समानता की नहीं, एकात्मता (Integration) की बात करते हैं। समानता तो भाई-भाई में भी नहीं है। इस संसार में अनेकत्व है। उसमें एकता लाई जा सकती है। उन्होंने समानता लाने के लिए सबको वोट देने का समान अधिकार दिया, परंतु सबको समान बुद्धि दे पाए क्या? वे कहने लगे, हम सबको प्रगति का समान अवसर देंगे। तो यह भी केवल नारा है। दक्षिण में रहनेवाले को उत्तर की जलवायु कैसे देंगे? नदी के किनारे निवास करनेवाले को तैरने का अवसर रहता है, रेगिस्तान में रहनेवाले को नहीं रहता। बड़े को रोटी, छोटे को दूध देते हैं। बड़ा कहे, मुझे रोटी देते हो, उसे भी रोटी दो और बड़े के विवाह के अवसर पर यदि छोटा कहे कि मैं भी इसी समय विवाह करूँगा, तो यह ठीक होगा क्या? भगवान् ने चींटी को कण भर और हाथी को मन भर दिया। आज तो चींटी भी कहती है कि मुझे मन भर दो। यदि हाथी कह दे कि मेरे हिस्से का वज़न तुम उठाओ तो ये दोनों बातें कैसे संभव होंगी? अतः हमारे जीवन का आधार समानता नहीं, आत्मीयता है। हमारा आधार संघर्ष और स्वार्थ नहीं। हम प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर का अंश मानते हैं। हमने कहा कि चोर में भी ईश्वर का अंश है, अतः यह सेवा करेगा।

हैवान आदम और करुणामय मनु

पश्चिम में आदम और हौआ की कथा इस प्रकार है कि आदम ने सेब चुराया तो

उसे स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा दिया। तो उसके सामने आदम की कल्पना चोरी करने की है। हमारे सामने मनु की कल्पना है, जिसने प्रलयकाल में मछली की रक्षा की, संसार को, प्राणिमात्र को संरक्षण दिया। इस प्रकार हमारी मनु की कल्पना करुणामय की है, जबकि उनके आदम की कल्पना हैवान की—चोर की है।

यह दोनों के जीवन की दृष्टि का अंतर है। इस अंतर को समझ लेने से हमें पता चलेगा कि हिंदुत्व क्या है? हिंदू संस्कृति क्या है? हिंदू संस्कृति की विशेषता क्या है?

—जून 4, 1964

□

52

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : राजस्थान

कल हम लोगों ने विचार किया था कि हम जीवन के संबंध में एकात्मक और पूर्णतावादी दृष्टिकोण लेकर चले हैं। हम समाज में किसी भी प्रकार का द्वैत, उस द्वैत के आधार पर कोई स्थायी संघर्ष मानकर नहीं चलते। हम जब यह संघर्ष ही नहीं मानते तो हमारे जितने भी कर्म हैं, उनका लक्ष्य किसी का कुछ छीनना या अपने स्वत्व की रक्षा करना या जिसे अंग्रेज़ी में 'राइट्स' कहते हैं, उनके लिए लड़ना नहीं है। हमें तो पूर्णता का साक्षात्कार कर उसकी अभिव्यक्ति के लिए जीवित रहना है, जो कर्तव्य के रूप में या सेवावृत्ति के रूप में प्रकट होती है। यह कर्तव्य ही हमारी जीवन रचना का आधार है। आज इसी के संबंध में कुछ और विचार करेंगे।

जब हम पूर्णता की बात करते हैं जो व्यक्ति के संबंध में भी विचार करें कि व्यक्ति का उत्कर्ष किसमें है? व्यक्ति का सुख किसमें है? किसके लिए हम अधिक प्रयत्न करें? सामान्यतया यही दिखता है कि व्यक्ति का सुख उसकी इच्छाओं और वासनाओं की तृप्ति में है।

शरीर

कई लोग इस शरीर को, पेट को ही सबकुछ मानते हैं। यह भर गया तो सब भर गया। सारी दुनिया इसी के लिए चिंता करती है। रोटी ही सर्वस्व है, उसके साथ-साथ दूसरी भौतिक इच्छाएँ भी पूर्ण हो जाएँ तो समझते हैं कि सब इच्छाएँ पूर्ण हो गईं। परंतु यह सत्य नहीं है कि रोटी मिल गई तो सबकुछ मिल गया। कई बार पेट भरने पर भी व्यक्ति को सुख नहीं मिलता। फिर रोटी के सुख की भी कोई मर्यादा नहीं। जिसे रोटी नहीं मिलती, वह रोटी चाहता है। जिसे रोटी मिली, वह चुपड़ी चाहता है; फिर दाल और साग को भी आवश्यक समझने लगता है।

अभी नागपुर में भी अपना वर्ग लग रहा है। वहाँ प्रात: तो दाल, साग, चावल, रोटी सब बनता है। सायंकाल साग नहीं बनता, केवल दाल बनती है। एक स्वयंसेवक ने कहा कि घर पर हम कभी केवल दाल नहीं खाते, शाम को साग न मिलना हमारे साथ अन्याय है। भोजन व्यवस्थापक ने कहा, यहाँ प्रात: साग बनाते हैं, जिससे कई ऐसे लोगों पर अन्याय होता है, जो घर पर प्रात: कभी साग नहीं खाते और आप पर सायंकाल अन्याय होता है। अब क्या करें? साग के बाद चटनी की भी इच्छा होती है और फिर अनेक व्यंजन, मिठाइयों आदि की भी इच्छा होने लगती है। तो इसकी कोई मर्यादा नहीं है। आपने जगन्नाथराव जोशी का नाम सुना होगा। मध्याह्न को जब वे भोजन कर लेते हैं तो कहते हैं, आज तो शाम को भोजन नहीं करेंगे। लेकिन शाम निकट आते-आते भोजन पचने लगता है, भूख लगने लगती है और फिर भोजन करने का विचार आता है। उनका यह क्रम प्रत्येक बार भोजन के पश्चात् चलता है।

यह सबकुछ रोटी तथा व्यंजन का क्रम तो चलता ही है, लेकिन कभी-कभी रोटी के साथ स्नेह नहीं मिले तो संतोष नहीं होता। मुझे एक दिन एक निमंत्रण आया। मैंने दूसरे साथी से कहा, 'आप भी चलिए।' तो उन्होंने कहा, 'आप जाइए, मुझे निमंत्रण नहीं है।' निमंत्रण न होने से वे भोजन करने नहीं गए, हालाँकि वहाँ कार्यालय में रहने के कारण होटल के अतिरिक्त अन्य स्थान पर उनके लिए भोजन की व्यवस्था संभव नहीं थी। मेरे साथ जाते तो घर का अच्छा स्वादिष्ट भोजन मिल सकता था। तो जो लोग यह कहते हैं कि 'पेट पापी', यह बात ठीक नहीं।

मन

केवल पेट का सुख ही सुख नहीं, मन का सुख भी तो कुछ है। कई बड़े सेठों को पेट भरने की तो कमी नहीं है, अजीर्ण होता रहता है, इतना अधिक खाने को मिलता है। फिर भी इतने दु:खी रहते हैं कि रात-रात भर नींद नहीं आती। दिन-रात परिश्रम करते रहते हैं। क्या केवल पेट भरने के लिए? अमरीका में लोगों को खाने की कमी नहीं, फिर भी वे बड़े परेशान रहते हैं। रहीम ने भी कहा है—

रहिमन पेट सों कहत है क्यों न भई तू पीठ।
रीते मान बिगारहि है, भरे बिगारे दीठ॥

तो पेट भरने के बाद ही सारी बुराइयाँ आती हैं। पेट भरने के बाद दृष्टि न बिगड़े, मन में विकार नहीं हो। खाने को ठीक मिले तो तन भी ठीक रहे। अत: शरीर के साथ-साथ मन का सुख चाहिए। यदि मन का सुख नहीं तो शरीर-सुख भी सुख नहीं लगता। कहा भी है, 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' मन ठीक न रहने पर खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता, चिड़चिड़ापन रहता है। कई बार माँ बालक को दूध पीने को कहती है, परंतु

बालक उदासी के कारण कई बार नहीं पीता। मन में उदासी आने से मनुष्य सब चीज़ें छोड़ देता है। आख़िर महाराणा प्रताप ने मानसिंह के साथ भोजन क्यों नहीं किया? केवल मन के कारण। मन ठीक होने पर ही मनुष्य को भोजन भी अच्छा लगता है। मन ठीक रहा तो ख़राब भोजन मिलने पर भी संतोष रहता है। रूखी रोटी खाकर भी पहलवान बन जाता है, अन्यथा अच्छे पकवान खाकर भी सींकिया ही रहेगा। कठघरे में शेर रख लो और सामने बकरी बाँधकर उसे ख़ूब खिलाते जाओ, पर वह दुबली ही होती जाती है। फाँसी की सज़ा पानेवाले को ख़ूब खिलाते-पिलाते हैं, परंतु कोई-कोई तो मन मस्त होने से मोटा हो जाता है, पर शेष दुबले हो जाते हैं। इसलिए तुलसीदास ने कहा है—

आवत ही हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहां न जाइए, कंचन बरसे मेह॥

कृष्ण दुर्योधन के यहाँ भोजन करने नहीं गए, विदुर के यहाँ गए। केले के छिलके भी खा लिए, क्योंकि वहाँ प्रेम था। घर में माँ के हाथ की रोटी के आगे दूसरे स्थान के सब व्यंजन फीके लगते हैं, क्योंकि उसमें प्रेम होता है। भीम चाहे जितना खा लेता था, फिर भी जब तक कुंती माता के हाथ की रोटी नहीं खाता था, उसकी तृप्ति नहीं होती थी। इसलिए मन का समाधान मुख्य है।

बुद्धि

मन के समाधान के साथ-साथ बुद्धि का समाधान भी चाहिए। पागलख़ाने के रोगी को मन का समाधान होने पर भी बुद्धि ठीक न रहने से वह दुःखी रहता है। अतः बुद्धि भी ठिकाने चाहिए। वह भी सद्बुद्धि चाहिए। अब पाश्चात्य विद्वान् भी मानने लगे हैं कि बुद्धि में भी रोग होते हैं। चेतन-अचेतन मन में भी रोग होते हैं। बहुत सी ऐसी बातें होती हैं, जिन्हें मनुष्य याद होने पर भी भूल जाता है। मनुष्य ग़लती करता है, जब वह बहुत परेशान हो जाता है। इसलिए बुद्धि ठीक रहे, यह आवश्यक है।

आत्मा

जैसे बुद्धि का सुख आवश्यक है, उसी प्रकार आत्मा का भी सुख आवश्यक है। कई कहते हैं, आत्मा निर्लेप है। फिर आत्मा का सुख कैसा? लेकिन कई बार हम मोर नाचता देखते हैं तो हर्ष होता है। कोई अच्छा काम करने पर हमारी प्रशंसा हो तो सुख होता है। तो यह किसका सुख? मन का, बुद्धि का या आत्मा का? ऐसे ही किसी ने गाली दी तो दुःख होता है। इससे शरीर को तो पीड़ा नहीं होती। फिर दुःख क्यों होता है? क्योंकि 'मुझे' गाली दी। यहाँ 'मैं' का विचार हुआ। शरीर, मन और बुद्धि के अतिरिक्त भी कुछ है, जिसे 'मैं' कहते हैं। वह 'मैं' ही आत्मा है। जिससे आत्मा का

संबंध जुड़ता है, वही अपना है। जब तक यह नहीं जुड़ता, तब तक पराया।

मैंने एक कहानी पढ़ी थी। एक सिपाही मोरचे पर गया था। वह घर पर अपनी पत्नी और दस दिन के एक छोटे से बच्चे को छोड़ गया था। साल-डेढ़ साल युद्ध के मोरचे पर रहने के बाद वह छुट्टी पर गाँव को लौट रहा था। रास्ते में एक सराय में ठहरा। रात को सोने लगा तो बच्चे का चित्र सामने आया। सोचा, वह बड़ा हो गया होगा। वह उसके लिए खिलौने, मिठाई आदि ले जा रहा था। इतने में उसे एक बच्चे के रोने की आवाज़ आई। उसने सराय के मालिक से कहा कि इस प्रकार बच्चा रोता रहेगा तो उसे रात भर नींद नहीं आएगी। सराय के मालिक ने बच्चे की माँ को उसका रोना बंद कराने को कहा। माँ ने प्रयत्न किया, लेकिन बच्चा और भी अधिक रोने लगा। सिपाही ने फिर सराय के मालिक को बुलाया और कहा कि रोना बंद न हो तो उसे सराय से बाहर निकाल दो। मालिक ने कहा कि वह अँधेरी रात में कहीं जाने को तैयार नहीं। सिपाही ने कहा कि तुम नहीं निकाल सकते तो मैं निकाल दूँगा। इतना कहकर वह उस स्त्री के पास गया। वह बच्चे को मना कर रही थी। उसने देखा कि वह तो उसकी अपनी ही पत्नी है। उसका सारा क्रोध शांत हो गया और वह उस बच्चे को अपनी गोद में लेकर उसे मनाने लगा।

यह परिवर्तन अपनेपन के कारण हुआ। यह अपनेपन का भाव ही हमें संतोष दिलाता है। हम पूर्वी बंगाल के हिंदुओं का दुःख देखकर क्यों दुःखी हैं? क्योंकि उनसे अपनेपन का संबंध है। सुख में सभी अपनेपन का संबंध जोड़ने का प्रयत्न करते हैं और दुःख में अपना संबंध तोड़ने का प्रयत्न करते हैं। तो यह संबंध जोड़ने की प्रवृत्ति अपनेपन की प्रवृत्ति है।

चारों का समुच्चय व्यक्ति

इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का समुच्चय ही व्यक्ति है। तो यह सुख शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सुख है। इन चारों का सुख मनुष्य का सुख है। इन चारों की उन्नति, हित, उत्कर्ष हो, यह आवश्यक है। केवल एक ही विचार करना अपूर्ण है। हमारे यहाँ तो इन चारों के अतिरिक्त पूर्वजन्म का विचार भी है। पर कम-से-कम इस जन्म में तो इन चारों का विचार अवश्य करें।

समूह का भी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा

जिस प्रकार व्यक्ति का विचार करते समय हम इन चारों का विचार करते हैं, उसी प्रकार समूह का विचार करते समय इन चारों का विचार करना चाहिए। क्योंकि समूह का भी शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा होता है। एक छोटे से उदाहरण से हम समझने का

प्रयत्न करें। जैसे चालीस लोगों का एक क्लब है। तो चालीस लोग मिलकर उस क्लब का एक शरीर हैं। उनकी यह इच्छा या संकल्प कि हम क्लब बनाते हैं, यह क्लब का मन है। यह इच्छा उनमें से निकाल दें तो क्लब नहीं चलेगा। इस इच्छा के कारण वे चालीस लोग एक साथ आते हैं। फिर उस इच्छा की पूर्ति के लिए कुछ व्यवस्था करते हैं, नियम बनाते हैं—चंदा आदि एकत्र करने के नियम, पदाधिकारियों के चुनाव आदि के नियम। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक व्यवस्था करते हैं। उससे क्लब टिकता है। केवल इच्छा से क्लब नहीं टिकता। तो इस व्यवस्था में तर्क है, बुद्धि है। परंतु इसके अतिरिक्त उस क्लब का कुछ उद्देश्य या आदर्श भी होता है—मनोरंजन का, स्वास्थ्य का। इसी प्रकार अन्य भिन्न-भिन्न संस्थाएँ जो बनती हैं, उनमें भी ये चारों चीज़ें होती हैं। जैसे एक व्यक्ति में शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा रहती है, उसी प्रकार समष्टि में भी—चाहे कितने ही व्यक्ति हों तो भी—एक शरीर, एक साथ रहने की इच्छा अर्थात् मन, एक व्यवस्था अर्थात् बुद्धि, एक आदर्श अर्थात् आत्मा रहती है।

राष्ट्र

विश्व में आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई है 'राष्ट्र'। अतः राष्ट्र की दृष्टि से भी विचार करें तो राष्ट्र के लिए भी चार बातों की आवश्यकता रहती है। प्रथम आवश्यकता है देश। देश, भूमि और जन दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं। किसी भूमि पर एक जन (समाज) रहता हो और वह उस भूमि को माँ के रूप में पूज्य समझे, तभी वह देश कहलाता है। जैसे दक्षिणी ध्रुव में कोई नहीं रहता, तो वह देश नहीं है। किंतु भारत में हम रहते हैं, हम इसे माँ मानते हैं, इसलिए यह देश है। दूसरी आवश्यकता है सबकी इच्छाशक्ति यानी सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी एक व्यवस्था, जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं—इसके लिए हमारे यहाँ सबसे अच्छा शब्द प्रयुक्त हुआ है 'धर्म'। और चौथी है जीवन-आदर्श। इन चारों का समुच्चय यानी राष्ट्र।

जिस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समुच्चय से व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है।

यदि हम इसका एक चित्र बनाएँ तो वह चित्र एक घन (Cube) की आकृति का बन जाएगा, जो इस प्रकार का होगा—(देखें आकृति-1)

इस आकृति में—

एकात्म मानव दर्शन : समाज व्यवस्था धन व्यष्टि-समष्टि समन्वय

क ख = शरीर

ख ग = मन

ग घ	=	बुद्धि
घ क	=	आत्मा
क ख ग घ	=	व्यष्टि
च छ	=	भूमि + जन = देश
छ ज	=	संकल्प
ज झ	=	धर्म (संविधान)
झ च	=	जीवनादर्श (लक्ष्य)
च छ ज झ	=	समष्टि (राष्ट्र)
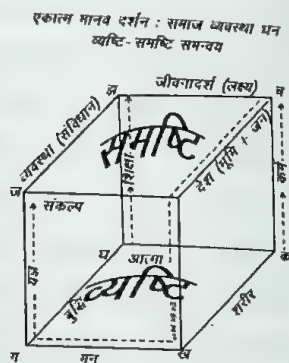
आकृति-1

जैसे व्यक्ति में शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा होते हैं, उसी प्रकार समूह में जन, संकल्प, धर्म और आदर्श होते हैं। इस प्रकार ये दो इकाइयाँ बनती हैं। ये दोनों इकाइयाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

व्यक्ति : समाज की देन

व्यक्ति जब पैदा होता है तो उसका सारा जीवन समाज पर निर्भर करता है। यानी व्यक्ति बनता है, समाज की शिक्षा के ऊपर। समाज में यदि शिक्षा या संस्कार न मिले तो मनुष्य मनुष्य नहीं दिखता। लखनऊ के अजायबघर में एक मनुष्य है। बचपन में उसे भेड़िया उठाकर ले गया था। अब वह बोल नहीं सकता, भौं-भौं करता है। हाथ से उठाकर नहीं खाता है; ज़बान से उठाकर खाता है। वह सब काम भेड़िए की तरह करता है।

मनुष्य समाज द्वारा ही मनुष्य बनता है। समाज हमें बोलना, भोजन करना, बुद्धि से सोचना सिखाता है। हमारी विचार प्रक्रिया को समाज ही चलना देता है।

बुद्धि भी समाज से ही सक्रिय होती है। शरीर भी, जो आज हमारा शरीर है, वह भी समाज के द्वारा ही सक्रिय है। समाज के द्वारा हम खाना-पीना, चलना सीखते हैं। हम सब पालथी मारकर बैठ सकते हैं। यह भी हमने समाज से सीखा है। पश्चिम में लोग पालथी मारकर नहीं बैठ सकते। उनके पाँव मुड़ते ही नहीं। अफ्रीका में मैंने देखा, वहाँ काम करनेवाली औरतें या तो पैर फैलाकर बैठती हैं या खड़ी रहकर काम करती हैं। तो जो कुछ छोटी-से-छोटी बात हम सीखते हैं, वह सब समाज से सीखते हैं। जो कुछ हम आज हैं, समाज की ही देन है।

शिक्षा से कर्म

व्यक्ति और समाज का पहला संबंध शिक्षा के रूप में सामने आता है। यह शिक्षा

ही व्यक्ति और समाज को मिला देती है। पैदा होते ही व्यक्ति को समाज शिक्षा देना प्रारंभ कर देता है। दूध पीना भी सीखना पड़ता है। फिर शिक्षा का संस्कार बढ़ता जाता है। माता, पिता, गुरु आदि के द्वारा जैसा सिखाया जाता है, व्यक्ति वैसे ही कर्म करना प्रारंभ करता है। वह समाज के लिए कर्म करता है। सामान्य लोगों को दिखता है कि वह अपने लिए कर्म करता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। वह कर्म के द्वारा समाज से जुड़ता है। उदाहरण के लिए किसान अनाज क्या अपने लिए पैदा करता है? नहीं, वह समाज के लिए पैदा करता है।

कर्म से योगक्षेम

व्यक्ति जितने भी कर्म करता है, वे समाज के लिए हैं। समाज उसके योगक्षेम (भोग) की चिंता करता है। समाज ने हमको शिक्षा देकर कपड़ा बुनना सिखाया। हमने कपड़ा बुना, इनता बुना कि हम सब-का-सब ख़ुद नहीं पहनते। वह हम समाज को देंगे। मान लो, समाज हमें कपड़े के बदले एक हज़ार रुपए दे देता है। अब समाज ने इसका मूल्य बराबर दिया या नहीं? कई कहते हैं कि समाज कभी बराबरी का मूल्य नहीं देता। लोग इस मूल्य के संबंध में तरह-तरह का विचार रखते हैं। मार्क्सवादी कहते हैं कि श्रम के आधार पर मूल्य निर्धारण करना चाहिए। मार्क्स ने सारा सिद्धांत इसी आधार पर बनाया कि मज़दूर श्रम करता है, उससे मूल्य निर्माण करता है। किंतु पूँजीपति उसमें से रख लेते हैं। यह श्रम का शोषण है। पर यह सत्य है क्या? मानो उसने दो हज़ार रुपए का कपड़ा बनाया। मालिक ने उसे केवल एक हज़ार रुपया दिया, शेष एक हज़ार का शोषण कर लिया, यह सत्य नहीं। क्योंकि मज़दूर केवल श्रम के बल पर इतना नहीं कर सकता। इसमें पूँजीपति की पूँजी, उनकी मशीन, बुद्धि, उनकी बाज़ार में बेचने की क्षमता का मूल्य भी सम्मिलित है। फिर इसका मूल्य दो हज़ार से अधिक भी हो सकता है और कम भी। अतः श्रम से मूल्य का निर्धारण नहीं होता, बल्कि उपयोगिता के आधार पर होता है, वह भी समय-समय पर अलग-अलग होता है। अतः श्रम (कर्म) और पारिश्रमिक का मेल मत बिठाओ। दुनिया की दृष्टि में मूल्य बदलता रहता है। परंतु वास्तव में श्रम का मूल्य चुकाने की कोई सीमा नहीं है।

अध्यापक जो विद्या देता है, उसका मूल्य रुपए में नहीं चुकाया जा सकता। किसी ने नदी में तैरना सिखाया, उसे कितना मूल्य चुकाया जा सकता है। कभी उससे कितनों के प्राणों की रक्षा की जा सकती है। डाकिया शुभ संदेश भी लाता है, अशुभ भी। उसे क्या पारिश्रमिक देंगे? डॉक्टर ने आपको मृत्यु से बचा दिया, उसे क्या आपके द्वारा अपने जीवन की आमदनी का एक प्रतिशत भी देना कम नहीं करेगा? इस प्रकार मनुष्य का काम और उसके बदले में जो मिलता है, उसका कोई मेल नहीं। कर्म का मूल्य

चुकाना असंभव है। इसलिए हमारे यहाँ पहले यह सब काम सेवा कार्य के नाते ही किए जाते थे। रुपए-पैसे में इनका मूल्य नहीं मापा जाता था। सेवा करना ही हमारा धर्म है। शेष सब चिंता समष्टि पर डाल देनी चाहिए। गीता में भी निष्काम कर्म करने को कहा गया है। भगवान् ने कहा है कि सबकुछ मुझे अर्पण कर दो, तुम्हारे योगक्षेम की चिंता मैं करूँगा 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'।

पश्चिम में जो यह नारा लगाया जाता है कि कमानेवाला ही खाएगा, यह ठीक नहीं। छोटा बालक व रोगी नहीं कमाता, फिर भी खाता है। जो जीवित है, वह खाएगा। कमाई (कर्म) और उजरत (पारिश्रमिक) का मेल पश्चिम के अर्थशास्त्र में है। हमारे यहाँ नहीं। हमारे यहाँ कर्म इसलिए किया जाता है, क्योंकि वह हमारा धर्म है।

हम कर्म के द्वारा अपने जीवन को, आत्मा को प्रकट करते हैं। चित्रकार को चित्र बनाने से, कवि को कवि कर्म से, रोक दीजिए तो वह मर जाएगा। किसान खेती द्वारा ही जीवन को प्रकट करता है। उसकी ज़िंदगी वही है। खेती संबंधी सभी काम किसान के जीवन के साथ साँस की तरह जुड़े हुए हैं। वह कार्य के आधार पर जीवित है। कपड़ा बनानेवाले की अंगुलियों में दक्षता कहाँ से आती है? उसके जीवन की इच्छा से आती है। वह उसके कर्म से जुड़ी है। इसलिए मनुष्य कर्म के कारण जीवित है, पर उसका संबंध उसके प्रतिफल से नहीं। घर-परिवार में कभी हमसे कोई काम ठीक नहीं हुआ तो क्या हमें घर में खाना नहीं मिलता? माँ मना भी कर दे, तो भी थोड़ी देर बाद अपने आप खाने को दे देती है। अतः कर्म को कर्तव्य समझकर करो, हमारे योगक्षेम का वहन स्वतः ही होगा।

योगक्षेम से यज्ञ

कई मनुष्य इतना कमाते हैं कि यदि उतना सब उन्हें खाने को मिल जाए तो पेट फट जाएगा। अतः यदि समाज में हमें योगक्षेम के लिए, भोग के लिए दे दिया तो हम कहते हैं—यज्ञ के लिए बचाओ। यज्ञ करो और उसमें दो, जो शेष बचे वह खाओ। एक हज़ार मिला तो पाँच सौ खाओ और पाँच सौ बचाओ। पूँजी बनाओ। पूँजी बढ़ाने के लिए बचाओ। दूसरों के लिए बचाओ। प्राणियों की चिंता करो। प्रकृति के लिए चिंता करो। सबकी चिंता करने के बाद जो बचे (यज्ञशेष), वह खाओ। इसी को त्याग कहते हैं। त्याग माने 'सबकुछ दे देना' नहीं है। केवल कपड़े उतारकर फेंक देना पागलपन है। स्वयं छोड़कर दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करना, स्वयं भूखे रहकर भी दूसरे को खिलाना त्याग है। इसी प्रकार भविष्य की आवश्यकता के लिए पूँजी एकत्र करना भी एक प्रकार का त्याग है, यज्ञ है, क्योंकि इसमें कल की, अगली पीढ़ी की चिंता रहती है।

एक कथा है। एक राजा जा रहा था। उसे एक बूढ़ा माली मिला। वह आम के

पौधों को पानी दे रहा था। राजा ने पूछा, 'तेरी उम्र कितनी है?' उत्तर था, 'भगवान् जितनी जल्दी उठा ले जाए अच्छा है।' राजा ने कहा, 'यदि ऐसा है तो तू यह आम क्यों लगा रहा है? ये पौधे कब बड़े होंगे? तुझे जीवन में इनके फल खाने को मिलेंगे क्या?' माली ने उत्तर दिया, 'मेरे पुरखों ने जो वृक्ष लगाए थे, उनके फल मैंने खाए। मैं जो लगाऊँगा, उसे आगे आनेवाले खाएँगे।'

इस प्रकार व्यक्ति को हटाकर प्रकृति के लिए चिंता करना, यह है हमारे यहाँ की परंपरा। 'इदं इन्द्राय इदं न मम,' इसी भाव के सहारे मनुष्य संपूर्ण सृष्टि के साथ जुड़ा हुआ है।

शिक्षा, कर्म, भोग और यज्ञ परस्परावलंबित

इस प्रकार व्यक्ति और समाज को जोड़नेवाली शिक्षा, कर्म, भोग (योगक्षेम) और यज्ञ—ये चार चीज़ें होती हैं। शिक्षा समाज से व्यक्ति की ओर, कर्म व्यक्ति से समाज की ओर, भोग समाज से व्यक्ति की ओर तथा यज्ञ व्यक्ति से समाज की ओर जाते हैं। यज्ञ भाव न रहने से हम नीचे की तरफ़ आ जाएँगे, पतन हो जाएगा। यज्ञ भाव के साथ कर्म भाव भी चाहिए। आज हमारा यज्ञ भाव-कर्मभाव समाप्तप्राय है।

व्यक्ति का कर्म न रहने पर या कम होने पर समाज द्वारा जो योगक्षेम चाहिए, वह उतना न रहने पाएगा। योगक्षेम कम होने पर व्यक्ति द्वारा जितना यज्ञ चाहिए, उतना नहीं रह पाएगा। व्यक्ति द्वारा यज्ञ उतना न रहने पर समाज द्वारा उतनी शिक्षा न रह पाएगी। तो कर्म, योग-क्षेम, यज्ञ और शिक्षा सभी उपयुक्त प्रमाण में चाहिए। ये चारों जितने अधिक रहेंगे, यह घन (Cube) उतना ही बड़ा हो सकता है।

चार पुरुषार्थ

इस प्रकार व्यक्ति और समाज अलग-अलग नहीं हैं। अतः हमारे यहाँ व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष नहीं है। एक को मिटाकर दूसरा नहीं चल सकता। व्यक्ति और समाज दोनों साथ-साथ ही रहेंगे। इन दोनों को मिलाकर जो चीज़ें बनीं, वे चार पुरुषार्थ कहलाते हैं। पुरुषार्थ केवल व्यक्ति के नहीं, समाज अथवा राष्ट्र के भी होते हैं। (देखिए आकृति-2)

झ घ = शिक्षा (संस्कार)
क च = कर्म
ख घ = भोग (योगक्षेम)
ज ग = यज्ञ
क च छ ख = अर्थ
ख ग ज छ = काम

ग ज झ घ = धर्म

झ च क घ = मोक्ष

पहला पुरुषार्थ है 'अर्थ' का पुरुषार्थ। हमारा संकल्प है हमारा 'काम' पुरुषार्थ। हमारे नियम, व्यवस्था, यज्ञ आदि 'धर्म' पुरुषार्थ तथा हमारा आदर्श आदि 'मोक्ष' पुरुषार्थ है।

आकृति-2

जीवन की पूर्णता

अर्थ और धर्म एक-दूसरे के विपरीत होते हुए भी एक-दूसरे का आधार हैं। धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है। अर्थ में दंड नीति, राज्य एवं वार्त्ता (कृषि) दोनों शामिल हैं। पैदावार, खेती आदि सब धर्म के आधार पर चलते हैं। अर्थ के अभाव में भी धर्म समाप्त हो जाता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं। इसके बाद 'काम' पुरुषार्थ आता है। अर्थ में हम काम की पूर्ति करें। लेकिन 'काम' अर्थ और धर्म के बीच आता है। अत: 'पैसा मिला तो कुछ भी खा लूँ' ऐसा विचार ठीक नहीं है। जितना उपयोगी हो, उतना ही खाऊँ अर्थात् धर्मानुसार उपयोग करूँ, ऐसा चाहिए।

जैसे धर्म और अर्थ विपरीत होते हुए भी एक-दूसरे के आधार हैं, उसी प्रकार काम और मोक्ष विपरीत होते हुए भी एक-दूसरे के आधार हैं। सबसे बड़ी कामना मोक्ष की और मोक्ष काम के लिए आवश्यक है। इस प्रकार चारों पुरुषार्थों के आधार पर हम संपूर्ण जीवन की कामना लेकर चल सकते हैं। ये सब मिलकर एक घन बनता है। ये सब मिलकर ही पूर्णता बनती है। जैसे पूर्ण में से पूर्ण निकालें तो पूर्ण ही बचेगा। वह कभी अधूरा नहीं हो सकता, छोटा भले ही हो सकता है।

सामने से देखने पर कई बार एक ही वस्तु सबकुछ दिखाई देती है। परंतु समझदार सोचता है कि इसके पीछे और भी कुछ है। इसी तरह किसी को केवल अर्थ और किसी को केवल धर्म ही सबकुछ लगने लगता है, समझदारी इसी में है कि सभी पुरुषार्थों का विचार होना चाहिए। ये सब सदा परस्पर जुड़े रहते हैं। कभी किसी पुरुषार्थ का प्राधान्य हो जाता है, कभी किसी का। जैसे प्यास में रोटी से अधिक महत्त्व पानी का रहता है, भूख लगने पर रोटी का महत्त्व अधिक होता है। इसी प्रकार कभी अर्थ का महत्त्व अधिक होता है तो कभी धर्म का, कभी काम का अधिक तो कभी मोक्ष का। अत: इन चारों पुरुषार्थों का एक साथ विचार हो।

कोई बाप यदि बेटे की पढ़ाई की चिंता नहीं करता तो हम कहेंगे, 'तू इसे पीटता है, उसकी पढ़ाई की चिंता क्यों नहीं करता?'
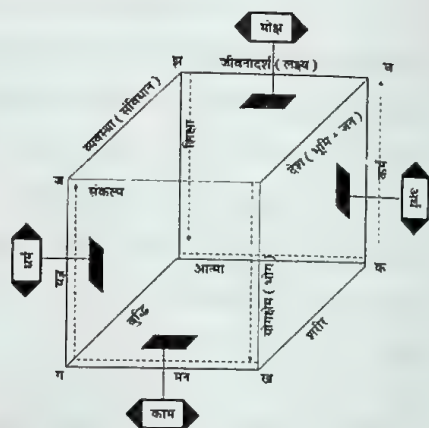
इसका अर्थ यह नहीं कि हमने बेटे का पक्ष लिया। जब बेटा ग़लती करता है तो हम उसे डाँटते हैं। इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर जब एक बात पर ज़ोर दिया जाए तो इसका अर्थ यह नहीं कि बाक़ी बातों का विचार नहीं करते। कभी व्यक्ति-स्वातंत्र्य की आवश्यकता है, कभी उसे संयमित करने के लिए नियंत्रण भी करना पड़ता है। यह पूर्णता का विचार अपने सामने रहता है। फिर भी यदि किसी ने तीसरे मोरचे पर आक्रमण कर दिया तो उसी मोरचे पर डट जाना पड़ता है। मुझसे कोई पूछे कि तुम्हारा क़ौन से वाद पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि मेरा षट्पदीवाद[1] पर विश्वास है। हम पूर्णता को मानते हैं। हम चारों मोरचों (दिशाओं) पर सतत जाग्रत् रहनेवाले हैं।

कई लोग पूछते हैं, 'संघ में राजनीति नहीं आती क्या?' हम कहते हैं, 'नहीं।' कोई कहता है, 'आपकी संस्था सामाजिक है?' हम कहते हैं, 'नहीं।' संघ न राजनीतिक पार्टी है न सामाजिक, पर इसमें राजनीति, समाजनीति सबकुछ है। तो हमारे जीवन में पूर्णता का विचार है। यानी सब चीज़ें हममें हैं, पर राजनीतिक पार्टी कहने से तो फिर शेष का विचार नहीं। इस प्रकार हम न व्यक्तिवादी हैं न समाजवादी, हम तो दोनों—व्यक्ति और समष्टि—का विचार करते हैं। हम संपूर्णता का विचार करके चलते हैं।

हम किसी एक वाद को नहीं मानते। हम तो पूर्णतावादी, एकात्मवादी, आत्मवादी, संघवादी हैं। उसमें भी चैतन्य को, एक जीवमान आत्मा को मानकर चलते हैं। हमने संघ नाम भी इसीलिए रखा। हिंदू समाज का संगठन करना यानी इसे चैतन्ययुक्त करना। इस प्रकार एकात्म जीवन का, एकात्म चैतन्य का विचार करते हैं। यह ध्यान में रखकर ही हम अपने कार्य की ओर देखें।

—पाञ्चजन्य, जून 5, 1964

□

1. 'षट्पदी' राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शारीरिक कार्यक्रम में एक पदविन्यास है, जिसमें सब दिशाओं में पैर व नज़र ले जाते हुए व्यक्ति छह क़दमों का यह विन्यास पूर्ण कर अपनी सिद्ध स्थिति में आ जाता है। इस बौद्धिक वर्ग में वर्णित 'एकात्म घन' भी छह फलकों वाला है (व्यष्टि + समष्टि + अर्थ + धर्म + काम + मोक्ष)।

अतिथि संपादकीय

53

एक नया युग आया है

कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज नाडार द्वारा मुख्यमंत्रियों और कांग्रेस सदस्यों की सर्वसम्मति सुनिश्चित करने पर कांग्रेस संसदीय दल ने श्री लाल बहादुर शास्त्री को अपना नेता चुन लिया है। इस पद के कई प्रत्याशी थे, परंतु कोई मुक़ाबला नहीं हुआ। मोरारजी देसाई को गंभीर प्रत्याशी माना जा रहा था। परंतु उन्होंने दल की और नेतृत्व की इच्छा का सम्मान करते हुए नाम वापस ले लिया। इस प्रकार सर्वसम्मति से शास्त्रीजी को निर्विरोध चुना गया। अभी यह कहना कठिन है कि कांग्रेस की एकता का यह रूप असली है या नक़ली, स्थायी है अथवा अस्थायी। यह क़ीमत चुकाकर प्राप्त किया गया है अथवा कांग्रेसियों ने यह महसूस कर लिया है कि अपने उस महान् नेता के निधन के पश्चात् जिसकी सरपरस्ती में वे आत्मतुष्ट और झगड़ालू बने रह सकते थे, अब उन्हें एक होने की ज़रूरत है। कारण कुछ भी हो, मैं इसके लिए कांग्रेसजनों को बधाई देता हूँ, क्योंकि यद्यपि चुनाव प्रतियोगिता प्रजातंत्र में स्वाभाविक है, परंतु देश की वर्तमान मनोदशा के अनुकूल न होती। हमें देश में भविष्य की राजनीतिक प्रवृत्तियों के विषय में सावधान रहने की ज़रूरत है। हमें फ़ैसला सुनाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए।

मैं श्री लालबहादुर शास्त्री को उस उच्च पद पर चुने जाने के लिए बधाई देता हूँ, जो लंबे समय से अनुमानों और अटकलों का शिकार रहा है और जिसका कोई उत्तर न था। यद्यपि इसने नेहरू का क़द बहुत बढ़ाया परंतु अनुचित ढंग से इसकी गरिमा का ह्रास हुआ। इसने लोगों में दीखनेवाले सनकीपन को भी जन्म दिया। इसलिए शास्त्रीजी पर यह दायित्व आया है कि वह हमारे युग के अंतिम करिश्माई नेता का स्थान लें। परंतु इससे उनकी ज़िम्मेदारियाँ और कठिनाइयाँ बढ़ गई हैं। जहाँ एक ओर उन्हें नेहरू की तरह अपने साथियों की अबाधित निष्ठा प्राप्त नहीं है, वहीं उन पर नेहरूजी के छोड़े

अधूरे कामों का पूरा करने और उनके समय में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का ऐसा दायित्व आया है, जो बड़े-बड़ों को हताश कर सकता है। हमें आशा करनी चाहिए कि वे इस चुनौती का सामना करने के लिए इतने ऊँचे उठ सकेंगे।

पंडित नेहरू के साथ एक युग का अंत हो गया है। लाल बहादुर शास्त्री के साथ नए युग का आगमन होना ही चाहिए। नए प्रधानमंत्री को नया होना ही होगा। इसका अर्थ पुराने प्रधानमंत्री की नीतियों पर दोषारोपण करना या फ़ैसला सुनाना नहीं है। हमें यह बहस छोड़ देनी चाहिए कि पंडित नेहरू क्या कर सकते थे या क्या कुछ सह सकते थे। हमें वर्तमान प्रधानमंत्री से वैसी आशा नहीं करनी चाहिए।

यदि शास्त्रीजी पूरी तरह नेहरू के चरण-चिह्नों पर चलना चाहेंगे तो वे असफल होंगे। उन्हें पंडित नेहरू की प्रतिकृति नहीं बनना चाहिए। इतने वर्षों तक वे सिपाही बने रहे। अब भाग्य ने उन्हें सेनापति बनाया है। उन्हें सही अर्थों में नेतृत्व सँभालना चाहिए और परंपरा को निभाने का लोभ त्याग देना चाहिए तथा इसे ही दिवंगत के प्रति निष्ठा नहीं मानना चाहिए। परंपरा पेषण की जगह नवाचार ही समय की माँग है। इसी से अनेक समस्याएँ सुलझेंगी। इसी से क्रांति आएगी और लोगों में व्याप्त हताशा तथा सनकीपन, जो इतना साफ़ झलकता है, समाप्त होगा।

हमारे भारत में प्रजातांत्रिक व्यवस्था है। पंडित नेहरू भी प्रजातांत्रिक थे। परंतु किसी-न-किसी कारण से यह धारणा देश में व्याप्त हो गई थी कि नेहरू का शासन एक व्यक्ति का शासन था। उनके अपने दल के लोग इस दृष्टिकोण के लिए सर्वाधिक ज़िम्मेदार थे। परंतु अब स्पष्ट है कि एक व्यक्ति का शासन नहीं हो सकता। हर व्यक्ति को अपना दायित्व समझते हुए अपनी बात दृढता से रखनी चाहिए। एक सामान्य सहमति और सामूहिक नेतृत्व का विकास होना चाहिए। परंतु इसके लिए कांग्रेसियों को सचेत होकर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का उदारीकरण करना होगा। यदि अभी तक वे भय के अधीन कार्य करते रहे तो अब उन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और लालच पर अपने दायित्व-बोध से अंकुश लगाना चाहिए। अब वे पंडित नेहरू के नाम की आड़ नहीं ले सकते। उन्हें स्वयं अपने कामों की ज़िम्मेदारी लेनी होगी। डाकू रत्नाकर को वाल्मीकि बनना होगा, अन्यथा उन्हें परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना होगा।

हम कठिन दौर से गुज़र रहे हैं। समस्याएँ अनेक हैं और परेशान करनेवाली हैं। यह सभी से पूरी क्षमता से प्रयास करने की माँग करता है। यदि विभिन्न राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करनेवाली राष्ट्रीय सरकार का गठन संभव न भी हो तो भी नई सरकार को इस बात की चिंता करनी पड़ेगी कि वह पूरे राष्ट्र के सहयोग और शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में लगा सके। यह तभी संभव है, यदि वह दलीय और वैयक्तिक सोच से ऊपर उठे। अभिमान और पूर्वग्रह इसमें बाधक नहीं होने चाहिए।

लंबे समय से लोग इस बात पर बहस करते आए हैं कि नेहरू के बाद कौन होगा? इसका उत्तर दिया जा चुका है। अब लोग पूछते हैं कि नेहरू के पश्चात् क्या? इस प्रश्न का भी सही उत्तर दिया जाना चाहिए। सत्ता परिवर्तन शांतिपूर्ण और भारतीय परंपराओं के अनुरूप हुआ है। परंतु हमें आत्मगौरव से आत्मतुष्ट नहीं होना चाहिए। दूसरा प्रश्न सचमुच कठिन है। इसके लिए हमें अपनी पूरी कुशलता, परिश्रम और प्रतिबद्धता को लगाने की ज़रूरत है। हमारी शुभेच्छा है कि नई सरकार में इन गुणों की कमी न रहेगी।

श्री शास्त्रीजी के लिए हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ हैं। हम उनके दिलो-दिमाग़ के गुणों और अच्छाइयों को पहचानते हैं, हम मानते हैं कि उनके सामने काम बहुत कठिन है और हम उनकी कठिनाइयों को भी पहचानते हैं। हम आशा और विश्वास करते हैं कि वे इस काम में सफल होंगे। जब कभी उपयुक्त व्यक्ति को चुनना कांग्रेस के लिए कठिन हुआ तो उसने उन्हें ही चुना। इस प्रकार एक-एक सीढ़ी चढ़कर वे इस उच्चतम कार्यकारी पद पर पहुँचे हैं। कांग्रेस संसदीय दल ने उनमें अपना विश्वास व्यक्त किया है, परंतु उन्हें जनता का विश्वास प्राप्त करना अभी शेष है, क्योंकि कांग्रेस अब पहले की तरह जनता के विश्वास का एकमात्र भंडार नहीं रह गई है। हम अपनी स्तुति को उस दिन के लिए सुरक्षित रखेंगे, जिस दिन हमें लगेगा कि वे सचमुच इसके पात्र बन चुके हैं।

हम प्रधानमंत्री को राष्ट्र को उन्नति के नए मार्ग पर अग्रसर करने के लिए शुभयात्रा कहते हैं। एक ज़िम्मेदार विपक्ष के रूप में हम सावधान और प्रतिसंवेदी बने रहेंगे। हम देश की सुरक्षा और एकता तथा लोगों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा किए जानेवाले किसी भी काम में सहयोग के लिए भी तैयार हैं। परंतु यदि हम हमारे मूलभूत जीवन मूल्यों और उन्हें सौंपी गई पवित्र ज़िम्मेदारियों की उपेक्षा करेंगे तो हम उन्हें कभी क्षमा नहीं करेंगे।

नेहरूजी की वसीयत

21 जून, 1954 को स्वर्गीय प्रधानमंत्री ने इलाहाबाद बैंक में अपनी अंतिम इच्छा और वसीयत जमा करवाई थी। इस सप्ताह उस वसीयत के कुछ अंश सार्वजनिक किए गए। हम कहना चाहेंगे कि उसे पढ़ना रोचक है। अनेक हिंदू है, जिनमें ब्रह्म समाजी और आर्य समाजी भी आते हैं, जो श्राद्ध के धर्मानुष्ठान को नहीं मानते। परंतु नेहरूजी शायद पहले नेता हैं, जिन्होंने अपनी वसीयत में इस अनुष्ठान को नकारने का आडंबर किया।

उन्होंने लिखा है, ''मैं यह स्पष्ट घोषणा करना चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु के पश्चात् कोई भी धार्मिक अनुष्ठान न किया जाए।'' उनकी वसीयत के अनुसार उनकी चिता पर वेद मंत्रों का उच्चारण भी नहीं होना चाहिए था, न ही उनके नाती को यज्ञोपवीत धारण

करना चाहिए था, जिसने उनकी अंतिम क्रिया करवाई।

नेहरूजी ने ठीक ही कहा कि शरीर की भस्म का एक हिस्सा प्रयाग में गंगा में बहा दिया जाए और साथ ही शीघ्र जोड़ दिया कि "मेरे लिए इसका कोई धार्मिक महत्त्व नहीं है।" संभवतः किसी को धर्म से इतना अधिक भयभीत नहीं होना चाहिए।

कुछ वर्ष पूर्व नेहरूजी ने कहा था कि वे न तो आस्तिक हैं, न नास्तिक हैं, वे तो मात्र प्रकृतिपूजक हैं। उन्होंने ठीक कहा था। परंतु तथ्य यह है कि हर एक प्रकृतिपूजक किसी सिद्धांत की नहीं, प्रकृति की पूजा करता है। चाहे वह गंगास्नान हो अथवा पितृपूजा, यह सब उस अदृश्य सत्ता के सुंदर आकारों को श्रद्धांजलि देना है। अंतर केवल इतना है कि आम आदमी इसे धर्म कहता है और नेहरूजी इसे काव्य कहते हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

यह अच्छा हुआ कि वसीयत के कुछ अंश शीघ्र प्रकाशित हो गए हैं। पंडित नेहरू जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की वसीयत को केवल निजी या वैयक्तिक बात नहीं माना जा सकता। हम जानते हैं कि नेहरू परिवार ने अपना सर्वस्व देश को दिया है। स्वाभाविक रूप से इसमें छोड़ी गई रकम बड़ी नहीं होगी। फिर भी हर व्यक्ति यह जानने का इच्छुक होगा कि पंडितजी उन व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए क्या छोड़कर गए हैं, जिनसे उन्हें प्यार था। श्रीमान केनेडी की वसीयत उनकी मृत्यु के तुरंत बाद प्रकाशित कर दी गई थी। हम आशा करते हैं कि नेहरूजी की वसीयत को भी लोगों तक पहुँचाने में देर नहीं होगी।

अत्यधिक प्रभावित

1 जून को मार्शल अयूब खाँ ने आकाशवाणी पर भाषण दिया। श्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा कि वह इससे अत्यधिक प्रभावित हुए। परंतु हमें कहना पड़ता है कि हम इससे बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए, न ज़्यादा व कम।

अयूब खाँ ने निस्संदेह कहा है, "हम भारत की दुःख की घड़ी में उनको शुभकामना देते हैं। हम सीमापार के भारत के लोगों के लिए मैत्री का हाथ बढ़ाते हैं। अब शायद समय आ गया है, विशेषकर नए नेतृत्व के लिए, जब हम दोनों देशों के संबंधों पर नए सिरे से विचार कर सकते हैं। जहाँ तक हमारा प्रश्न है, हम भारत की ओर से भारत-पाक संबंध सुधारने के लिए हर क़दम का स्वागत करेंगे।" परंतु हमें विश्वास बिल्कुल नहीं कि वे दुःख में हमारा भला चाहते हैं। जब चीन ने भारत पर हमला किया, तब ये ही लोग ख़ुशियाँ मना रहे थे। 'डान' के संपादकीय को भी जो नेहरू की मृत्यु पर लिखा गया, अधिक से अधिक कृत्रिम कहा जा सकता है।

संक्षेप में कहें तो अयूब का पक्ष यह है कि अब 'हृदय परिवर्तन' होना चाहिए और

भारत को 'कश्मीर जैसे छोटे-मोटे भू -भाग की चिंता न करते हुए उसे पाकिस्तान को सौंप देना चाहिए।' वे यहीं पर नहीं रुके। वे हमें विद्रोह की धमकी देते हैं, जब यह कहते हैं कि ''कश्मीर के लोग जो उचित ही आक्रोशित हैं, अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं करेंगे।''

जहाँ तक उनका प्रश्न है, वह भारत के साथ संघ बनाने को भी तैयार नहीं हैं। वास्तव में वे 'चित्त भी मेरी और पट भी मेरी' चाहते हैं। देश के नागरिक उन्हें ख़ुश करने को तैयार नहीं हैं। शास्त्रीजी जितनी जल्दी यह बातें उन्हें और शेख़ अब्दुल्ला को समझा देंगे, उतना सभी के लिए अच्छा रहेगा।

—ऑर्गनाइज़र, जून 8, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

54

ए.पी. जैन उप समिति की रिपोर्ट हौवा फिर खड़ा किया गया

कांग्रेस संसदीय समिति ने 1961 में सांप्रदायिकता पर प्रस्तुत ए.पी. जैन उप समिति की रिपोर्ट को जारी कर दिया। रिपोर्ट के क्रियात्मक भाग में सुझाव दिया गया है कि सांप्रदायिक दलों पर प्रतिबंध लगाया जाए और इसके लिए आवश्यक संवैधानिक संशोधन भी किया जाए। इन सांप्रदायिक दलों में जनसंघ का नाम आने से किसी को हैरानी नहीं होनी चाहिए। विशेषकर जो कांग्रेस की विचारधारा और कुप्रचार से परिचित हैं।

यदि इस समिति के सुझावों पर अमल किया जाता है तो इसके पंथनिरपेक्ष राष्ट्रवाद के लिए दूरगामी एवं भयानक परिणाम होंगे, इसलिए उन प्रवृत्तियों और शक्तियों की अनदेखी करना जिन्होंने यह रिपोर्ट तैयार करवाई है, आत्मघाती होगा। हम इस पर आत्मतुष्ट नहीं रह सकते। लोग जानना चाहते हैं कि जिस रिपोर्ट को तीन वर्ष पूर्व पार्टी की कार्यकारिणी ने ठुकरा दिया था, आज ऐसा क्या घटित हुआ है कि उसे प्रकाशित करना आवश्यक हो गया है। देश के किसी भी भाग में सांप्रदायिक विस्फोट नहीं हुआ है। सरकार के मत से ही बिहार, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में फैली अशांति, पाकिस्तानी मुसलमानों के दुष्कर्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुई थी। यह निश्चित नहीं हो सका है कि कोई वैध गठित राजनीतिक दल इस गड़बड़ी के पीछे था। ये दंगे क्षेत्र के बड़े औद्योगिक शहरों तक केंद्रित थे। इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके पीछे पीकिंग और पाकिस्तान समर्थक उत्तेजक तत्त्वों का हाथ हो सकता है। परंतु जहाँ कहीं भी, जब कभी दंगे अथवा अशांति होती है, वहाँ क़ानून-व्यवस्था की समस्या खड़ी होती है। यदि इनका समाधान ऐसे संक्षिप्त और सरल ढंग से राजनीतिक अभिरुचियों और अनुमानों के अनुसार खोजा जाएगा तो तीर निशाने पर नहीं लगेगा।

आप जबलपुर रिपोर्ट क्यों छुपा रहे हैं?

कुछ कांग्रेसी और साम्यवादियों की यह आदत रही है कि जहाँ कहीं भी सांप्रदायिक दंगे हों तो दोष जनसंघ पर मढ़ दें। जनसंघ को सदा बलि का बकरा बनाया जाता है। परंतु आज तक कहीं यह सिद्ध नहीं हो सका है कि जनसंघ या इसकी कोई शाखा अथवा इसके कार्यकर्ताओं का ऐसे किसी काम में हाथ था। जब जबलपुर और उसके आसपास दंगे हुए तो दोष जनसंघ पर मढ़ा गया। वहाँ न्यायिक जाँच हो चुकी है। जनसंघ की लगातार माँग के बावजूद सरकार ने रिपोर्ट को प्रकाशित नहीं किया है। उन्हें इस बात का भय है कि इसके प्रकाशन से उन्होंने जो जनसंघ के विरुद्ध घृणा, झूठे प्रचार और दोषारोपण का दुष्प्रचार गोएबल्स के मार्ग पर चलते हुए परिश्रमपूर्वक किया है, उसका आधार ही खिसक जाएगा।

हैरानी की बात तो यह है कि वे जो कि सांप्रदायिकता के सिवा कुछ सोच नहीं सकते, जनसंघ पर सांप्रदायिक होने का आरोप लगाएँ। कांग्रेस का पूरा इतिहास सांप्रदायिक तत्त्वों के तुष्टीकरण और समझौते के उदाहरणों से भरा पड़ा है। यहाँ तक कि आज़ादी के पश्चात् भी उन्होंने यह आदत छोड़ी नहीं है। संविधान ने भले ही सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया हो, परंतु कांग्रेस ने व्यवहार में सदा संविधान का उल्लंघन किया है। सभी चुनावों, मंत्रियों और गवर्नरों के चयन में योग्यता के स्थान पर संप्रदाय को अधिमान दिया गया है। यही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कार्यप्रणाली है, जिसने सांप्रदायिकता को जीवित भी रखा और यहाँ तक कि पुष्ट भी किया। सरकार की कश्मीर नीति और अब उनकी गोवा नीति भी मुख्यत: सांप्रदायिक बातों से प्रभावित रही है। जनसंघ ने सदा ही पाकिस्तान को सिर चढ़ाने की नीति का विरोध किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कांग्रेसियों की नज़रों में जनसंघ का यह दृष्टिकोण सांप्रदायिक है। एक बार एक प्रमुख कांग्रेसी नेता ने कहा था कि आप आक्रामक ढंग से मुसलमान समर्थक हुए बिना राष्ट्रवादी नहीं बन सकते। हमें भय है कि हम ऐसे नहीं हो सकते। हम न तो आक्रामक ढंग से मुसलमान समर्थक हैं न विरोधी हैं। हमारा मानना है कि किसी व्यक्ति का धर्म उसके प्रति हमारे राजनीतिक, नागरिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रभावित करने में सक्षम नहीं होना चाहिए।

इन्हीं दिनों संभलपुर ज़िले में एक व्यक्ति डी.आई.आर. के अधीन पकड़ा गया। उस पर लगाए आरोपों में एक यह भी था कि उसने सांप्रदायिक नारे लगाए, यथा 'भारत ज़िंदाबाद ! पाकिस्तान मुर्दाबाद!' यदि हिंदुस्तान ज़िंदाबाद! कहना सांप्रदायिक है तो हर राष्ट्रवादी भारतीय सांप्रदायिक है। और वे 'पाकिस्तान मुर्दाबाद!' का विरोध करते हैं। यही कारण है कि जो भारत में पाकिस्तान ज़िंदाबाद, के नारे लगाते हैं, उन पर कोई कार्रवाई नहीं होती। यह देशद्रोह है। हमें न केवल इसे सहने के लिए कहा जा रहा है

बल्कि इसकी प्रशंसा करने को भी कहा जाता है। ठीक है। आप इसे किसी भी नाम से पुकारें, हम ऐसी देशद्रोहपूर्ण गतिविधियों के विरुद्ध खड़े होना अपना राष्ट्रीय दायित्व समझते हैं और हम कठिनाई का सामना करते हुए ऐसा करते रहेंगे।

सहिष्णुता और पंथनिरपेक्षता, हिंदू परंपराएँ हैं

जनसंघ ने भारत के किसी नागरिक समूह के लिए विशेषाधिकारों की माँग नहीं की है। हम सहिष्णुता और पंथनिरपेक्षता में इसलिए ही विश्वास नहीं करते, क्योंकि यह संविधान में अंकित है बल्कि इसलिए भी करते हैं, क्योंकि यह हमारी महान् विरासत है। इसके बिना हम हिंदू ही नहीं रहेंगे, हिंदू शब्द का प्रयोग मैं संकीर्ण धार्मिक अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, जैसा कि प्राय: होने लगा है बल्कि व्यापक राष्ट्रीय अर्थ में कर रहा हूँ।

अपने धर्म को मानते हुए भी मुसलमान इस देश का अभिन्न अंग हैं। परंतु हम निश्चित रूप से इतना अवश्य चाहते हैं कि वह उस द्विराष्ट्रवाद के विचार से मुक्त हो जाएँ जिसके प्रभाव में वे मुसलिम लीग के कारण आ गए थे और आज भी पाकिस्तानी शासकों के कपटपूर्ण और द्वेषपूर्ण कुप्रचार से प्रभावित होते रहते हैं। हमें पाकिस्तान से प्रतिबद्धता और इसलाम में आस्था में अंतर करना चाहिए। यह हमारा दायित्व है कि हम अपने मुसलमान भाइयों को यह अंतर सिखाएँ। उन्हें अपने धर्म का पालन करते हुए भारत के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए।

कम्युनिस्टों की दुष्टतापूर्ण चाल

मैं नहीं जानता कि इस रिपोर्ट को जारी करते हुए कांग्रेस संसदीय दल के महासचिव ने सोच-विचार कर यह काम किया है अथवा वे कम्युनिस्टों और अपने दल में बैठे उनके समर्थकों की चाल के शिकार हुए हैं। कांग्रेस के लोग देश भर में राष्ट्रवादी ताक़तों के संगठित होने से भयभीत हैं। उन्हें लगता है कि यदि राष्ट्रवादी एकजुट हो गए तो वे कहीं के नहीं रहेंगे। यही कारण है कि वे सांप्रदायिकता का हौवा बनाए रखना चाहते हैं। इनके सहयात्रियों ने एक ओर इस मुद्दे को कांग्रेस में उठाकर तीन वर्ष पूर्व यह रिपोर्ट तैयार करवाई और इसे अपने समाचार-पत्रों यथा न्यू एज, लिंक आदि में प्रकाशित किया। वे अपने लेखों में ग़लत-सलत बयानबाज़ी और तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते आए हैं कि आर.एस.एस. एक बड़ी आक्रामक शक्ति बन रहा है। यह सब संयोगमात्र नहीं हो सकता। जहाँ एक ओर कांग्रेस परछाईं का पीछा करने में जुटी है, वहीं साम्यवादी मूल्यवृद्धि पर कार्रवाई की योजना बना रहे हैं। पीकिंग समर्थक खुले रूप में साम्यवादी चीन के समर्थन में कार्यरत हैं। वे अपनी आतिशबाज़ी चलाने का पूर्वाभ्यास विजयवाड़ा तथा अन्य अनेक स्थानों पर कर चुके हैं। वे पुलिस को अपनी

गंध से दूर ले जाना चाहते हैं। क्या राष्ट्रवादी उनकी चालाकियों के शिकार होंगे?

जहाँ तक जनसंघ का प्रश्न है, हम अपनी नीतियों और कार्यक्रमों पर अडिग डटे हैं। हमें किसी से द्वेष नहीं है। परंतु हम किसी धमकी के आगे झुकने को तैयार नहीं हैं। हमें प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद में विश्वास है। हम शासक दल का कोई एहसान नहीं चाहते। हम लोगों द्वारा दी सहायता की अपनी शक्ति पर जीवित हैं, न कि किसी व्यक्ति अथवा वर्ग की कृपा पर। यदि कांग्रेस जनसंघ की बढ़ती ताक़त को चुनौती के रूप में देखकर भयभीत है या फिर किसी भ्रामक धारणा के आधार पर हमें हमारे मूलभूत प्रजातांत्रिक अधिकारों से वंचित करना चाहती है तो हताशा ही उसके हाथ लगेगी।

मुझे नहीं लगता कि आज कांग्रेस की कमान ऐसे दुस्साहसी लोगों के हाथ में है, जो वहाँ क़दम रखने का साहस करेंगे, जहाँ जाने से उनके पूर्ववर्ती घबराते थे। यदि वे विघटनकारियों की चालों के शिकार हो जाते हैं तो यह देश के लिए बुरा दिन होगा। परंतु राष्ट्र जीवत रहने और अपनी बात मनवाने को तत्पर है। वह ऐसी किसी बात को स्वीकार नहीं करेगा, जो कि प्रजातांत्रिक मूल्यों का दमन करती हो। राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र जीवित रहेंगे और यह शरारतपूर्ण ढंग से तैयार की गई तथा बिना सोचे-समझे प्रकाशित की गई रिपोर्ट यदि कूड़ेदान में नहीं फेंकी जाएगी तो अभिलेखागार में दफना दी जाएगी।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 13, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

55

कश्मीर, जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी

यह आलेख 'पोलिटिकल डायरी' (पुस्तक), 1971 में पुनः प्रकाशित हुआ।

श्री टी.टी. कृष्णामचारी[1] ने संपूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य के वैधानिक रूप से भारत का अंग होने की दृढ घोषणा करते हुए भी कश्मीर-प्रश्न पर पाकिस्तान के साथ वार्त्ता करने की सरकार की इच्छा व्यक्त की है। जब तक पाकिस्तान उस राज्य पर हमारा वैधानिक अधिकार मान्य करने को तैयार नहीं है, उस प्रश्न पर भारत और पाकिस्तान के बीच वार्त्ता का कोई सामान्य आधार नहीं है। समय-समय पर भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय दबावों के सामने झुकती रही है और कश्मीर के बारे में पाकिस्तान से वार्त्ता करती रही है। इससे हमारे मूलभूत रुख़ के बारे में उलझन पैदा हुई है और उन तत्त्वों को प्रोत्साहन मिला है, जो भारत के और अधिक विभाजन के लिए षड्यंत्र कर रहे हैं। इससे राज्य के विकास में भी बाधा पहुँची है। भारत सरकार को सदा के लिए एक बार यह घोषित कर देना चाहिए कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति के साथ कश्मीर पर वार्त्ता नहीं करेगी, जो कश्मीर के भारत में विलय को अंतिम और अखंडनीय मानने से इनकार करता है। यह भी आवश्यक है कि संविधान की धारा 370 को समाप्त कर दिया जाए, ताकि उस राज्य को भारतीय संघ के अंतर्गत समान स्तर मिल सके और कश्मीर में निवास करनेवाले भारतीय नागरिक हमारे संविधान के अंतर्गत गारंटी और सुविधाओं के बारे में आश्वस्त हो सकें। इससे राज्य के भविष्य के बारे में सारी

---

1. टी.टी. कृष्णामचारी 1956 में देश के वित्त मंत्री बने। 1957-58 में हुए मुंधरा घोटाले में लिप्त पाए जाने के कारण इन्हें 18 फरवरी, 1958 को नेहरू कैबिनेट से इस्तीफा देना पड़ा था। 1964 में इन्होंने दुबारा वित्त मंत्रालय का प्रभार सँभाला, जो इनके पास 1966 तक रहा।

अटकलबाज़ियों तथा पतंगबाज़ियों की समाप्ति हो जाएगी।

भारत में ऐसे लोग भी हैं, जो समस्या के विभिन्न हलों की वकालत कर रहे हैं, जिनमें कश्मीर के भारत से अलग होने की बात भी सम्मिलित है। भारत की एकता और अखंडता के हित में यह आवश्यक हो गया है कि इस प्रकार के प्रचार को अविलंब रोक दिया जाए। कश्मीर को संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत रख देने का श्री राजाजी[2] का सुझाव भी ख़तरनाक है। हम इस सुंदर घाटी तथा अपने यौद्धिक महत्त्व के क्षेत्र को अंतरराष्ट्रीय संघर्षों का अखाड़ा बनाना नहीं चाहते। किसी भी परिस्थिति में कश्मीर को दूसरा 'कांगो' या 'लाओस' नहीं बनने दिया जा सकता।

बताया जाता है कि स्वतंत्र पार्टी के महामंत्री श्री एम.आर. मसानी[3] ने अभी कुछ ही दिनों पूर्व हैदराबाद में कहा है कि उनकी पार्टी जनसंघ से तब तक कोई संबंध नहीं रखेगी, जब तक वह पाकिस्तान और कश्मीर के बारे में अपनी नीति में परिवर्तन नहीं करता। श्री मसानी के प्रति हम इसके लिए कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इतने स्पष्ट रूप में अपने मन की बात प्रकट कर दी है। इससे हमें चुनाव-संबंधी वचनबद्धता से मुक्ति मिल गई है, जो तब से ही हमारे लिए परेशानी का कारण बनी हुई है, जब से स्वतंत्र पार्टी के नेताओं ने कश्मीर और पाकिस्तान के बारे में अपना वर्तमान रुख़ अपना रखा है। वस्तुतः हमें पहले यह समझाया गया था कि श्री राजगोपालाचारी और श्री मसानी द्वारा अभिव्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत विचार हैं और वे स्वतंत्र पार्टी के विचार नहीं हैं। इसके विपरीत पार्टी के अधिकांश सदस्यों का इस प्रश्न पर वही मत है, जो जनसंघ का है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब स्वतंत्र पार्टी के बहुमत को राजाजी और मसानी द्वारा घोषित नीति को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया है। इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक है कि जनसंघ उन शक्तियों का साथ नहीं दे सकता, जो एक आक्रामक को भारतीय क्षेत्र का अपमानजनक समर्पण कर देने की पक्षपाती हैं।

लोग पूछते हैं कि कौन सा संकट बड़ा है—चीन का या पाकिस्तान का? यह तो उसी प्रकार का प्रश्न है कि प्लेग बुरा रोग है या यक्षमा? फिर भी एक अंतर है। चीन भारत से शक्तिशाली है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारत पाकिस्तान की अपेक्षा शक्तिशाली है। दूसरी ओर यह भी बात है कि यदि चीन भारत पर आक्रमण करता है तो पश्चिमी देश हमारी सहायता के लिए दौड़ेंगे, किंतु यदि पाकिस्तान ने हम पर आक्रमण किया तो कोई हमारी सहायता नहीं करेगा।

---

2. श्री राजाजी से तात्पर्य स्वतंत्र पार्टी के नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से है।
3. मिनोचेर रुस्तम मसानी 'मीनू मसानी' (1905-1998) ने राजाजी के साथ वर्ष 1959 में स्वतंत्र पार्टी का गठन किया। ये दूसरे, तीसरे तथा चौथे लोकसभा चुनावों में राजकोट से सांसद चुने गए थे।

मूल्यवृद्धि पर नियंत्रण

गत दशाब्दी में मूल्यों में सतत वृद्धि होती रही है। अब यह ऐसे नाज़ुक स्तर पर पहुँच चुकी है कि यदि प्रभावकारी उपाय नहीं किए जाते तो आर्थिक और राजनीतिक, दोनों दृष्टियों से इसके घातक परिणाम होंगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सरकार अभी भी सारंगी बजा रही है। वह किंकर्तव्यविमूढ़ है और आगा-पीछा कर रही है। सरकारी वक्तव्यों से न तो स्थिति के बारे में सही जानकारी प्रकट होती है, न वर्तमान दु:स्थिति के कारणों का उचित विश्लेषण प्राप्त होता है और न स्थिति को ठीक करने की दृढ इच्छा ही प्रकट होती है।

स्थिति को सुधारने के लिए दीर्घकालिक और अल्पकालिक दोनों प्रकार की आवश्यकता है। मूल्यवृद्धि का मुख्य कारण उत्पादन में कमी और अपने बढ़ते जा रहे अनुत्पादक व्यय की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा नए-नए ऋणों का निर्माण किए जाने के कारण रुपए के मूल्य में गिरावट है। न केवल चतुर्थ योजना का आकल्पन भिन्न रूप में होना चाहिए, अपितु इन त्रुटियों को दूर करने के लिए तृतीय योजना को भी पुनर्रूप दिया जाना चाहिए। सरकारी व्यय में भारी कटौती की जानी चाहिए और सभी परिहार्य योजनाओं को स्थगित कर देना चाहिए। योजना की प्राथमिकता में परिवर्तन किया जाना चाहिए और आंतरिक उत्पादन बढ़ाकर तथा साथ ही आयात के द्वारा दोनों उपायों से उपभोक्ता सामान की पूर्ति में वृद्धि के लिए अविलंब प्रयत्न प्रारंभ कर देना चाहिए।

सरकार को खाद्यान्न-व्यापार के राष्ट्रीयकरण एवं एकाधिकार की कल्पना का परित्याग कर देना चाहिए। इसके स्थान पर, उसे एक बड़े व्यापारी की भाँति, आंशिक रूप में बाज़ार में उतरना चाहिए। उसे खाद्यान्न के संग्रह और वितरण के लिए देश भर में अपने अभिकरण (एजेंसी) भी स्थापित करने चाहिए। यदि वह कुल व्यापार के केवल दस प्रतिशत की भी व्यवस्था कर सके तो उससे प्रशासन को व्यापारिक गतिविधियों और मूल्यों को नियमित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लाभ की स्थिति प्राप्त होगी। सरकार को किसानों के साथ सीधे व्यापारिक संविदा (वायदा सौदा) करनी चाहिए। इस प्रकार उनको दी गई सारी सहायता उत्पादन से जुड़ जाएगी।

सरकारी तथा संगठित निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के लिए नियोक्ता (मालिकों) द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त उचित मूल्य की दुकानें खोली जानी चाहिए। यह मार्ग महँगाई भत्ते में वृद्धि करने की अपेक्षा अच्छा है, क्योंकि महँगाई भत्ते में वृद्धि का प्रभाव मुद्रा-स्फीतिकारक होता है, जिससे वह अतिरिक्त आय निष्फल हो जाती है।

जबकि वर्तमान स्थिति को युद्ध-स्तर पर सँभालना होगा, सरकार को इस बात की पूरी सतर्कता बरतनी होगी कि समाजद्रोही तत्त्व या ऐसे तत्त्व जो अपने स्वार्थ साधन

के लिए अव्यवस्था उत्पन्न करना चाहते हैं, इससे स्वार्थसाधन न कर सकें। अनाज की दुकानों की लूट किसी भी स्थिति में सहन नहीं की जानी चाहिए। प्रत्येक ज़िले में और उच्च स्तर पर सर्वदलीय समितियाँ गठित की जानी चाहिए, ताकि इस समस्या को निष्पक्ष ढंग से सँभाला जा सके।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 20, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

56

भारत सरकार ने बर्मा में बसे भारतीयों को हताश किया

जहाँ एक ओर कोई भी बर्मा सरकार के इस अधिकार पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकता कि वह अपने नागरिकों के लिए उपयुक्त आर्थिक व्यवस्था का चुनाव करे, वहीं हम निश्चित रूप से यह माँग कर सकते हैं कि उससे प्रभावित उन बर्मी नागरिकों को, जो भारतीय हैं, उचित मुआवज़ा और सहायता दी जाए क्योंकि उनकी चिंता करना हमारा अधिकार है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस बारे में भारत की नीति पहले तो अत्यधिक उपेक्षा और उदासनीता की रही और बाद में कमज़ोरी और ढुलमुलपन की।

यह ठीक है कि हमारे बर्मा के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध हैं और हम उन्हें बनाए रखने के लिए सबकुछ करने को तैयार हैं। इसलिए यह भारत और बर्मी सरकार के लिए आवश्यक है कि इन नीतिगत फ़ैसलों से दोनों देशों के युगों पुराने संबंधों पर पड़नेवाले संभावित दबावों को कम करें, विशेषकर इन निर्णयों की क्रियान्वयन प्रक्रिया को देखें। यह हो सकता है कि बर्मा में हुए ज़ोरदार विरोध की गूँज भारत में न सुनाई पड़े। परंतु अब जब हज़ारों भारतीय परिवार वहाँ से उजड़कर भारत के विभिन्न भागों में जाएँगे तो उनकी दुःख भरी कथाएँ यदि और कुछ नहीं तो पीड़ित होने का भाव ही जगाएँगी।

बर्मी सरकार के निष्ठुर उपायों ने वहाँ बसे भारतीय मूल के लोगों के मन में भय और अनिश्चितता का भाव भर दिया है। ये लोग उस समय भारत से जाकर बर्मा में बसे जब बर्मा भारत का एक प्रांत था। वे वहाँ दशकों से रह रहे हैं। जब 1937 में बर्मा भारत से अलग हो गया[1] तो स्वाभाविक रूप से वे बर्मा के नागरिक हो गए। बर्मा के आज़ाद

1. तृतीय आंग्ल-बर्मी युद्ध (1885) के बाद कोनबौंग राजवंश द्वारा शासित स्वतंत्र बर्मा ने अपनी प्रभुसत्ता खो दी और इसपर ब्रिटिश राजशाही का अधिकार हो गया था। साथ ही बर्मा भारत के एक प्रदेश के रूप में ब्रिटिश राज के अंतर्गत आ गया था। सन् 1937 से ब्रिटिश लोग बर्मा को भारत से अलग करके उस पर एक अलग उपनिवेश के रूप में शासन करने लगे। बर्मा ने 1948 में एक गणतंत्र के रूप में स्वतंत्रता प्राप्त की।

होने पर उन्होंने बर्मा की नागरिकता ले ली। सिवाय इसके कि कभी उनके पूर्वज भारत के किसी भाग से वहाँ जाकर बसे थे, उनका भारत से अन्य कोई संबंध नहीं है। उनका राजनीतिक, आर्थिक यहाँ तक कि सामाजिक अंतर्संबंध भी बर्मी है। उनमें से अनेक, अन्य भारतीय नागरिकों के विपरीत जो बर्मा में बसे हैं, व्यापारी अथवा सरकारी कर्मचारी नहीं हैं। वे किसान अथवा बाग़ान मज़दूर हैं। वे वैसे ही धरतीपुत्र हैं, जैसा कि अन्य कोई बर्मावासी। अभी तक बर्मी सरकार ने उनके हितों को विपरीत ढंग से प्रभावित करनेवाला कोई क़दम नहीं उठाया है परंतु बर्मा में बसे भारतीय मूल के बर्मी नागरिकों को सहायता न देना निश्चय ही वहाँ के प्रशासन के भेदभावपूर्ण रवैये को दरशाता है। यदि भयभीत होकर ये लोग पलायन करने लगेंगे तो बड़ा संकट पैदा होगा। क्योंकि वे हमारे नागरिक नहीं हैं। इसलिए भारत सरकार उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहेगी। उस समय उन्हें मना करना भी कठिन होगा। इसलिए भारत सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह इस मामले को बर्मा सरकार के साथ उठाए और इसका समाधान निकाले।

जहाँ तक रंगून स्थित हमारे दूतावास का प्रश्न है, उसके बारे में आम धारणा है कि वह अपने नागरिकों का साथ देने में बुरी तरह असफल रहा है बल्कि उसने उन्हें निराश किया है। बर्मा सरकार द्वारा उच्च मूल्य की मुद्रा के विमुद्रीकरण और सारे व्यापार तथा व्यवसायों पर अधिकार कर लेने पर भारतीय दूतावास ने भारत आने के इच्छुक लोगों से कहा कि वे अपने आभूषण और सोने को उनके पास जमा करवा दें। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि इसके बारे में बर्मी अधिकारियों को कोई सूचना नहीं दी जाएगी जो कि संदिग्ध लोगों की खोज में लगे हैं। परंतु जब बर्मी सरकार ने दूतावास के इस कार्य का विरोध किया तो श्री गुनदेविया ने घुटने टेक दिए। दूतावास ने न केवल धरोहर रखना बंद कर दिया बल्कि जो स्वर्ण आभूषण जमा थे, उन्हें सूचनाओं सहित बर्मी सरकार को सौंप दिया। यह सारा प्रकरण भारतीय दूतावास द्वारा भारतीय नागरिकों द्वारा उसमें जताए विश्वास के प्रति विश्वासघात को जताता है।

गुनदेविया और बर्मा सरकार के बीच हुए समझौते में बर्मा सरकार ने माना था कि जो नागरिक सदा के लिए बर्मा छोड़कर जाना चाहते हैं, उन भारतीयों को भारत जाने के लिए सरकार सारी सुविधाएँ प्रदान करेगी। परंतु इस आश्वासन को पूरा नहीं किया जा रहा है। अभी भी बर्मा छोड़नेवाले नागरिकों को 75 हज़ार रुपए और एक तोला सोना से अधिक लाने नहीं दिया जा रहा। इस प्रकार भारत में भेजे जा रहे सभी लोग ग़रीब हैं।

भारत सरकार उन्हें शरणार्थी नहीं मानती है, जिनका पुनर्वास किया जाना है। संभवत: अपनी ज़िम्मेदारी से बचने के लिए वह भारत आने के इच्छुक उन्हीं लोगों को प्रवेश-पत्र जारी कर रही है, जिनका कोई व्यक्ति इस देश में अपने शरणार्थियों की देखरेख का ज़िम्मा ले सकता है। कुछ लोग हैं, जिनके संबंधी उनके ख़र्चे का ज़िम्मा ले

सकते हैं, परंतु हज़ारों ऐसे हैं, जिनका यहाँ कोई नहीं है। ऐसी स्थिति में यह सरकार और लोगों का दायित्व बन जाता है कि वे उनके पुनर्वास की व्यवस्था करें। दोनों सरकारों के बीच मुआवज़े पर भी बातचीत होनी है। इस बीच तदर्थ अनुदान इन शरणार्थियों को दिया जाना चाहिए, ताकि वे अपनी जीवनचर्या पुनः प्रारंभ कर सकें। यह लोग पुनर्वास विभाग की देखरेख में दिए जाने चाहिए। उन्हें वे सारी सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जो पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को दी जाती हैं। इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिए अच्छा होगा कि भारतीय सरकार बर्मा सरकार के साथ कोई औपचारिक समझौता करे। इससे परेशानियाँ कम होंगी और दोनों देशों से संबंध सुधरेंगे।

मद्रास और देश के अन्य भागों में जनसंघ की इकाइयों ने इन शरणार्थियों के लिए सहायता शिविर खोलने का निर्णय लिया है। उन्हें ऐसे काम का श्रीगणेश किया है, जिसके लिए तत्काल कार्रवाई और अत्यधिक संसाधनों की आवश्यकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उन्हें इस कार्य में पूरे देश में नागरिकों से उदारतापूर्वक सहयोग मिलेगा, ताकि इन देशवासियों के प्रति भी हम अपना दायित्व निभा सकें।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 27, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

57

शास्त्री-अयूब मिलन अपमानजनक

राष्ट्रमंडल सम्मेलन में भाग लेनेवाले भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने जो अदूरदर्शी एवं देश के लिए असम्मानजनक निर्णय किए हैं, उनसे प्रत्येक देशवासी क्षुब्ध है। राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के पश्चात् प्रसारित संयुक्त विज्ञप्ति में भारत-पाक विवादों का उल्लेख दो देशों के आपसी झगड़े में न पड़ने की ऐसे सम्मेलनों की परंपरा के प्रतिकूल है तथा इससे भारत और पाकिस्तान के बीच की गुत्थी और उलझ गई है। इस प्रकार की आशा और सद्भावना की ऊपरी अभिव्यक्ति की अंग्रेज़ों वाली पुरानी नीति से हम भारतवासी भलीभाँति परिचित हैं। वे सदा ऊपर से सद्भावना और निष्पक्षता का दिखावा और भीतर से सदैव मुसलिम लीग को बढ़ावा देते रहे हैं। आदतें बड़ी कठिनाई से बदला करती हैं। इस कारण हमें इस बात पर आश्चर्य नहीं है कि इंग्लैंड और उसके संगी-साथी मर्यादाओं की अवहेलना करके भी पाकिस्तान को सहायता कर उसे प्रसन्न करने का यत्न कर रहे हैं।

पश्चिमी राष्ट्रों का रवैया सबसे बड़ी बाधा

वास्तव में पश्चिमी राष्ट्रों का पाकिस्तान को अनुचित समर्थन और प्रोत्साहन ही दोनों देशों के झगड़ों के निपटारे में सबसे बड़ी बाधा रही है। इसी कारण पाकिस्तान अधिकाधिक दुराग्रही हो गया। चाहे ऊपर से कुछ भी कहा जाता रहे, परंतु वास्तव में पश्चिमी राष्ट्र भारत और पाकिस्तान के बीच झगड़ा बनाए रखना चाहते हैं। इसी कारण इस संबंध में वह निर्लेप न रहकर, भारत और पाकिस्तान को अपने झगड़े सुलझाने के लिए अलग नहीं छोड़ते। एक बार यदि बाहर की शक्तियों का हस्तक्षेप वास्तव में समाप्त हो जाए तो सब प्रश्नों का शांति और न्यायपूर्ण हल करना कठिन नहीं होगा।

शरारतों पर परदा डालने का प्रयास

प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के समय पाकिस्तान के रवैये से श्री अयूब खाँ की मीठी-मीठी बातों के कारण आशा लगाकर बैठनेवालों की आँख भी खुल जानी चाहिए। स्पष्ट है कि अपनी शरारतों पर परदा डालने के लिए ही ये बातें बनाई जा रही थीं। पाकिस्तान ने कम्युनिस्ट चीन के ख़तरे को भी घटाकर दिखाने का प्रयास किया है। उसने यहाँ तक दुष्टता की है कि भारत पर कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण को भी अमान्य किया है। उसने यह भी माँग की कि भारत को अपना दैनिक व्यय आधा कर देना चाहिए और कहा कि जब तक यह नहीं होगा, भारत और पाकिस्तान के बीच शांति नहीं हो सकेगी। दैनंदिनी व्यवहार में भी वह जम्मू-कश्मीर में विराम रेखा का उल्लंघन कर रहा है, पूर्वी बंगाल के अल्पसंख्यकों पर अत्याचार ढाह रहा है, भारत के भीतर तोड़-फोड़ की कार्रवाइयाँ करा रहा है और चावल के सौदे के संबंध में कथा-प्रसिद्ध शाइलाक की भाँति दुष्टतापूर्ण व्यवहार अपनाए है। ये सब बातें पाकिस्तान की असलियत प्रकट करने के लिए बहुत पर्याप्त हैं।

गृहमंत्री सम्मेलन अव्यावहारिक

समझ में नहीं आता कि पाकिस्तान के इस शत्रुतापूर्ण व्यवहार की पृष्ठभूमि में भी भारत सरकार किस प्रकार गृहमंत्रियों के एक और सम्मेलन और श्री लाल बहादुर शास्त्री एवं श्री अयूब खाँ की मुलाक़ात का विचार कर रही है। यह विचार पूर्णतः अव्यावहारिक और देश के लिए अप्रतिष्ठाकारक है। हमें 'गाली खाओ और प्यार करो' की नीति को त्याग देना चाहिए। इससे हमें कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा। हमारी इस नीति से पाकिस्तान ठीक रास्ते पर आएगा ही नहीं, परंतु इसके कारण उलटे दुनिया पाकिस्तान की करतूतों को भूल जाती है। जब तक पाकिस्तान पश्चात्ताप अनुभव कर, अपनी इस भावना को सक्रिय रूप में प्रकट नहीं करता, हमें उससे बात करना स्वीकार नहीं करना चाहिए।

प्रधानमंत्री सम्मेलन में जिस हलकेपन से भारत के साथ व्यवहार किया गया है, उस पर सारा देश क्षुब्ध है। मैं आशा करता हूँ कि प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रमंडल के अपने सहयोगी प्रधानमंत्रियों को देश की इस भावना से अवगत कराने की कृपा करेंगे। भारत और पाकिस्तान के गृहमंत्रियों का प्रस्तावित सम्मेलन भी स्थगित कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि पाकिस्तान की हरकतों से बिगड़े हुए आज के वातावरण में, उससे कोई फल नहीं निकल सकेगा।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 27, 1964

□

58

देश की एकता और अखंडता के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं

अभी हाल ही में स्वतंत्र दल के महामंत्री श्री मसानी ने हैदराबाद में यह घोषणा की है कि उनका दल जनसंघ के साथ तब तक कोई समझौता नहीं करेगा, जब तक जनसंघ पाकिस्तान और कश्मीर के संबंध में अपनी नीति में परिवर्तन न करे। मैं श्री मसानी को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अपना मंतव्य इतने स्पष्ट रूप से प्रकट किया। उनकी इस घोषणा ने हमें चुनाव संबंधी उस समझौते के बंधन से मुक्त कर दिया जो स्वतंत्र दल के नेताओं की पाक व कश्मीर संबंधी वर्तमान नीति के कारण हमारे लिए पर्याप्त परेशानी का कारण बन गया था।

वास्तव में हमें यह बताया गया था कि पाकिस्तान और कश्मीर के संबंध में श्री राजाजी और मसानी के विचार उनके व्यक्तिगत विचार हैं, उसका पार्टी से कोई संबंध नहीं हैं। साथ ही पार्टी के अधिकांश सदस्य इस प्रश्न पर वही मत रखते हैं, जिसका जनसंघ हामी है। अब ऐसा प्रतीत होता है कि पार्टी का बहुमत वर्ग राजाजी और मसानी के विचारों को मानने के लिए बाध्य कर दिया गया। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि जनसंघ ऐसे किसी भी दल से कोई समझौता न करे, जो देश के किसी भू-भाग को आक्रमणकारी के हाथ सौंपने का विचार रखता हो।

लोग प्रायः पूछते हैं कि चीन और पाकिस्तान में बड़ा संकट कौन है? यह तो उसी प्रकार का प्रश्न है जैसे यह पूछना कि प्लेग और टी.बी में कौन सा रोग ज़्यादा अनिष्ट कर है। फिर भी एक अंतर तो है ही कि पाकिस्तान भारत से कमज़ोर है और चीन भारत से अधिक शक्तिशाली। फिर भी इस संदर्भ में इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि यदि चीन ने भारत पर हमला किया तो पश्चिमी देश हमारी सहायता के लिए आगे

बढ़ेंगे, परंतु पाकिस्तान के आक्रमण के समय हमें उनकी सहायता नहीं मिल सकती।

श्री मसानी ने आरोप लगाया कि जम्मू में जनसंघ ने राजाजी और श्री जयप्रकाश की अर्थियाँ जलाई। उन्होंने उपदेश दिया है कि यह अच्छी बात नहीं है। पहली बात तो यह कि श्री मसानी का यह आकलन ही ग़लत है। इन नेताओं की अर्थियाँ जनसंघ ने नहीं विद्यार्थी कांग्रेस के लोगों ने जलाई हैं। पर इतना तो कहना ही चाहूँगा कि अच्छाई व बुराई के संबंध में हमें श्री मसानी के उपदेशों की आवश्यकता नहीं। देश की एकता और अखंडता का प्रश्न हमारी श्रद्धा का विषय है। उसकी प्राप्ति के लिए हम कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेंगे।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 27, 1964

□

59

राष्ट्रीयकरण नहीं, राष्ट्रीय दृष्टिकोण चाहिए

अर्थव्यवस्था में भावों का वही स्थान है, जो शरीर में हृदय का है। भावों का उतार-चढ़ाव बनों को बिगाड़ सकता है और बिगड़ों को बना सकता है। हिंदी में व्यापारी के लिए 'बनिया' शब्द का प्रयोग शायद इसीलिए आया कि वह हमेशा 'बनने' की ही सोचता रहता है। बिना बने उसका काम ही नहीं चलता। बिगड़ भी गया तो वह जल्दी-से-जल्दी बनने की फ़िराक़ में रहता है। क़ानून में दिवालिया घोषित करने की सुविधा जब तक नहीं थी, तब तक बन-ठनकर अपनी साख बनाए रखना हर व्यापारी के लिए ज़रूरी था। साख और भाव का चोली-दामन का संबंध है। भाव गिरे कि साख गिर गई। पर अब ज़माना बदल गया है। अब तो भाव बढ़ने पर साख जाती है। दुनिया की ऐसी कोई ग़ाली नहीं, जो भाव बढ़ानेवाले व्यापारी को न दी जा रही हो। शब्दकोश समाप्त हो रहा है। जखीरेबाज़, मुनाफ़ाखोर, अनाज चोर आदि न मालूम कितने शब्द हर उस राजनीतिज्ञ के ज़बान पर तूफ़ान मेल की रफ़्तार से दौड़ते रहते हैं, जिसे आटे-दाल का भाव भी नहीं मालूम। कहीं-कहीं तो यह हाल हो गया है कि इधर भाव बढ़े कि उधर लालाजी पर वह बेभाव की पड़ी कि छठी का दूध याद आ गया। अभी तक तो गेहूँ को चक्की के पाटों के बीच पीसा जाता था, पर अब तो गेहूँ बेचनेवालों की वही हालत हो गई है। सरकार और ख़रीददार दोनों पाटों के बीच फँसे गल्ला व्यापारी का भुरकस निकलता जा रहा है। लगता है कि लोगों को खाने को अनाज मिले या न मिले, दाम गिरे या न गिरे, किंतु 'भुवनेश्वर' के भक्त[1] गल्ला व्यापार को चौपट किए बिना नहीं रहेंगे।

---

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 68वाँ अधिवेशन जनवरी, 1964 में भुवनेश्वर में के. कामराज की अध्यक्षता में हुआ था। इस सत्र में कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित कर लोकतंत्रात्मक समाजवाद को अपना लक्ष्य निर्धारित किया था। इसी सत्र में के. कामराज ने देश के अन्य समाजवादी नेताओं को इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कांग्रेस में आने का न्योता दिया। इसके कुछ दिनों बाद ही अशोक मेहता, चंद्रशेखर, मोहन धारिया जैसे अनेक समाजवादी नेता कांग्रेस से जुड़ गए थे।

उत्तर प्रदेश कांग्रेस के एक गुटवादी नेता से एक दिन गाड़ी में बातचीत हो रही थी। उन्होंने कहा कि यह सरकार तो बनियों की सरकार है। वर्गविहीन और जातिविहीन समाज के पोषक होने के बाद भी उनका यह जातिवादी विश्लेषण मेरी समझ में नहीं आया। पर अब लगता है कि वे ठीक कह रहे थे। अगर सरकार बनियों की नहीं तो उसमें तराजू की डंडी सँभालने की इतनी आकुलता क्यों दिखती। 'राजदंड' का स्थान 'तुलादंड' ने ले लिया है। *'राजा कालस्य कारणम्'* के अनुसार व्यापारियों को अपना भविष्य निश्चित करना चाहिए।

चाय की लत लगने और अमरीकी दान का पाउडर का दूध मिलने के बाद गाय भी दुश्मन नज़र आने लगी है। गाय और मनुष्य में संघर्ष छिड़ गया है। धरती माता गोमाता को खिलाएँ कि अपने प्यारे लाड़ले मानव को। अब गोमाता हमारी विधाता बन गई हैं। चरागाहों और खेतों में मूँगफली पैदा की जा रही है। 'बिनौला' गाय और भैंस को नहीं 'डालडा' की फैक्टरियों को खिलाया जा रहा है। मशीन के कोल्हुओं में तेल की आख़िरी बूँद भी निचोड़ ली जाती है। और उसके बाद भी स्नेह रहित खली देश के पशुधन को खिलाने के स्थान पर विदेशों में भेज दी जाती है। 'ग्वार' का गोंद बनाया जा रहा है, जिससे बढ़ते हुए दफ्तरों में काग़ज़ी योजनाओं के लिफाफे चिपकाए जा सकें। केंद्रीय खाद्य मंत्री, श्री सुब्रह्मण्यम ने प्रस्ताव किया है कि सरकार नई तरह की धान कूटने की मिलें खोलेगी, जिसमें 2 प्रतिशत अलग चावल मिल सकेगा। अगले दौर में उसका चावल खाने को बताया जाएगा। पर 'हथकुटा' चावल पुनः प्रचलित किया जाए तो न चावल की बरबादी होगी और न विटामिन 'बी' की गोलियाँ खानी पड़ेंगी। पर केंद्रीय खाद्य मंत्री ने यह नहीं सोचा कि इन मिलों को खड़ा करने के लिए पूँजी कहाँ से आएगी? पुरानी मिलों का क्या होगा? सरकारी क्षेत्र में पूँजीकरण का भार पड़ेगा जनता पर और पुरानी मिलों के बेकार होने से जो निरुद्योगीकरण होगा, उसे भी जनता को ही भोगना पड़ेगा। राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाए तो कहना होगा कि चौबेजी छब्बे बनने के बजाय दूबे ही रह जाएँगे।

राष्ट्रीयकरण का नारा तो ज़ोरों से लगाया जाता है, किंतु राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव ही आज की समस्या का मुख्य कारण है। आज सरकार की खाद्य नीति में राष्ट्रीयता नहीं प्रांतीयता है। पंजाब में बैलों को गेहूँ खिलाया जा रहा है और उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में मानव को घास भी नहीं मिलती। मध्य प्रदेश, गुजरात को गेहूँ देने को तैयार नहीं तो गुजरात, मध्य प्रदेश को मूँगफली का तेल देने से इनकार कर रहा है। आगे चलकर कपड़े और दूसरी चीज़ों का भी नंबर आ सकता है। कहीं प्रदेश बंदी है तो कहीं ज़िला बंदी। थोड़े दिनों में मुहल्ला और घर बंदी हो जाएगी। हम आशा करते हैं कि पाकिस्तान हमारे साथ सहानुभूति दिखाए और हमें चावल दे। अमरीका वाले गेहूँ दें। अगर वे कुछ हमारी

मुसीबत का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं तो हमें बुरा लगता है। पर अपने घर में हम क्या कर रहे हैं? खंडवा और भुसावल कोई दूर नहीं। लोगों का आना-जाना रोज़ चलता रहता है। पर एक जगह के किसान को गेहूँ का दाम नहीं और दूसरी जगह के ग्राहक को किसी दाम पर गेहूँ नहीं। क्या यही समाजवाद की समानता है? आज की सरकारें जिस तरह चल रही हैं, उससे समाजवाद का आना तो दूर, हमारा राष्ट्रवाद भी ख़त्म हो जाएगा। भारत की एकता को इससे बढ़कर कौन सा ख़तरा हो सकता है? जब हृदय कमज़ोर हो जाए, अंत:करण छोटा हो जाए तब सब अपनी-अपनी ही सोचते हैं। चीज़ों के भाव तो बढ़ ही गए, पर हृदय का भाव भी ख़त्म हो रहा है। फलत: चारों ओर आपा-धापी और हड़बड़ाहट दिखाई देती है। इस मनोभाव से अभाव और बढ़ता और अखरता जाता है, जिसके परिणामस्वरूप भाव भी बढ़ते जा रहे हैं।

भावों की कुछ गति ऐसी है कि वस्तुओं के अभाव में वे बढ़ते हैं। यदि भावों का भाव ठीक करने का भाव आपके मन में आता हो तो उसका एक ही रास्ता है कि अभाव की वस्तुओं का प्रादुर्भाव करें। भाव तो माँग और पूर्ति के प्रभाव से तय होते हैं। उनकी संवेदनशीलता इतनी अधिक है कि बाज़ार के इशारे पर वे नाचते रहते हैं। बनिया न तो भावों को बना सकता है और न बिगाड़ सकता है। वह तो दाँव लगाता है और कभी कमाता है तो कभी गँवाता भी है। जो व्यापारी को भावों का नियंता मानते हैं, वे अर्थशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ हैं। अर्थशास्त्र के नियमों की ओर दुर्लक्ष्य करके सरकार भी भावों का नियंत्रण नहीं कर सकती। बाज़ार के मनोभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील भाव राज्यशक्ति के वारांगना के समान हाव-भावों के प्रति पूर्णत: उदासीन रहते हैं। सरकारी भाव काग़ज़ पर रह जाते हैं। असली भाव बाज़ार में चलते हैं। जब सदोबा पाटिल श्रम मंत्री थे तो उन्हें अमरीका का दम था और वे वहाँ से गेहूँ ले आए। बड़े दमखम के साथ उन्होंने एक दिन कहा कि अब मेरे पास तो कोई काम नहीं। तो कामकाज के चक्कर में आ गए। पर अमरीका का गेहूँ कितने दिन चलता, कुछ खाया, कुछ सड़ाया। आज यह हालत है कि सरकार की दुकानों में गल्ले का बोर्ड है, पर गल्ला नहीं। अब दौड़-धूप की जा रही है कि गल्ला ख़रीदा जाए। आग लगने पर कुआँ खोदा जा रहा है। सरकार रिज़र्व स्टाक की नीति में विश्वास करती है। पर वह भूल जाती है कि यह 'रिज़र्व' बना रहे हैं, इसके लिए बारंबार ख़रीदने और बेचने की ज़रूरत होती है। सेना रोज़ नहीं लड़ती, मौक़े पर लड़ सके, इसके लिए उसे रोज़ कवायद और अभ्यास करना पड़ता है। पर जिस सरकार ने सेना को लड़ाई अभ्यास के स्थान पर बाढ़ नियंत्रण और समाज सेवा के काम में लगाया और खाद्यान्न के रिज़र्व की ओर दुर्लक्ष्य किया तो आश्चर्य क्या। फलत: काग़ज़ी रिटर्न दाख़िल होते गए और गोदामों में अनाज घटता और सड़ता गया।

आज जखीरेबाज़ों को ग़ाली दी जा रही है। मगर हमारी समस्या का एकमात्र कारण है कि हमारा जखीरा ख़त्म हो गया। शहर के नलों में ठीक-ठीक पानी तभी जाएगा जब टंकी में पानी अच्छी तरह भरा हो। टंकी की ओर दुर्लक्ष्य करके नलों में पानी की आशा करना भूल है। पर जब दूसरी मंज़िल भर पानी न पहुँचे तो नीचे की मंज़िल वाले से लड़ाई होती है। आज ऐसी ही लड़ाई लड़ी जा रही है। उसे ही समस्या का समाधान समझा जा रहा है। पर थोड़े दिनों में पता चलेगा कि नीचे की मंज़िल में भी पानी आना बंद हो गया है। हमें मूल स्रोत का विचार करना होगा। मूल से संबंध रखने के कारण ही संस्कृत में क़ीमतों को 'मूल्य' कहा जाता है। उससे असलियत का पता चलता है। आज तो बिना मूल के मूल्य बाँधने की कोशिश की जा रही है।

मूल आवश्यकता है कि मूलधन बढ़ाया जाए किंतु इसके लिए सरकार की योजनाओं और दृष्टिकोण में आमूल-चूल परिवर्तन करना पड़ेगा। आज तो सूत न कपास जुलाहे से लट्ठम लट्ठा की नीति बनती जा रही है। सरकार व्यापारियों पर बरस रही है, व्यापारी सरकार पर। केंद्र प्रांतों को दोषी ठहराता है तो प्रांत केंद्र के मत्थे बला डालकर अपनी विवशता ज़ाहिर करते हैं। पिछले अनेक वर्षों से हमारा रुपया छोटा होता जा रहा है। छत्रपति शिवाजी महाराज की 'मुद्रा' की व्याख्या करते हुए कहा गया था कि 'प्रतिपदचंद्र लेख व मुद्रा भवाय राजते'। जब मुद्रा प्रतिपदा के चंद्रमा के समान निरंतर बढ़ती जाए, तभी पूर्णिमा की चाँदनी खिलेगी। पर आज भारत की मुद्रा की हालत तो कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की सी है, जो प्रतिदिन क्षय होती जाती है। शासन का योजना के नाम पर जो हाथ खुला है, वह सिमटने का नाम नहीं लेता। बिना सरकार की फिजूलख़र्ची कम किए मुद्रा का अवमूल्यन नहीं रोका जा सकता। बिना मुद्रा का मूल्य बाँधे वस्तुओं के मूल्य नहीं बँध सकते। आज तो दाम में ही दम नहीं बचा। दाम का दम ठीक करें।

भावों का विचार भावना से नहीं हो सकता। समीक्षा और सद्भावना अर्थशास्त्र के ठोस नियमों का स्थान नहीं ले सकती। किताबी सिद्धांतों और 'समाजवादी' भावनाओं ने दृष्टि को विकृत कर दिया है। अधिकांश दलों के सामने राजनीतिक लक्ष्य हैं। आर्थिक समस्या का समाधान नहीं। फलत: अर्थ और अनर्थ होता जा रहा है। प्रकृति के प्रकोप, मुद्रा के मूल्य ह्रास तथा शासन की सनकों से त्रिदोष विकृत हो गया है। आज तो सन्निपात की अवस्था है। कुशल वैद्य ही स्थिति को सँभाल सकता है। पर आज मरीज़ नीम हकीमों के हाथों में सौंप दिया गया है। हड़कंप छोड़कर शांति से विचार कर दृढता से धैर्यपूर्वक काम करने की आवश्यकता है। संकट टल जाएगा।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 3, 1964

□

60

सिद्धांत और नीतियाँ*

स्थिति

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करे, उसे सुदृढ एवं स्थायी बनाने का प्रयत्न करे तथा अपने नागरिकों को एक ऐसा शासन प्रदान करे, जिसके अंतर्गत वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए समृद्ध, सोद्देश्य एवं सुखी समाज के संगठन में सचेष्ट रह सकें। भारत की स्वतंत्रता के उपरांत जन-मन में यह सहज आकांक्षा जाग्रत् हुई थी और यह अपेक्षा की गई थी कि सदियों से परतंत्र अत: संघर्षरत राष्ट्र अब अपने स्वाभाविक स्वरूप एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अपने घर का नव-निर्माण कर सकेगा, रूढ़ियाँ समाप्त होकर स्वस्थ चैतन्यमयी संस्थाएँ जन्म लेंगी तथा आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय के पाटों में पिसनेवाला जनजीवन संपन्नता और समानता के वातावरण में संतोष की साँस ले सकेगा। बड़े-बड़े उद्घोषों और योजनाओं के बावजूद जनता की अपेक्षाएँ पूर्ण नहीं हुईं। उल्टे अव्यवस्था और अनाचार, अभाव और असमानताएँ, असुरक्षा और असामाजिकता पहले से अधिक तीव्र और व्यापक हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद स्वातंत्र्य के प्रथम उद्रेक में देशी राज्यों के विलीनीकरण, संविधान के निर्माण तथा अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण एवं अभिनवीकरण की दिशा में अवश्य उल्लेखनीय क़दम उठाए गए, किंतु वह आवेश शीघ्र ही समाप्त हो गया। यहाँ तक कि परिवर्तन से उत्पन्न स्वाभाविक समस्याओं के समाधान एवं सामंजस्य के प्रयत्नों के स्थान पर हम उनसे अभिभूत हैं। राष्ट्र को सुनिश्चित और सुनियोजित दिशा में आगे बढ़ने के स्थान पर शासक और शासित विभ्रम और

---

* देखें परिशिष्ट XVI, पृष्ठ 341, परिशिष्ट XVIII, पृष्ठ 343, परिशिष्ट XIX, पृष्ठ 352 एवं परिशिष्ट XXI, पृष्ठ 361।

विरक्ति के शिकार बनकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो धारा में बहते हुए से दिखाई देते हैं। अनास्था और आत्मविश्वासहीनता की यह अवस्था राष्ट्र के अस्तित्व और अस्मिता के लिए संकटपूर्ण एवं अशोभनीय है। इसे बदलकर देश के पुरुषार्थ को सचेत करना होगा।

वर्तमान दुरवस्था का कारण

वर्तमान परिस्थिति का सबसे प्रमुख कारण राष्ट्र-जीवन की आत्मा का साक्षात्कार न करते हुए उसके ऊपर विदेशी और विजातीय विचारधाराओं एवं जीवनमूल्यों को थोपने का प्रयत्न है। शीघ्र उन्नति की आतुरता में दूसरे देशों का अंधानुकरण करने और 'स्व' के तिरस्कार की प्रवृत्ति पैदा हुई है। इससे राष्ट्रमानस में कुंठा घर कर गई है।

जनसंघ-एक ऐतिहासिक आवश्यकता

विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानवजाति का अनुभव हमारी संपत्ति है। विज्ञान किसी देश-विशेष की बपौती नहीं। वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। किंतु भारत हमारी रंगभूमि है। भारत की कोटि-कोटि जनता पात्र ही नहीं प्रेक्षक भी है, जिसके रंजन एवं आत्मसुख के लिए हमें सभी भूमिकाओं का निर्धारण करना है। विश्व-प्रगति के हम केवल दृष्टा ही नहीं, साधक भी हैं। अतः जहाँ एक ओर हमारी दृष्टि विश्व की उपलब्धियों पर हो, वहीं दूसरी ओर हम अपने राष्ट्र की मूल प्रकृति, प्रतिभा एवं प्रवृत्ति को पहचानकर अपनी परंपरा और परिस्थिति के अनुरूप भविष्य के विकास क्रम का निर्धारण करने की अनिवार्यता को भी न भूलें। 'स्व' के साक्षात्कार के बिना न तो स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है और न वह कर्मचेतना ही जाग्रत् हो सकती है, जिसमें परावलंबन और पराभूति का भाव होकर स्वाधीनता, स्वेच्छा और स्वानुभवजनित सुख हो। अज्ञान, अभाव तथा अन्याय की परिसमाप्ति और सुदृढ, समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुखी राष्ट्र-जीवन का शुभारंभ सबके द्वारा स्वेच्छा से किए जानेवाले कठोर श्रम तथा सहयोग पर निर्भर है। यह महान् कार्य राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नए नेतृत्व की अपेक्षा रखता है। भारतीय जनसंघ का जन्म इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए हुआ है।

उद्देश्य

भारतीय जनसंघ का उद्देश्य भारत को उसकी संस्कृति और मर्यादा के आधार पर एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जनतंत्र बनाना है, जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो तथा जो भारत को सुदृढ एवं सुसंपन्न बनाते हुए उसे एक प्रगतिशील, आधुनिक और जागरूक राष्ट्र बनाए, जो दूसरों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना कर सके और विश्व शांति के स्थापनार्थ राष्ट्र संघ में समुचित रीति से प्रभाव डाल सके।

भारतीय सांस्कृतिक अधिष्ठान की अपरिहार्यता

लोकतंत्र, समानता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा विश्व शांति परस्पर संबद्ध कल्पनाएँ हैं। किंतु पाश्चात्य राजनीति में इनमें कई बार टकराव हुआ है। समाजवाद और विश्व-शासन के विचार भी इन समस्याओं के समाधान के प्रयत्न से उत्पन्न हुए हैं, पर वे कुछ नहीं कर पाए। उलटे उन्होंने मूल को धक्का लगाया है और नई समस्याएँ पैदा की हैं। भारत का सांस्कृतिक चिंतन यह तात्त्विक अधिष्ठान प्रस्तुत करता है, जिससे उपर्युक्त भावनाएँ समन्वित हो वांछनीय लक्ष्यों की सिद्धि कर सकें। इस अधिष्ठान के अभाव में मानव चिंतन और विकास अवरुद्ध हो गया है। भारतीय तात्त्विक सत्यों का ज्ञान, देश और काल से स्वतंत्र है। यह ज्ञान केवल हमारी ही नहीं, वरन् पूर्ण संसार की प्रगति की दिशा निश्चित करेगा।

एकात्मवाद

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य-भेद स्वीकार करते हुए वह उनके अंतर में एकता की खोज कर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर वह परस्परावलंबन, पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर सृष्टि की क्रियाओं का विचार करती है। वह एकांगी न होकर सर्वांगीण है। उसका दृष्टिकोण सांप्रदायिक अथवा वर्गवादी न होकर सर्वात्मक एवं सर्वोत्कर्षवादी है। एकात्मकता उसकी धुरी है।

व्यष्टि और समष्टि

व्यष्टि और समष्टि के बीच संघर्ष की कल्पना कर दोनों में से किसी एक को प्रमुख एवं संपूर्ण क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य मानकर पश्चिम में अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ है। किंतु दृश्य व्यक्ति अदृश्य समष्टि का भी प्रतिनिधित्व करता है। 'अहं' के साथ 'वयं' की सत्ता भी प्रत्येक 'अहं' के द्वारा जीती है। प्रत्येक 'इकाई' में समुदाय की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। व्यक्ति ही समष्टि के उपकरण हैं, उसके ज्ञान-तंतु हैं। व्यक्ति के विनाश या अविकास से समष्टि पंगु हो जाएगी। व्यक्ति ही समष्टि की पूर्णता का माध्यम और माप है। किंतु व्यक्ति की साधना समष्टि की आराधना से भिन्न नहीं हो सकती। शरीर को क्षति पहुँचाकर कोई अंग कैसे सुखी हो सकता है? फूल का अस्तित्व पँखुड़ियों की शोभा तथा जीवन की सार्थकता पुष्प के साथ रहकर उसके स्वरूप को बनाने और निखारने में है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समाज-हित के बीच कोई विरोध नहीं है।

व्यक्ति का सर्वांगीण विकास

व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास

में चारों का ध्यान रखना होगा। चारों की भूख मिटाए बिना व्यक्ति न तो सुख का अनुभव और न अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति आवश्यक है। आजीविका के साधन, शांति, ज्ञान एवं तादात्म्य भाव से ये भूखें मिटती हैं। सर्वांगीण विकास की कामना ही व्यक्ति को समाज-हित में कार्य की प्रेरणा देती है।

पुरुषार्थ चतुष्टय

व्यक्ति के विकास और समाज के हित का संपादन करने के उद्देश्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की कल्पना की गई है। धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरे के पूरक और पोषक हैं। मनुष्य की प्रेरणा का स्रोत तथा उसके कार्यों का मापक किसी एक को ही मानकर चलना अधूरा होगा। फिर भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि का साधन है, अतः आधारभूत है।

धर्म का स्वरूप

कई बार धर्म को मत या मज़हब मानकर उसके ग़लत अर्थ लगाए जाते हैं। यह भूल अंग्रेज़ी के रिलीजन शब्द का 'धर्म' से अनुवाद करने के कारण हुई है। धर्म का वास्तविक अर्थ है—वे सनातन नियम, जिनके आधार पर किसी सत्ता की धारणा हो और जिनका पालन कर व्यक्ति अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कर सके। धर्म के मूल तत्त्व सनातन हैं, किंतु उनका विवरण देश-काल-परिस्थिति के अनुसार बदलता है। इस संक्रमणशील जगत् में धर्म ही वह तत्त्व है, जो स्थायित्व लाता है। इसलिए धर्म को ही नियंता माना गया है। प्रभुता उसी में निहित है।

राष्ट्र की आत्मा-चिति

समाज केवल व्यक्तियों का समूह अथवा समुच्चय नहीं, अपितु एक जीवंत सावयव सत्ता है। भूमि विशेष के प्रति मातृभाव रखकर चलनेवाले समाज से राष्ट्र बनता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं, अपितु जन्मजात है, इसे 'चिति' कहते हैं। राष्ट्रों का उत्थान-पतन चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर करता है। विभिन्न विशिष्टताओं वाले राष्ट्र परस्पर पूरक होकर मानव एकता का निर्माण कर सकते हैं। राष्ट्रों की प्रकृति मानव एकता की विरोधी नहीं, यदि कहीं उसके विरुद्ध आचरण दिखता है तो वह विकृति का द्योतक है। राष्ट्रों का विनाश कर मानव एकता उसी प्रकार असंभव तथा अवांछनीय है, जिस प्रकार व्यक्तियों को नष्ट कर समष्टि का अस्तित्व या विकास।

चिति की अभिव्यक्ति के उपकरण

समाज की चिति स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा व्यक्तियों को विभिन्न पुरुषार्थों के संपादन की सुविधा प्राप्त कराने के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म देती है। समाज में इनकी वही स्थिति है, जो शरीर में विभिन्न अंगों की। जाति, वर्ण, पंचायत, संप्रदाय, संघ, पूग, विवाह, संपत्ति, राज्य आदि इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं। राज्य महत्त्वपूर्ण है, किंतु सर्वोपरि नहीं।

राज्य-आवश्यकता

कृत युग में जब मानव परस्पर धर्म के आधार पर एक-दूसरे की रक्षा करते थे, राज्य नहीं था। किंतु वह एक आदर्श स्थिति है और तभी संभव है, जब प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतः द्वंद्वातीत, निस्स्वार्थ, निस्पृही एवं धर्मनिष्ठ हो। सामान्यतः समाज में सुव्यवस्था बनाए रखने तथा प्रत्येक घटक को धर्मपालन की सुविधा देने के लिए राज्य एक आवश्यक संस्था है।

आदर्श राज्य-धर्मराज्य

भारतीय राज्य का आदर्श 'धर्मराज्य' रहा है। यह एक असांप्रदायिक राज्य है। सभी पंथों और उपासना पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता एवं समादर का भाव भारतीय राज्य का आवश्यक गुण है। अपनी श्रद्धा और अंतःकरण की प्रवृत्ति के अनुसार प्रत्येक नागरिक का उपासना का अधिकार अक्षुण्ण है तथा राज्य के संचालन अथवा नीति-निर्देशन में किसी भी व्यक्ति के साथ मत या संप्रदाय के आधार पर भेदभाव नहीं हो सकता। धर्मराज्य थियोक्रेसी अथवा मज़हबी राज्य नहीं है।

'धर्मराज्य' किसी व्यक्ति अथवा संस्था को सर्वसत्तासंपन्न नहीं मानता। सभी नियमों और कर्तव्यों से बँधे हुए हैं। कार्यपालिका, विधायिका और जनता सबके अधिकार धर्माधीन हैं। स्वैराचरण कहीं भी अनुमत नहीं। अंग्रेज़ी का 'Rule of Law' (विधि के अनुसार शासन) धर्मराज्य की कल्पना को व्यक्त करनेवाला निकटतम शब्द है। निरंकुश और अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को रोकने तथा लोकतंत्र को स्वच्छंदता में विकृत होने से बचाने में धर्मराज्य ही समर्थ है। राज्यों की अन्य कल्पनाएँ अधिकारमूलक हैं, किंतु धर्मराज्य कर्तव्य-प्रधान है। फलतः इसमें अपने अधिकारों के हनन की आशंका, असीम अधिकार प्राप्ति की लालसा, सीमित अधिकारों से असंतोष, अधिकारारूढ़ होने पर कर्तव्यों की उपेक्षा, अधिकारमद, विभिन्न अधिकारों के बीच संघर्ष इन सबके लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

कर्तव्य और अधिकार

'धर्मराज्य' में जनाधिकारों को समाप्त नहीं किया जा सकता। जनता का इन मूलभूत अधिकारों के प्रति जागरूक रहना कर्तव्य है। बिना इसके धर्मपालन संभव नहीं। 'अधिकार' वह उपादान है, जिससे व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तथा एक बड़ी सत्ता के अंगभूत होने की अनुभूति करता है। कर्तव्य और अधिकार उस त्रिकोण की दो भुजाएँ हैं, धर्म जिसका आधार है। सैनिक का अधिकार है कि उसे शस्त्र मिले, बिना उसके वह रक्षा के अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। शस्त्र की उपलब्धि और प्रयोग कब और कैसे हो, इसका नियमन धर्म से होता है।

लोकतंत्र

लोकाधिकार की प्रतिष्ठा और लोक-कर्तव्य के निर्वाह का लोकतंत्र एक साधन है। केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी लोकतंत्र चाहिए। वास्तव में जनतंत्र अविभाज्य है। किसी भी एक क्षेत्र में लोकतंत्र का अभाव एक-दूसरे क्षेत्र में लोकतंत्र को नहीं पनपने देगा। सहिष्णुता, व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा समष्टि के साथ एकात्मकता लोकतंत्र के प्राण हैं। बिना इन भावों के लोकतंत्र का बाहरी स्वरूप निष्प्राण एवं जड़ है। यदि चैतन्य विद्यमान है तो देश-काल-परिस्थति से लोकतंत्र के रूप में भेद हो सकता है।

अपने प्रतिनिधि चुनने और चुने जाने का अधिकार राजनीतिक लोकतंत्र का प्रमुख लक्षण है। आर्थिक लोकतंत्र के लिए व्यवसाय और उपभोग की स्वतंत्रता आवश्यक है। प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता से सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना होती है। इस बात का प्रयत्न करना होगा कि ये अधिकार एक-दूसरे के पूरक एवं पोषक रहें, विरोधी एवं विनाशक नहीं।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता मानव और राष्ट्र की स्वाभाविक आकांक्षा है। पराधीनता में न तो सुख है, न शांति। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी चाहिए। शासन का व्यष्टि और समष्टि के प्राकृतिक हित में हस्तक्षेप न करना तथा सदैव उसके अनुकूल चलना राजनीतिक स्वतंत्रता है। अर्थ के होने अथवा उसके न होने से मनुष्य के हित में विघ्न न होना ही आर्थिक स्वतंत्रता है। समाज का व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में बाधक न होकर साधक होना ही सामाजिक स्वतंत्रता है। इन स्वतंत्रताओं के राष्ट्रगत हुए बिना वे व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकतीं। राज्य के सब अंगों द्वारा अपने-अपने

कर्तव्य का पालन करने से सबको स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

लोकतंत्र के समान स्वतंत्रता भी अविभाज्य है। बिना शासनिक स्वतंत्रता के अन्य दो स्वतंत्रताएँ नहीं हो सकतीं। बिना आर्थिक स्वतंत्रता के मनुष्य को सामाजिक और कुछ अंशों में राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं मिल सकती तथा बिना सामाजिक स्वतंत्रता के अर्थ मनुष्य को भाव और अभाव दोनों रूपों में परतंत्र कर देता है।

अर्थायाम

शासन-तंत्र के समान अर्थ-तंत्र में भी अराजकता केवल कृत युग की चीज़ है, अर्थात् अहस्तक्षेप (Laissez faire) का सिद्धांत इसी अवस्था में सर्वहितकारी रूप से चल सकता है, अन्यथा नहीं। अत: अर्थ के उत्पादन, विनिमय एवं उपभोग को व्यवस्थित करने के लिए अर्थायाम आवश्यक है। इस हेतु अर्थ के क्षेत्र में भी अनेक संस्थाओं का जन्म होता है। राज्य का भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण दायित्व है। किंतु सभी उद्योगों अथवा उत्पादन के साधनों का राज्य के स्वामित्व तथा प्रबंध के अधीन होना आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के केंद्रीकरण को जन्म देता है। अत: यह ठीक नहीं। पर यह भी स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के आरंभ के लिए, अर्थव्यवस्था में अनुशासन बनाए रखने के लिए तथा राष्ट्र के आधारभूत लक्ष्यों की सिद्धि के लिए राज्य का कर्तव्य है कि वह आर्थिक क्षेत्र में नियोजन, निर्देशन, नियमन, नियंत्रण का सामान्यत: तथा विशेष क्षेत्रों और स्थितियों में स्वामित्व और प्रबंध का भी दायित्व ले।

अर्थ का अभाव और प्रभाव

अर्थ के अभाव से तो धर्म का ह्रास होता ही है, अर्थ का प्रभाव भी धर्म की हानि करता है। अर्थ के अभाव और प्रभाव दोनों से आर्थिक स्वतंत्रता का हनन होता है। सुसाध्य आजीविका की अप्राप्ति तथा उत्पादन को बनाए रखने अथवा बढ़ाने के लिए आवश्यक पूँजी की कमी अर्थ का अभाव है। यह बात व्यक्ति और राष्ट्र दोनों पर लागू होती है। अर्थ की साधनता को भुलाकर उसमें आसक्ति, अर्थ से धर्मानुकूल कामोपभोग की इच्छा का, ज्ञान का और शक्ति का अभाव, अर्थ का अनुचित घमंड, समाज में आर्थिक विषमता, मुद्रा का आधिक्य एवं अवमूल्यन, वे कारण हैं, जिनसे अर्थ का प्रभाव मानव की कर्मशक्ति को कुंठित कर अर्थ और श्री के ह्रास का कारण बनता है।

संपत्ति का स्वामित्व

संपत्ति के स्वामित्व का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। कुछ लोग संपत्ति पर व्यक्ति का निर्बाध अधिकार मानते हैं। दूसरी ओर वे लोग हैं, जो निजी संपत्ति को, विशेषकर उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व को, सभी बुराइयों की जड़ मानते हैं। 'ईशावास्यमिदं

सर्वं' के आधार पर कुछ तत्त्व संपूर्ण संपत्ति को ईश्वर की मानकर मनुष्य को विश्वस्त के नाते उसका उपयोग करने का परामर्श देते हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से 'विश्वस्त' का विचार अच्छा है, किंतु व्यवहार में 'विश्वस्त' को न्याय के किन नियमों और निर्देशों से बाँधा जाए और कौन बाँधे, यह प्रश्न तो बना ही रहता है।

व्यक्ति या व्यक्तियों का ऐसा समूह, जिसके साथ व्यक्ति जीवन के सभी प्रमुख व्यवहारों तथा आवश्यकताओं के लिए निगडित है, बिना संपत्ति के नहीं रह सकता। कर्म के साथ कर्मफल जुड़ा है। अर्जित के उपभोग एवं उपयोग की स्वतंत्रता में से संपत्ति पैदा होती है। संपूर्ण आय का उपभोग न कर बचत करना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा राष्ट्रीय गुण है। संपत्ति में भी मानव को प्रतिष्ठा, सुरक्षा तथा तुष्टि की अनुभूति होती है। अतः हम संपत्ति को पूरी तरह नहीं मिटा सकते।

संपत्ति का आधार समाज-सापेक्ष है। सब वस्तुओं के लिए एक सी संपत्ति-व्यवस्था नहीं है। एक ही वस्तु के लिए सब स्थानों पर और सब समय के लिए एक व्यवस्था नहीं है। यह विभेद समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित हुआ है। जो लोग समाज को संपत्ति का नियंता नहीं मानते, वे केवल इतना चाहते हैं कि समाज विद्यमान मान्यताओं में परिवर्तन न करे। समाज को इस बात का अधिकार है तथा अनेक बार उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह संपत्ति संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन करे। संपत्ति का अबाध एवं अपरिवर्तनीय अधिकार जैसी कोई चीज़ नहीं है।

संपत्ति का अधिकार हमें मर्यादाओं के अंतर्गत स्वीकार करना होगा। इन सीमाओं का निर्धारण समाज तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं जीवन-मूल्यों के आधार पर निश्चित होना चाहिए। जब संपत्ति अपने प्रभाव से स्वामी को आलसी या विलासी और दूसरों को अभावग्रस्त या परतंत्र बनाए तो उसका नियमन आवश्यक है।

संपत्ति संबंधी अधिकारों में परिवर्तन होने पर प्रभावित व्यक्ति के पुनर्वास का दायित्व मूलतः समाज पर आता है। किंतु क्षतिपूर्ति का सिद्धांत नैश्चिंत्य तथा स्थायित्व की दृष्टि से आवश्यक है।

अर्थव्यवस्था की कसौटी

राज्य-व्यवस्था की भाँति अर्थव्यवस्था का निष्कर्ष भी मानव का सर्वतोन्मुखी विकास होना चाहिए। मानव का सुख ही अर्थोत्पादन का प्रमुख लक्ष्य है तथा मानव-शक्ति उसका प्रधान साधन है। प्रकृति के साधनों का उपयोग कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास ही मानव की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य रहा है। जो इस उद्देश्य की सफल पूर्ति के साथ-साथ मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक हो सके, वही उपयुक्त व्यवस्था है। जिस व्यवस्था में आर्थिक क्षमता तो बढ़े, किंतु मानवता के अन्य

अंगों के विकास की शक्ति कुंठित हो जाए, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती। मानव ही हमारी व्यवस्था का केंद्र होना चाहिए।

संपूर्ण मानव का विचार, न केवल एक अर्थपरायण मानव का सभी कृतियों का केंद्र बनाकर, विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अधूरी है। अधिकतम लाभ की स्थायी आकांक्षा इस व्यवस्था की प्रेरक तथा प्रतिस्पर्धा की नियामक शक्ति है। यह भाव भारतीय जीवन-दर्शन से बेमेल है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं की प्रतिक्रिया में कल्पित समाजवाद के उद्देश्य श्लाघ्य होने के उपरांत भी परिणाम में मानव हितकारी सिद्ध नहीं हुए। क्योंकि वैज्ञानिक समाजवाद के उद्गाता कार्ल मार्क्स का व्यक्ति और समाज का विश्लेषण मूलतः भौतिकवादी है और इसीलिए अधूरा है। वर्ग-संघर्ष की भूमिका में एक स्वेच्छया स्थायी सहयोग की भावना पैदा नहीं हो सकती।

पूँजीवादी और समाजवादी दोनों व्यवस्थाओं में पूँजी के स्वामित्व के विषय में मतभेद है, किंतु दोनों की परिणति केंद्रीकरण तथा एकाधिपत्य में होती है। फलतः दोनों मानव की उपेक्षा करती हैं। हमें ऐसी अर्थव्यवस्था चाहिए, जिसमें व्यक्ति की अपनी प्रेरणा बनी रहे तथा वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने संबंधों में मानवता का विकास कर सके। विकेंद्रित अर्थव्यवस्था ही इस लक्ष्य को सिद्ध कर सकती है।

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

शक्ति का केंद्रीकरण लोकतंत्र एवं मानव-स्वतंत्रता के अनुकूल है। राष्ट्रीय एकात्मकता के अधीन राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों का भौगोलिक एवं व्यावसायिक दोनों ही दृष्टियों से विकेंद्रीकरण होना चाहिए। पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की जो ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है, उससे शक्तियों का केंद्रीकरण हुआ है। सीमित समवाय, प्रबंध अधिकरण तथा सूत्रधारी समवाय आदि की क़ानूनी व्यवस्थाओं ने इसका पोषण किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक दोष केंद्रीकरण की देन हैं। समाजवाद की व्यवस्था ने केंद्रीकरण को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की। उसने व्यक्तियों के हाथ से पूँजी के स्वामित्व को छीनकर राज्यों के हाथों में सौंपने मात्र से संतोष कर लिया। किंतु इससे राजनीतिक और आर्थिक दोनों शक्तियों के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण केंद्रीकरण तथा उसके दोषों में और अधिक वृद्धि हुई है। रोग का इलाज विकेंद्रीकरण से ही संभव है। आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं का इस उद्देश्य से पुनर्निर्धारण करना होगा। विज्ञान की आधुनिकतम खोजें और प्रौद्योगिकी विकेंद्रित उद्योगों के पक्ष में हैं। मानव व्यक्तित्व को बनाए रखने और उसके सर्वतोमुखी विकास की इस व्यवस्था में सर्वाधिक सुविधा है। निजी या सहकारी स्वामित्व में छोटे यंत्रचालित उद्योग, छोटा

व्यापार और कृषि हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार हों। बड़े उद्योगों का विचार अपवाद रूप में ही किया जाए।

प्रगति के मानदंड

जन्म लेनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण की, उसके शिक्षण की, जिससे वह समाज के एक ज़िम्मेदार घटक के नाते अपना योगदान करते हुए अपने विकास में समर्थ हो सके, उसके लिए स्वस्थ एवं क्षमता की अवस्था में जीविकोपार्जन की, और यदि किसी भी कारण वह संभव न हो तो भरण-पोषण की तथा उचित अवकाश की व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी समाज की है। प्रत्येक सभ्य समाज इसका किसी-न-किसी रूप में निर्वाह करता है। प्रगति के यही मुख्य मानदंड हैं। अतः न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी, शिक्षा, जीविकोपार्जन के लिए रोज़गार, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण को हमें मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार करना होगा।

एकात्म मानववाद

हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए, जो 'यत् पिन्डे तद्ब्रह्माण्डे' के न्यायानुसार समष्टि का जीवंत प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्न रुचिलोक का विचार केवल एक औसत मानव से अथवा शरीर-मन-बुद्धि एवं आत्मायुक्त अनेक एषणाओं से प्रेरित पुरुषार्थ चतुष्ट्यशील पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाए, वह अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है, जो अनेक एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद (Integral Humanism) के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।

मानवतावाद के नाम से कई विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। किंतु उनका विचार भारतीय संस्कृति के चिंतन से अनुप्राणित न होने के कारण मूलतः भौतिकवादी है। मानव के नैतिक स्वरूप अथवा व्यवहार के लिए वे कोई तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत नहीं कर पाईं। आध्यात्मिकता को अमान्य कर मानव तथा मानव और जगत् के संबंधों एवं व्यवहार की संगति नहीं बिठाई जा सकती।

आह्वान

भारत के अधिकांश राजनीतिक दल पाश्चात्य विचारों को लेकर ही चलते हैं। वे वहाँ की किसी-न-किसी राजनीतिक विचारधारा से संबद्ध एवं वहाँ के दलों की अनुकृति मात्र हैं। वे भारत की मनीषा को पूर्ण नहीं कर सकते और न चौराहे पर खड़े विश्व-मानव का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

अंगों के विकास की शक्ति कुंठित हो जाए, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती। मानव ही हमारी व्यवस्था का केंद्र होना चाहिए।

संपूर्ण मानव का विचार, न केवल एक अर्थपरायण मानव का सभी कृतियों का केंद्र बनाकर, विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अधूरी है। अधिकतम लाभ की स्थायी आकांक्षा इस व्यवस्था की प्रेरक तथा प्रतिस्पर्धा की नियामक शक्ति है। यह भाव भारतीय जीवन-दर्शन से बेमेल है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं की प्रतिक्रिया में कल्पित समाजवाद के उद्देश्य श्लाघ्य होने के उपरांत भी परिणाम में मानव हितकारी सिद्ध नहीं हुए। क्योंकि वैज्ञानिक समाजवाद के उद्गाता कार्ल मार्क्स का व्यक्ति और समाज का विश्लेषण मूलत: भौतिकवादी है और इसीलिए अधूरा है। वर्ग-संघर्ष की भूमिका में एक स्वेच्छया स्थायी सहयोग की भावना पैदा नहीं हो सकती।

पूँजीवादी और समाजवादी दोनों व्यवस्थाओं में पूँजी के स्वामित्व के विषय में मतभेद है, किंतु दोनों की परिणति केंद्रीकरण तथा एकाधिपत्य में होती है। फलत: दोनों मानव की उपेक्षा करती हैं। हमें ऐसी अर्थव्यवस्था चाहिए, जिसमें व्यक्ति की अपनी प्रेरणा बनी रहे तथा वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने संबंधों में मानवता का विकास कर सके। विकेंद्रित अर्थव्यवस्था ही इस लक्ष्य को सिद्ध कर सकती है।

विकेंद्रित अर्थव्यवस्था

शक्ति का केंद्रीकरण लोकतंत्र एवं मानव-स्वतंत्रता के अनुकूल है। राष्ट्रीय एकात्मकता के अधीन राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों का भौगोलिक एवं व्यावसायिक दोनों ही दृष्टियों से विकेंद्रीकरण होना चाहिए। पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की जो ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है, उससे शक्तियों का केंद्रीकरण हुआ है। सीमित समवाय, प्रबंध अधिकरण तथा सूत्रधारी समवाय आदि की क़ानूनी व्यवस्थाओं ने इसका पोषण किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक दोष केंद्रीकरण की देन हैं। समाजवाद की व्यवस्था ने केंद्रीकरण को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की। उसने व्यक्तियों के हाथ से पूँजी के स्वामित्व को छीनकर राज्यों के हाथों में सौंपने मात्र से संतोष कर लिया। किंतु इससे राजनीतिक और आर्थिक दोनों शक्तियों के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण केंद्रीकरण तथा उसके दोषों में और अधिक वृद्धि हुई है। रोग का इलाज विकेंद्रीकरण से ही संभव है। आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं का इस उद्देश्य से पुनर्निर्धारण करना होगा। विज्ञान की आधुनिकतम खोजें और प्रौद्योगिकी विकेंद्रित उद्योगों के पक्ष में हैं। मानव व्यक्तित्व को बनाए रखने और उसके सर्वतोमुखी विकास की इस व्यवस्था में सर्वाधिक सुविधा है। निजी या सहकारी स्वामित्व में छोटे यंत्रचालित उद्योग, छोटा

व्यापार और कृषि हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार हों। बड़े उद्योगों का विचार अपवाद रूप में ही किया जाए।

प्रगति के मानदंड

जन्म लेनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के भरण-पोषण की, उसके शिक्षण की, जिससे वह समाज के एक ज़िम्मेदार घटक के नाते अपना योगदान करते हुए अपने विकास में समर्थ हो सके, उसके लिए स्वस्थ एवं क्षमता की अवस्था में जीविकोपार्जन की, और यदि किसी भी कारण वह संभव न हो तो भरण-पोषण की तथा उचित अवकाश की व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी समाज की है। प्रत्येक सभ्य समाज इसका किसी-न-किसी रूप में निर्वाह करता है। प्रगति के यही मुख्य मानदंड हैं। अतः न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी, शिक्षा, जीविकोपार्जन के लिए रोज़गार, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण को हमें मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार करना होगा।

एकात्म मानववाद

हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए, जो 'यत् पिन्डे तद्ब्रह्माण्डे' के न्यायानुसार समष्टि का जीवंत प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्न रुचिलोक का विचार केवल एक औसत मानव से अथवा शरीर-मन-बुद्धि एवं आत्मायुक्त अनेक एषणाओं से प्रेरित पुरुषार्थ चतुष्ट्यशील पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाए, वह अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है, जो अनेक एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद (Integral Humanism) के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।

मानवतावाद के नाम से कई विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। किंतु उनका विचार भारतीय संस्कृति के चिंतन से अनुप्राणित न होने के कारण मूलतः भौतिकवादी है। मानव के नैतिक स्वरूप अथवा व्यवहार के लिए वे कोई तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत नहीं कर पाईं। आध्यात्मिकता को अमान्य कर मानव तथा मानव और जगत् के संबंधों एवं व्यवहार की संगति नहीं बिठाई जा सकती।

आह्वान

भारत के अधिकांश राजनीतिक दल पाश्चात्य विचारों को लेकर ही चलते हैं। वे वहाँ की किसी-न-किसी राजनीतिक विचारधारा से संबद्ध एवं वहाँ के दलों की अनुकृति मात्र हैं। वे भारत की मनीषा को पूर्ण नहीं कर सकते और न चौराहे पर खड़े विश्व-मानव का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा लेकर चलनेवाले भी कुछ राजनीतिक दल हैं। किंतु वे भारतीय संस्कृति की सनातनता को उसकी गतिहीनता समझ बैठे हैं और इसलिए बीते युग की रूढ़ियों अथवा यथास्थिति का समर्थन करते हैं। संस्कृति के क्रांतिकारी तत्त्व की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। वास्तव में समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियाँ, जैसे छुआछूत, जाति-भेद, दहेज, मृत्युभोज, नारी अवमानना आदि भारतीय संस्कृति और समाज के स्वास्थ्य की सूचक नहीं, बल्कि रोग लक्षण हैं। भारत के अनेक महापुरुष, जिनकी भारतीय परंपरा और संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा थी, इन बुराइयों के विरुद्ध लड़े। आज के अनेक आर्थिक और सामाजिक विधानों की हम जाँच करें तो पता चलेगा कि वे हमारी सांस्कृतिक चेतना के क्षीण होने के कारण युगानुकूल परिवर्तन और परिवर्धन की कमी से बनी हुई रूढ़ियाँ, परकीयों के साथ संघर्ष की परिस्थिति से उत्पन्न माँग को पूरा करने के लिए अपनाए गए उपाय अथवा परकीयों द्वारा थोपे गए या उनका अनुकरण कर स्वीकार की गई व्यवस्थाएँ मात्र हैं। भारतीय संस्कृति के नाम पर उन्हें ज़िंदा नहीं रखा जा सकता।

एकात्म मानव विचार भारतीय और भारत-बाह्य सभी चिंतनधाराओं का सम्यक् आकलन करके चलता है। उनकी शक्ति और दुर्बलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है, जो मानव को अब तक के उसके चिंतन, अनुभव और उपलब्धि की मंज़िल से आगे बढ़ा सके।

पाश्चात्य जगत् ने भौतिक उन्नति तो की, किंतु उसकी आध्यात्मिक अनुभूति पिछड़ गई। भारत भौतिक दृष्टि से पिछड़ गया और इसलिए उसकी आध्यात्मिकता शब्द मात्र रह गई। 'नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः' अर्थात् अशक्त आत्मानुभूति नहीं कर सकता। बिना अभ्युदय के निःश्रेयस की सिद्धि नहीं होती। अतः आवश्यक है कि 'बलमुपास्व' के आदेश के अनुसार हम बल संवर्धन करें, अभ्युदय के लिए प्रयत्नशील हों, जिससे अपने रोगों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ कर सकें तथा विश्व के लिए भार न बनकर उसकी प्रगति में साधक हो सकें।

राष्ट्रीय नीति

भारतीय संस्कृति के शाश्वत, प्रवहमान, दैवी एवं समन्वयकारी तत्त्वों को ही एकात्म मानव के धर्म की संज्ञा दी गई है। यह वह आदर्श है, जो हमारी दिशा निश्चित करेगा। आदर्शोन्मुख रहते हुए भी जनसंघ किसी वाद को लेकर हठवादी बनना उचित नहीं समझता। आदर्श की व्यवहार में परिणति आवश्यक है। उसके लिए यथार्थ के ठोस धरातल का आकलन कर ही कार्यक्रम बनाने होंगे। यथार्थ ही प्रयत्नों की, उपलब्धियों के माप तथा सिद्धांतों की कसौटी है। इस पृष्ठभूमि में भारत की वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनसंघ निम्नलिखित नीति और कार्यक्रम निर्धारित करता है।

एक देश

उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी पर्यंत समस्त भारतवर्ष भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से सदैव एक और अखंड रहा है। इस जीवंत एकता तथा अखंडता की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्ति हुई है। देश के कण-कण के प्रति अपना पवित्र एवं अटूट प्रेम प्रकट करने के लिए हमने उसकी भारतमाता के रूप में उपासना की है। 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेज़ी राज्य की समाप्ति के साथ भारत की चली आई एकता को भी खंडित कर दिया गया। भारतभूमि पर पाकिस्तान का अस्तित्व केवल एक स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता ही नहीं, अपितु एक संस्कृति एवं एक राष्ट्र के सत्य सिद्धांत के विपरीत दो संस्कृतियों एवं दो राष्ट्रों के सिद्धांतों को मूर्तिमान करने का प्रयत्न है। यह प्रवृत्ति भारत के मानस की विकृति है। अतः उससे अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है। भारतीय जनसंघ की नीतियों का लक्ष्य रहेगा कि भारत और पाकिस्तान के विलगाव को दूर कर उन्हें एक साथ लाया जाए।

भारतीय जनसंघ संपूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य को भारत का अभिन्न अंग मानता है। भारत का संविधान अन्य प्रदेशों की भाँति ही इस प्रदेश पर लागू होना आवश्यक है।

पुर्तगाली तथा फ्रांसीसी शासन से मुक्त भारतीय भू-भाग[1] संलग्न प्रदेशों में जोड़ दिया जाए।

एक जन

भारतभूमि पर निवास करनेवाला तथा उसके प्रति ममता रखनेवाला विशाल मानव समुदाय एक जन है। अनेक विविधताओं के होते हुए भी उसमें मूलभूत एकता है। विविधताएँ विकृति अथवा विघटन की सूचक नहीं, उसके स्वाभाविक विकास का परिणाम एवं सांस्कृतिक समृद्धि की परिचायक हैं। भारतीय जन की एकता की रक्षा करने और उसे बढ़ाने के लिए प्रयत्न करने होंगे। परस्पर आत्मीयता और समानता के भाव जन-एकता के लिए आवश्यक हैं। इन भावों की विघातक रीतियों तथा व्यवस्थाओं को समाप्त करना होगा। ऊँच-नीच तथा छुआछूत को मिटाने के लिए प्रशासनिक और वैधानिक ही नहीं अपितु शैक्षणिक, सुधारवादी एवं आंदोलनात्मक कार्यक्रम भी आयोजित करने होंगे। जाति और वर्ग के आधार पर समाज में प्रतिष्ठा की कल्पना और उस आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक मंदिरों तथा उपासनागृहों में सबको बिना किसी भेदभाव के दर्शन का अधिकार आवश्यक है।

सदियों से अभिशप्त, शिक्षा तथा संस्कार की दृष्टि से पिछड़े और आर्थिक रूप से

---

1. पुर्तगाली शासन से मुक्त क्षेत्र थे—गोवा, दादरा व नगर हवेली, दमन तथा दीव। जबकि फ्रांसीसी गुलामी से मुक्त क्षेत्र थे—पॉण्डिचेरी, कराईकल, यानम, माहे और चंद्रनगर।

अभावग्रस्त वर्गों को आगे लाने के लिए विशेष सुविधा देनी होगी। बिना उसके उनके लिए सबके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर प्रगति की राह पर चलना संभव नहीं होगा। किंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि पिछड़ेपन में लोगों का निहित स्वार्थ न बन जाए तथा जातिगत भेद मिटने के स्थान पर और रूढ़ न हो जाए।

महिलाओं की सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक अयोग्यताओं को दूर करने के लिए विशेष प्रयास हों, जिससे वे घर, समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह कर सकें। जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं को समान अवसर मिले। परदा, दहेज, बाल-विवाह, विषम-विवाह आदि कुरीतियों को समाप्त करने के लिए सुधारवादी कार्यक्रम अपनाने होंगे।

मातृत्व की प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा है। मातृ-कल्याण के कार्यक्रम सामाजिक सुरक्षा के महत्त्वपूर्ण अंग होने चाहिए। वेतन और भृति में स्त्री और पुरुष दोनों के समान स्तर रखे जाएँ।

भारत के सभी जनों के विवाह, उत्तराधिकार, दत्तक-विधान आदि का नियमन करने के लिए एक ही व्यवहार-विधि होनी चाहिए।

एक संस्कृति

एक भूमि के ऊपर एक जन के रूप में जीवित भारतीय समाज ने आसेतु हिमाचल तक जिस संस्कृति का विकास किया है, वह एक है। भारत जैसे विशाल देश में यह स्वाभाविक है कि विभिन्न प्रादेशिक, स्थानीय अथवा जातिगत जीवन-पद्धतियों का विकास हो। भारतीय संस्कृति में उन सबका समन्वय हुआ है। यह कभी वाद या पंथ-विशेष से बँधी नहीं रही। परंतु वे सभी भारतीय राष्ट्र के विशाल कुटुंब के अंग रहे हैं और भारतीय संस्कृति के विकास में उन सबने भाग लिया है। इसकी धारा वैदिक काल से अब तक अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित चली आती है। समय-समय पर विभिन्न जातियों, पंथों और संस्कृतियों के संपर्क में आने पर इसने उनको इस रूप में आत्मसात् कर लिया कि वे इसके मूल प्रवाह के साथ अभिन्न हो गईं। यह भारतीय संस्कृति भारत के समान एक और अखंड है। मिली-जुली संस्कृति की चर्चा तर्कविरुद्ध ही नहीं, प्रत्युत भयावह भी है, क्योंकि वह राष्ट्रीय एकता को क्षीण कर विघटनात्मक प्रवृत्तियों को पुष्ट करती है।

एक राष्ट्र

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से इसके चिरकालीन इतिहास में एक नवीन अध्याय आरंभ हुआ है, किसी नए राष्ट्र का जन्म नहीं। स्वभावतः भारतीय राष्ट्रवाद का आधार संपूर्ण भारत एवं इसकी सनातन संस्कृति के प्रति निष्ठा ही हो सकता है।

भारत की राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को जनसंघ सर्वोपरि प्राथमिकता देता है।

राष्ट्रीय निष्ठाओं को बलवती बनाने के भावात्मक प्रयत्नों से ही राष्ट्रीय एकता को पुष्ट किया जा सकता है तथा विघटन और विच्छेद की प्रवृत्तियों से रोका जा सकता है। प्रत्येक को उपासना पद्धति की पूर्ण स्वतंत्रता देते हुए भी भारतीय जनसंघ मज़हब को राजनीति के साथ मिलाने अथवा सांप्रदायिक आधार पर विशेष अधिकारों की माँग करने की प्रवृत्ति का, जो सांप्रदायिक राज्य के सिद्धांत के प्रतिकूल तथा राष्ट्रीय एकात्मता में बाधक है, विरोधी है और उसे किसी प्रकार का प्रश्रय नहीं दे सकता।

अल्पमतों के प्रति सहिष्णुता एवं पूर्ण भेदभावरहित व्यवहार राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र के अनिवार्य अंग हैं। भारतीय जनसंघ सभी प्रकार के अल्पमतों को इस बात की आश्वस्ति देता है, किंतु मज़हब या अन्य आधार पर भारतीय जन को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक वर्गों में बाँटना और उसे देश की राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक नीतियों का आधार बनाना अतर्कसंगत तथा राष्ट्रीयता की शुद्ध परिकल्पना के अज्ञान का परिचायक है। राजनीतिक तथा प्रशासन में इस प्रकार की भ्रांत धारणाओं पर आधारित वर्गीकरण के लिए कोई स्थान नहीं है।

पाकिस्तान में रहनेवाली जनता मूलतः भारतीय राष्ट्र का अंग रही है। मुसलिम लीग द्वारा द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत के प्रतिपादन तथा पाकिस्तान द्वारा इसलामी राज्य की घोषणा से वहाँ के ग़ैर-मुसलिम जन विधानतः दूसरे दर्जे के नागरिक बना दिए गए हैं। अन्याय और उत्पीड़न का शिकार बनकर वे भारत आने को विवश हुए हैं। भारतीय राज्य का यह दायित्व है कि वह इन बंधुओं को पाकिस्तान में समान अधिकार तथा सुरक्षा और सम्मानपूर्वक जीवनयापन की सुविधाएँ दिलाने के लिए प्रयत्न करे अथवा उन्हें योजनापूर्वक भारत लाने, उनका पुनर्वास करने तथा क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था करे।

जब तक पाकिस्तान का अस्तित्व भारत के प्रति शत्रुभावापन्न हुए एक पृथक् इसलामी राज्य के रूप में विद्यमान है, तब तक भारत के मुसलमानों की स्थिति नाज़ुक है। शासन को इस बात का विशेष प्रयत्न करना होगा कि पाकिस्तानी प्रवृत्ति को जन्म देनेवाली ऐतिहासिक प्रक्रिया बदली जाए और ऐसे कोई कारण न रहें, जिससे पाकिस्तान भारत के इन नागरिकों की निष्ठा डिगाने में सफल हो सके।

भारत स्थित ईसाई एवं अन्य मतावलंबी मिशनों को विदेशी प्रभाव एवं नियंत्रण से मुक्त करना होगा, जिससे वे विदेशी शक्तियों के हाथों के खिलौने न बन सकें।

शासन व्यवस्था

एक देश, एक जन और एक संस्कृति के आधार पर एकात्मता के लिए पोषक और उसकी अभिव्यक्ति का सफल उपकरण एकात्म राज्य संविधान ही हो सकता है।

संघात्मक संविधान की कल्पना राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक है।

भारत की राज्य-व्यवस्था तथा लोकजीवन के विकास में जनपदों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अतः वर्तमान प्रदेशों का ऐतिहासिक एवं लोक-व्यवहार के आधार पर जनपदों में परिसीमन होना चाहिए। वहाँ निर्वाचित जनपद सभाओं को शासन के अधिकार हों। जनपदों के अंतर्गत ज़िले, विकासखंड तथा पंचायतें बनाई जाएँ। संपूर्ण देश के लिए विधान बनाने का अधिकार संसद् को हो। जनपद सभाओं को अपनी क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार उपविधियों के निर्माण का तथा विधान-विशेष के लिए संसद् को संस्तुति करने का अधिकार हो। संवैधानिक राज्यपालों के स्थान पर विभिन्न जनपदों के कार्यों को समन्वित करने के लिए प्रदेशीय अथवा क्षेत्रीय आधार पर प्रशासक नियुक्त हो।

विभिन्न निकायों के बीच शक्ति एवं साधन-स्रोतों का इस प्रकार विभाजन किया जाए कि प्रत्येक आत्मनिर्भर होकर उत्तरदायी स्वायत्तता का उपभोग कर सके।

प्रशासन

प्रशासन राज्य का इतना महत्त्वपूर्ण अंग है कि सामान्य जन उसी को राज्य समझकर चलते हैं। प्रशासन का सुदक्ष, सक्षम, शुचितापूर्ण, जन-भावनाओं तथा जन-आवश्यकताओं के प्रति सहानुभूतिपूर्वक जागरूक, उत्तरदायी, अनुशासित, कर्तव्यदक्ष एवं आत्मसम्मानपूर्ण होना नितांत आवश्यक है। साथ ही भृत्यवर्ग में अपनी सेवाओं और परिलाभ के संबंध में नैश्चिंत्य रहना चाहिए तथा यह विश्वास होना चाहिए कि भरती और पदोन्नति में पक्षपात नहीं किया जाएगा। कुशलता के लिए प्रोत्साहन और पुरस्कार तथा चूक के लिए दंड होना चाहिए।

सामान्यतः केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय शासन के कर्मचारियों के वेतन और परिलाभ की दरें समान होनी चाहिए।

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों ही कारणों से प्रशासन में मितव्ययिता एक राष्ट्रीय कर्तव्य है। सामान्य जन और प्रशासक वर्ग के जीवन स्तर में भारी अंतर असंतोष, भ्रष्टाचार, मुद्रास्फीति तथा सामाजिक विभेद पैदा करता है। इस अंतर को क़म करना होगा। प्रत्युत सभी कर्मचारियों के मन में राष्ट्र-निर्माण के महान् दायित्व से सहभागी होने का भाव जाग्रत् होना चाहिए तथा वही उनके कर्म की मूल प्रेरणा होनी चाहिए।

सरकारी कर्मचारियों के राजनीति संबंधी प्रजातंत्रीय अधिकारों को मतदान छोड़कर समाप्त करने की परंपरा चली आ रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के साथ शासकीय सेवाकर्मियों का भी विस्तार होता रहा है। समाज के इस लगातार बढ़ते हुए वर्ग को राजनीति के प्रति उदासीन बनाना प्रजातंत्र के स्वस्थ विकास की दृष्टि से अनुपयुक्त है।

अतः अधिकारी वर्ग, सामान्य प्रशासन और सेना तथा पुलिस जैसे विभागों के अतिरिक्त शेष कर्मचारियों को राजनीति में भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए।

न्याय

न्याय सस्ता, सर्वजन सुलभ तथा अविलंबित होना चाहिए। भारत की न्याय-व्यवस्था अंग्रेज़ी परंपरा का अनुसरण करके ही चल रही है। उसमें सुधार और परिवर्तन करना होगा।

न्यायपालिका को कार्यपालिका से सब स्तरों पर पृथक् तथा मुक्त रहना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतंत्रता और प्रामाणिकता में बाधक प्रवृत्तियों और व्यवस्थाओं को समाप्त किया जाए।

राष्ट्रीय सुरक्षा

राष्ट्र की सीमाओं का व्याप, उनकी स्थिति, अंतरराष्ट्रीय राजनीति, पड़ोसियों की नीति और तैयारी का ध्यान रखकर सुरक्षा-बल की सभी शाखाओं का पर्याप्त विकास कर उन्हें आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित किया जाए।

देश की अर्थनीति और विदेश नीति के निर्धारण में सुरक्षा की आवश्यकताओं पर विशेष बल दिया जाए।

राष्ट्र को मानसिक एवं शारीरिक, दोनों दृष्टियों से सुरक्षा सन्नद्ध करने के लिए जनसंघ निम्नलिखित क़दम उठाना आवश्यक समझता है—

1. राष्ट्र के युवकों के लिए दो वर्ष की अनिवार्य सैनिक भरती।
2. सुरक्षा सेनाओं की सभी शाखाओं का स्वरूप और अंत:स्फूर्ति दोनों दृष्टियों से पूर्ण भारतीयकरण।
3. रक्षा संबंधी उद्योगों का पर्याप्त विकास।
4. परमाणु-अस्त्रों का निर्माण।
5. एक विशाल प्रादेशिक सेना का संगठन।

सीमांत क्षेत्रों का विकास

सीमांत क्षेत्रों के विकास की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए तथा वहाँ के निवासियों को पूर्णतः सुसज्जित किया जाए, जिससे वे एक दृढ रक्षापंक्ति का काम कर सकें तथा सीमा के छोटे-मोटे उल्लंघनों को रोक सकें। पाकिस्तान से लगी सीमा के क्षेत्रवासी पाकिस्तान की घुसपैठ की योजनाओं को निष्फल करने में समर्थ हो सकें, इस दृष्टि से उस क्षेत्र की रचना की जाए।

भाषा नीति

भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हैं। वे भारतीय जीवन की आधारभूत एकता की अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम रही हैं। उनमें कोई प्रकृति-भेद नहीं है, प्रत्युत उनका संस्कृत के साथ आधारभूत संबंध होने के कारण तथा समान विचारधारा, समान धर्म, समान ज्ञान-विज्ञान होने के कारण उनकी एक बड़ी समान शब्दावली है तथा एक ही समाज की भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण उनके साहित्य की आत्मा एक है। पश्चिम के ज्ञान और विज्ञान को प्रकट करने के लिए आज सभी भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली के सृजन की आवश्यकता है। केंद्र के निर्देशन में समान शब्दावली का निर्माण इस कार्य को सुकर बनाएगा तथा इन भाषाओं के स्वरूप की निकटता को आगे बढ़ाएगा।

शासन और शिक्षा, उद्योग और व्यापार सभी क्षेत्रों में स्वभाषाओं का प्रयोग स्वराज्य की स्वाभाविक परिणति है। राष्ट्रीय मनीषा को प्रकट करनेवाले जन-व्यवहार तथा जन-आंदोलनों के परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं के प्रयोग-क्षेत्र का एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में विकास हुआ है। हमारा कर्तव्य है कि इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाएँ। शासन एवं शिक्षा के क्षेत्र की भाषा-नीति का निर्धारण इसी आधार पर होना चाहिए।

राष्ट्रभाषा-संस्कृत

संस्कृत सदैव से भारत की राष्ट्रभाषा रही है। संस्कृत को इस रूप में मान्यता मिलनी चाहिए तथा विशेष संस्कार के अवसरों पर उसका प्रयोग करना चाहिए।

राजभाषा

भारत की भाषाओं में हिंदी ही सर्वाधिक समझी जानेवाली तथा पिछले अनेक वर्षों में अखिल भारतीय भाषा के रूप में विकासमान भाषा है। संविधान ने उसे केंद्रीय भाषा के रूप में अंगीकार कर इस तथ्य को स्वीकार किया है। देवनागरी लिपि में हिंदी का प्रयोग केंद्रीय राजभाषा के रूप में होना चाहिए।

विभिन्न प्रदेशों में वहाँ की भाषाएँ राज-काज में प्रयुक्त होनी चाहिए। केंद्रीय शासन के जिन विभागों का जनता के साथ सीधा संबंध है, वहाँ क्षेत्रीय भाषाओं का व्यवहार हो।

भारतीय भाषाओं के राजभाषा के रूप में व्यवहार के कारण राजसेवा में भरती तथा पदोन्नति के संबंध में उन व्यक्तियों के मन में आशंकाएँ पैदा हो सकती हैं, जिनको इन भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। अंतरिम काल के लिए उन्हें इस विषय में आश्वस्ति देनी चाहिए।

अनुसूचित भाषाएँ

भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। अत: भारत के किसी भी भू-भाग में किसी भी अनुसूचित भाषा में प्रशासनाधिकारियों को आवेदन देने पर प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। सिंधी का अनुसूचित भाषाओं में समावेश हो।

उर्दू अलग भाषा न होकर हिंदी की एक शैली है, जिसका साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके विकास के लिए आवश्यक है कि वह नागरी लिपि में लिखी जाए।

संविधान में अनुसूचित भाषाओं के अतिरिक्त भी भारत में अनेक लोकभाषाएँ हैं। इनका विकास तथा संबंधित क्षेत्रीय भाषा के साथ उनका निकट का संबंध दोनों के लिए पोषक होगा तथा हमारे साहित्य को सही अर्थ में जनजीवन का आदर्श बनाएगा।

शिक्षा

शिक्षा व्यक्ति का सामाजिक अधिकार है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति समाज के साथ एकात्म होता है तथा अपने व्यक्तित्व की साधना के मार्ग तथा लक्ष्य को पाता है। शिक्षा के सहारे मानव की अद्यतन संचित ज्ञाननिधि हस्तांतरित होती है। इस पूँजी को लेकर ही मानव समष्टि को अपना योगदान करता है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपनी वृत्ति का अनुपालन करता हुआ राष्ट्र के एक उत्तरदायी एवं संवेदनशील घटक के नाते अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर सके। साक्षरता, पुस्तक ज्ञान तथा तंत्रपटुता के साथ शारीरिक शक्ति का विकास, बुद्धि उद्बोधन, शील-संवर्धन, आदर्शों का प्रतिस्थापन, सामाजिकता एवं शिष्टाचार का स्वभाव-निर्माण शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं। स्पष्ट है कि यह शिक्षा राष्ट्रीय जीवनमूल्यों से अलग हटकर नहीं दी जा सकती। इस दृष्टि से शिक्षा के भारतीयकरण तथा अभिनवीकरण की आवश्यकता है, जिसकी कमी का अनुभव बहुत दिनों से व्यापक रूप से होते हुए भी उसे पूरा करने के लिए कोई क़दम नहीं उठाए गए।

शिक्षा व्यवस्था

प्रजा को शिक्षा की उपेक्षा न करने देना, शिक्षा संबंधी कार्यों में उनकी सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विद्वान् गुरुओं का प्राचुर्य रखना, देशकाल निमित्तों को शिक्षा के अनुकूल रखना, स्थान-स्थान पर शिक्षाश्रमों की व्यवस्था करना, स्नातकों एवं आचार्यों का योगक्षेम करना, सर्वत: उनके उत्साह को बढ़ाए रखना राज्य के परंपरागत कर्तव्य हैं।

राज्य की शिक्षा-नीति का निम्नलिखित लक्ष्य होना चाहिए—

1. माध्यमिक स्तर तक प्रत्येक बालक और बालिका के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का प्रबंध। यह स्तर इतना हो कि व्यक्ति विषयों के सामान्य ज्ञान के साथ आवश्यकतानुसार जीविकोपार्जन की क्षमता प्राप्त कर सके।

2. उच्च शिक्षा के लिए इच्छुक विद्यार्थियों के शिक्षण की उपयुक्त एवं पर्याप्त व्यवस्था।

स्वायत्त शिक्षा

शिक्षा का व्यय राज्य द्वारा वहन होने के उपरांत भी उसका सरकारीकरण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के स्वायत्त निकाय होने चाहिए। सरकार के विभाग के रूप में उनका चलाना ठीक नहीं। सरकारी और ग़ैर-सरकारी शिक्षण संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए। सभी क्षेत्रों के शिक्षकों के वेतनक्रम एवं अन्य सुविधाएँ ऐसी हों, जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में आने में संकोच न करे। शिक्षा संस्थाओं को मैनेजरों अथवा प्रबंध-समिति की निजी संपत्ति बनने देना उचित नहीं।

शिक्षा समाज में भेद-निर्माण करनेवाली न होकर उसमें एकात्म-भाव निर्माण करनेवाली हो। भारत के 'पब्लिक स्कूल' इस उद्‌देश्य के प्रतिकूल हैं। आवश्यकता है कि सभी शिक्षण संस्थाओं का स्तर ऊँचा उठाया जाए।

शिक्षा का माध्यम

स्वभाषा के बिना जनता का विकास संभव नहीं है। जब तक भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता, तब तक न तो हम सभी जनों को साक्षर और शिक्षित कर सकेंगे और न उस पैमाने पर तंत्र एवं अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञ उत्पन्न कर सकेंगे, जिनकी हमारी विकास योजनाओं को आवश्यकता है। मौलिक चिंतन तथा खोज तो परायी भाषा द्वारा प्राप्त ज्ञान में सहज संभव ही नहीं।

जनसंघ अंग्रेज़ी या अन्य विदेशी भाषाओं का विरोधी नहीं। दुनिया के विभिन्न देशों के साथ संपर्क बढ़ाने तथा ज्ञान के आदान-प्रदान के लिए हमें अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, स्पैनिश, जापानी, स्वाहिली, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं का अध्ययन करना होगा। आज शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेज़ी के प्रभुत्व एवं एकाधिकार ने हमें इन भाषाओं से भी दूर कर दिया है। फलतः आज हम दुनिया को अंग्रेज़ी भाषा-भाषी जगत् के चश्मे से ही देख रहे हैं। अंग्रेज़ी हमको दुनिया के साथ जोड़नेवाली कड़ी नहीं, बल्कि बहुत बड़े भाग से तोड़नेवाली कड़ी सिद्ध हो रही है।

शिक्षा क्षेत्र में भाषा के संबंध में यह नीति होनी चाहिए—

1. प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में दी जाए।
2. माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा प्रादेशिक भाषा के माध्यम से दी जाए और हिंदी का अध्ययन अनिवार्य हो।

3. हिंदीभाषी विद्यार्थियों के लिए किसी अन्य भारतीय भाषा का ज्ञान आवश्यक हो।
4. राष्ट्र-भाषा संस्कृत की शिक्षा अनिवार्य हो।

जहाँ क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा के विद्यार्थियों की पर्याप्त संख्या हो, वहाँ उस भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

हिंदी माध्यम से पढ़ानेवाली शिक्षण संस्थाओं की देश भर में व्यवस्था हो।

लोक शिक्षा

शालेय अध्ययन के अतिरिक्त लोक-संस्कार, स्वाध्याय, लोकमत-परिष्कार भी शिक्षा के साधन हैं। इस दृष्टि से रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, संगीत तथा पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकालयों, क्लबों आदि का भरपूर उपयोग किया जा सकता है। इनकी योग्य व्यवस्था की ओर राज्य को ध्यान देना चाहिए।

रेडियो और टेलीविजन को सरकारी विभाग के स्थान पर एक स्वायत्त निगम के रूप में चलाना चाहिए।

चित्रपट लोक-शिक्षा का एक अत्यंत प्रभावी साधन है। अभिव्यक्ति के इस माध्यम का विकास करना चाहिए। किंतु शासन को यह ध्यान रखना चाहिए कि चित्रपट लोकमत-परिष्कार तथा सुरुचि पैदा करने के साधन बनने के स्थान पर लोगों की रुचि बिगाड़नेवाले न बनें।

विदेश नीति

राष्ट्र के उदात्त हितों का संरक्षण ही किसी देश की विदेश नीति का प्रमुख आधार है। भारतीय राष्ट्र की प्रकृति और परंपरा साम्राज्यवादी विस्तारवाद के प्रतिकूल मानव की समानता और आत्मीयता के आधार पर विश्व-एकता की रही है। विश्व शांति और विश्व की एकता भारत की राष्ट्रीय मनीषा है। जब तक विश्व में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद क़ायम है, जब तक रंग, धर्म और विचारों के भेद के आधार पर दूसरों को हेय समझने की प्रवृत्ति मौजूद है, जब तक राष्ट्रों के बीच भारी आर्थिक विषमताएँ और उनके कारण शोषण विद्यमान है और जब तक दुनिया में युद्ध और शांति की ठेकेदारी दो-चार बड़े राष्ट्रों के पास है, तब तक विश्व में तनाव कम नहीं होंगे तथा हम सदैव ही एक कगार पर खड़े रहेंगे। आवश्यकता है कि पराधीन राष्ट्र स्वतंत्र हों, मानवाधिकारों की सर्वत्र मान्यता हो, विश्व को समान स्तर पर लाया जाए, विभिन्न राष्ट्रों के बीच सहयोग का क्षेत्र विस्तृत हो तथा अंतरराष्ट्रीय संस्था के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ अधिक सबल, प्रातिनिधिक एवं न्याययुक्त आधार पर विकसित हो। ऐसे अंतरराष्ट्रीय मोरचों

का विकास भी आवश्यक है, जहाँ राज्यों के शासकीय प्रतिनिधियों के स्थान पर जन-प्रतिनिधि एकत्र होकर मोरचों में राष्ट्र-राष्ट्र के बीच विद्यमान खाई को पाट सकें।

भारतीय दर्शन विश्व की विविधता को स्वीकार करता है। अतः भारतीय जनसंघ प्रत्येक राष्ट्र के मूलभूत अधिकार को मानता है कि वह अपनी जीवन-पद्धति का स्वयं अपनी इच्छानुसार निर्माण करे तथा इस विचार का विरोध करता है कि सब एक ही साँचे में ढल जाएँ।

विदेशों से संबंधों का आधार

विश्व के विभिन्न देशों के साथ भारत के संबंधों का निर्धारण किसी एक मोटे नियम के अधीन नहीं हो सकता। सबकी मित्रता और सद्भावना के इच्छुक भारत को मूलतः सम-सहयोग की नीति लेकर चलना होगा। बिना शक्ति और पौरुष के शांति की आकांक्षा दुर्जनों को बढ़ावा देनेवाली और अंत में शांति के लिए घातक होती है। भारत को अपनी विदेश नीति तेजस्वी बनानी होगी। अंतिम लक्ष्यों को सामने रखते हुए उसे परिस्थिति के अनुसार विभिन्न राष्ट्रों के साथ शत्रु-मित्र भावों का निर्धारण यथार्थवादी आधार पर करना होगा। किसी भी एक अपरिवर्तनीय नीति से बँधे रहना अनीतिमत्तापूर्ण होगा। विश्व को दो शक्ति गुटों के बीच बँटा मानकर किसी के साथ लगाव या तटस्थता का विचार बीते दिनों की बात तथा अयथार्थपूर्ण है।

आक्रांत भू-भाग की मुक्ति

कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान दोनों ही भारत के स्वाभाविक शत्रु हैं। दोनों ने भारत की सीमाओं पर अतिक्रमण करके देश के बड़े भू-भाग पर बलात् अधिकार कर रखा है। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का अहित ही दोनों की नीतियों का प्रमुख लक्ष्य है। भारत का प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपने खोए हुए भागों को वापस ले तथा दोनों की आक्रामक प्रवृत्तियों को प्रतिबंधित करे।

पाकिस्तान के प्रति दृढता

पाकिस्तान की जनता मूलतः भारतीय राष्ट्र का अंग है। वह पृथकतावादी राजनीतिक शक्तियों का शिकार बनकर अलग हुई है। पाकिस्तान की निर्मिति के बाद से वह बराबर पीड़ित है। जिस स्वर्ग की उसे आशा दिखाई गई थी, वह मृग-मरीचिका सिद्ध हुई। पाकिस्तान के शासक भारत-विरोधी भावनाएँ भड़काकर अपना आसन स्थिर करने की नीति लेकर चल रहे हैं। भारत द्वारा अपनाई गई तुष्टीकरण की नीति ही उनका सबसे बड़ा बल है। भारत यदि दृढता की नीति अपनाए तो पाकिस्तानी विरोध का बुलबुला अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता।

कम्युनिस्ट चीन का संकट

कम्युनिस्ट चीन भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए एक संकट बना हुआ है। सभी शांतिवादी एवं सहअस्तित्व के पुजारी देशों के सहयोग से कम्युनिस्ट चीन की विस्तारवादी एवं युद्धलोलुप प्रवृत्ति का विरोध करना होगा। तिब्बत, सिंक्यांग, मंचूरिया और मंगोलिया की स्वतंत्रता, फारमोसा सरकार की मान्यता तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की चीन प्रभाव से मुक्ति इस दृष्टि से आवश्यक है।

सांस्कृतिक संबंधों का पुनरुज्जीवन

दक्षिण-पूर्व एशिया तथा अन्य देशों के साथ भारत के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। इन संबंधों को पुनरुज्जीवित कर सुदृढ करने की दिशा में क़दम उठाने चाहिए।

भारतीय प्रवासी

विश्व के अनेक देशों में भारतीय प्रवासी विभिन्न कारणों से जाकर बसे हैं। उन देशों के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन देशों की स्वतंत्रता के बाद कहीं-कहीं उनके साथ विभेदपूर्ण व्यवहार हुआ है, जिससे वे भविष्य के प्रति आशंकित हैं। भारत का यह दायित्व है कि उन प्रवासियों को समान अधिकार प्राप्त हों, जिससे वे उन देशों की प्रगति में अपना समुचित योगदान कर सकें।

अफ्रीकी देशों से संबंध

अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता सदैव से भारत की रुचि और समर्थन का विषय रही है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का उनके साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। इन स्वतंत्र देशों के साथ सहयोग और मित्रता के संबंध सुदृढ करने की नीति बढ़नी चाहिए।

आर्थिक नीति

भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था विशृंखलित है। वह न तो व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है और न समाज के सुरक्षा-सामर्थ्य की गारंटी दे सकती है। उसका पुनर्गठन करना होगा।

स्वदेशी का मंत्र

उत्पादन-वृद्धि के बिना देश की समृद्धि संभव नहीं। किंतु समृद्धि की साधना और फल में सभी लोग साझीदार हों, इस हेतु हमें समतर वितरण का भी ध्यान रखना होगा। वितरण को सुधारे बिना न तो आज का निर्धन धनवान् होने का अनुभव कर सकेगा और

न उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक क्षमता और संकल्प जुटा सकेगा। पैदा माल की खपत के लिए बाज़ार का विस्तार जनसामान्य की क्रयशक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि से ही संभव है।

अर्थव्यवस्था को गतिमान बनाने तथा उत्पादन-वृद्धि के लिए पूँजी-निर्माण आवश्यक है। पूँजी के लिए बचत और साहस चाहिए। भारत में अधिकांश लोगों का जीवन-स्तर इतना नीचा है कि उपभोग को टालकर बचत की गुंजाइश ही नहीं। साथ ही परानुकरण से उत्पन्न दिखावा करने की प्रवृत्ति तथा जीवन-मूल्यों में परिवर्तन के कारण जीवन-स्तर की धारणा में भी अंतर आया है। हमारी उपभोग-प्रवणता, गुण और मात्रा दोनों में, बड़ी तेज़ी से बदल रही है। फलतः पुराने धंधों में बेकारी और विपूँजीकरण तथा नए में अभाव की स्थिति पैदा हो गई है। आधुनिकीकरण के नाम पर पाश्चात्यीकरण तेज़ी से आ रहा है। सामाजिक क्षेत्र के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र में भी इससे अनेक समस्याएँ तथा अवांछनीय प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि स्वदेशी के मंत्र का पुनरुच्चार किया जाए। इससे आवश्यक संयम एवं स्वावलंबन का भाव जागेगा तथा अनावश्यक रूप से विदेशी पूँजी पर निर्भरता के व्यामोह तथा उसके प्रभाव से बचेंगे।

नियोजन

राष्ट्र के साधनों को न्यूनतम काल में अधिकतम लाभ के लिए प्रयुक्त करने की दृष्टि से आर्थिक नियोजन की आवश्यकता है। किंतु योजना साधन है, साध्य नहीं। उसका निर्माण राज्य की स्थायी निष्ठाओं की मर्यादाओं के अंतर्गत ही करना होगा। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता, लोकतंत्र तथा भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्य वे निष्ठाएँ हैं, जिनके प्रतिकूल अर्थोत्पादन की कोई योजना स्वीकार नहीं की जा सकती। वास्तव में ये मर्यादाएँ नियोजकों के मार्ग में रुकावट नहीं, बल्कि उनके संबल हैं। यदि उनका सही-सही उपयोग किया जाए तो उनसे राष्ट्र के सामूहिक प्रयत्नों को भारी बल मिल सकता है। कल की समृद्धि के लिए आज के कष्टों की प्रेरणा केवल आर्थिक उद्देश्यों से नहीं मिल सकती। जन-मन में योजना की सिद्धि की आकांक्षा जाग्रत् करने के लिए उसे आदर्शवादी बनना होगा, किंतु उसके लक्ष्य जनता के संभव सामर्थ्य की कल्पना कर यथार्थ की ठोस भूमि पर ही निर्धारित करने चाहिए।

भारत प्रजातंत्रवादी देश है। हम रूस, चीन या दूसरे कम्युनिस्ट देशों की भाँति एक अधिनायकवादी पद्धति नहीं अपना सकते। अतः हमें वही योजना बनानी होगी, जिसका कार्यान्वयन लोकतंत्रीय पद्धति से हो सके। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए पूर्ण सुविचारित, विवरणमूलक योजना बनानी चाहिए, किंतु निजी क्षेत्र में मोटे-मोटे लक्ष्य निश्चित करके लोगों को उनकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करने को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। निजी क्षेत्र में

पण्य-व्यवस्था मुख्यत: नियामक है, सार्वजनिक क्षेत्र में प्रशासनिक आदेश नियामक हो सकता है। यदि संपूर्ण अर्थव्यवस्था का नियमन एवं नियंत्रण प्रशासनिक आदेशों के अधीन करने का प्रयत्न किया जाएगा तो चोर-बाज़ारी जैसी समस्याएँ पैदा हो जाएँगी तथा लोग अपने स्वातंत्र्य पर बंधन अनुभव करने लगेंगे। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए विवरणमूलक तथा संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए व्यापक नीति नियामक होनी चाहिए। वास्तव में तो योजना की व्यूह-नीति होनी चाहिए उन अवस्थाओं का निर्माण करनेवाली वित्तीय, मौद्रिक एवं औद्योगिक नीतियों को अपनाना, जिनमें व्यक्ति के साहस को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिले तथा विनियोजन एवं वितरण बाज़ार-व्यवस्था के अंतर्गत ही वांछित दिशाओं में प्रवाहित हो। नियोजन, नीति-निर्धारण, नियमन, नियंत्रण और राष्ट्रीयकरण इनका क्रमावरोही रूप में प्रयोग करना चाहिए।

उद्देश्य—योजना के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए—

1. राष्ट्र को सुरक्षा-सक्षम बनाना।
2. पूर्ण रोज़गार।
3. प्रत्येक कुटुंब की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए उसके स्तर को ऊँचा उठाना।
4. आय और संपत्ति की विषमताओं में कमी करना।
5. विकासमान अंतरराष्ट्रीय व्यापार को ध्यान में रखते हुए भी राष्ट्र को मूलभूत उपभोग एवं उत्पादक वस्तुओं में आत्मनिर्भर बनाना।
6. सभी क्षेत्रों और जनों का विकास।

वरीयताएँ—यद्यपि कृषि, उद्योग, व्यापार और सेवाएँ, इन चारों का संतुलित विकास ही एक अच्छी अर्थव्यवस्था का लक्षण है, और हमें इन सबकी ओर ध्यान देना होगा, किंतु विकास को गति देने के लिए निम्नलिखित वरीयताओं का निर्धारण होना चाहिए—

1. सुरक्षा उद्योगों की स्थापना।
2. कृषि उत्पादन में वृद्धि।
3. जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिए श्रम-प्रधान उद्योगों का विस्तार।
4. सार्वजनिक सेवाओं तथा मूलभूत उद्योगों की स्थापना।

मूल्य नीति

मूल्य नीति नियोजन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। मूल्य समाज के विभिन्न वर्गों की उपभोग-क्षमता के सूचक ही नहीं, अपितु वे वितरण और विनियोजन की दिशा भी

प्रभावित करते हैं। अर्थनीति के आधुनिकीकरण में मूल्यों का कुछ अंशों में बढ़ना स्वाभाविक है, किंतु जब वे तेज़ी से बढ़ते अथवा गिरते हैं या विभिन्न कालों और क्षेत्रों के मूल्यों में भारी अंतर होता है तब उनसे जनजीवन तो संत्रस्त होता ही है, नियोजित विकास में भी भारी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। यह अंतर उत्पादक या उपभोक्ता को लाभ नहीं पहुँचाता। इससे विनियोजन कृषि और उद्योगों की ओर प्रवाहित न होकर व्यापार और वितरण की ओर जाता है। सट्टे की प्रवृत्ति बढ़ती है। अतः मूल्यों का स्थिरीकरण अत्यंत आवश्यक है।

मूल्य नीति का उद्देश्य कच्चे और पक्के माल के मूल्य, वेतन और उजरत, ब्याज और लाभ के बीच सामंजस्य बनाए रखना तथा विनियोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। प्रशासकीय आदेशों के द्वारा मूल्यों को नियंत्रित करने के स्थान पर उन्हें वित्तीय, मौद्रिक, औद्योगिक आदि आर्थिक नीतियों एवं नियमन के उपायों से प्रभावित करना वांछनीय होगा।

खाद्य एवं कृषि

न्यूनतम आवश्यकताओं में से खाद्य एक ऐसी आवश्यकता है, जिसके बिना प्राणिमात्र जीवित नहीं रह सकता। 'अन्न वै प्राण:' अर्थात् अन्न ही जीवन है। खाद्य के संबंध में पर-निर्भरता राष्ट्रीय, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भी भारत के लिए हानिकारक है। जिन देशों से हम अन्न प्राप्त करते रहे हैं, उनको निर्यात करने योग्य हमारे पास विशेष कुछ नहीं है। फलतः विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। इन ऋणों की अदायगी अथवा विभिन्न समझौतों के अंतर्गत मिश्रधन का विनियोग समस्यापूर्ण है। खाद्य में आत्मनिर्भरता उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता।

अन्न, फल, दुग्ध, मांस, मछली, अंडे आदि खाद्य के अंतर्गत आते हैं। किंतु खाद्य पूर्ति की कोई भी योजना जनता के दृष्टिकोण, उसके संस्कार तथा भावनाओं का विचार करके ही बनानी होगी। कृषि, दूध और उससे बनी चीज़ें ही हमारे आहार का मुख्य अंग हैं। हमें उनके उत्पादन पर ही सर्वाधिक बल देना होगा।

जिस समाज में अधिकांश व्यक्ति खाद्योत्पादन में ही लगे रहें तथा खाद्योत्पादकों की क्रयशक्ति बहुत थोड़ी हो, वहाँ अर्थव्यवस्था के विविधीकरण तथा विकास की संभावना नहीं। भारत में आज 69.8 प्रतिशत व्यक्ति कृषि पर निर्भर हैं तथा उनमें अधिकांश भूमिहीन या इतने छोटे किसान हैं कि वे कठिनाई से जीवन-निर्वाह के लिए अन्न पैदा कर पाते हैं। उनके पास बाज़ार में बेचने के लिए अनाज नहीं होता। जब तक कृषि का विपणनीय अतिरेक नहीं बढ़ता, तब तक न तो कृषितर पेशों में लगे व्यक्तियों को खाद्य की सुविधा होगी और न किसान का जीवन-स्तर ऊँचा होगा। जबरिया गल्ला

वसूली, लेवी या मजबूरी में बिक्री की पद्धतियों से किसान से गल्ला लेने का तरीक़ा ठीक नहीं। उपयुक्त तो यह होगा कि एक ओर तो किसान के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बेचने के लिए गल्ला हो और दूसरी ओर उसे उन वस्तुओं और सेवाओं की माँग हो, जो कृषि के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्र में उपलब्ध हैं। इसके लिए खेती के उत्पादन में वृद्धि, खेती पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या में कमी, फ़सल का अच्छा दाम तथा कृषक के जीवन-स्तर को ऊँचा करने की चाह, इन उद्देश्यों को लेकर ग्राम विकास कार्यक्रम अपनाने होंगे। भारत में भूमि की कमी होने के कारण हमें प्रति व्यक्ति के साथ प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन करना होगा। खेती, लाभप्रद मूल्य तथा ग्रामों का औद्योगीकरण हमारे कार्यक्रम की आधारशिला होने चाहिए।

कृषि विकास के लिए भूधृति संबंधी विद्यमान संस्थाओं को बदलना होगा, कृषि की पद्धति में प्राविधिक सुधार करने होंगे तथा साधनों को जुटाने एवं विपणन की व्यवस्था के लिए संस्थाएँ बनानी होंगी। इस दृष्टि से एक समन्वित एवं सुनियोजित कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए। ग्राम के उद्योग-धंधों का भी इसके साथ विचार आवश्यक है।

खेती करने की पद्धति में सुधार

जहाँ तक खेती की पद्धति का संबंध है, भारत के किसान ने परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त पद्धतियों का विकास किया है। युगों से चली आई पद्धतियों को आज की उन प्रक्रियाओं के पक्ष में, जिन पर न तो पूरे-पूरे प्रयोग हुए हैं और न भारत की समसमान अवस्थाओं में उन प्रयोगों को किया गया है, एकाएक नहीं छोड़ देना चाहिए। भारत का किसान फ़सलों की अदल-बदलकर बुआई, हरी खाद का प्रयोग, मल-मूत्र की खाद का पकाकर उपयोग करना, भूक्षरण रोकने के लिए मेंड़ बाँधना तथा वृक्ष लगाना आदि विधियों को भली-भाँति जानता है। उसने युगों से भूमि की उर्वरता को बनाए रखा है। हाँ, पिछले दिनों में विभिन्न कारणों से वह इस ज्ञान का पूरा उपयोग नहीं कर पाया है। उसके पूँजीगत साधनों को बढ़ाने तथा उसके मन में भूस्वामित्व के संबंध में निश्चिंतता पैदा करने की आवश्यकता है। नया प्रयोग और नया ज्ञान उसी अवस्था में संक्रमणशील रहता है, जब समसमान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों का सफल अनुभव उसके पीछे हो। इस दृष्टि से गाँवों में योग्य कृषकों को प्रोत्साहन और सहायता देनी चाहिए। सरकारी फार्मों के स्थान पर इन कृषकों के खेतों को ही मॉडल फार्म बनाना चाहिए।

उपज बढ़ाने तथा भूमि की उर्वरता टिकाए रखने के लिए खाद की आवश्यकता है। उर्वरक और खाद की मात्रा तथा क़िस्म मिट्टी, सिंचाई के साधन, फ़सल, उत्पादन की पद्धति आदि पर निर्भर है। प्रत्येक विकास खंड में एक परीक्षणशाला होनी चाहिए, जो इस हेतु आवश्यक जाँच करके किसानों को उचित सलाह दे सके।

भारी ट्रैक्टर और मशीनों से खेती भारत के लिए अनुपयुक्त है। बंजर तोड़ने में उनका अवश्य उपयोग हो सकता है।

अच्छे औज़ार, बैल, खाद, उन्नत बीज, ऋण तथा विपणन के लिए साधन, सहकारी समितियों का गठन उपयोगी होगा।

आदेवमातृका कृषि

सिंचाई की योग्य व्यवस्था करना भारतीय शासन का सदैव से ध्येय रहा है। कृषि को आदेवमातृका बनाना शास्त्रों का आदेश है। स्वातंत्र्योत्तर काल में यद्यपि बड़े-बड़े बाँधों के अनेक कार्यक्रम हाथ में लिये गए हैं, किंतु फिर भी अधिकांश कृषि इंद्रदेव की कृपा पर ही निर्भर है। छोटी योजनाओं की ओर दुर्लक्ष्य हुआ है। पुराने कुएँ, तालाब, पोखरे आदि मरम्मत के अभाव में बेकार हो गए हैं।

सर्वतोमुखी दृष्टि से विचार किया जाए तो भारत के लिए छोटे-छोटे सिंचाई के साधन ही उपयुक्त हैं। बड़े बाँध पूँजी-प्रधान हैं। देश के अनेक भू-भागों में भूमि और जल-तल की ऐसी स्थिति है कि बड़े बाँधों के कारण सेम और भूक्षार उत्पन्न होता है, जिससे भूमि के अनुर्वरा होने की आशंकाएँ हैं। विद्यमान योजनाओं को छोड़कर आगे सामान्यतया छोटी योजनाएँ ही हाथ में लेनी चाहिए। बड़ी योजनाओं में लगी पूँजी की शीघ्र वसूली की चिंता में सिंचाई एवं अन्य करों की दरें ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जिससे किसान उन्हें दुर्वह समझकर सिंचाई के साधनों का उपयोग ही न करें। छोटी योजनाओं में नलकूप बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

भूधृति

कृषि उत्पादन का संबंध कृषक से भी होता है। खेत और खेतिहर इन दोनों का एक अविभाज्य संबंध है। भूमि में सुधार करने तथा अधिकाधिक श्रम से अधिकतम उत्पादन करने के लिए यह आवश्यक है कि किसान को इस बात का विश्वास हो कि वह भूमि से हटाया नहीं जाएगा तथा पैदा की हुई फ़सल का अधिकांश भाग उसका अपना ही होगा। विभिन्न ऐतिहासिक कारणों से भारत की भूमि-व्यवस्था में बहुत से मध्यस्थों का समावेश हो गया है। ज़मींदार और जागीरदार अब समाप्त कर दिए गए हैं, किंतु रैयतवारी प्रथा[2] के अंतर्गत भी ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो स्वयं खेती नहीं

---

2. भारत की परंपरागत खेतिहर व्यवस्था में परिवर्तन करके अंग्रेज़ों ने जो व्यवस्थाएँ लागू कीं, उनमें से एक है रैयतबारी। इसकी शुरुआत थॉमस मुनरो द्वारा 1820 में बंबई प्रांत में की गई। इसमें रैयत अथवा किसान को उसकी ज़मीन का मालिक माना गया, लेकिन उसे निश्चित समय पर तय मालगुजारी अंग्रेज़ कलेक्टर को देनी होती थी। रैयतबारी व्यवस्था आज के महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, अधिकांश मध्य प्रदेश और आसाम समेत देश के लगभग 51 फीसदी कृषि क्षेत्रफल में लागू थी।

करते, बल्कि दूसरों को पट्टे पर देकर उनसे फ़सल का निश्चित भाग लेते रहते हैं। क़ानून में वे कृषक हैं और कृषि के नाम पर मिलनेवाली सुविधाएँ उन्हें ही प्राप्त होती हैं। फलतः वास्तविक कृषक निर्धन एवं सुविधाहीन बना हुआ है। कृषि विकास के लिए आवश्यक है कि वास्तविक किसान को भूमि का मालिक बनाया जाए। कुछ राज्यों में, जहाँ इस प्रकार के क़ानून बने हैं, उनका ठीक-ठीक पालन नहीं हुआ। ग़ैर-क़ानूनी, बेदखली या मरज़ी से खेत छोड़ने के मामले बहुत ज़्यादा हैं। आवश्यकता है कि काग़ज़ों में सुधार हो तथा क़ानून की भावना के अनुसार उसका पालन हो।

जोतने वाले की भूमि

व्याख्या—'जोतनेवाले की भूमि' का यह अर्थ कदापि नहीं कि अपनी मेहनत को छोड़कर किसान किसी दूसरे की सेवाओं से लाभ नहीं उठा सकता। उसे आवश्यकतानुसार मज़दूर रख सकने का अधिकार होना चाहिए, अन्यथा खेती चौपट हो जाएगी। 'जोतनेवाले' का साधारण अर्थ यही हो सकता है कि वह खेती के हानि-लाभ के लिए उत्तरदायी हो, उसमें पूँजी लगाता हो, वहाँ परिश्रम करता हो तथा उसकी देखभाल करता हो।

ऐसी अवस्थाएँ भी हो सकती हैं, जब किसी कारणवश किसान एक या दो वर्ष के लिए खेती न कर सकता हो। यदि उस अवस्था में वह अपनी ज़मीन दूसरों को कुछ समय के लिए खेती करने के लिए नहीं दे सकेगा तो वह या तो खेत को बिना बोए हुए छोड़ देगा या केवल काग़ज़ी कार्रवाई के लिए उस पर खेती करेगा। इसका परिणाम कृषि-उत्पादन के गिरने के रूप में होगा। अतः हमें कुछ अपवाद अवश्य करने होंगे। अवयस्कों, विधवाओं, अपंगों तथा फ़ौज के लोगों को भी इस नियम से मुक्त रखना होगा।

इसी प्रकार अलाभकर जोत वाले किसानों को अपना खेत पट्टे पर देने और लेने का अधिकार होना चाहिए।

अधिकतम जोत

सघन खेती की अनिवार्यता के कारण हमें एक ओर आर्थिक जोतों की व्यवस्था करनी होगी तथा दूसरी ओर जोत की अधिकतम मर्यादाएँ भी बाँधनी होंगी।

कृषि स्वामित्व

सहकारी या सामुदायिक खेती भारत के भूमि-जन अनुपात, प्रजातंत्रीय पद्धति, बेकारी का निवारण, प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन, कृषि में मानकों के निर्धारण की असंभवनीयता, किसान का भूमि-प्रेम एवं हमारे जीवन-मूल्य, इन सभी दृष्टियों से

हमारे लिए अनुपयुक्त है। कृषक स्वामित्व ही भूमि व्यवस्था का आधार होना चाहिए।

चकबंदी

भूमि का अंतर्विभाजन एवं अपखंडन भी भारतीय कृषि की एक समस्या है। इसे चकबंदी द्वारा रोकने के प्रयास किए गए हैं। जिन तरीक़ों और क़ानूनों के अंतर्गत चकबंदी की जा रही है, उनमें पक्षपात एवं भेदभाव के लिए बहुत गुंजाइश है। गाँव का मास्टर प्लान बनाकर चकबंदी करनी चाहिए। जिनके चक छोटे हैं, उन्हें भूमि देते समय यह ध्यान रखा जाए कि वे उन्हें लाभकर बना सकें।

आर्थिक जोत से नीचे अंतर्विभाजन और अपखंडन पर रोक लगा दी जाए।

खेतिहर मज़दूर

कृषि में खेतिहर मज़दूर का सहयोग सदैव आवश्यक रहेगा। उसको पूरी मज़दूरी, वर्ष भर काम तथा ग्रामवासियों को मिलनेवाली सभी सुविधाएँ मिल सकें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। इस हेतु गाँवों में सहायक उद्योगों की स्थापना आवश्यक है।

गोवंश की अवध्यता

गोवंश के प्रति भारतीय जनता की भावनाओं का समादर करने तथा उसका भारत की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण उसके संरक्षण एवं संवर्धन पर अत्यधिक बल देना चाहिए तथा गोवंश-हत्या पर वैधानिक प्रतिबंध लगाना चाहिए। मिश्रित कृषि भारत के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

विपणन

उत्पादन-वृद्धि के कार्यक्रमों के साथ ही कृषि माल के विपणन एवं ऋण की व्यवस्था भी करनी होगी। अभी तक गाँव का साहूकार कुछ अंशों में ये कार्य करता है। किंतु बाज़ारों की अच्छी व्यवस्था न होने के कारण किसान को कभी उचित दाम नहीं मिल पाया है। कच्चे माल के कम दामों के लिए संपूर्ण अर्थव्यवस्था ही मूलत: दोषी है। इसमें कच्चे माल और पक्के माल के मूल्यों के बीच कोई तालमेल नहीं। अत: किसान के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक है कि गाँवों में कोठार एवं गोदाम बनाए जाएँ, जिससे किसान को अपनी फ़सल की साख पर योग्य ऋण प्राप्त हो जाएँ। सहकारी समितियाँ यह काम भली-भाँति कर सकती हैं। कृषि बीमा योजना भी उपयोगी सिद्ध होगी।

वन

वन देश की बहुमूल्य संपत्ति हैं। उनका प्रभाव देश की जलवायु एवं वर्षा पर भी पड़ता है। उनका ह्रास रोकने, संरक्षण एवं रोपण के लिए वैज्ञानिक आधार पर कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। वन और वनवासी दोनों ही पिछले अनेक वर्षों से बुरी तरह शोषण के शिकार हुए हैं। वनवासी को खेती के लिए भूमि देना तथा वनों से आजीविका चलाने की सुविधा पुन: देना आवश्यक है।

उद्योग नीति

देश के औद्योगीकरण की अपरिहार्यता निर्विवाद है, किंतु उसकी गति कितनी और स्वरूप कैसा हो, यह मतभेद का विषय है। सामान्यत: पश्चिम के औद्योगिक ढाँचे को ही एकमेव ढाँचा मानकर उसे जल्दी-से-जल्दी देश में लाने की आतुरता दिखती है। विदेशी पूँजी के सहयोग ने इस निर्णय को और भी प्रभावित किया है। अभी तक इस प्रकार का जो औद्योगीकरण हुआ है, उसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में तो वृद्धि हुई है, किंतु दूसरी ओर पुराने उद्योग नष्ट होकर निरुद्योगीकरण एवं विपूँजीकरण हुआ है, बेकारी बढ़ी है, विदेशों पर निर्भरता तथा विदेशी ऋण में वृद्धि हुई है, केंद्रीयकरण तथा आर्थिक विषमताएँ अधिक हुई हैं तथा तेज़ी से होनेवाले नगरीकरण एवं अपने घर और गाँव से दूर बड़े-बड़े शहरों में समाज-संबंध-विहीन जनसमुदाय के केंद्रीकरण से अनेक समस्याएँ पैदा हुई हैं। हम इन समस्याओं को औद्योगीकरण के स्वाभाविक परिणाम कहकर नहीं टाल सकते।

नवीन प्रौद्योगिकी

विज्ञान के मूलभूत सिद्धांत देश-काल निरपेक्ष होते हुए भी उनका प्रयोग कर उपयुक्त उत्पादन पद्धति का विकास, प्रत्येक देश में उपलब्ध उत्पादन के साधन एवं पण तथा वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थिति सापेक्ष होते हैं। देश की आवश्यकताओं, उपलब्ध प्राकृतिक साधनों, विकसित तथा संभव शक्ति, श्रमिकों की संख्या तथा उनकी शिक्षा, प्रबंध कुशलता और तंत्रपटुता का स्तर एवं संक्रमणशीलता, प्राप्त पूँजी, क्रयशक्ति एवं पण तथा अर्थव्यवस्था के अन्योन्याश्रित अंगों की स्थिति का विचार करके ही हमें उपयुक्त मशीन का निर्धारण एवं निर्माण करना होगा। भारत को पश्चिम की प्रौद्योगिकी का अनुकरण करने के स्थान पर अपने लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी का आविष्कार करना चाहिए।

औद्योगिक विकेंद्रीकरण

भारत का औद्योगीकरण प्रमुखत: यंत्रचालित लघु उद्योगों के आधार पर ही होना चाहिए। ये एकात्म मानव के लिए पोषक हैं। विद्यमान आर्थिक कारण उनके पक्ष में हैं। इन उद्योगों के लिए जो कठिनाइयाँ थीं, वे विज्ञान की आधुनिकतम प्रगति तथा खोजों के बाद दूर हो गई हैं। इनका कृषि के साथ मेल बिठाया जा सकता है। ये गाँवों में स्थापित किए जा सकते हैं, जिससे एक ओर तेज़ी से होनेवाले नागरीकरण की समस्याओं से बचेंगे तथा दूसरी ओर गाँव भी देश की समृद्धि में सहभागी बनेंगे। समाज का शिक्षित एवं युवा वर्ग यदि गाँवों में न रहा तो उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता और न राजनीतिक विकेंद्रीकरण के कार्यक्रम सफल हो सकते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा के विचार से तो विकेंद्रीकरण नितांत आवश्यक है।

छोटे उद्योग श्रमप्रधान होने के कारण बेकारी के निवारण में बहुत सहायक हैं। इनमें पूँजी कम लगती है और इसलिए इनको चलानेवाले साहसियों की संख्या बड़े उद्योगों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा हो सकती है। इस कारण कुल मिलाकर इनके द्वारा अधिक पूँजीकरण होगा। ये विद्यमान उद्योगों के सहारे विकसित हो सकते हैं। अत: प्रौद्योगिकीय विपूँजीकरण तथा बेकारी को बचा सकते हैं। ये उद्योग श्रमिक की मालिकी के आधार पर चलाए जा सकते हैं। यदि दूसरे श्रमिक मज़दूरी पर रखने भी पड़ें तो मालिक और मज़दूर परस्पर मानवीय संबंध रखकर सहयोग के आधार पर इनका विकास कर सकते हैं। सहकारिता के लिए भी यहाँ पर्याप्त गुंजाइश है। ये उद्योग आशुफलदायी हैं, अत: बहुत समय तक पूँजी फँसी नहीं रहती।

बैंक, साख, यातायात तथा राज्य के औद्योगिक नीति संबंधी सभी नियम इस प्रकार बने हैं कि उनमें बड़े उद्योग के साथ पक्षपात होता है। फलत: छोटे उद्योग पनप नहीं पाते। फिर भी पिछले वर्षों में आधुनिक उत्पादन के अनेक क्षेत्रों में छोटे उद्योगों ने इतनी अधिक प्रगति की है कि वे बड़े उद्योगों के साथ टक्कर ले सकते हैं। विदेशी उद्योगों के मुक़ाबले जैसे स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण दिया जाता है, उसी प्रकार बड़े उद्योगों के मुक़ाबले छोटे उद्योगों को संरक्षण देने की नीति शासन को अपनानी चाहिए।

क्षेत्र विभाजन

छोटे और बड़े उद्योगों में क्षेत्रों का विभाजन होना चाहिए। सामान्यत: उपभोक्ता वस्तुएँ छोटे उद्योगों द्वारा तथा उत्पादक एवं मूलभूत वस्तुओं का उत्पादन बड़े उद्योगों द्वारा होना चाहिए।

ग्रामोद्योग

परंपरागत ग्राम और कुटीर उद्योगों में से अधिकांश आज अनार्थिक हो गए हैं। उन्हें आर्थिक बनाना होगा। बिजली और यंत्र के सहारे उनका आधुनिकीकरण करके उन्हें छोटे उद्योगों की श्रेणी में लाना चाहिए। इन उद्योगों की उत्पादन-क्षमता बढ़ाए बिना वे टिक नहीं सकते। शैशव में पोषण के लिए संरक्षण उपयोगी है, किंतु वह स्थायी भाव नहीं बनना चाहिए।

ग्रामीण कारीगर

गाँव के कारीगरों का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण से वे विस्थापित होते जा रहे हैं। नई अर्थव्यवस्था में उनको योग्य स्थान मिल सके, इसका प्रबंध करना होगा।

राष्ट्रीय क्षेत्र

बड़े उद्योग का स्वामित्व विवाद का विषय है। समाजवाद और पूँजीवाद के समर्थक अपने-अपने सिद्धांतों के आधार पर अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। भारत की वर्तमान परिस्थिति में, जब विकास और विस्तार के लिए पर्याप्त क्षेत्र पड़ा हो तथा राज्य एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों की शक्तियाँ अधूरी सिद्ध हो रही हों, यह विवाद बेमानी है। हमें एक राष्ट्रीय क्षेत्र की कल्पना रखकर प्रत्येक को अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार काम करने का मौक़ा देना चाहिए।

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था आवश्यक है। उसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। दोनों क्षेत्रों में सहयोग और पूरकता का भाव रखना चाहिए। सार्वजनिक उद्योगों में 49 प्रतिशत तक पूँजी जनता के अंशदान के लिए खुली रखी जा सकती है।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के इस विवाद में जनक्षेत्र की उपेक्षा हो रही है। वास्तव में तो यही क्षेत्र सबसे बड़ा, महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली होना चाहिए। हमारी नीति होनी चाहिए कि जनता जहाँ चाहे वहाँ, पूँजीपति जहाँ चाहिए वहाँ, और सरकार जहाँ न संभव हो सके वहाँ।

सार्वजनिक क्षेत्र

अविकसित क्षेत्र में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हैं, जहाँ निजी क्षेत्र या तो प्रवेश की हिम्मत ही नहीं करता अथवा राजनीतिक एवं सामाजिक लक्ष्यों के हित में राज्य को ही उन क्षेत्रों में जाना आवश्यक होता है। निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—

1. आधारभूत एवं सार्वजनिक सेवा उद्योग इतने पूँजीप्रधान एवं लंबे समय बाद फलदायी हैं कि बिना राज्य के उस क्षेत्र में प्रवेश किए वे स्थापित ही नहीं हो पाएँगे। अतः राज्य को उन उद्योगों की स्थापना करनी चाहिए।
2. जहाँ विदेशी पूँजी राजकीय स्तर पर उपलब्ध हो, राज्य को ही उस उद्योग का दायित्व सँभालना आवश्यक होगा।
3. निजी क्षेत्र के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करने तथा उसकी पूरकता के लिए भी राज्य को कुछ क्षेत्रों में आना आवश्यक हो सकता है। ये आंशिक रूप से सार्वजनिक क्षेत्र रहेंगे। खाद्यान्न का व्यापार, बैंक, बीमा, यातायात, विदेशी व्यापार इस क्षेत्र में आते हैं।

यदि किसी कारणवश निजी क्षेत्र में चलनेवाले किसी उद्योग के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता अनुभव हो तो यह प्रश्न एक न्यायिक आयोग को सुपुर्द किया जाए तथा उसकी सिफ़ारिशों के अनुसार ही राष्ट्रीयकरण की दिशा में क़दम उठाए जाएँ।

सार्वजनिक उद्योगों का प्रबंध स्वायत्त निगमों द्वारा ही होना चाहिए तथा उन पर वे सभी नियम लागू हों, जो निजी क्षेत्र पर लागू होते हैं।

एकाधिपत्य पर रोक

राज्य का कर्तव्य है कि वह आर्थिक कारणों से होनेवाले एकीकरण तथा एकाधिकार को रोके।

पूर्ण रोज़गार

प्रत्येक समर्थ और स्वस्थ व्यक्ति के जीविकोपार्जन की व्यवस्था करना आर्थिक नियोजन एवं औद्योगिक नीति का लक्ष्य होना चाहिए। बेकारी को दूर करने के लिए रोज़गार के नए अवसरों के निर्माण के साथ-साथ अर्ध रोज़गार वालों की उत्पादकता एवं आय बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। बढ़ी हुई क्रयशक्ति से वे दूसरों को काम दे सकेंगे। रोज़गार संबंधी कार्यक्रमों के निर्धारण, श्रमिकों की संख्या, तज्ञता, उत्पादकता, काम और बेकारी की प्रकृति और व्याप्ति, संक्रमणशीलता आदि सभी प्रश्नों पर विचार करना होगा।

काम न मिलने की अवस्था में जीवनयापन के लिए बेकारी-भत्ते की व्यवस्था होनी चाहिए।

वैज्ञानिकीकरण

अर्धबेकारी को दूर करने तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिकीकरण

(Rationalisation)आवश्यक है। किंतु भारत में वैज्ञानिकीकरण मुख्यतः आयातप्रधान होने के कारण सहज नहीं। साथ ही उद्योग के आवश्यक विस्तार के अभाव में कई बार वैज्ञानिकीकरण के कारण छँटे हुए मज़दूरों की दूसरी जगह खपत संभव नहीं होती। नई मशीन से अर्थव्यवस्था में तभी गति प्राप्त हो सकती है जब (1) बढ़ी हुई उत्पादकता से प्राप्त आय का श्रमिकों और पूँजी लगानेवालों में वितरण हो; (2) इस आय का कुछ-न-कुछ अंश वित्तसंचय तथा उपभोग दोनों के काम आए; (3) देश में पूँजी निर्माण की गति इतनी हो कि नई मशीनों के ख़रीदने में व्यय करने के बाद भी वह इतनी बची रहे कि केवल छँटनी किए हुए मज़दूरों को ही नहीं, अन्यों को भी काम देने के लिए उद्योग-धंधे प्रारंभ किए जा सकें। सभी पहलुओं पर विचार कर नियोजकों को इस संबंध में कार्यक्रम बनाने चाहिए।

श्रम-नीति

श्रम की प्रतिष्ठा मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा है। श्रमिक को संगठित और सामूहिक रूप से पारिश्रमिक निश्चित कराने का अधिकार है। उसके हड़ताल के अधिकार को जनसंघ स्वीकार करता है, किंतु उसका उपयोग अंतिम शस्त्र के रूप में ही करना चाहिए। इस अधिकार के उपयोग की आवश्यकता न पड़े, इस हेतु शासन को परामर्श, समझौता-वार्त्ता, साधारण पंचनिर्णय, अधिनिर्णय आदि के योग्य एवं प्रभावी तंत्र का निर्माण करना चाहिए।

भारतीय जनसंघ श्रमिक और मालिक में कोई स्थायी हित संघर्ष नहीं मानता। श्रमिक भी वास्तव में श्रम की पूँजी लगाता है। प्रबंध और लाभ में उसके साझे की व्यवस्था होनी चाहिए।

वेतन-मंडल

यद्यपि वेतन और अन्य परिलाभ सामूहिक सौदे से तय करने का श्रमिक को अधिकार है, फिर भी औद्योगिक विवादों को बचाने तथा असंगठित वर्गों के हितों की रक्षा करने के लिए आवश्यक है कि समय-समय पर वेतन आदि की दरें निश्चित करने की व्यवस्था हो। इस दृष्टि से एक स्थायी वेतन-मंडल होना चाहिए, जो समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों और उद्योगों में मूल्य-स्तर, राष्ट्रीय जीवन-स्तर की न्यूनतम आवश्यकताओं, उद्योग विशेष की आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर वेतन दरें निश्चित करे।

भारतीय जनसंघ समान काम के लिए समान मज़दूरी के सिद्धांत को स्वीकार करता है।

वेतन नीति

भारतीय जनसंघ राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन दर निश्चित करना आवश्यक समझता है। जीवन निर्देशांक के अनुरूप संपूर्ण परिलाभ की मात्रा ही वास्तविक वेतन स्तर है। राष्ट्रीय-समृद्धि का परिणाम श्रमिक के जीवन-वेतन में परिलक्षित होना चाहिए। समवितरण के इस स्तर के उपरांत ही 'बोनस' को लाभ में साझेदारी समझा जाएगा।

पूँजी-निर्माण

आर्थिक विकास के लिए पूँजी-निर्माण आवश्यक है। बचत और विनियोजन की प्रवृत्ति को बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। समाज में संयम एवं मितव्ययिता का भाव आवश्यक है। उपभोग में शानशौकत तथा विलासिता पर रोक लगाने के लिए व्यय योग्य आय की अधिकतम सीमा निश्चित होनी चाहिए। शासन को भी इस विषय में आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

अधिकोषण की अच्छी व्यवस्था और उसका विस्तार वित्त संचय के लिए सहायक ही नहीं, आवश्यक भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खोलने की ओर विशेष ध्यान देना होगा। सहकारी बैंक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, किंतु गाँव में ऋण और साख के अन्य संस्थान न होने के कारण वे ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। गाँवों में बचत बढ़ाने और उनके वित्तीय साधनों को विनियोजन हेतु जुटाने की ओर उनका विशेष ध्यान नहीं है।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण आर्थिक लक्ष्यों के प्रतिकूल है। इससे पूँजी निर्माण में बाधा उत्पन्न हो जाएगी। राष्ट्रीयकरण से पूँजी बढ़ती नहीं, केवल प्रबंध और स्वामित्व बदल जाता है। अधिकोषण का एकाधिपत्य अपने हाथों में न लेते हुए, राज्य आवश्यकतानुसार अधिकोषण संस्थान चला सकता है। अभी तक बैंक मुख्यत: व्यापार की आवश्यकताएँ पूरी करते रहे हैं। वे उद्योग और कृषि की पूँजी संबंधी माँगों की भी पूर्ति कर सकें, इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। अधिकोषण के नियमन के संबंध में भी शासन एवं रिज़र्व बैंक को पूर्ण जागरूक रहना चाहिए।

विदेशी पूँजी

अंदर की पूँजी की कमी कुछ अंशों में विदेशी पूँजी से पूरी की जा सकती है। किंतु उसका एक सीमित उपयोग ही है। अनेक देशों का अनुभव यही बताता है कि विदेशी पूँजी के रूप में जितना आयात होता है, उससे कई गुना अधिक लाभ, ब्याज, मूलधन आदि के रूप में निर्यात होता है। प्रौद्योगिक कारणों से भी, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, विदेशी पूँजी बहुत उपयोगी नहीं होगी। केवल ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ

विदेशी प्रौद्योगिकी उपयोगी और आवश्यक है, हम विदेशी पूँजी का उपयोग कर सकते हैं। सामान्यतः हमें इस मोह से बचना चाहिए।

कराधान

वित्त और मौद्रिक नीतियाँ आर्थिक नियोजन एवं उसके लक्ष्यों को प्राप्त करने के अत्यंत महत्त्वपूर्ण, प्रभावी एवं नाजुक उपकरण हैं। भारत में विभिन्न राजकीय सत्ताओं के बीच करों का किसी वैज्ञानिक आधार पर निर्धारण नहीं हुआ। पिछले वर्षों में विभिन्न सत्ताओं ने जिस प्रकार मनमाने ढंग से कर लगाए हैं, उससे संपूर्ण व्यवस्था बड़ी बेढंगी हो गई है। आवश्यकता है कि एकात्मक वित्त व्यवस्था के आधार पर उसका विचार कर करों का पुनर्निर्धारण किया जाए। न्यूनतम जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सामान्यतः कर मुक्त रहनी चाहिए तथा राष्ट्रीय न्यूनतम आय से कम आय वाले व्यक्ति प्रत्यक्ष कर से मुक्त रहने चाहिए।

सहकारिता

सहकारिता भारतीय जीवन-व्यवस्था का अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं केंद्रीय तत्त्व रहा है। उसके आधार पर अर्थ-नीति की पुनर्रचना का प्रयास करना चाहिए। किंतु यह आवश्यक है कि सहकारी समितियाँ स्वाभाविक रूप से ही विकसित हों तथा वे ऊपर से थोपी न जाएँ। शासन के कर्मचारियों का नियंत्रण एवं हस्तक्षेप सहकारिता की भावना एवं पद्धति के प्रतिकूल है। संयुक्त-कुटुंब प्रथा यदि सहकारी तत्त्व पर पुनरुज्जीवित हो सकती है तो उसका उपयोग अवश्य करना चाहिए।

आवास

नागरिक की न्यूनतम आवश्यकताओं में आवास अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अर्थव्यवस्था के परिवर्तन से श्रमिक की संक्रमणशीलता तथा नगरीकरण के कारण आवास का अभाव अत्यंत गंभीर रूप धारण कर गया है। राज्य को तथा विभिन्न निकायों को इस संबंध में एक व्यापक कार्यक्रम लेना चाहिए। प्रत्येक कुटुंब को रहने को मकान मिले, यह राज्य का दायित्व होना चाहिए।

सामाजिक सुरक्षा और कल्याण

समाज की अर्थव्यवस्था का यह लक्ष्य होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति जीविकोपार्जन करता हुआ अपना और अपने कुटुंबी जनों का सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर सके। प्रत्येक नागरिक को एक न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी होनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ओर तो समाज कल्याण के ऐसे कार्यक्रम लेने होंगे, जिनमें प्रत्येक

नागरिक कुछ सेवाएँ सहज अथवा नि:शुल्क प्राप्त कर सके और दूसरी ओर, उन वर्गों के लिए जो आयु अथवा अन्य किसी कारण से असहाय हों, सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करनी होगी। नि:शुल्क शिक्षा और नि:शुल्क चिकित्सा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा, बेकारी और बीमारी बीमा, बुढ़ापा पेंशन, अनाथाश्रम आदि के कार्यक्रम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाने होंगे।

स्वास्थ्य और चिकित्सा

व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक सुख के लिए ही नहीं अपितु इसलिए भी कि वह समाज की योजनाओं में अपना पूर्ण योगदान कर सके, उसका स्वस्थ रहना आवश्यक है। अत: राज्य का कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक स्वास्थ्य के व्यापक एवं प्रभावी कार्यक्रम हाथ में ले। महामारी और संक्रामक रोगों की रोकथाम की व्यवस्था होनी चाहिए। भोजन, पानी और हवा शुद्ध मिल सकें, इसका ध्यान रखना होगा। खाद्य में मिलावट को रोकने के लिए कठोर उपाय करने चाहिए।

आयुर्वेद स्वास्थ्य और चिकित्सा दोनों का विचार लेकर चला है। विगत शताब्दियों में भारत में अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हई हैं। उनमें नए-नए शोध भी हुए हैं। भारतीय जनसंघ प्रत्येक चिकित्सा पद्धति को उसकी प्रभावशीलता और देश की स्थितियों की पृष्ठभूमि में अनुकूलता का विचार कर पूर्ण प्रोत्साहन देने की नीति उपयुक्त समझता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में अद्यतन ज्ञान और शोधों को समाहित कर आयुर्वेद का राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में विकास हो।

हमारा आराध्य

आर्थिक योजनाओं तथा आर्थिक प्रगति का माप समाज में ऊपर की सीढ़ी पर पहुँचे हुए व्यक्ति नहीं बल्कि सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान व्यक्ति से होगा। आज देश में करोड़ों ऐसे मानव हैं, जो मानव के किसी भी अधिकार का उपभोग नहीं कर पाते। शासन के नियम और व्यवस्थाएँ, योजनाएँ और नीतियाँ, प्रशासन का व्यवहार और भावना इनको अपनी परिधि में लेकर नहीं चलतीं, प्रत्युत उन्हें मार्ग का रोड़ा ही समझा जाता है। हमारी भावना और सिद्धांत है कि ये मैले-कुचैले, अनपढ़, मूर्ख लोग हमारे नारायण हैं। हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानव धर्म है। जिस दिन इनको पक्के, सुंदर, सभ्य घर बनाकर देंगे, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा और जीवन-दर्शन का ज्ञान देंगे, जिस दिन हम इनके हाथ और पाँवों की बिवाइयों को भरेंगे और जिस दिन इनको उद्योगों और धंधों की शिक्षा देकर इनकी आय को ऊँचा उठा देंगे, उसी दिन तो हमारा भ्रातृभाव 'व्यक्त' होगा। ग्रामों में जहाँ समय

अचल खड़ा है, जहाँ माता और पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ हैं, वहाँ जब तक हम आशा और पुरुषार्थ का संदेश नहीं पहुँचा पाएँगे, तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जाग्रत् नहीं कर सकेंगे। हमारी श्रद्धा का केंद्र, आराध्य और उपास्य, हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मानदंड वह मानव होगा, जो आज शब्दश: अनिकेत और अपरिग्रही है। जब हम उस मानव को पुरुषार्थ-चतुष्ट्यशील बनाकर समुत्कर्ष का स्वामी और विद्या-विनयसंपन्न करके आध्यात्मिकता के साक्षात्कार से राष्ट्र और विश्वसेवापरायण अनिकेतन और अपरिग्रही बना सकेंगे, तभी हमारा एकात्म मानव साकार हो सकेगा।

—पुस्तक, अगस्त 1964 (ग्वालियर)
(भारतीय जनसंघ घोषणाएँ व प्रस्ताव 1951-72,
भाग-1, पृ. 3-39)
प्रथम संस्करण, फरवरी 1973

□

61

उपाध्याय ने सं.सो.पा. को साम्यवादी जाल में न फँसने को चेताया

दीनदयालजी ने संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को साम्यवादियों के तथाकथित महँगाई विरोधी आंदोलन के जाल में न फँसने की चेतावनी दी। नई दिल्ली से उनका वक्तव्य।

यह दुःखद है कि संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का एक धड़ा साम्यवादी विध्वंसकारियों के साथ मिलकर काम कर रहा है। संभवतः उन्होंने अतीत में साम्यवादियों के साथ काम करने के अपने अनुभव से कुछ नहीं सीखा है या फिर उनकी आपसी लड़ाई ने उन्हें कम्युनिस्टों के ख़तरनाक और राष्ट्रविरोधी बाहुपाश से आँख मूँदने को विवश किया है। मैं सं.सो.पा. के नेताओं से अपील करता हूँ कि वे भस्मासुर पैदा करने की भूल न करें।

लोगों को अव्यवस्था और तनाव पैदा करनेवाली शक्तियों के सम्मुख संतुलन और व्यवस्था का पक्ष लेना चाहिए। उन्हें ऐसी गतिविधियों को पूरी तरह नकारते हुए राष्ट्रविरोधी साम्यवादियों को अलग-थलग करना चाहिए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 24-26 अगस्त को अनाज के थोक व्यापारियों, बैंकों और 'स्टॉक एक्सचेंजों' पर धरना देने तथा इसके अलावा सितंबर माह में 'भारत बंद' का आह्वान कर भारत को पूरी तरह अशक्त करने का निर्णय लिया है। संभवतः 7 सितंबर की तिथि को बढ़ाकर 25 सितंबर कर दिया है, ताकि उस सं.सो.पा. के कार्यक्रम के साथ तालमेल हो सके, जिसे वह अपने जाल में फँसाना चाहता है।

साम्यवादियों का दावा है कि उनका आंदोलन मूल्यवृद्धि के ख़िलाफ़ है। परंतु

इसमें ऐसा कुछ नहीं, जो पीड़ितों को राहत दे सके अथवा सरकार पर अपनी नीतियाँ बदलने का दबाव बना सके। कम्युनिस्टों का वास्तविक लक्ष्य अव्यवस्था पैदा कर अपने आपको पुनर्स्थापित करना है। जब इसी तरह के कुछ कार्यक्रम उन्होंने गुजरात और उत्तर प्रदेश में किए तो वहाँ दुकानें लूटी गईं, पोस्ट ऑफिस तथा बैंक जलाए गए। लूट और आगज़नी कम्युनिस्टों की युद्धनीति के वैध तरीक़े हैं। वे अंतिम मुक़ाबले से पहले इसका पूर्वाभ्यास करना चाहते हैं। यह हैरान कर देनेवाली बात है कि सरकार गड़बड़ी फैलानेवाले इन कार्यों के विरुद्ध कोई अवरोधक क़दम उठाने की जगह केवल मूक दर्शक बनकर खड़ी है। संभवत: वह भी जनता का ध्यान अपनी असफल और ग़लत आर्थिक नीतियों से हटाना चाहती है। सरकार की यह नीति आत्मघाती है। लोग कम्युनिस्टों की देशद्रोहपूर्ण और षड्यंत्रकारी गतिविधियों से परिचित हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि लोग उनके जाल में नहीं फँसेंगे। सरकार की नीतियों के विरुद्ध हमारा आंदोलन शांतिपूर्ण और प्रजातांत्रिक ढंग से जारी रहेगा, परंतु हम साम्यवादी चीन के दलालों की कठपुतली नहीं बन सकते।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 31, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

62

अंग्रेज़ी बिल को त्याग दो!

दीनदयालजी द्वारा जारी किया एक वक्तव्य।

मैं राजस्थान सरकार को 'राजस्थान सरकारी भाषा (संशोधन) विधेयक' वापस लेने पर बधाई देता हूँ, जिसके अनुसार 26 जनवरी, 1965 के पश्चात् अंग्रेज़ी का प्रयोग न करने का निर्णय लिया गया है।

मुझे आशा है कि उत्तर प्रदेश सरकार भी ऐसा ही निर्णय लेगी। उन्हें पुरानी कहावत की उपयोगिता समझनी चाहिए कि, 'समझदारी वीरता का बेहतर हिस्सा है।' विपक्ष का गला घोंटने और उसे निष्कासित करके संसदीय प्रजातंत्र का मज़ाक बनाते हुए विपक्ष की ख़ाली सीटों के रहते विधायी कार्य करने की अपेक्षा उन्हें जनभावनाओं का सम्मान करते हुए इस घृणित बिल को वापस लेकर इस अशोभनीय और दु:खद प्रसंग को समाप्त कर देना चाहिए।

वास्तव में उत्तर प्रदेश विधानसभा ही थी, जिसने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन से प्रेरणा पाकर सबसे पहले अपना पूरा कार्य हिंदी में करने का निर्णय लिया था। यह विडंबना ही है कि वही विधानसभा अपने अंग्रेज़ी मोह में, सभी प्रजातांत्रिक परंपराओं को तिलांजलि देते हुए, लगभग पूरे विपक्ष को निष्कासित करने का निर्णय ले।

मुझे विश्वास है कि सुचेता कृपलानी, जो आज उस कुरसी पर विराजमान हैं, जिस पर कभी पंडित पंत और डॉ. संपूर्णानंद बैठते थे, अवसर के अनुरूप ऊँचा उठेंगी, न कि अपने ही दल के उन लोगों के षड्यंत्रों का शिकार होंगी, जो धड़ों की स्पर्धा में उन्हें मुसीबत में डालना चाहते हैं, और भाषा विधेयक को वापस लेते हुए क्षमायाचना सहित इस प्रसंग का पटाक्षेप करेंगी तथा विपक्ष के सदस्यों को सम्मानपूर्वक अपने प्रजातांत्रिक

दायित्वों के निर्वाह का अवसर देंगी।

यदि सरकार असफल होती है तो भी लोग असफल नहीं होने चाहिए। उनका यह प्रजातांत्रिक और राष्ट्रीय दायित्व है कि वे शक्तिपूर्ण उपायों से अपने ऊपर इच्छा के विरुद्ध सरकार द्वारा थोपी जानेवाली एक विदेशी भाषा का विरोध करें। केरल के लोगों ने तानशाही कम्युनिस्ट शासन का वहाँ विरोध किया। उत्तर प्रदेश के लोगों में भी अपने प्रजातांत्रिक अधिकारों और दायित्वों के प्रति किसी से कम लगाव नहीं है। फिर भी, मैं आशा करता हूँ कि कांग्रेस सरकार समझदारी से काम लेगी और लोगों के धैर्य की परीक्षा लेते हुए उसे अभूतपूर्व आंदोलन के रूप में फूट पड़ने को विवश नहीं करेगी।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 31, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

63

शास्त्रीजी की बड़ी कूटनीतिक ग़लती

प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने श्री जयप्रकाश नारायण के माध्यम से, पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब ख़ान को भारत आने का निमंत्रण भेजकर बड़ी राजनयिक ग़लती की है। सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में तथाकथित शुभकामना मिशन[1] न तो जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है और न ही अब तक प्रचारित सरकारी नीति का। जयप्रकाश नारायण की स्थिति भले ही संदेशवाहक मात्र की हो, परंतु मिशन द्वारा व्यक्त विचारों को स्वयं प्रधानमंत्री के विचार मानने की भूल हो सकती है। श्री लालबहादुर शास्त्री को भारतीय दृष्टिकोण को पुनः दुहराकर लोगों के मन में इस विषय में उत्पन्न सारे संदेहों को दूर करना चाहिए।

यदि प्रधान्मंत्री द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण का उपयोग आत्मसमर्पण की भूमिका तैयार करने के लिए किया जा रहा है तो मैं सरकार को चेतावनी देते हुए कहना चाहता हूँ कि लोग कश्मीर के मुद्दे पर किसी तरह पीछे हटने को बरदाश्त नहीं करेंगे और सरकार द्वारा आक्रांता के तुष्टीकरण के क़दम से देश भर में आंदोलन प्रारंभ हो जाएँगे।

इस तथ्य के रहते हुए भी कि श्री जयप्रकाश नारायण ने पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाते हुए पाकिस्तान के मत का पूरी तरह समर्थन किया है तो भी उनका मिशन वहाँ सफल नहीं होगा। उनकी पाकिस्तान से शांति और मैत्री की इच्छा प्रशंसनीय है और संपूर्ण राष्ट्रवादी भारत उसका समर्थन करता है। उनका रास्ता ग़लत है। उनका भारत-पाक विवाद का विश्लेषण ग़लत है। पाकिस्तान का जन्म भारत के प्रति घृणा से हुआ है और

---

1. सितंबर 1964 में जयप्रकाश नारायण (1902-1979) के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल भारत-पाक संबंधों में मैत्री की संभावना को लेकर पाकिस्तान गया था। जे.पी. के साथ अन्य सदस्य थे—एस. मुलगाँवकर, बी.शिव राव, जे.जे. सिंह और सर्व सेवा संघ के सचिव राधाकृष्ण।

वह इसी घृणा अभियान पर ज़िंदा है। पाकिस्तान नेता अपने को बचाए रखने के लिए एक के बाद एक मुद्दा उठाते रहेंगे। किसी दबंग का तुष्टीकरण ही उसकी सबसे बड़ी पूँजी है। जब तक पाकिस्तान को इस नीति का लाभ मिलता रहेगा, तब तक दोनों राष्ट्रों में शांति और मैत्री की कोई संभावना नहीं है। पाकिस्तान को तभी अक़्ल आ सकती है, जब भारत एक उपयुक्त और यथार्थपूर्ण दृष्टिकोण अपनाएगा।

पाकिस्तान पहले ही भारत के विरुद्ध युद्धाभ्यास कर रहा है। कश्मीर में युद्धविराम का उल्लंघन आए दिन की बात हो गया है और अधिक हिंसक भी हो चुका है। यह भी संभव है कि जब भारत को सद्भावना मिशन के निद्रालस प्रभाव और आत्मतुष्टि की लोरियाँ देकर सुला दिया जाए, तब पाकिस्तान सैन्य कार्रवाई द्वारा भारत पर समझौता करने और अपना क्षेत्र समर्पित करने के लिए दबाव बनाए। सरकार को सावधान और दृढ रहकर पाकिस्तानी फ़ौजों की घुसपैठ को रोकना चाहिए।

जब तक हमें पाकिस्तानी नेताओं के दृष्टिकोण में स्पष्ट बदलाव के संकेत नहीं मिलते हैं, तब तक गृह मंत्री स्तर की वार्त्ता अथवा शिखर वार्त्ता से कोई लाभ नहीं होगा। पाकिस्तान को पहले अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर करने चाहिए। तभी शेष बची समस्याओं पर उचित परिप्रेक्ष्य में बातचीत संभव हो सकेगी।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 21, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

64

राज्य के निर्णय की आलोचना

ज्वार ख़रीद

जनसंघ के महासचिव दीनदयाल उपाध्याय ने महाराष्ट्र सरकार द्वारा एकाधिकार के अंतर्गत ज्वार की ख़रीद की आलोचना की।

बंबई में एक संवाददाता सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा कि प्रदेश सरकार का यह निर्णय केंद्र सरकार के अनाज में आंशिक व्यापार की नीति के विरुद्ध था। उनके अनुसार इस निर्णय से उत्पादकों को हानि होगी, क्योंकि सरकार द्वारा निर्धारित 45 रुपए क्विंटल का ख़रीद मूल्य बाज़ार मूल्य से काफ़ी कम है।

उन्होंने भय जताया कि इससे व्यापार बाधित होगा, एक भय का वातावरण बनेगा और जमाखोरी को बढ़ावा मिल सकता है।

भ्रष्टाचार के आरोप

भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच प्रधानमंत्री की अपेक्षा स्वतंत्र न्यायिक कमीशन द्वारा की जानी चाहिए।

उन्होंने कहा कि बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद को पहले ही क़ैद कर लिया जाना चाहिए था और जनसंघ नेता ने कहा कि उनके विरुद्ध आरोपों को न्यायालय के सम्मुख लाया जाना चाहिए। शेख़ अब्दुल्ला के विरुद्ध भी कार्रवाई की जानी चाहिए।

उन्होंने कहा कि पार्टी केरल में 30 से 40 प्रत्याशी खड़े करेगी।

श्री उपाध्याय ने नगालैंड को अधिक स्वायत्तता देने का विरोध किया, क्योंकि इससे अन्य राज्यों में भी ऐसी ही माँगें उठेंगी।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, सितंबर 25, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

65

केरल को नए नेतृत्व की ज़रूरत है

दीनदयाल उपाध्याय ने केरल की राजनीति का प्रत्यक्ष जायज़ा लेने के लिए वहाँ का दौरा किया। वहाँ उन्होंने राज्यपाल से आग्रह किया कि वे पूर्व मुख्यमंत्री श्री शंकर के विरुद्ध लगे भ्रष्टाचार की जाँच के लिए एक आयोग गठित करें। दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य।

केरल में कांग्रेस मंत्रिमंडल की विदाई और राष्ट्रपति शासन की घोषणा का स्वागत है। इससे आम चुनावों यह छह माह पूर्व हमारी एक माँग पूरी हुई है, यद्यपि यह शोभनीय ढंग से नहीं हुई। मुझे आशा है कि राज्य के राज्यपाल श्री वी.वी. गिरि दलीय राजनीति से ऊपर उठकर काम करेंगे, प्रशासन को सुधारेंगे और ऐसी स्थितियाँ पैदा करेंगे, जिससे प्रदेश के मतदाता स्वतंत्रतापूर्वक और उचित ढंग से मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकें।

विद्रोही कांग्रेसियों तथा अन्य कुछ लोगों ने श्री शंकर पर कुछ आरोप लगाए हैं। राज्यपाल का यह प्रथम कर्तव्य होना चाहिए कि वह इन आरोपों की जाँच के लिए आयोग गठित करें। न्याय की यह माँग है और लोगों में विश्वास स्थापित करने के लिए आवश्यक है। श्री शंकर के लिए भी अपने ऊपर लगे आरोप को झूठा सिद्ध कर अपनी सफ़ाई देने का अवसर होगा।

जिन विभिन्न राजनीतिक दलों को समय-समय पर प्रदेश का प्रशासन सँभालने का अवसर मिला है, वे निश्चित रूप से असफल रहे हैं। आपसी झगड़ों में उलझी कांग्रेस अपनी एकता बनाए न रख सकी। वह दायित्व निभाने में असफल रही है। लोगों को उसमें अवश्य अपना अविश्वास प्रकट करना चाहिए। जिन साम्यवादियों के विरुद्ध 1959 में लोगों ने विद्रोह किया, उन्हें दूसरा अवसर नहीं दिया जा सकता। केरल के

देशभक्त लोगों को इन पीकिंग और मास्कोपरस्त लोगों को किसी भी स्थिति में सहयोग नहीं देना चाहिए। वर्तमान में यहाँ राजनीतिक क्षेत्र में एक शून्य है। इसे पूरी तरह नए नेतृत्व से भरा जा सकता है और अवश्य भरा जाना चाहिए।

इन दोनों दलों या समूहों के प्रति बारी-बारी से आस्था जताने की अपेक्षा जिन्होंने सदा आपको छला है, यह अच्छा होगा कि कार्यकर्ताओं के नए समूह को स्थितियाँ सुधारने का अवसर दिया जाए। पुराने राजनीतिज्ञों को अवकाश लेकर अपना सामाजिक स्वास्थ्य सुधारना चाहिए।

भारतीय जनसंघ ने संकट की इस घड़ी में मैदान में आने का निर्णय लिया है। राष्ट्रवादी प्रजातांत्रिक शक्तियों को एकजुट होकर प्रदेश से सांप्रदायिकता धड़ेबंदी और बाहरी देशों से प्रतिबद्धता के रोगाणुओं से प्रदेश को मुक्त करना चाहिए। हमें केरल के युवाओं से आशा है, जो कि निष्काम तथा दाग़रहित हैं, वे इसका बीड़ा उठाएँगे और वर्तमान में निराश एवं हताश प्रदेशवासियों को नई आशा और प्रेरणा देंगे।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 28, 1964
(आश्विन 6, शक संवत् 1886)
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

66

लोग, जो हमें प्रेरणा देते हैं

भारतीय जनसंघ अलग तरह का दल है। यह उन लोगों का समूह नहीं है, जो किसी भी तरह सत्ता पाना चाहते हैं। न ही यह किसी निहित स्वार्थ विशेष का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि केवल अपने पक्ष में प्रचार करने तक सीमित हो। इन्हें इस बात का भी कोई दु:ख नहीं है कि जब ब्रिटिश भारतीयों को सत्ता सौंपकर गए तो यहाँ के शासकों ने इन्हें सत्ता में हिस्सेदार नहीं बनाया। वास्तव में जनसंघ की नींव रखनेवाले प्रथम अध्यक्ष श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी केंद्रीय मंत्री परिषद् के सदस्य थे और पूर्वी बंगाल के अल्पसंख्यकों की रक्षा के मुद्दे पर उनके त्याग-पत्र के पश्चात् ही इस नए दल की स्थापना का विचार आया।

जनसंघ उन लोगों का जमावड़ा भी नहीं है, जो कि इस नए युग के आगमन से राजनीतिक और आर्थिक रूप से विस्थापित हुए हैं। इसके किसी सदस्य के नाम के साथ 'पूर्व' उपसर्ग शायद ही लगाया जा सकेगा। अपने अतीत की कमाई पर जीने की अपेक्षा हम अपने वर्तमान के कर्मों पर निर्भर हैं। यद्यपि जनसंघ की व्याख्या प्रसिद्ध 'नेति नेति' शब्दों में की जा सकती है, जिससे विपक्षी संतुष्ट न होंगे। यद्यपि यह बात ही सत्य है। इसलिए वे पूछ सकते हैं कि "आख़िरकार यह है क्या?"

जनसंघ दल नहीं, आंदोलन है

सचमुच भारतीय जनसंघ एक दल न होकर एक आंदोलन है। यह भारत के आत्मस्वरूप की प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा से पैदा हुआ है। राष्ट्र की जो नियति तय है, उसे आकार देने और प्राप्त करने की यह इच्छा है। यह केवल मात्र लोगों की उस इच्छा की अभिव्यक्ति है, जो खुली हवा में साँस लेना चाहती है, उन शारीरिक और मानसिक

बंधनों से मुक्ति चाहती है, जिन्होंने हमारी आत्मा को बंदी बनाकर इस राष्ट्र को गरुड़ की तरह सर्वोच्च शिखर तक उड़ने से रोक रखा है, जहाँ पहुँचकर यह उस सर्वोच्च का अंग बन सके। यह सृष्टिक्रम में अपना स्थान खोजने का प्रयास है, ताकि राष्ट्र के रूप में सोद्देश्य और सुखी जीवन जी सकें और मानवता की सेवा कर सकें।

भारतीय संस्कृति और मर्यादा जनसंघ के आधार हैं। भारतीय संस्कृति कुछ विशिष्ट लोगों की संस्कृति की परिचायक न होकर एक विश्व-दर्शन की परिचायक है। यह बँटे हुए विश्व को एक कर शांति प्रदान कर सकती है। सह-अस्तित्व और एकता के आदर्श मात्र राजनीतिक नारेबाज़ी बनकर रह जाएँगे, यदि इस महान् संस्कृति से अनुप्राणित नहीं होंगे। यह हमारा जीवन-लक्ष्य है। दायित्व वहन और कर्तव्य निर्वहन भी उत्कट इच्छा को पश्चिम की यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा अपने शासन के औचित्य को ठहराने के लिए गढ़े गए 'सफ़ेद लोगों का बोझा' सिद्धांत के तुल्य नहीं मानना चाहिए। भूरे लोगों का कोई बोझा नहीं है। हमें न ऐसे भ्रम हैं और न हमारी ऐसी योजनाएँ हैं। हमारी भूमिका उपदेशकों की नहीं, उदाहरण पेश करनेवालों की है। सदा से यही हमारा मार्ग रहा है। मनुस्मृति में कहा गया है, "माशा भर व्यवहार मनों उपदेशों से बेहतर है," यह एक पुरानी कहावत है। हमारे लिए इसमें एक शिक्षा है।

भारतीय संस्कृति क्या है?

इस छोटे से लेख में मेरा उद्देश्य भारतीय संस्कृति का प्रतिपादन अथवा उसकी व्याख्या करना नहीं है। यह विखंडनात्मक या विश्लेषणात्मक न होकर समग्रतावादी है। यह जैविक है, मिश्रित नहीं। यह समग्र मनुष्य को न केवल समाज का बल्कि सृष्टि का अंग मानती है। पश्चिम के अनेक दर्शनों में मनुष्य को सृष्टि में सर्वोपरि स्थान देने के बावजूद वहीं पर अमानवीयकरण की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ रही है। मनुष्य को पुनर्जीवित और उदात्त बनाने के लिए, जीवन दर्शन को मानवीय बनाने, राजनीति, आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं को अधिक मानवीय बनाने की ज़रूरत है। भारतीय संस्कृति यही कार्य करने का प्रयास करती है। यह कहना कि इसमें चरम शिखर पर पहुँच गए, बड़बोलेपन, शोध की आत्मा के विपरीत और विकास के विरुद्ध कथन होगा, परंतु इस दिशा में गंभीर प्रयास हुआ है और जो सफलता मिली है, उससे आशा जगती है कि और सफलता के लिए प्रयास करें।

भारतीय संस्कृति जड़ न होकर गतिशील है। वास्तव में गतिशीलता ही जीवन है। जब आपका विकास रुक जाता है, आप निष्क्रिय होने लगते हैं और निष्क्रियता बिखराव तथा मृत्यु की ओर ले जाती है। अपने स्वर्णिम अतीत और दुर्दशापूर्ण वर्तमान के कारण समाज में दो तरह की प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं। एक पुरातन को स्वीकारती है जो कि

वास्तव में इसे अपना संस्कार मानती है, जिस पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। दूसरी प्रवृत्ति परिवर्तन की लालसा हर क्षेत्र में रखती है और इस बात की भी चिंता नहीं करती कि परिवर्तन की दिशा क्या हो और उसकी शक्ल क्या बनती है। जनसंघ इन दोनों प्रवृत्तियों का निषेध करती है। अतीत से हम प्रेरित हों। परंतु हमारी दृष्टि अग्रगामी होनी चाहिए। जो कुछ हमें विरासत में मिला है, उस सारे को सुरक्षित रखना पूर्वजों की सेवा नहीं है। हमें तो ग़ुलामी भी विरासत में मिली थी। मनुष्य ने अपनी इस विरासत से मुक्ति के लिए कठोर संघर्ष किया है। इस तरह हज़ारों अन्य विरासतें हो सकती हैं। इनसे मुक्ति ही एकमात्र उपाय है। उधार चुकाया जाना चाहिए और पूँजी की सुरक्षा तथा परिवर्धन होना चाहिए। जो लोग केवल संरक्षण की बात करते हैं, वे प्रकृति के नियमों को भूल जाते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, दीवाली, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

67

प्रकृति, संस्कृति और विकृति

राष्ट्रधर्म का पुनर्प्रकाशन अक्तूबर 1964 में हुआ। संपादक रामशंकर अग्निहोत्री को प्रवेशांक के लिए दीनदयालजी ने यह आलेख दिया।

'संस्कृति' क्या है? इस संबंध में हमें कुछ मूल तत्त्वों पर विचार करना होगा। 'संस्कृति' शब्द 'कृ' धातु से बना है। 'कृ' का अर्थ है 'कृति'। जो कुछ हम करते हैं, वह सब कर्म ही हमारी 'कृति' है। हमारे प्रत्येक कार्य हमारे स्वभाव के अनुसार होते हैं, इसलिए मनुष्य का सामान्य स्वभाव ही उसकी 'प्रकृति' है। इस 'प्रकृति' में यदि कुछ बिगाड़ उत्पन्न हो जाए तो वह उसकी 'विकृति' होगी और यदि उसके कार्य में सुधार हुआ तो वह 'संस्कृति' हुई। इस प्रकार 'प्रकृति', 'विकृति' भी हो सकती है और 'संस्कृति' भी। 'संस्कृति' में दिशा है और गति भी। अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर जब हम बढ़ते हैं तो वह 'संस्कृति' कहलाएगी और इसके विपरीत 'विकृति' होगी। इस प्रकार गतिशील होना या अवगतिशील होना, आगे बढ़ना या पीछे हटना इस बात पर निर्भर है कि हमारा गंतव्य, हमारा लक्ष्य क्या है? हमें जाना कहाँ है?

जीवन के इस निर्धारित लक्ष्य को भलीभाँति पहचानकर आचरण करने में अतीव सुख का अनुभव होता है। इस विपरीत लक्ष्य को समझने के लिए हमें मूल-प्रकृति का ही विचार करना होता है। हमारी मूल प्रकृति हमारे लक्ष्य निर्धारण में ही सहायक होती है और तदनुसार हमें सुख-दुःख की अनुभूतियाँ होती हैं। लक्ष्यानुरूप होनेवाले कार्यों में सुख तथा लक्ष्य विरुद्ध होनेवाले कार्यों में दुःख होता है। इतिहास में रंतिदेव[1] का क़िस्सा

---

1. राजा रंतिदेव : ऋषि संकृति के पुत्र, भरत वंशीय सम्राट्। इनका विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत के नवें स्कंध में आता है।

आता है। 49 दिन भूखे रहने के बाद भी उनके हाथ से जब कुत्ता रोटी छीनकर भाग गया तो वे उसके पीछे इसलिए नहीं दौड़े कि वह उनकी रोटी छीनकर ले भागा है, वरन् वे सब्ज़ी लेकर दौड़े, जिससे कुत्ता सूखी रोटी न खाए। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जिन्हें यदि कुत्ता रोटी ले जाए तो उस कुत्ते से रोटी छिनवा लेने में ही आनंद आएगा। भले ही वे स्वयं उस रोटी को न खाएँ। इस प्रकार सुखों की अनुभूति में अंतर होता है। अंतर उसकी प्रकृति का द्योतक है, जो परंपरा से रक्त-मांस में प्राप्त होती है। प्रकृति का मूल स्वभाव एक दिन या अवस्था का परिपाक नहीं होता। बीती अनेक शताब्दियाँ, अनेक पीढ़ियाँ, पूर्व पुरुषों के अनेक आचरण, जलवायु, प्राकृतिक वायुमंडल और अनेक घटनाओं के संघातों से उत्पन्न सामान्य क्रियाओं के सूक्ष्म प्रभावों से प्रकृति का निर्माण होता है। इस मूल प्रकृति से संबंध विच्छेद नहीं किया जा सकता। अत: संस्कृति का विचार करते समय हमें मूल प्रकृति का ही विचार करना पड़ता है। जाति, धर्म, भूमि, राष्ट्र इतिहास से बनी इस मूल प्रकृति का पालन करने से, बहुत कुछ 'संस्कृति' इसी में से प्राप्त हो जाती है। इस मूल प्रकृति में समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार कुछ परिष्कार करने की आवश्यकता समझी जा सकती है, किंतु उसका आधार भी मूल प्रकृति ही रहेगी। मूल प्रकृति को न समझते हुए यदि कोई उपाय योजना की गई तो संस्कृति तो दूर, कृति ही समाप्त होकर संपूर्ण विनाश उपस्थित हो सकता है। जैसे एक बीज होता है तो उसकी एक विशिष्ट प्रकृति भी होती है। उसे मिट्टी में डालने से अंकुर अवश्य निकलेंगे और जैसा वह बीज होगा, उसके अनुरूप अंकुर निकलेंगे। धीरे-धीरे पौधा बनेगा, वृक्ष बनेगा। माली जो उस बीज की प्रकृति को पहचानता है, बो देता है। एक ओर बीज की प्रकृति में उपस्थित होनेवाली बाधाओं को दूर करता है और दूसरी ओर अधिक अच्छे परिणाम पाने के लिए उचित खाद-पानी की व्यवस्था करता है और पहले से अच्छे फल प्राप्त कर लेता है। किंतु इसके विपरीत कुछ हो तो? जैसे एक शेखचिल्ली का क़िस्सा है। एक शेखचिल्ली था, उसे मोटा-मोटा इतना ज्ञान था कि जैसे बोओ वैसा काटो। उसके पास कुछ भुने हुए चने थें। उसने यह सोचकर अपने पास के सब भुने हुए चने ज़मीन में बो दिए कि जिससे भुने चनों की अच्छी खेती उसे प्राप्त हो। परिणाम क्या हुआ? उसने चने के बीज की मूल प्रकृति नहीं समझी, अत: पैसे भी ख़र्च हुए, श्रम भी व्यर्थ गया और मूल में जो कुछ था, उससे भी हाथ धो बैठा। मूल प्रकृति न पहचानकर प्रयत्न करने से ऐसा ही होता है।

मूल प्रकृति का विचार जिस एक प्रश्न के द्वारा सनातन काल से होता आया है, वह है, "मैं कौन हूँ?"

दुनिया में ऐसे लोग हैं, जो इस प्रश्न का उत्तर अपनी प्रकृति के अनुसार तत्काल देते हैं कि "मैं शरीर हूँ।" वे शारीरिक सुख के लिए पागल रहते हैं। उनका कहना है

कि कुछ रासायनिक क्रियाओं से शरीर बना है। शरीर और उसका सुख ही सत्य है। किंतु कई बार शरीर के सब सुख उपलब्ध होने के बाद भी रुचते नहीं। सबकुछ खाने की सुविधा के बाद भी खाया हुआ अंग नहीं लगता। मन की अप्रसन्नता के कारण शरीर शिथिल पड़ जाता है। यह इस बात का द्योतक है कि शरीर ही सबकुछ नहीं है। अब तो पश्चिम के लोग भी इस बात को मानने लगे हैं कि मन की चिंता बड़ी भयंकर चीज़ है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य की भी आवश्यकता होती है। उसी प्रकार हम जानते हैं कि कई बार अपने आप हाथ हिल उठता है। कारण बताया जाता है कि अचेतन मस्तिष्क में कुछ क्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार बुद्धि का भी विचार सामने आ जाता है। बुद्धि का सुख यदि प्राप्त न हो तो मनुष्य पागल हो जाता है। दिखाई देने से पागल व्यक्ति शरीर से बड़ा स्वस्थ दिखाई पड़ता है। उसमें शारीरिक शक्ति रहती है, किंतु उसे बुद्धि का सुख प्राप्त नहीं होता। इसलिए 'मैं कौन हूँ,' इस प्रश्न का उत्तर 'मैं शरीर हूँ' नहीं हो सकता। शरीर, मन, बुद्धि तीनों का विचार आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक चौथी वस्तु भी है, जिसे आत्मा कहते हैं। जब तक इस आत्मसुख की प्राप्ति नहीं होती, तब तक शरीर, मन, बुद्धि के सुख कुछ एक सीमा तक ही सुखकारक हैं। इसलिए शरीर, मन बुद्धि और आत्मा चारों का विचार करने पर संपूर्ण मनुष्य का विचार हो सकेगा। शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा की सुखानुभूति प्राप्त करने के लिए निर्धारित की गई दिशा और विकास के अवसरों का निर्धारण ही भिन्न-भिन्न मनुष्य-समाजों की मूल प्रकृति का अंतर स्पष्ट करेगा।

—राष्ट्रधर्म, अक्तूबर, 1964

□

68

न्यायपालिका का सम्मान सर्वोपरि

उत्तर प्रदेश विधानसभा और प्रयाग उच्च न्यायालय के बीच श्री केशवसिंह के मामले[1] को लेकर जो रस्साकशी प्रारंभ हुई थी, उसकी समाप्ति सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के उपरांत हो जानी चाहिए थी।

किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि झूठी प्रतिष्ठा का प्रश्न आड़े आ रहा है। विधानमंडल के सदस्य सभी ओर उत्तेजित हैं। उनकी मर्यादा में कुछ कमी आ गई है, ऐसा लग रहा है। केंद्रीय विधि मंत्री ने तो संविधान के संशोधन तक की बात कही है। संसदीय कांग्रेस दल ने फ़ैसले का अध्ययन करने के लिए एक उपसमिति बनाई है। उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष ने भी इस प्रकार की समिति गठित की है। अध्ययन करने में कोई बुराई नहीं, किंतु निर्णय आज प्रदर्शित भावनाओं की पृष्ठभूमि में किया गया तो अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होगा।

---

1. विधायिका तथा न्यायपालिका के बीच टकराव का सबसे चर्चित केस 1964 में केशव सिंह बनाम विधानसभा में देखने को मिलता है। उस समय उत्तर प्रदेश विधानसभा की दर्शक दीर्घा में उपस्थित केशव सिंह ने विधायकों के विरुद्ध आपत्तिजनक टिप्पणी वाला एक परचा सदन में फेंका। इस कार्य को अपनी मर्यादा के विरुद्ध मानते हुए विधानसभा ने इन्हें एक सप्ताह कारावास की सज़ा दे दी। इसके ख़िलाफ़ उच्च न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर सुनवाई करते हुए इन्हें रिहा कर दिया। विधानसभा ने इसे सदन की अवमानना समझा तथा केशव सिंह, उनके अधिवक्ता और दो न्यायाधीशों को गिरफ़्तार कर सदन में प्रस्तुत करने का आदेश दिया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अति संवेदनशील मामला देख 28 जजों की पूर्ण पीठ गठित की तथा विधानसभा के निर्णय पर रोक लगा दी। विधानसभा ने फिर इन 28 जजों की गिरफ़्तारी का आदेश दे दिया। बाद में राष्ट्रपति के ज़रिए यह मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा। मुख्य न्यायाधीश समेत सात न्यायमूर्तियों की पीठ ने इसकी सुनवाई करते हुए न्यायालय की व्याख्या के अधिकार को बहाल रखा तथा मध्यम मार्ग अपनाने का सुझाव दिया। अंततः इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने आदेश को संशोधित करते हुए केशव सिंह की याचिका ख़ारिज कर दी थी।

नागरिक अधिकारों का प्रश्न

ऊपर से देखने पर यह विवाद विधायिका और न्यायपालिका के बीच दिखता है; किंतु यह सत्य नहीं। विवाद का विषय विधायिका तथा नागरिक के अधिकारों की मर्यादा है। आजतक विधानमंडल इस भ्रम में काम करते रहे कि वे सर्व प्रभुता संपन्न हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने इस भ्रम का निरसन किया है। भारत में प्रभुता संविधान में निहित है। नागरिक और विधानमंडल संविधान से ही अपने अधिकार और शक्तियाँ ग्रहण करते हैं। विधानमंडल संविधान से ऊपर नहीं अपितु संविधान से नीचे हैं।

न्याय देने का अधिकार किसको

सर्वोच्च न्यायालय ने अभी तक इस विषय में कोई निर्णय नहीं दिया कि अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विधानमंडल के अधिकार और भाग 3 के अंतर्गत प्राप्त नागरिक अधिकारों में किसको वरीयता प्राप्त है। किंतु यह तो स्पष्ट ही है कि इसका संविधान की धाराओं के अनुसार तथा न्याय एवं मानव अधिकारों के आधारभूत तत्त्वों के अनुसार (जिन्हें 'धर्म' शब्द से व्यक्त किया जा सकता है) निर्णय देने का अधिकार न्यायपालिका का ही है। विधायिका इस अधिकार को अपने पास नहीं ले सकती।

विधायिका कभी सर्वोच्च नहीं रही

संविधान में संशोधन की बात की गई है; अर्थात् विधायिका न्यायपालिका को इस विषय में निर्णय नहीं करने देना चाहती। यदि एक संशोधन हो गया तो भारत में संवैधानिक शासन का अंत हो जाएगा। विधायिका की प्रतिष्ठा आवश्यक है। किंतु मनमानी करने की मनोवृत्ति अथवा अधिकार प्रतिष्ठा नहीं है। मर्यादाओं के आगे झुकना सबसे बड़ी प्रतिष्ठा है। निरंकुशता व्यक्ति की नहीं समूह की भी हो सकती है। व्यक्तिगत अहंकार के समान सामूहिक अहंकार भी विवेक पर परदा डाल सकता है। धर्मदंड सभी प्रकार के निरंकुश व्यवहार पर अंकुश रखता है। विधायिका को भारत की परंपरा में कभी सर्वोच्च नहीं माना गया, सर्वोच्च तो धर्म है। संविधान उसी का एक मर्यादित स्वरूप है।

यदि विधायिका को यह अधिकार दे दिया गया कि वह सबकुछ कर सकती है और उसके किए को कहीं चुनौती नहीं दी जा सकती, तो भारत से प्रजातंत्र समाप्त हो जाएगा। आज विधानमंडलों में जो कुछ हो रहा है, वह हमारे सामने है। यद्यपि मैं किसी व्यक्ति विशेष के कृत्य के समर्थन अथवा विपक्ष में कुछ नहीं कहता, किंतु यह तो स्पष्ट है कि सदस्यों को निलंबित करने अथवा निकालने की घटनाएँ बढ़ रही हैं। इन घटनाओं के मूल कारणों का विश्लेषण कर उपचार करना होगा। सब अधिकार बहुमत के हाथों में सौंप देना नहीं।

इंग्लैंड की परंपरा छोड़ें

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह स्पष्ट कहा गया है कि भारत के विधानमंडल यूनाइटेड किंगडम के 'हाउस आफ कॉमन्स' के सभी अधिकारों से सज्ज नहीं हैं। अच्छा हो कि इस समय हम इंग्लैंड की संसदीय परंपरा से अपना गठजोड़ तोड़ लें। हमारी अपनी परंपराएँ हैं। हमें उन्हें विकसित करना चाहिए। इन नाते यह निर्णय भारतीय 'स्वराज्य' के आविष्कार में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगा। क्या भारत के विधायक इसका स्वागत करेंगे?

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 12, 1964

□

69

उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर कुछ विचार

अब भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान की धारा 343 (1) के अधीन प्रेषित किए जाने के पश्चात् भारत के उच्चतम न्यायालय ने अपना फ़ैसला दे दिया है। इसलिए उत्तर प्रदेश की विधानसभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बीच चल रही दुःखद लड़ाई समाप्त हो जानी चाहिए। यह ठीक है कि यह निर्णय किसी पक्ष पर अनिवार्य रूप से लागू नहीं किया जा सकता। यह इस विषय की संवैधानिकता और वैधता के विषय में राष्ट्रपति के लिए परामर्श मात्र है। यदि इस परामर्शात्मक निर्णय पर कोई कार्रवाई होनी है तो पहल राष्ट्रपति की ओर से होनी चाहिए। स्वाभाविक रूप से राष्ट्रपति किसी राज्य के दो महत्त्वपूर्ण अंगों को कटु विवाद में लीन नहीं रहने दे सकते।

एक बहुत बड़ा निर्णय

इससे पूर्व कि राष्ट्रपति कोई कार्रवाई करें, प्रांतीय और केंद्रीय विधायकों ने तीव्र प्रतिक्रिया दी है। केंद्रीय क़ानून मंत्री ने जिसे विधायिका की शक्तियों का अत्यधिक क्षरण मानते हुए, संविधान में संशोधन करके विधायिका की सर्वोच्चता बनाए रखने की बात कही है। कांग्रेस संसदीय दल ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अध्ययन के लिए एक संसदीय उपसमिति का गठन किया है। उत्तर प्रदेश की विधानसभा के स्पीकर ने भी इसीलिए एक समिति गठित की है। यह बहुत संभव है कि शक्तिपूर्वक विचार करने के पश्चात् ये समितियाँ विधायकों द्वारा अब व्यक्त किए जा रहे विचारों से बिल्कुल भिन्न निर्णय पर पहुँचेंगी। उच्चतम न्यायालय का निर्णय अधिकतम सोच-विचार और सम्मान की अपेक्षा रखता है।

यदि झूठे सम्मान की चिंता से निर्णय प्रभावित न हो तो इस सारे प्रकरण का पटाक्षेप करना कठिन नहीं होना चाहिए।

संविधान ही राजा है

न्यायपालिका अथवा कार्यपालिका में से कौन श्रेष्ठ है, इस विषय पर विवाद करते रहना पागलपन है। दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं और दोनों संविधान द्वारा शासित होते हैं और अपनी शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। संविधान में इस बात पर बल है कि संप्रभुता संविधान की है, न कि उसके द्वारा गठित किसी अंग की, जो कि उसके अधीन कार्य कर रहा हो। यदि संविधान और न्यायपालिका को हटा दिया जाए तो पता नहीं शासक दल का छोटा सा हिस्सा क्या आतंक मचाएगा।

संप्रभुता धर्म में निहित है

भारतीय परंपरा में धर्म (क़ानून) में संप्रभुता है। एक संवैधानिक सरकार एक सीमा तक धर्मराज्य का प्रतिनिधित्व करती है। परंतु यदि संविधान को इसलिए बार-बार बदला जाता है, क्योंकि शासकों को इससे परेशानी अथवा शर्मिंदगी उठानी पड़ती है तो इसका कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। यह संशोधन और भी निंदनीय हो जाते हैं, क्योंकि इनमें से किसी से भी नागरिकों के अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों में वृद्धि नहीं हुई। इन सबसे वैयक्तिक स्वतंत्रता सीमित हुई है। यहाँ तक कि इस मुद्दे पर भी यदि संविधान संशोधन होता है तो नागरिकों के मौलिक अधिकारों में और अधिक कटौती होगी। मतदाता अपने विधायकों में विश्वास व्यक्त करके उन्हें चुनते हैं और उन्हें कुछ दायित्व सौंपते हैं। उन दायित्वों के निर्वहन के लिए वांछित सत्ता और सम्मान से उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। परंतु मतदाताओं ने कोई अपने मृत्यु अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर करके नहीं दिए हैं, जिससे वह उनके मौलिक अधिकारों को रौंद डाले। उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश विधानसभा की अवमानना प्रक्रिया की वैधता पर विचार नहीं किया है। उसने तो केवल विधायिका के उस भ्रम के विरुद्ध कि वह सर्वोच्च है, किसी नागरिक के मोहभंग होने के अधिकार को बनाए रखा है। अपनी वास्तविक स्थिति समझने की जगह वे संविधान में संशोधन करना चाहते हैं, ताकि एक भ्रामक धारणा पर ख़ुशियाँ मना सकें। ऐसा कोई क़दम संवैधानिक शासन की अवधारणा पर प्रहार होगा। संसद् की जो दशा है, उसमें प्राय: हर विषय पर पार्टी आदेश सांसदों को जारी किया जाता है। इसलिए वे शायद ही अपनी बात पर जोर दे पाते हैं। यह संसद् वाद-विवाद क्लब अथवा रबर स्टांप बनकर रह गई है।

यदि यह संविधान संशोधन पारित किया जाता है, ताकि उच्चतम न्यायालय के

निर्णय को निरस्त किया जाए तो यह नागरिक अधिकारों का गंभीर क्षरण होगा। विधायिका और न्यायपालिका के विवाद में नागरिक दाँव पर लगा है। उसका पक्ष सुने बिना निर्णय नहीं होना चाहिए।

विधायकों को नहीं भूलना चाहिए कि मूल अधिकारों पर किसी भी प्रकार का आघात उन पर उलटा पड़ेगा। विधायक भी एक नागरिक है और इस मामले में एक विधायक ने ही अपने अधिकार का प्रयोग किया था। नागरिक के अधिकार विधायक के विशेषाधिकारों से कहीं अधिक स्थायी होते हैं। जो बात सैद्धांतिक रूप से ग़लत है, उसे स्वार्थवश नहीं करना चाहिए। यदि विधायक नागरिक के अधिकारों के विरुद्ध कार्य करता है तो वह अपना प्रातिनिधिक स्थान खो देता है। जो लोग संविधान की बात कर रहे हैं, उन्हें पहले मतदाताओं से राय लेनी चाहिए। लोगों के निर्णय की ताक़त ही उच्चतम न्यायालय की ताक़त से बड़ी हो सकती है। यदि ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले में सरकार जनता से पूछे बिना संविधान संशोधन का निर्णय लेती है तो यह अधिकारों का भयंकर दुरुपयोग होगा।

जो लोग यह समझते हैं कि इससे विधायिका की शक्तियों का क्षरण हुआ है, वे ग़लती पर हैं। इससे केवल एक भ्रम टूटा है। विधायिका के पास कभी भी उतनी शक्तियों से अधिक शक्तियाँ नहीं थीं, जितनी उच्चतम न्यायालय ने तय की हैं। जो वास्तव में जनता का हक़ है। अब उसका और अधिक अनधिकार ग्रहण नहीं होना चाहिए। पुनः उस भ्रम को पोषित करने का कोई भी प्रयास ख़तरनाक होगा।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय उन लोगों के लिए निराश करनेवाला होगा, जो ग़ुलामों की तरह हमारी विधायिका को भी 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' की तर्ज़ पर चलाना चाहते हैं और इस परंपरा को बनाए रखने पर गर्व करते हैं। हमारी विधायिका उच्चतम न्यायालय के अनुसार इंग्लैंड के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' से भिन्न है। इस अवसर को वरदान मानना चाहिए कि इस रूप में ईश्वर ने हमें ब्रिटेन की संसदीय परंपराओं से मुक्त होने का अवसर दिया। हमें अपनी परंपराएँ विकसित करनी चाहिए। इसी से सही अर्थों में राष्ट्रीय प्रतिभा प्रतिबिंबित होगी। हमारी स्थितियाँ भिन्न तरह की परंपराओं, प्रक्रियाओं और प्रणालियों की माँग करती हैं। संसद् भारत की पंचायत बने।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 12, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

70

अनुच्छेद 370 को अभी समाप्त करें!*

दीनदयालजी ने लुधियाना में एक सार्वजनिक सभा को संबोधित किया। इससे पूर्व लुधियाना के ज़िला जनसंघ अध्यक्ष श्री धनराज थापर ने उन्हें 10,000 रुपए की थैली भेंट की।

केवल बख़्शी को ही क्यों पकड़ा गया?

केवल बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद को जेल में डालने से समस्या का समाधान नहीं होगा। शेख़ अब्दुल्ला भी अलगाववाद सिखा रहा था और हर तरह की राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में ग्रस्त था। मुझे समझ नहीं आता कि उसे क्यों जेल में नहीं डाला जाता। जम्मू-कश्मीर आजकल राजनीतिक षड्यंत्रों, देशद्रोह, समाज विरोधी तत्त्वों और बड़े पैमाने पर प्रशासनिक एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार का अखाड़ा बना हुआ है। इस सबका एक ही इलाज है और वह है अनुच्छेद 370 को पूरी तरह समाप्त करना और राज्य को पूरी तरह भारत में संयोजित करना।

छोटे व्यापारी मूल्यवृद्धि के लिए ज़िम्मेदार नहीं थे। मुद्रास्फीतिपरक नियोजन और आर्थिक अवरोध इसके लिए उत्तरदायी तत्त्व हैं।

कोयले के लिए अलग क्षेत्र क्यों नहीं?

खाद्यान्न के लिए अलग क्षेत्रीय व्यवस्था बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। जो लोग पंजाब का गेहूँ गुजरात और महाराष्ट्र को देने का विरोध करते हैं, वे अमरीका द्वारा भारत की मदद को तर्कसंगत ठहरा सकते हैं? एक प्रतिबंध दूसरे प्रतिबंध को जन्म देगा। अब

---

* देखें परिशिष्ट XV, पृष्ठ 338।

गुजरात खाने के तेलों के आवागमन पर रोक लगा रहा है। कल को बिहार और बंगाल कह सकते हैं कि अपनी आवश्यकताओं को पहले पूरा करने के लिए वे कोयले का अलग क्षेत्र चाहते हैं। 1947 में हमने भारत का राजनीतिक बँटवारा किया, अब हम उसे आर्थिक आधार पर बाँट रहे हैं।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 12, 1964
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

71

जनसंघ नेता ने परमाणु नीति पर पुनर्विचार को कहा

दीनदयालजी ने 25 अक्तूबर को दिल्ली में यह वक्तव्य दिया।

चीन द्वारा परमाणु बम का विस्फोट भारतीय सुरक्षा और विश्वशांति के लिए ख़तरा है। चीन की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा से जुड़ी सैनिक चालें, उसका यह घोषित करना कि युद्ध अपरिहार्य और उपयोगी है, किसी को उसकी इस बात पर विश्वास के लिए प्रेरित नहीं करता कि वह परमाणु बम का प्रयोग किसी देश के विरुद्ध नहीं करेगा। इन परिस्थितियों में भारत को अब तक के अपने परमाणु अस्त्रों विषयक मत पर पुनर्विचार करना चाहिए। इस दिशा में सैनिक संतुलन बनाए रखने के लिए भारत द्वारा उठाया गया कोई भी क़दम उसकी विश्व परमाणु निशस्त्रीकरण की नीति के विपरीत नहीं होगा।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 26, 1964
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

72

चौथी योजना में तीसरी योजना से कृषि और लघु-उद्योगों के लिए आवंटन कम

'चतुर्थ योजना से निराश' शीर्षक के साथ यह लेख 'पोलिटिकल डायरी' (पुस्तक), 1971 में पुनः प्रकाशित हुआ।

योजना आयोग ने चतुर्थ योजना पर जो नोट तैयार किया है, वह अभी तक पूर्णतः प्रकाशित नहीं हुआ है। किंतु समाचार-पत्रों में जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि पूर्व योजनाएँ बुरी तरह विफल रही हैं, आयोग उन पूर्व योजनाओं की प्राथमिकताओं एवं व्यूहरचना का ही पल्ला पकड़े हुए है। परिवर्तन की आवश्यकता मान्य की गई है, किंतु क्षेत्रीय आबंटन में उसका कहीं आभास नहीं है। उसके कुछ अवांछनीय पहलू निम्न प्रकार से हैं—

बृहदाकार आयोजना की धुन पूर्ववत् है। तृतीय योजना-काल में विकास की गति 3 प्रतिशत वार्षिक से अधिक बढ़ने की संभावना नहीं है, किंतु चतुर्थ योजना 6.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर की पूर्वाशा पर आधारित की जा रही है। अतिशयोक्तिवादी होने की अपेक्षा वास्तविकतावादी बनना अच्छा है।

सार्वजनिक (सरकारी) और निजी क्षेत्र के बीच जो आवंटन किया गया है, वह केवल सैद्धांतिक आधार पर है और उसमें दोनों क्षेत्रों की भूतकालिक उपलब्धियों, वर्तमान क्षमताओं तथा भविष्य की संभावनाओं पर विचार नहीं किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र को ठोस करने की आवश्यकता है। तृतीय योजनावधि में सार्वजनिक क्षेत्र में आर्थिक उपलब्धि 65 अरब रुपए से अधिक होने की संभावना नहीं है। अतः उसके लिए 01 खरब 56 अरब रुपए का निर्धारण उसकी क्षमता से काफ़ी अधिक है।

कृषि अभी भी पिछड़े स्तर पर ही है। तृतीय योजना के 14 प्रतिशत की तुलना में चतुर्थ योजना में कृषि-विकास के लिए केवल 13.8 प्रतिशत निर्धारित किया गया है, जबकि उद्योगों एवं खनिजों के विकास के लिए निर्धारित राशि 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दी गई है। लघु उद्योगों के लिए आवंटित राशि भी 4 प्रतिशत से घटाकर 3 प्रतिशत कर दी गई है। इन सबसे न तो बेरोज़गारी की समस्या ही हल होगी और न मूल्यों में स्थिरता आ सकेगी।

जबकि साधन-स्रोतों का पूरा चित्र उपलब्ध नहीं है, तब 25 अरब रुपए के अतिरिक्त कराधान का सुझाव दे दिया गया है। कराधान चरम सीमा को पहुँच चुका है, बल्कि उसको पार कर चुका है। आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि और उससे प्राप्य राजस्व में वृद्धि के अतिरिक्त किसी प्रकार के अतिरिक्त कराधान की कोई गुंजाइश नहीं है। चतुर्थ योजना के द्वारा 'सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी' की ही हत्या हो जाने की संभावना है।

इस नोट को तैयार करते समय योजना आयोग ने प्रधानमंत्री (श्री शास्त्री) द्वारा आयोजना एवं प्राथमिकताओं के संबंध में सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त किए गए दृष्टिकोणों पर समुचित विचार नहीं किया है। आयोग अपने पूर्व के विचारों से इस प्रकार प्रभावित है कि वह कुछ नया सोच ही नहीं सकता। यह वांछनीय है कि आयोग का ढाँचा बदला जाए और ऐसे लोगों को, जो अनुभव पर आधारित निर्णय ले सकते हों और प्रधानमंत्री की भावनाओं के अनुरूप योजना तैयार कर सकते हों, यह कार्य सौंपा जाए।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 26, 1964

□

73

शरणार्थियों का देश

भारत-लंका के बीच, राज्यविहीन लोगों के विषय में हुई संधि[1] का स्वागत कई लोगों ने किया है। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों की इस बात के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है कि जिस विवाद के कारण दोनों देशों के संबंधों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा था, उसे समाप्त कर दिया गया है। मंत्री की उत्कट आकांक्षा और समझौतों ने, किसी भी तरह के समझौते, इस संधि के वास्तविक तथ्यों और होनेवाले प्रभावों के प्रति हमें अंधा बना दिया है। इसलिए इसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण संभव नहीं हो सका है।

यदि यही समझौता करना था, जो आज हुआ है तो वह तो कभी भी किया जा सकता था। इसके लिए अधिक मोलभाव की ज़रूरत न थी। भारत सरकार ने ग़ैर-सिंहली लोगों को निर्वासित कर भारत भेजने के लंका सरकार के प्रयत्नों का सदा विरोध किया था। वास्तव में ये लोग लंका के वैसे ही नागरिक हैं जैसे कि भंडारनायके। इन्हें भारतीय केवल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि कुछ पीढ़ियों पूर्व इनके पूर्वज भारत से आए थे। यदि हम पिछले इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि लंका के अनेक वर्तमान शासकों का यह दायित्व है कि वे लंका के स्थायी नागरिकों के प्रति अपना कर्तव्य निभाएँ। परंतु उन्होंने कभी ऐसा किया नहीं है।

इसके विपरीत, भारतीय मूल के इन तमिलभाषी लोगों को वास्तव में जीवन के सभी क्षेत्रों में अवसर की समानता से वंचित रखा गया। इन्हें कभी नागरिकता का

---

1. श्रीलंका में भारतीय मूल के लोगों से हो रहे दोयम दर्जे का व्यवहार तथा राज्यविहीन व्यक्तियों के भविष्य का शांतिपूर्ण समाधान करने के लिए नई दिल्ली में भारतीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री तथा श्रीलंका के प्रधानमंत्री सिरिमावो भंडारनायके ने 24 अक्तूबर, 1964 को एक महत्त्वपूर्ण समझौते पर हस्ताक्षर किया। इसमें लगभग तीन लाख व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता और 5 लाख 25 हज़ार लोगों को भारत की नागरिकता देने की बात कही गई थी। इन सवा पाँच लाख लोगों को भारत आने के लिए 15 वर्ष का समय दिया गया था।

अधिकार नहीं दिया गया और जैसा कि आई.सी.एफ.टी.यू. (इंटरनेशनल कन्फेडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियंस) का एशियन रीजनल ऑर्गेनाइज़ेशन कहता है—

''लंका में अनेक भेदभावपूर्ण कार्य प्रचलित हैं : भारतीय मूल के लोगों को सरकारी योजनाओं में सहायता से इस आधार पर वंचित रखा जाता है कि वे लंका के नागरिक नहीं हैं, सरकार द्वारा परिचालित रोज़गार कार्यालयों की सेवाएँ उन्हें नहीं मिल सकतीं, यहाँ तक कि वे अपने को काम के लिए पंजीकृत तक नहीं करवा सकते। इन लोगों को सरकारी और ग़ैर-सरकारी क्षेत्रों में काम नहीं दिया जाता। सरकारी अस्पतालों और डिस्पेंसरियों से भारतीय मूल के इन बाग़ान मज़दूरों को स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं दी जातीं, यद्यपि इनके बाग़ान के मालिक इनकी मज़दूरी वृद्धि में से अंश काटकर सरकार को इस हेतु देते हैं। अंततः इतना ही नहीं, इनके बच्चों को शैक्षिक सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता है।''

ये गेट्टो (अलग तरह की बस्तियाँ) के लंकाई स्वरूप के शिकार हैं, जहाँ वैश्विक मानवाधिकार के घोषणा-पत्र में दिए गए नागरिक अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है।

इस प्रश्न पर वार्त्ता और समझौता होना चाहिए था। इसके स्थान पर दोनों सरकारों ने बंदरबाँट किया है और इस मूर्खतापूर्ण समझौते में मानवीय पहलू की पूरी तरह उपेक्षा की गई है। जिन लोगों के भाग्य का निर्णय किया जाता था। उनसे परामर्श किया जाना चाहिए था।

भारत ने ऐसे 5,25,000 लोगों को वापस लेने का फ़ैसला किया है। तीन लाख को लंका की नागरिकता प्रदान कर दी जाएगी और शेष 2,25,000 के भाग्य का निर्णय बाद में होगा। यह कार्यक्रम क्रमशः 15 वर्ष में पूरा किया जाएगा। काग़ज़ों पर यह सब अच्छा लगता है। परंतु यह द्वीप के सभी नागरिकों के लिए अस्थिरता का वातावरण पैदा करता है। उनका भविष्य लँगड़ा बना दिया गया है। सभी प्रकार के प्रयासों, आंदोलनों और अपील के रास्ते बंद कर दिए गए हैं। आगामी पंद्रह साल उन्हें निष्क्रिय जीवन बिताना होगा।

इस समझौते में स्वदेश वापस भेजे गए लोगों को अपनी पूँजी साथ ले जाने का अधिकार दिया गया। साथ ही यह प्रावधान भी किया गया कि लंका सरकार द्वारा प्रत्यावर्तन पर लगाई गई पाबंदियों में यह राशि 4000 रुपए से कम नहीं होगी। यह विरोधाभासी और परिणाम में समपहरणकारी है।

श्रीलंका के लोगों के अतिरिक्त भी यह समझौता व्यापक प्रभाव डालनेवाला है। क्योंकि भारत ने लंका से भारत मूल के लोगों को वापस लेने का निर्णय कर लिया है, अब अन्य अनेक देशों से भी ऐसा ही करने का दबाव आएगा। इससे एक अस्थिरता की स्थिति बनती है और विश्व भर के ऐसे लोगों के लिए प्रतिकूल वातावरण तैयार होता है।

स्वाभाविक रूप से भारत शरणार्थियों का देश बन गया है और जो लोग भारत से बाहर अनेक देशों में जाकर बसे और उन देशों को उन्होंने अपनाया और व्यवसाय करते हुए वहाँ पीढ़ियाँ गुज़ार दीं, अब वे असहाय भिखारियों की तरह भारत की ओर धकेल दिए जाएँगे, ताकि फिर नए सिरे से अपना जीवन प्रारंभ करें।

मैत्रीपूर्ण होना अच्छा है, परंतु शास्त्रीजी को विश्व को यह आभास नहीं देना चाहिए कि भारत इतना कमज़ोर और निरीह हो गया है कि उस पर हर प्रकार की अन्यायपूर्ण शर्तें और बातें थोपी जा सकती हैं।

भारत-लंका समझौता जितना बताया जा रहा है, उसका आधा भी उपयुक्त नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 9, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

74

जनसंघ फूलपुर और मुंगेर दोनों जगह से लड़ेगी

यह बहुत दु:ख की बात है कि 'राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक विपक्षी दल' द्वारा स्वीकृत आधार पर फूलपुर और मुंगेर लोकसभा क्षेत्रों से जनसंघ के चुनाव लड़ने के सारे प्रयत्न विफल हो गए हैं। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी सदा ही झगड़ालू रही है। फूलपुर में नामांकन के पश्चात् इस तथ्य के होते हुए भी कि उनके कुछ लोगों ने हमसे संपर्क किया है। उन्होंने औपचारिक रूप से जनसंघ से बात करने से इनकार कर दिया। इसके विपरीत फूलपुर से उनके प्रत्याशी तथा नेता जनसंघ की भर्त्सना के वक्तव्य देते रहे हैं। वे जनसंघ को अपने प्रत्याशी के पक्ष में बिना शर्त सहायता करने के लिए विवश करना चाहते हैं।

फूलपुर निर्वाचन क्षेत्र में जनसंघ का पर्याप्त जनाधार है। गत आम चुनावों में जनसंघ वहाँ सक्रिय रही है। 1962 में हमने पंडित नेहरू के विरुद्ध लोहियाजी के समर्थन का निर्णय लिया था और एक प्रकार से उनके चुनाव का प्रबंधन किया था। वास्तव में सं.सो.पा. अथवा उनका कोई सहयोगी इस लोकसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ने नहीं आया।

इस स्थिति के होते हुए भी जब से यह स्थान खाली हुआ है, इस क्षेत्र से जनसंघ सं.सो.पा. के साथ मिलकर सर्वसम्मत प्रत्याशी को लेकर चुनाव लड़ने की इच्छुक रही है। पंडित पद्मकांत मालवीय का नामांकन इसी लक्ष्य को सामने रखकर करवाया गया। जनसंघ ने उसे समर्थन दिया। डॉ. लोहिया ने भी इसे स्वीकार किया, परंतु सं.सो.पा. ने अपना प्रत्याशी खड़ा करने का निर्णय ले लिया। उन्होंने अपने बल पर चुनाव लड़ने की घोषणा कर दी। ऐसी स्थिति में जनसंघ के पास इस प्रत्याशी को उतारने के सिवा कोई चारा न रहा।

जब श्री लिमये और राजनारायण ने श्री नानाजी देशमुख से संपर्क स्थापित कर उनसे अपने प्रत्याशी के लिए समर्थन माँगा तो उन्होंने कहा कि यदि वे औपचारिक रूप से कोई प्रस्ताव रखते हैं तो जनसंघ हर प्रस्ताव पर विचार के लिए तैयार है।

उन्हें बताया गया कि इन दो लोकसभा सीटों, फूलपुर और मुंगेर में से जनसंघ और सं.सो.पा. को एक-एक सीट पर चुनाव लड़ना चाहिए अथवा जायसवाल के लोकसभा चुनाव जीतने की स्थिति में उनके रिक्त हुए विधानसभा क्षेत्र से जनसंघ को चुनाव लड़ने का अधिकार मिले। आज तक उन्होंने हमारे प्रस्तावों का उत्तर नहीं दिया। उनकी रणनीति संभवत: यह है कि जनसंघ को प्रतीक्षा करने दें और समय निकल जाने दें।

जनसंघ संसदीय दल की बैठक आज हुई और निर्णय लिया गया कि जहाँ तक वर्तमान उपचुनावों का प्रश्न है, सारी वार्त्ता समाप्त की जाए तथा और अधिक प्रतीक्षा न की जाए। श्री सीताराम यादव और श्री मुरली मनोहर महतो, फूलपुर और मुंगेर से क्रमश: चुनाव लड़ेंगे।

डॉ. लोहिया का मत

उसी दिन एक वक्तव्य जारी करके डॉ. लोहिया ने सं.सो.पा. नेताओं को दोषी ठहराते हुए उनके चुनाव के प्रति व्यवहार की निंदा की और कहा कि यदि फूलपुर का चुनाव वे हारे तो उन्हें क्षमा नहीं करेंगे। डॉ. लोहिया ने कहा कि जनसंघ का यह मानना कि सं.सो.पा. का दुर्व्यवहार आशानुरूप नहीं रहा, न्यायविरुद्ध नहीं है।

डॉ. लोहिया ने घोषणा की कि यह सबकुछ होने के पश्चात् भी वे सं.सो.पा. प्रत्याशी के पक्ष में चुनाव प्रचार के लिए फूलपुर जाएँगे।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 9, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

75

शास्त्री-सिरिमाओ समझौते द्वारा एक नई समस्या का जन्म

लंका के राज्यविहीन भारतवासियों के संबंध में जो भारत-लंका समझौता हुआ है, उसके लिए दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों को बधाइयाँ और अनेकों उपहार समर्पित किए जा रहे हैं। क्योंकि ऐसा समझा जा रहा है कि इस समझौते से उन सभी समस्याओं का अंत हो गया, जो कि दोनों राष्ट्रों के मैत्रीपूर्ण संबंधों में एक बहुत लंबे समय से घातक सिद्ध हो रही थीं।

भारत द्वारा सदैव विरोध

सद्भावना से ओतप्रोत मैत्री तथा समझौते की हार्दिक उत्कंठा के कारण, वास्तव में इस समझौते के बंधन में हम को संतुष्ट हो जाने के लिए मजबूर कर दिया है, किंतु समस्या के प्रमुख उद्देश्य को प्राप्त करने से संबंधित लोग वंचित कर दिए गए हैं। इन लोगों को नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। जैसा कि 'अंतरराष्ट्रीय स्वतंत्र व्यापार संघ' ने भी घोषित किया कि "वर्तमान समय में लंका सरकार की विवेचनात्मक नीति के अनुसार भारतीयों को मानवता के प्राथमिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया है।"

भविष्य अंधकारमय

यही एक मुख्य विषय था, जिस पर वाद-विवाद और समझौता होना चाहिए था, या जैसा कि दोनों सरकारों ने इन मनुष्यों की अदल-बदल के पैमाने के रूप में प्रयोग करके एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज दिया? इस स्थूलकाय समझौते में मानवपक्ष को तो बिल्कुल ही अछूता रखा गया है। कम-से-कम, उन लोगों से जिनके भाग्य का निर्धारण किया गया है, भी तो कुछ विचार-विमर्श करके उनकी मंशा जान ली गई होती? भारत

सरकार ने 5,25,000 लोगों को लेना स्वीकार कर लिया तथा लंका की नागरिकता केवल 3 लाख व्यक्तियों को दी जाएगी और शेष 1,55,000 व्यक्तियों के साथ का निर्धारण बाद में फिर होगा। यह सबकुछ काग़ज़ी कार्रवाई में तो बहुत ही अच्छा प्रतीत होता है, किंतु यह सभी बातें उन लोगों को बड़ी असुविधाजनक और प्रायश्चित्तदायक प्रतीत होती है, जो लोग लंका में रह रहे हैं। उनका भविष्य उन लोगों को कितना 'अंधकारमय' प्रतीत हो रहा है। सत्याग्रह, प्रार्थना और समाधान के लिए सुझाए गए, उन्हें तो अब 15 वर्ष में समझौते की लेखन शैली की ध्वनि के अनुसार नृत्य करना पड़ेगा।

समझौते के अनुसार, "प्रत्येक प्रवासी, अपने साथ अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ व अन्य वैयक्तिक चल पूँजी अपने साथ भारत ला सकेगा, किंतु इस साथ में लाई जानेवाली पूँजी का कुछ मूल्य लंका सरकार के अधिनियमानुसार 4000 रुपए से अधिक नहीं होना चाहिए।" यह शर्त कुछ विशेष समस्या पैदा करती है। इस समझौते के विपरीत लंका में लोगों का दृष्टिकोण कुछ अधिक विस्तृत और भिन्न हैं।

क्या भारत शरणार्थियों का देश है?

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने इन मूल भारतीयों को लंका राज्य से वापस लेना स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार के प्रस्ताव अन्य राज्यों से भी भारत सरकार के सामने रखे जा सकते हैं। यह तो एक अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो जाएगी और विश्व के, इस प्रकार के बहुत से लोगों के सामने एक विशेष प्रकार की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार से भारत एक 'शरणार्थियों का देश' हो रहा है और वे सभी लोग जो कि भारत से विदेशों में चले गए और वहाँ की नागरिकता स्वीकार कर चुके हैं, उनका भी ध्यान भारत की 'शरणार्थियों को खुलेदार से धारण देश की नीति' की आवाज़ की ओर जाएगा। परंतु होगा यह कि निर्धन विदेशी, जो कि पुश्त-दर-पुश्त ही विदेशों में रह रहे हैं, समय से लाभ उठाने के लिए तथा 'नया जीवन पाने के लिए, फिर से भारत में आ धमकेंगे, जिससे भारतीय प्रशासन व भारतवासियों के सम्मुख एक नई किंतु विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी।

भारत की भीरुता का प्रकटीकरण

अन्य रास्तों में मित्रता-मंडल के लिए तो एक नीति बहुत ही अच्छी मालूम पड़ती है किंतु प्रधानमंत्रीजी को अपनी इस नीति के माध्यम से अन्य राष्ट्रों को यह विस्तार नहीं देना चाहिए कि "भारत इतना अधिक कमज़ोर और नम्र देश है कि वह सभी प्रकार के अन्याय और पापाचारों को भयभीत होकर चुपचाप सहन कर लेता है।"

—पाञ्चजन्य, नवंबर 16, 1964

□

76

आसाम में दस दिन

दीनदयालजी ने 10 दिन तक आसाम और त्रिपुरा का दौरा किया। उनके विचार।

पाकिस्तानी घुसपैठियों की सीमाक्षेत्र में घुसपैठ भारत के लिए गंभीर ख़तरा प्रस्तुत करती है। सरकार द्वारा उन्हें निकाल बाहर करने के प्रयासों पर लगभग विराम लगा हुआ है। 'ट्रिब्यूनल' का काम धीमा है। 'जमायत-उल उलेमा-ए-हिंद' ने अपने बहुत से कांर्यकर्ता, घुसपैठियों को भड़काने के लिए भेजे हैं, जो भारत सरकार द्वारा उनके निष्कासन के विरुद्ध उन्हें भड़काते हैं। असंख्य उदाहरण हैं, जिनमें घुसपैठिए पहले पाकिस्तान चले गए थे, अब पुनः भारत में आकर उन्हीं ज़मीनों पर क़ब्ज़ा जमाए हैं।

भ्रष्टाचार ज़ोरों पर है। सरकार की ढुलमुल नीतियों और जमायती कार्यकर्ताओं की गतिविधियों के कारण उनके हौसले बुलंद हैं। वे तो यह भी माँग कर रहे हैं कि पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों को आसाम में रहने दिया जाए। क़रीमगंज और सिलचर के शरणार्थी शिविरों पर स्थानीय मुसलमानों की सहायता से इन कार्यकर्ताओं ने हमले किए हैं। यदि सरकार कठोर और प्रभावी क़दम नहीं उठाती तो इस संकट को रोका नहीं जा सकता।

राज्य सरकार के पास इस समस्या से निपटने की न तो इच्छाशक्ति है और न ही मशीनरी। इस विषय में केंद्र सरकार को सीधे ज़िम्मेदारी लेते हुए सुचिंतित योजना बनानी चाहिए।

उन लोगों को छोड़कर जिनके नाम 1951 की मतदाता सूचियों और जनगणना के दस्तावेज़ों में हैं, अन्य सभी को घुसपैठिया माना जाए। जब तक कार्रवाई पूरी नहीं होती, उन्हें कहीं और रखा जाए, उनकी जगह शरणार्थियों को बसाया जाए। जो लोग घुसपैठ में सहायता देते हैं, उन्हें भी सज़ा दी जाए।

यदि घुसपैठ रोकनी है तो सीमा के साथ-साथ से 10 मील का क्षेत्र मुसलमानों से मुक्त किया जाए। यह उन मुसलमानों के भी हित में होगा, क्योंकि ऐसा होने से उन पर संदेह और उनके उत्पीड़न का अवसर ही नहीं रहेगा। सीमाक्षेत्र के लोगों को शस्त्र दिए जाने चाहिए, ताकि वे पाकिस्तान द्वारा सीमा उल्लंघन की छोटी-मोटी घटनाओं से मुक्त हो सकें।

भारत सरकार की नागालैंड नीति में पहले की अपेक्षा लचीलापन आया है। यदि नागालैंड तकनीकी रूप से भारतीय संघ का हिस्सा बने रहने को राज़ी हो तो उसे पूर्ण स्वायत्तता दी जा सकती है। इसमें प्रावधान है कि भारतीय संविधान यहाँ लागू नहीं होगा। तुष्टीकरण की इस नीति से पूरे पूर्वी क्षेत्र का विखंडन हो जाएगा और भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा ईसाई चर्च की दया पर होगा, जो कि इस सारे अलगाववादी आंदोलनों की जड़ में है।

यह हैरान कर देनेवाली बात है कि भारत सरकार बेपटिस्ट चर्च को वहाँ के लोगों का एकमात्र प्रतिनिधि मानकर उससे वार्त्ता कर रही है। रानी गीडालो और उनके अनुयायी, जो लंबे समय से वहाँ धर्म-परिवर्तन का विरोध करते आए हैं और जो हिंदू नागाओं के प्रतिनिधि हैं और वहाँ की जनसंख्या के महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं, उनकी पूरी तरह उपेक्षा की जा रही है।

नागा विद्रोहियों ने संधि की शर्तों को तोड़ा है। वे गाँवों से बलपूर्वक सैनिक भरती करने और चंदा उगाहने का काम कर रहे हैं। आसपास के क्षेत्रों से हज़ारों मवेशी ख़रीदे गए हैं और बड़े पैमाने पर रसद इकट्ठा की गई है। स्पष्ट है कि वे बड़े पैमाने पर विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। भारत सरकार आत्मतुष्ट दिखाई पड़ती है। यदि बड़े विनाश को रोकना है तो तुरंत और प्रभावी क़दम उठाए जाने चाहिए।

शांति वार्त्ता समाप्त करनी चाहिए और तथाकथित 'शांति मिशन' भंग किया जाना चाहिए। पादरी माइकेल स्कॉट को देश छोड़कर जाने की आज्ञा दी जानी चाहिए और जयप्रकाश नारायण को बता दिया जाना चाहिए कि वे सरकार और नागाओं के बीच हस्तक्षेप न करें।

ग़ैर-ईसाई प्रचारकों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण नियम समाप्त होने चाहिए। हिंदू नागा, जिन्हें ग़लत ढंग से प्रकृतिपूजक घोषित किया गया है और जिनके साथ अन्यायपूर्ण एवं

भेदभाव युक्त व्यवहार होता आया है, उन्हें नागा समस्या के समाधान में सहयोगी बनाना चाहिए। नागा समस्या का कोई भी समाधान, जो उनकी इच्छाओं की अनदेखी करता है, समाधान नहीं होगा। बल्कि वह तो अलगाववादी और धार्मिक कट्टरवादियों के समक्ष समर्पण होगा।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 14, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट

जनसंघ कार्यकारिणी

7 जून, नई दिल्ली। भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. रघुवीर ने अपनी नई कार्यकारिणी की घोषणा की।

इस कार्यकारिणी के सदस्य हैं श्री डी.पी. घोष और पीतांबर दास (उपाध्यक्ष), श्री दीनदयाल उपाध्याय (महासचिव), श्री ए.बी. वाजपेयी, श्री जगन्नाथ राव जोशी और श्री सुंदर सिंह भंडारी (सचिव), श्री झामतमल वधवानी (कोषाध्यक्ष), श्री बलराज मधोक (संगठन मंत्री, उत्तर प्रदेश), श्री नानाजी देशमुख (संगठन मंत्री, पूर्व क्षेत्र) और श्री जगदीश प्रसाद माथुर (कार्यालय सचिव)।

सदस्य हैं : सर्वश्री ए. रामा राव, केशव चंद्र, यू. एल. पाटिल, प्रेम नाथ डोगरा, कृष्णलाल, वाई.डी. शर्मा, गुरुदत्त वैद्य, डॉ. महावीर, ठाकुर प्रसाद, सुश्री हरिपदा भारती, बच्छराज व्यास, गिरिराज किशोर कपूर, हरिप्रसाद पांड्या, यू.एम. त्रिवेदी, भैरों सिंह शेखावत, वी. गोपालाचारी, वाई.डी. दूबे, एस.बी. श्वेताद्री और जे. यज्ञ नारायण। (पी.टी.आई.)

—द टाइम्स ऑफ इंडिया, जनवरी 8, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-II

भारतीय जनसंघ केंद्रीय कार्यकारी समिति की बैठक, नई दिल्ली

भारतीय जनसंघ की केंद्रीय समिति द्वारा दिल्ली में कोलंबो प्रस्तावों के बारे में पारित प्रस्ताव का मूलपाठ।

भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी समिति की बैठक, जो आज दिल्ली में हुई, उसमें कोलंबो कॉन्फ्रेंस में चीनी सेनाओं के भारतीय क्षेत्र से वापस लौटने और ख़ाली किए गए क्षेत्र में प्रशासन विषयक प्रावधानों पर विचार किया गया। इस बात पर दुःख जताया गया कि कोलंबो समझौते में आक्रांत और आक्रांता को समान स्तर पर रखकर आक्रमण की अनदेखी की गई। बांडुंग सम्मेलन के प्रस्तावों में सहभागी देशों ने उनसे अपेक्षित साहस का बिल्कुल भी परिचय नहीं दिया।

यदि इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया जाता है तो भारत का एक बड़ा क्षेत्र चीन के पास चला जाएगा, जो कि आक्रांता को वर्तमान और अतीत के आक्रमणों के लिए पुरस्कृत करने के समान होगा। भारत द्वारा इन प्रस्तावों को स्वीकार करने से चीन को भारत से 8 सितंबर से पूर्व हथियाए 12000 वर्गमील क्षेत्र में सैनिक अड्डे स्थापित करने का अबाध अधिकार प्राप्त हो जाएगा और इसके पश्चात् हस्तगत क्षेत्रों में असैनिक चौकियाँ स्थापित कर सकेगा। दूसरी ओर इन प्रस्तावों से भारत द्वारा अपनी ही भूमि पर सैनिक अड्डे बनाने का अधिकार सीमित हो जाएगा। यह पूरी तरह भारत की प्रभुसत्ता के लिए घृणास्पद है।

हमारा यह सुनिश्चित मत है कि चीन से बातचीत प्रारंभ करने से पूर्व, चीन से सारा क्षेत्र ख़ाली करने को कहा जाए। यह बात संसद् ने भी अपने पिछले सत्र में स्वीकार की है। कोलंबो प्रस्ताव संसद् द्वारा पारित उस प्रस्ताव के आड़े नहीं आएँगे, जिसकी न्यूनतम माँग है कि चीन से शांति स्थापना हेतु किसी प्रकार की वार्त्ता में 7 सितंबर की स्थिति बनाई रखी जाएगी। जिसके अनुसार चीन द्वारा ख़ाली किए गए क्षेत्र

पर भारतीय सेना का क़ब्ज़ा पुनः स्थापित किया जाएगा।

इससे भी बढ़कर कोलंबो प्रस्तावों में लद्दाख और मध्य पूर्वी क्षेत्र की सीमा के साथ-साथ चीन के भारी सैनिक जमावड़े की चर्चा नहीं की गई है। यह तैयारी दिनोदिन बढ़ती जा रही है। स्थानीय कबीलों के लोगों और तिब्बतियों को सेना में भरती किया जा रहा है। इस प्रकार के निरंतर बढ़ते ख़तरे को अनदेखा नहीं किया जा सकता। तनाव दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि संपूर्ण तिब्बत से सेनाएँ हटाई जाएँ।

कार्यकारिणी समिति इस बात पर खेद व्यक्त करती है कि संसद् की बैठक होने से पूर्व ही जिसमें इन प्रस्तावों पर विचार किया जाना है, कुछ अधिकारियों ने इन प्रस्तावों के पक्ष में प्रचार करना प्रारंभ कर दिया है।

भारतीय सांसदों ने आक्रांता को पुरस्कृत न करने की जो पवित्र शपथ राष्ट्र के समक्ष ली है, उसे याद कराते हुए भारतीय जनसंघ संसद् सदस्यों से आग्रह करती है कि वह यह सुनिश्चित करें कि आक्रमण के मूल मुद्दे पर किसी तरह का समझौता नहीं होगा। भारतीय प्रभुसत्ता और सम्मान के संरक्षक होने के नाते उन्हें इन सुझावों को ठुकरा देना चाहिए, क्योंकि यह न केवल चीन के नग्न आक्रमण की अनदेखी करते हैं, बल्कि चीन के अनधिकार क्षेत्र हथियाने को स्थिरता और वैधता भी देते हैं।

—बी.जे.एस. केंद्रीय कार्यालय, जनवरी 20, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-III

श्री उपाध्याय, लोहिया तथा कृपलानी चुनाव के मैदान में, कांग्रेस परेशान

कम्युनिस्टों द्वारा सहयोग का आश्वासन—देशद्रोही कौन? 'माँ की पुकार' एक लाख जनता ने सुनी, पर गुटबाज़ नेता उसे न सुन सके।

एक ओर तो पारस्परिक कलह, मनमुटाव, पदों की खींचतान आदि के कारण उत्तर प्रदेश कांग्रेस जर्जर होती चली जा रही है; दूसरी ओर लोकसभा के तीन और विधानसभा के दो स्थानों के उपचुनाव ने उसके सम्मुख एक विकट समस्या खड़ी कर दी है। इसका कारण यह है कि मुख्यमंत्री गुट एवं उनका प्रतिद्वंद्वी त्रिपाठी-गुट दोनों ही इस बात के लिए अत्यधिक सचेष्ट हैं कि उपचुनावों में टिकट उनके ही गुट के व्यक्ति को मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोकसभा के क्रमशः जौनपुर, अमरोहा (मुरादाबाद) और फर्रुखाबाद निर्वाचन-क्षेत्रों से विरोधी दलों के तीन दिग्गजों के नामों की घोषणा हो जाने से तो कांग्रेस दल और भी अधिक असमंजस में पड़ गया है एवं उसे यह अनुभव होने लगा है कि सर्वश्री दीनदयाल उपाध्याय (महामंत्री, जनसंघ), आचार्य कृपलानी तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के हाथों उसके प्रत्याशियों की भीषण पराजय होना निश्चितप्राय है। बहुलांश में यही स्थिति विधानसभा के उपचुनावों में भी होने की संभावना है।

इसीलिए राज्य-सरकार ने निर्वाचन आयोग से उपचुनाव आगामी अक्तूबर-नवंबर तक स्थगित करने की माँग की थी, परंतु निर्वाचन आयोग ने राज्य सरकार को टका सा जवाब दे दिया। अब यह निश्चित समझा जा रहा है कि ये उपचुनाव मई के दूसरे सप्ताह में होंगे।

दलबंदी के नज़ारे दिखेंगे

चुनाव आयोग द्वारा राज्य-सरकार के इस अनुरोध को अस्वीकृत कर देने से प्रदेश

कांग्रेस में हड़कंप मच गया और विवश होकर उसे भी निर्वाचन-संग्राम में उतरने की तैयारी करनी पड़ रही है। परंतु अविश्वास एवं आत्मविश्वासहीन कांग्रेस उपचुनावों में विजय प्राप्त नहीं कर सकती, यह सभी जानकार प्रेक्षकों का कहना है। फिर भी उनका मत है कि यह संभव हो सकता है कि सर्वश्री उपाध्याय, आचार्य कृपलानी एवं डॉ. लोहिया को पराजित करने के लिए प्रदेश कांग्रेस के दोनों गुट एक होकर कार्य करना स्वीकार कर लें, परंतु विधानसभा के उपचुनावों में यह संभव न हो सकेगा और गुप्ता एवं त्रिपाठी गुट की दलबंदी के बेटिकट नज़ारे उन उपचुनावों में सरलता से देखने को मिल जाएँगे, जिसका लाभ अंततः विरोधी दल ही उठाएँगे।

इन दिग्गजों की विजय निश्चित

राज्य के विरोधी दल भी इस स्थिति से भली-भाँति परिचित हैं और वे यह भी जानते हैं कि विरोधी दलों के इन दिग्गजों को पराजित करने के लिए कांग्रेस कुछ भी उठा न रखेगी। उन्हें यह भी विश्वास है कि प्रशासनिक दबाव के साथ यदि संकटकालीन परिस्थिति का दुरुपयोग भी सत्तारूढ़ पक्ष कर बैठे तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। फिर भी विरोधी दलों ने अपने इन दिग्गज एवं अखिल भारतीय ख्याति के नेताओं को इस कारण निर्वाचन संग्राम में उतारने का बीड़ा उठाया है, क्योंकि ये क्षेत्र उनके सुदृढ गढ़ माने जाते हैं और उन्हें अपनी विजय का पूर्ण विश्वास है। पुनः इन नेताओं के मैदान में आने से इस बात की भी संभावना अधिक है कि लोकसभा के इन उपचुनावों में संघर्ष सीधा होगा, जिससे इनकी विजय की संभावनाएँ और भी बढ़ जाती हैं।

बेहाल कम्युनिस्टों का कांग्रेस से गठजोड़

इस परिस्थिति के कारण कम्युनिस्ट पार्टी की कांग्रेस से भी बदतर स्थिति हो गई है और उन्हें उपनिर्वाचन में अपने प्रत्याशी खड़ा करने का साहस ही नहीं हो पा रहा है। फिर भी मास्को और पेकिंग से मार्गदर्शन प्राप्त करनेवाली यह पार्टी नहीं चाहती कि सर्वश्री उपाध्याय, आचार्य कृपलानी एवं डॉ. लोहिया सरीखे धुरीण राजनीतिज्ञ और राष्ट्रवादी नेता लोकसभा में पहुँच सकें। अतः उसने इन उपचुनावों में इनके विरुद्ध कांग्रेस के साथ गठजोड़ करने का निश्चय कर लिया है।

खाई पाटने के लिए

परंतु 'माँ की पुकार' प्रदर्शनी को लेकर राज्य मंत्रिमंडल और कम्युनिस्टों के बीच गंभीर खाई पैदा हो गई है। अतः उसे पाटने के निमित्त और प्रदेश कांग्रेस से सौदेबाज़ी करने के लिए अब इन पंचमांगियों ने टेढ़ा रास्ता अपनाया है। इसके अनुसार प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री अजित प्रसाद जैन, जो मुख्यमंत्री श्री गुप्त के कट्टर विरोधी होने के साथ

मेनन मालवीय गुट के इस राज्य में प्रमुख आधार-स्तंभ हैं, की सहमति एवं सहकार्य प्राप्त करते हुए अमरोहा निर्वाचन क्षेत्र से आचार्य कृपलानी के विरुद्ध निर्दलीय होने का बिल्ला लगानेवाली कम्युनिस्ट मंत्री श्रीमती अरुणा आसफ अली को मैदान में उतारने की ये लोग योजनाएँ बना रहे हैं। पिछले दिनों राज्य विधानसभा में कम्युनिस्ट दल के नेता कामरेड ज़ेड.ए. अहमद ने नई दिल्ली के चक्कर भी इसीलिए लगाए थे। उसमें उन्हें यद्यपि अभी सफलता नहीं मिल सकी है, परंतु यदि कांग्रेस उच्चसत्ता आचार्य कृपलानी की कटूक्तियों एवं तीखे व्यंग्य बाणों से बचने के लिए इस गर्हित योजना पर अपनी मुहर लगा दे तो कोई आश्चर्य न होगा।

तो आश्चर्य नहीं

इसी प्रकार जौनपुर और फर्रुखाबाद निर्वाचन क्षेत्रों में पंचमांगियों ने अपने अधिकृत उम्मीदवार खड़े करने का निर्णय किया है, जिससे बाद में उनका नाम वापस लेकर कांग्रेसी प्रत्याशियों का समर्थन करने के लिए सौदेबाज़ी कर कांग्रेस में घुसने का कुचक्र पूर्ण किया जा सके। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि जौनपुर मुख्यमंत्री श्री गुप्त के अभिन्न मित्र नियोजन मंत्री ठा. हरगोबिंद सिंह का ज़िला है, जहाँ से विगत निर्वाचनों में वह जनसंघ नेता श्री यादवेंद्रदत्त दुबे के हाथों बुरी तरह पिट गए थे। अब इस उपचुनाव में अपनी खीझ मिटाने एवं जनसंघ की शक्ति को कमज़ोर करने के लिए यदि वे कामरेड अहमद और कामरेड कालीशंकर शुक्ल से हाथ मिला बैठें तो कोई आश्चर्य न होगा। दूसरी ओर कांग्रेस-कम्युनिस्ट गठबंधन शिथिल हो जाने से पिछले दिनों विधानसभा में कम्युनिस्ट जिस रीति से अकेले पड़ गए थे और उनका 'हनीमून' नष्ट हो गया था, वह पुनः प्रारंभ हो पाना सरल हो जाएगा।

जनसंघ से कांग्रेस को ख़तरा है, देश को नहीं

उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में औद्योगिक नगर से चुनकर आए एक प्रमुख सदस्य ने हाल ही में कहा कि इस समय कांग्रेस के सामने दो ख़तरे हैं—एक कम्युनिस्ट और दूसरा जनसंघ। उन्होंने कहा कि आज कम्युनिस्ट, जबकि अन्य दलों ने कांग्रेस की चीनी आक्रमण के संदर्भ में आलोचना करनी शुरू कर दी है तथा 'नेहरू हटाओ' का नारा तक बुलंद कर दिया है, कांग्रेस और प्रधानमंत्री का हर क़दम पर समर्थन कर रहे हैं, किंतु उनका पूर्व काल का इतिहास यह बताता है कि यह सब करते हुए भी वे अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद के प्रसार में मौक़ा पाते ही सम्मिलित हो जाएँगे। उनके दिलों में चीन व रूस के लिए दर्द है। उन्होंने कहा कि यह सही है कि आज कम्युनिस्ट पार्टी कांग्रेस की गद्दी बरकरार रखने की चिंता किसी कांग्रेसी से भी अधिक कर रही है। पर कांग्रेस को फिर भी उनसे ख़तरा

बना हुआ ही है। दूसरी ओर जनसंघ या अन्य समक्ष भाव वाले दल हैं, जो कांग्रेस के हाथ से सत्ता छीनना चाहते हैं, किंतु यह निश्चित है कि इनसे देश को ख़तरा नहीं है, ये देशद्रोही नहीं हैं। उन्होंने अंत में कहा कि आज हर कांग्रेसी इन दोनों ही भूमिकाओं को स्पष्ट देख रहा है और दुविधा में पड़ा हुआ कोई भी निर्णय कर पाने में असमर्थ है।

विषकन्याओं का प्रवेश

अभी पिछले दिनों लखनऊ में उत्तर प्रदेश विद्यार्थी परिषद् द्वारा आयोजित जिस 'मई की पुकार' प्रदर्शनी के बारे में कुछ कांग्रेसियों ने, जो इन दिनों गद्दी पर नहीं हैं, इन्हीं कम्युनिस्टों और उनके सहगामियों के साथ मिलकर एक वितंडावाद खड़ा कर दिया है तथा हाल ही में कम्युनिस्ट पार्टी ने आगामी उपचुनावों में कांग्रेस का समर्थन करने का जो निर्णय लिया है, उससे यह बात साफ़ हो गई है कि सत्ता-प्राप्ति के लिए इन कम्युनिस्टों से हाथ मिलाने के लिए कांग्रेस में एक वर्ग सक्रिय है, भले ही उसके शीर्षस्थ नेता अब भू-लुंठित हो गए हों, और दूसरी ओर 'कांग्रेस का समर्थन' की ओट में विषकन्या बनकर कांग्रेस को ये राष्ट्रघाती तत्त्व डसते जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल के सदस्य कामरेड गोविंद सहाय ने पिछले दिनों अपने एक वक्तव्य में कहा कि वे कम्युनिस्ट विरोधी नहीं हैं। उन्होंने कहा कि जो दल चीनी आक्रमण की निंदा करता है और भारत सरकार के समर्थन में प्रस्ताव पास करता है, उसे गद्दार नहीं कहा जा सकता। यह वक्तव्य कामरेड गोविंद सहाय ने सूचना मंत्री श्री बनारसी दास द्वारा विधानसभा में कम्युनिस्टों को 'गद्दार, देशद्रोही, पाकिस्तान के हिमायती, कौम के दुश्मन' कहे जाने के बाद दिया है। ठीक किसने कहा है, यह निर्णय तो उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चंद्रभानु गुप्त करेंगे। पर यह तो स्पष्ट ही है कि जिन कम्युनिस्टों को 'दायरे के भीतर रहने' और 'ज़रूरत से ज़्यादा नेहरूभक्ति प्रकट न करने' की उन्होंने स्वयं चेतावनी दी है, उन्हीं को उनके एक सहयोगी ने देशभक्त होने का सर्टिफिकेट दे दिया है। परंतु कामरेड गोविंद सहाय ने कोई नया काम नहीं किया। यह तो उनकी पुरानी आदत है।

कब तक परदा डालते रहेंगे

कामरेड सहाय को यह पता था कि मंत्रिमंडल के ही तीन अन्य वरिष्ठ मंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्री बनारसी दास व श्री महावीर प्रसाद पुरुषोत्तमदास टंडन स्मारक समिति द्वारा आयोजित औद्योगिक प्रदर्शनी के संरक्षक हैं, जिसके भीतर 'माँ की पुकार' नामक कक्ष है, फिर भी अपने नेता या सहयोगियों से जानकारी प्राप्त किए बिना उन्होंने 1 मार्च को वक्तव्य दे डाला, जिसका नतीजा क्या हुआ? सप्ताह भर समाचार-पत्रों में 'माँ की पुकार' नेहरू विरोधी है या नहीं, इस पर एक विवाद चलता रहा तथा कुछ कांग्रेसी विधायकों

ने इन तीन मंत्रियों से त्याग-पत्र की माँग भी कर दी। दल के नेता की ज़िम्मेदारी के अनुरूप श्री गुप्त ने कामरेड गोविंद सहाय की ग़लतियों पर परदा डालने को कोशिश की। किंतु हम श्री चंद्रभानु गुप्त से यह जानना चाहते हैं कि कब तक वे प्रधानमंत्री नेहरू की तरह उत्तर प्रदेश के कामरेडी कांग्रेसी गोविंद सहाय की ग़ैर ज़िम्मेदारियों तथा देशद्रोही कम्युनिस्टों से चल रही उनकी साँठ-गाँठ पर परदा डालते रहेंगे?

'माँ की पुकार' प्रदर्शनी कैसी है?

क्या 'माँ की पुकार' प्रदर्शनी देखने से घृणा उत्पन्न होती है, देश का मनोबल घटता है, प्रधानमंत्री के प्रति दुर्भावना उत्पन्न होती है? इसका उत्तर राजनीतिज्ञों नहीं, उन गुरुओं, आचार्यों या अध्यापकों से लेना चाहिए, जो समाज का, देश के नवयुवकों का निर्माण करते हैं, उनके भाग्य की रूपरेखा सँवारते हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति प्रो. के.ए.एस. अय्यर एवं महिला कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. कंचनलता सब्बरवाल ने 'माँ की पुकार' कक्ष को देखने के उपरांत अभिमत पुस्तिका में जो कुछ लिखा है, वह इस प्रकार है—

''प्रदर्शनी बहुत ज्ञानवर्धक है और इससे जनता का मनोबल ऊँचा होता है।'' (श्री अय्यर)

''माँ की पुकार' संभवत: इस प्रदर्शनी की सर्वोत्तम वस्तु है। संपूर्ण रूप से 'माँ की पुकार' हृदय के अंतरतम तक पहुँचाने का यह एक सुंदर साधन है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'माँ की पुकार' दृश्य रूप से आरंभ होकर प्रत्येक दर्शक को 'माँ की पुकार' पर तन, मन, धन, से बलि-बलि जाने को विवश कर देगी। भगवान् हमें अधिकाधिक सबल एवं सशक्त बनाएँ, ताकि 'माँ की पुकार' का अंतिम दृश्य भी निर्मित हो सके। सुखी एवं संपन्न पूर्णरूपेण सजग एवं शांति की अग्रणी विश्व की पथप्रदर्शिका माँ के रूप में।'' (डॉ. कंचनलता सब्बरवाल)

कामरेड गोविंद सहाय तथा कुछ अन्य सत्तालोलुप लोगों ने प्रदर्शनी को नेहरू विरोधी कहकर जनता की आँखों पर परदा डालने की जो कोशिश की है, उसका परदा फ़ाश हो चुका है। लेकिन कुछ तथाकथित नेहरू भक्त और सदैव ही देशद्रोही तत्त्वों के सुर में बोलनेवाले पत्रों की बेचैनी बरकरार है, क्योंकि नेहरूजी की प्रतिष्ठा की आड़ लेकर किसी को बदनाम करने का उनका यह प्रयास असफल ही नहीं रहा तो प्रदर्शनी को देखकर जिसने भी उन साप्ताहिक पत्रों को पढ़ा, उन पाठकों को इन पत्रों की दुष्टता का भी सही-सही ज्ञान हो गया है। अच्छा हो, यदि इस प्रदर्शनी को संपूर्ण देश में घुमाया जाए।

—पाञ्चजन्य, मार्च 18, 1963

□

अंतिम यात्रा

सर्वदलीय श्रद्धांजलि

अजमेरी गेट और बाद में श्मशान घाट पर दिल्ली कांग्रेस, समाजवादी दल, स्वतंत्रता पार्टी, अकाली दल, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, जैन सभा, जनसंघ संसदीय दल, अनेक व्यापारिक संगठनों यथा दिल्ली मर्केंटाइल एसोसिएशन, दिल्ली स्वर्णकार एसोसिएशन, दिल्ली लोहा व्यापार एसोसिएशन आदि ने शव पर पुष्प मालाएँ अर्पित कीं।

शोक मनानेवालों में थाईलैंड के राजदूत, डॉ. युद्धवीर सिंह, श्री बृजमोहन और मीर मुस्ताक कांग्रेस से आए, प्रो. राम सिंह महासभा से, लाला हंसराज गुप्ता और प्रकाश दत्त भार्गव आर.एस.एस. से, श्री रामगोपाल शालवाला (महासचिव) आर्य प्रतिनिधि सभा से तथा श्री के. नरेंद्र प्रताप 'वीर अर्जुन' की ओर से आए। निगमबोध घाट पर दिल्ली के चीफ कमिश्नर श्री जोशी, दिल्ली के मुख्य सचिव तथा 'दिल्ली पब्लिक एडवाइज़री कमेटी' के श्री गोपीनाथ अमन भी उपस्थित थे।

जब चाँदनी चौक से शवयात्रा गुज़री तो चाँदनी चौक गुरुद्वारा की ओर से पुष्प वर्षा की गई।

अनेक दूतावासों ने शोक व्यक्त किया, जिनमें नेपाल, वियतनाम और थाईलैंड के दूतावास भी थे।

जनसंघ मुख्यालय में जो कुछ अन्य प्रमुख शोक संदेश पहुँचे, वे इस प्रकार हैं—

श्री अनंतशयनम अयंगर, बिहार के राज्यपाल का संदेश—

"मैं अपने अच्छे मित्र डॉ. रघुवीर के निधन की सूचना पाकर स्तब्ध हूँ। वह महान् विद्वान् और नेता थे। हृदय की गहराई से शोक व्यक्त करता हूँ। कृपया मेरी संवेदनाएँ स्वीकार करें।"

राजस्थान के राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद, पूर्व जनसंघ अध्यक्षों श्री डी.पी. घोष, श्री रामाराव और श्री प्रेमनाथ डोगरा, केंद्रीय तेल मंत्री श्री के.डी. मालवीय, पाकिस्तान में भारत के पूर्व राजदूत श्री डॉ. सीताराम, लोकसभा में जनसंघ संसदीय दल के नेता श्री

उदितनारायण आचार्य डी.पी. घोष और श्री दीनदयाल उपाध्याय शामिल हैं।

कार्यक्रम के पश्चात् कलश को त्रिवेणी संगम तक मोटरकारों, ट्रकों, बसों और साइकिल सवारों के बड़े कारवाँ में ले जाया गया।

जनसंघ के द्वारा श्रद्धांजलि

भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी, जो संगम पर कार्यक्रम के कुछ समय पश्चात् एकत्र हुई, उसने अपनी बैठक को एक शोक प्रस्ताव से प्रारंभ किया; जिसमें डॉ. रघुवीर के 'भारतीय संस्कृति के ग़ैर-सरकारी राजदूत के रूप में उनकी सेवाओं', 'हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को समृद्ध करने में योगदान', 'आश्चर्यजनक दूरदर्शिता' एवं 'जनसंघ को बनाने के अथक प्रयासों' की भी प्रशंसा की गई। सदस्यों ने एक मिनट मौन खड़े रहकर दिवंगत आत्मा के प्रति आदर व्यक्त किया।

II

घोष बाबू कार्यकारी अध्यक्ष चुने गए

इलाहाबाद, जून 13। आचार्य देवा प्रसाद घोष को भारतीय जनसंघ का कार्यकारी अध्यक्ष चुना गया है।

भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी जो कि डॉ. रघुवीर के स्वर्गवास के पश्चात् यहाँ पहली बार मिली, उसने सर्वसम्मति से यह निर्णय किया। वर्तमान में आचार्य घोष पार्टी के दो उपाध्यक्षों में से एक थे। उनके नाम का प्रस्ताव दूसरे उपाध्यक्ष श्री पीतांबर दास ने किया।

आचार्य घोष 1954 से 1960 तक लगातार चार बार अध्यक्ष रह चुके हैं। वे पार्टी के जन्मकाल से ही इससे जुड़े रहे हैं और 1952 में बंगाल विधानसभा से राज्यसभा के सदस्य चुने गए। पूर्वी पाकिस्तान के बारीसाल ज़िले में 15 मार्च, 1894 को जन्मे श्री डी.पी. घोष की शिक्षा बारीसाल और कलकत्ता में हुई। बंगाल के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रियों में से एक श्री घोष कलकत्ता विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य रहे हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी, बांग्ला और संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जो शिक्षा से लेकर राजनीति तक पर हैं। आचार्य घोष जनसंघ की बंगाल इकाई के अध्यक्ष भी हैं।

—ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

राष्ट्रवादी शक्तियों में पारस्परिक सहयोग भारतीय जनसंघ द्वारा पहल का समर्थन

इलाहाबाद, 15 जून। भारतीय जनसंघ ने राजनीतिक विचार रखनेवाले नेताओं की इस घोषणा का स्वागत किया है कि राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक दलों को परस्पर सहयोग करना चाहिए।

विश्वास किया जाता है कि भारतीय जनसंघ ने अपनी द्विदिवसीय बैठक के समापन से पूर्व इन घोषणाओं पर गहन विचार मंथन किया है और इनके संभावित परिणामों एवं सहयोग के क्षेत्र पर विचार किया है।

महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने आज प्रातः एक संवाददाता सम्मेलन में यह बताया कि उन्हें इस विषय में आचार्य कृपलानी और स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री सी. राजगोपालाचारी के पत्र मिले हैं और कार्यकारिणी समिति ने दोनों पत्रों पर विचार किया है।

कार्यकारिणी समिति की बैठक के पश्चात् संक्षिप्त परंतु स्पष्ट प्रस्ताव में कहा गया—

''कार्यकारिणी समिति राष्ट्रवादी दलों के प्रमुख नेताओं की उन घोषणाओं का स्वागत करती है, जिनमें देश के सम्मुख प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण विषयों पर एकजुट होकर कार्य करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है, जैसे कि विदेशी आक्रमण आंतरिक भ्रष्टाचार इत्यादि, ताकि इनके विषय में सरकार को तुरंत प्रभावी क़दम उठाने को विवश किया जाए, और जनसंघ इसके लिए सहयोगार्थ तैयार है।

कार्यकारिणी समिति ने साथ ही इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि संकट की इस घड़ी में भी प्र.सो.पा. को 'भोपाल प्रस्ताव' पारित करना उचित लगा, जो सहयोग की भावना के विपरीत है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 24, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-VII

दीनदयालजी द्वारा श्री मसानी को उत्तर

लखनऊ। 'राजनीतिक डायरी' (जुलाई 20) में मेरे वक्तव्य पर श्री मसानी की प्रतिक्रिया देखी। मेरे वक्तव्य का आधार 'स्टेट्समैन' के 9 जुलाई, 1964 के दिल्ली संस्करण के पृष्ठ 7, कॉलम 5 में इस शीर्षक से छपे समाचार 'कश्मीर के लिए यू.एन. की सुरक्षा' पर आधारित था। मेरे द्वारा प्रयुक्त शब्द अक्षरशः नहीं हैं, जो कि मैंने उद्धृत किए हैं। मैं यह कैसे सोच सकता हूँ कि 'स्टेट्समैन' जैसा अख़बार स्वतंत्र पार्टी के महामंत्री के संवाददाता सम्मेलन को तोड़-मरोड़कर पेश करेगा। और दोनों प्रारूपों में विशेष अंतर भी नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 10, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

अखिल भारतीय जनसंघ प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

भारतीय प्रतिनिधि सभा उत्तरी सीमाओं पर चीनी सेनाओं के भारी जमाव पर गहरी चिंता प्रकट करती है। वस्तुस्थिति यह है कि अपने तथाकथित युद्ध विराम के बाद भी चीनियों ने अपनी सैनिक तैयारियों में कभी ढिलाई नहीं की। पिछले कुछ महीनों में वे निरंतर तिब्बत को एक शक्तिशाली सैनिक अड्डा बनाने के प्रयत्नों में लगे रहे हैं। इधर कुछ दिनों से उनकी सैनिक गतिविधियों में असाधारण वृद्धि हुई है और चीनी सेनाएँ हिमालय की सीमाओं पर ख़तरनाक रूप में प्रहार की स्थिति में खड़ी हैं। परिस्थिति की माँग है कि शासन तथा जनता पूर्णतया सतर्क रहें।

सुरक्षा-प्रस्ताव

नए घटनाक्रम ने इस दारुण तथ्य को पुनः स्पष्ट कर दिया है कि भारत-चीन संघर्ष में सैनिक पहल चीन के हाथ में ही बनी हुई है। चीन कार्रवाई करता है और भारत केवल विरोध करता है। कूटनीतिक स्तर पर भी यही स्थिति है। महीनों से नई दिल्ली चीन द्वारा कोलंबो प्रस्तावों के स्वीकृत किए जाने की आशा लगाए बैठी है, जो व्यर्थ सिद्ध हुई है। अपने प्रस्ताव को वापस लेने और स्थिति के निराकरण के लिए अन्य उपाय-योजना करने के बजाय भारत अनिश्चय की अवस्था में है, जबकि चीन आक्रमण के तथ्यों के बारे में भी एशियाई देशों में भ्रम पैदा करने के प्रयत्नों में लगा है। भारतीय जनसंघ का यह सुनिश्चित मत है कि वर्तमान परिस्थितियों में चीन से समझौता-वार्त्ता द्वारा समस्या का समाधान सर्वथा असंभव है। इस तथ्य की कठोर अनुभूति पर ही चीन के संबंध में एक सही नीति का निर्धारण हो सकता है। चीन के भारी आक्रमण को, जिसके फलस्वरूप उसने भारत के विशाल भू-भाग पर अधिकार जमा लिया, 71 महीने हो गए। संसद् की यह पावन प्रतिज्ञा अब तक अपूर्ण है कि जब तक एक-एक इंच भूमि को चीन के चंगुल से मुक्त नहीं किया जाएगा, तब तक चैन नहीं लेंगे। भारतीय

प्रतिनिधि सभा शासन से माँग करती है कि चीन के हाथों में से सैनिक पहल को छीनने के लिए दृढ क़दम उठाए और उस पवित्र संकल्प को पूरा करे। चीन के साथ कूटनीतिक संबंधों की समाप्ति शासन की दृढ नीति का प्रथम संकेत होना चाहिए।

स्पष्ट है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत को मित्र देशों से प्रचुर सैनिक सहायता की आवश्यकता है। प्रतिनिधि सभा इस संबंध में शासन द्वारा किए जा रहे प्रत्यनों को ध्यान में रखती है और उसकी इस नीति का समर्थन करती है। सैनिक सहायता जहाँ से भी प्राप्त हो, ली जानी चाहिए। सभा अमरीका तथा ब्रिटेन के साथ हवाई अभ्यास करने के शासन के निर्णय का स्वागत करती है। किंतु खेद का विषय है कि भारत-शासन देश के वास्तविक हितों की चिंता न करते हुए अपने प्रिय और प्रचलित नारों के मोह में फँसकर बारंबार व्यावहारिकताओं को भूल जाता है। उसकी इस प्रवृत्ति का ताज़ा उदाहरण आकाशवाणी और 'वॉयस ऑफ अमरीका' के बीच हुए समझौते के संबंध में व्यक्त प्रतिक्रिया है। यद्यपि जनसंघ इस समझौते की सभी शर्तों से संतुष्ट नहीं है तो भी उसकी दृष्टि में कुल मिलाकर इस समझौते से भारत के राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि होगी। राष्ट्रीय सुरक्षा-सामर्थ्य को सुदृढ बनाने में किसी दुविधा के लिए स्थान नहीं हो सकता।

देश अभी तक उर्वशीयम् (अरुणाचल प्रदेश) में हुई सैनिक पराजय के अपमान से विक्षुब्ध है। पराजय के सभी कारणों का प्रकटीकरण आवश्यक है। जनसंघ इस संबंध में शासन द्वारा अपनाई जा रही नीति की भर्त्सना करता है और सैनिक पराजय के कारणों की जाँच का प्रतिवेदन प्रकाशित करने की माँग करता है।

आर्थिक नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शासन का ध्यान और शक्ति भारत के आर्थिक विकास पर ही केंद्रित होने और उसके लिए पंचवर्षीय योनजाओं द्वारा निर्धारित नीति और कार्यक्रमों के अनुसार प्रयत्नशील होने के उपरांत भी आज देश में न तो एक स्वचालित विकासोन्मुख अर्थव्यस्था की नींव रखी जा सकी है और न जनसामान्य के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, उसको टिकाए रखने और जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण करने की व्यवस्था ही हो सकी है। राष्ट्र की सुरक्षा की आवश्यकताओं का तो योजनाओं के निर्माताओं ने कभी विचार ही नहीं किया था। इसलिए उस दृष्टि से वर्तमान भारत की अर्थव्यवस्था असमर्थ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज जनता के अनेक वर्गों में प्रति व्यक्ति आय गिरी है और विषमताएँ बढ़ी हैं। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तथा औद्योगिक उत्पादन की आधारभूत वस्तुओं दोनों का ही भारी अभाव है। एक ओर बढ़ती हुई बेकारी और दूसरी ओर तज्ञों की कमी, उत्पादन पर प्रतिकूल परिणाम डाल

रही हैं। महँगाई आसमान को छूने का प्रयत्न कर रही है तथा करों का बोझ नागरिकों को ज़मीन से मिला रहा है। विदेशी ऋण अमर्यादित रूप से बढ़ते जा रहे हैं। सरकार का घाटा और मुद्रास्फीति एक दुष्चक्र में होड़ ले रहे हैं। सरकारी तंत्र का व्यास इतना बढ़ गया है कि उद्योगी, व्यापारी, किसान और मज़दूर, विधि और नियम की भूल-भूलैया से बाहर निकलकर, साहस और संतोष की साँस ही नहीं ले पाता। इस प्रकार बोझिल एवं जटिल अर्थव्यवस्था पर पिछले वर्ष कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के उपरांत रक्षा व्यय की बढ़ती माँगों को पूरा करने के लिए जो बोझा डाला गया है, उससे तो संपूर्ण देश त्राहि-त्राहि कर उठा है। उसके कारण जो तनाव और बचाव अर्थव्यवस्था में पहले से मौजूद थे, वे और भी गंभीर हो गए हैं। आशंका होने लगी है कि कहीं यह आख़िरी चोट सिद्ध न हो और एक बारगी सारा ढाँचा चरमराकर न बैठ जाए।

आवश्यकता है कि राष्ट्र की रक्षा और विकास दोनों ही उद्देश्यों को सम्मुख रखकर शासन की आर्थिक नीतियों तथा योजनाओं के आधारों और तंत्र का पुनर्विचार हो। इस दृष्टि से भारतीय जनसंघ का सुझाव है—

1. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के सैद्धांतिक एवं किताबी भेद का परित्याग कर दिया जाए। औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव की परिधि में देश के साहस को बाँधना उचित नहीं। सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्तर के प्रयत्नों को एक-दूसरे का पूरक समझकर राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनकी योग्यतानुसार सेवा का अवसर दिया जाए।
2. सुरक्षा की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विदेशी सहायता बिना किसी हिचकिचाहट के ली जाए तथा दूरगामी दृष्टि से सूंपर्ण औद्योगिक क्षेत्र को पुनर्गठित किया जाए।
3. मैट्रिक एवं वित्तीय नीतियों के निर्धारण में मुद्रा के मूल्य की स्थिरता तथा उत्पादन की अधिकतम वृद्धि प्रमुख लक्ष्य रखा जाए। सरकार को अपने ख़र्चों में भारी कटौती करनी चाहिए। इससे घाटे के बजट संतुलित होंगे तथा जनता के मनोबल पर अनुकूल परिणाम होता।
4. देश को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए युद्ध स्तर पर प्रयत्न हों।
5. विकेंद्रित आधार पर छोटे उपभोक्ता उद्योगों का जाल बिछाया जाए, जिससे युद्धकाल में नागरिक उपभोग की वस्तुएँ सहज उपलब्ध हो सकें।
6. मूल्यों को स्थिर रखने के लिए व्यवस्था की जाए। भौतिक नियंत्रण यथासंभव काम में न लाए जाएँ। सस्ते भावों की सरकारी दुकानें तथा निम्नतम मूल्य पर

सरकार द्वारा ख़रीद की व्यवस्था उपभोक्ता और उत्पादक दोनों के लिए सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

7. राष्ट्र की एकीकृत वित्तव्यवस्था की दृष्टि से एक कराधान आयोग नियुक्त किया जाए, जो केंद्र, प्रांत और स्थानीय निकायों के बीच करों को समन्वित करे।
8. एक राष्ट्रीय मंडल भी बनाया जाए, जो मूल्यों के हिसाब से मज़दूरों के पारिश्रमिक का निर्धारण करे। श्रमिकों में इस प्रश्न पर निश्चितंता रहनी चाहिए।
9. पिछले करों के बक़ाया को वसूल करने तथा करों की चोरी रोकने के लिए प्रभावी पग उठाए जाएँ।
10. अनिवार्य बचत योजना प्रतिगामी, दुर्वह तथा पेचीदा है, इसे समाप्त किया जाए।
11. स्वर्ण नियंत्रण क़ानून अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा है, उसे वापस लिया जाए।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 26, 1963

□

ध्यान देने योग्य आदमी : मैनचेस्टर 'गार्जियन'

मैनचेस्टर से प्रकाशित होने वाले 'गार्जियन' समाचार-पत्र ने 7 नवंबर के अपने संस्करण में 'ध्यान देने योग्य आदमी' शीर्षक से दीनदयाल उपाध्याय के विषय में लिखा।

राजनीति में यह कह सकने से बेहतर कोई आनंद नहीं है कि 'मैंने तो पहले ही कहा था', जब कि अनजाना आसमान गिरता है। भारत के प्रमुख विपक्षी दलों में से एक दल के महामंत्री, जिन्होंने यह आनंद प्राप्त किया है, आजकल लंदन आए हुए हैं। डी.डी. उपाध्याय का कहना है कि जब 1950 में नेहरू प्रशासन तिब्बत में पीकिंग के प्रशासन को मान्यता प्रदान कर रहा था, तब उनका संगठन चीनी ख़तरे की घंटियाँ बजा रहा था। 13 सांसदों वाला भारतीय जनसंघ अब भारत में साम्यवादी दल पर पूर्ण प्रतिबंध की माँग कर रहा है। इनका लक्ष्य एक अधिक एकात्मक, ग़ैर-समाजवादी राज्य की स्थापना है, जिसमें महान् सांस्कृतिक विरासत की राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रोत्साहन दिया जाए। जनसंघ का पिछले दो आम चुनावों में मतों का हिस्सा दुगुना हो गया है और इसका मानना है कि युवा भारत उसकी राष्ट्रवादी विचारधारा की ओर आकर्षित हुआ है। उपाध्याय वह व्यक्ति हैं, जिन पर ध्यान देना होगा।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 25, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-X

कीनिया में दीनदयालजी

नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका), 18 नवंबर। भारतीय जनसंघ के महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय 'भारतीय स्वयंसेवक संघ' के वार्षिक उत्सव में कल मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

यह कार्यक्रम आर्यसमाज कॉलेज के मैदान में हुआ, जिसे इस अवसर पर सुंदर ढंग से सजाया गया था। लगभग 200 मेहमान उपस्थित थे। श्री उपाध्याय संघ के पूर्वी अफ्रीका के अध्यक्ष श्री जी.एम. सूद के साथ ठीक 5.15 सायं वहाँ पहुँचे। श्री उपाध्याय ने संघ का भगवा ध्वज फहराया। प्रार्थना के पश्चात् व्यायाम और कबड्डी का प्रभावशाली प्रदर्शन हुआ। श्री सूद ने उपस्थित श्रोताओं से जनसंघ के नेता का परिचय करवाया।

अपने 45 मिनट के विचारोत्तेजक भाषण में श्री उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति की अंतर्निहित ताक़त के विषय में बताया और कहा कि भारतीय समाज के लोग विश्व में कहीं भी रहते हों, वे इस संस्कृति से जुड़े रहते हैं। इन लोगों की विभिन्न तरह की प्रतिबद्धताएँ हो सकती हैं और यह संस्कृति विभिन्न प्रतिबद्धताओं में समरसता पैदा करने में सहायक होती है। श्री उपाध्याय ने बताया कि वे यहाँ पर होनेवाले सुखद परिवर्तनों और भरतवंशियों को पेश आ रही कठिनाइयों से भी पूरी तरह परिचित हैं।

श्री उपाध्याय ने कीनिया के लोगों को स्वाधीनता के द्वार तक पहुँचने और उनके सुखद एवं संपन्न भविष्य के लिए शुभकामनाएँ दीं।

श्री उपाध्याय 16 नवंबर को यहाँ पहुँचे थे। वे लगभग दो मास से भारत से बाहर प्रवास पर हैं और 10 दिन का पूर्वी अफ्रीका का उनका भ्रमण इस विदेश यात्रा का अंतिम पड़ाव है। हवाई अड्डे पर उनके स्वागत के लिए भारी भीड़ उमड़ी थी। वहाँ पर 'कीनिया नेशनल कांग्रेस' के एस.जी. अमीन तथा आर्य समाज के श्री ए.पी. मारोकर ने हार पहनाए।

हवाई अड्डे से श्री उपाध्याय पूर्वी अफ्रीका में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यालय तक गाड़ी से गए। शाम के समय एक सभा में उन्होंने स्थानीय भारतीय स्वयंसेवक संघ

इकाई के नेताओं से भेंट की।

श्री उपाध्याय ने नैरोबी के भारतीय स्वयंसेवक संघ (बी.एस.एस) के नगर कार्यवाहक श्री मुल्क राज शर्मा के साथ रात्रिभोज किया। रात्रिभोज के पश्चात् 20 स्थानीय लोगों के साथ वहाँ की नागरिकता को लेकर चर्चा हुई। कुछ ने मुक्त भाव से वहाँ की नागरिकता लेने का पक्ष लिया और कुछ ने इस विषय में शंका व्यक्त की। श्री उपाध्याय ने समझाया कि घबराने की कोई बात नहीं है और हर विषय का मूल्यांकन उसकी गुणवत्ता के आधार पर करें। उन्होंने कहा कि हर एक को बदली परिस्थितियों में ढलना सीखना चाहिए।

रविवार को श्री उपाध्याय, पूर्वी अफ्रीका के वरिष्ठ भारतीय राजनीतिक नेता एस.जी. अमीन से मिलने गए और उनके साथ उन्होंने भारतीय समाज की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया।

बाद में वे प्रधानमंत्री कार्यालय में संसदीय सचिव श्री चानन सिंह से मिलने गए। श्री चानन सिंह प्रसिद्ध वकील और संवैधानिक मामलों के विशेषज्ञ हैं। स्थानीय अफ्रीकी नेता उनका अत्यधिक सम्मान करते हैं, यह इस बात से ही स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री कार्यालय में उन्हें इस प्रकार का गोपनीय कार्यभार दिया गया है। श्री उपाध्याय ने उनके साथ वर्तमान परिस्थिति पर चर्चा की।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 2, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XI

अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी

विगत सप्ताह दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति की बैठक अमरीका के राष्ट्रपति केनेडी, पुंछ में हुई हेलीकॉप्टर दुर्घटना में पाँच उच्च्व सैनिक अधिकारियों ले. जनरल दौलत सिंह, मेजर जनरल एन.के.डी. नानावती, ब्रिगेडियर एस.बी. ओबराय, ले. जनरल विक्रम सिंह, एयर वाइस मार्शल ई.डब्ल्यू. पिंघी और फ्लाइट ले. यस.यस. सोडी, डेकोटा दुर्घटना में 10 अन्य सैनिक अधिकारियों, महाराजा सिक्किम वी ताशी नामग्याल, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री कन्नमवार, मध्य प्रदेश विधानसभा के जनसंघी सदस्य श्री भागीरथ सिंह की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पास किए गए।

राष्ट्रपति केनेडी के संबंध में पास किए गए प्रस्ताव में कहा गया है कि वे भारत के परम मित्र थे और गत वर्ष चीन के भारत पर आक्रमण के समय उन्होंने तुरंत भारत को सैनिक सहायता देकर प्रमाणित किया कि वे लोकतंत्र और स्वतंत्रता के बड़े समर्थक थे। बैठक में बेरूबारी के भारतीय क्षेत्र को पाकिस्तान को हस्तांतरण और अन्य विरोधी दलों के साथ सहयोग के संबंध में भी विचार-विमर्श किया गया।

बेरूबारी का हस्तांतरण रोका जाए

बेरूबारी के संबंध में पारित प्रस्ताव में कार्यसमिति ने ज़ोर देकर कहा है कि वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में बेरूबारी के हस्तांतरण को रोक दिया गया। बेरूबारी के हस्तांतरण के विरोध में चल रहे आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार द्वारा किए गए लाठी चार्ज एवं गिरफ़्तारियों की निंदा करते हुए समिति ने कहा कि एक शत्रु राष्ट्र को अपनी भूमि का हस्तांतरण करने का समर्थन कोई भी राष्ट्रभक्त नहीं कर सकता। समिति ने इस मसले को हमेशा के लिए समाप्त कर बेरूबारी की सुरक्षा की माँग की।

कांग्रेस एवं कम्युनिस्टों के विरुद्ध समस्त राष्ट्रवादी विरोधी दलों के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता अनुभव करते हुए कार्यसमिति ने इस संबंध में किए गए प्रत्येक प्रयास को पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया है।

चीन और पाकिस्तान के संबंध में कार्यसमिति ने एक कड़ा प्रस्ताव पारित करते हुए कहा है कि पाकिस्तान के वर्तमान रुख़ को देखते हुए उसे शत्रु राष्ट्र मानकर उसके प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से माँग की गई कि राजशाही में भारतीय दूतावास को बंद किए जाने के प्रत्युत्तर स्वरूप शिलांग के पाक दूतावास पर कड़ी नज़र रखते हुए कछार ज़िले के लाटीटीले से पाक सैनिकों को बलपूर्वक मार भगाया जाए।

अभागी बेरूबारी

पश्चिम बंगाल में जलपाईगुड़ी नामक ज़िले के बेरूबारी ग्राम को भारत सरकार ने पाकिस्तान को देने में जो मुस्तैदी दिखाई है, वह दुनिया के इतिहास में बेजोड़ है। 10 दिसंबर, 1958 को नेहरू-नून पैक्ट के अंतर्गत भारत के प्रधानमंत्री ने बिना किसी की राय लिए ही यह इलाक़ा पाकिस्तान को सौंपने का निश्चय कर डाला। प्रत्येक स्थान के भविष्य को वहाँ के निवासियों पर छोड़ने के हामी भारतीय प्रधानमंत्री ने इस इलाके का भविष्य निर्धारित करते समय वहाँ के निवासियों से पूछना भी आवश्यक न समझा। संपूर्ण क्षेत्र की जनता ने एक स्वर से इस हस्तांतरण का विरोध किया। इतना ही नहीं, पश्चिम बंगाल विधानसभा ने स्व. विधानचंद्र राय के नेतृत्व में एक स्वर से बेरूबारी के हस्तांतरण के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया। जब यह मामला भारत के सर्वोच्च न्यायालय में उपस्थित किया गया, तब सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही मत प्रकट किया कि सरकार का संविधान के अंतर्गत भारत के किसी भी भू-भाग को दान देने का कोई अधिकार नहीं है।

इतना सब होने पर भी पं. नेहरू अपनी ज़िद्द पर अड़े रहे। उन्होंने अपने दल के राक्षसी बहुमत का उपयोग कर संविधान में ही परिवर्तन करा डाला। जनमत को ताक पर रखकर उन्होंने बेरूबारी को ज़बरदस्ती पाक को सौंपने का फ़ैसला किया। पाकिस्तान के वर्तमान शत्रुतापूर्ण रुख़ को देखते हुए जब चारों ओर से यह माँग उठी कि अब उस समझौते को रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाए, तब पंडितजी ने हस्तांतरण के लिए उसकी नाप-जोख प्रारंभ करवा दी। आज जब वहाँ के निवासी सरकार के इस अनुचित निर्णय के विरुद्ध आंदोलन को बाध्य हुए तो स्वतंत्र भारत की नेहरू सरकार उन पर लाठी और डंडे बरसा रही है।

यह नेहरू तंत्र का लोकतंत्र पर भीषण प्रहार ही माना जाएगा।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 16, 1963

□

परिशिष्ट-XII

कीनिया में दीनदयालजी 'भारत के असली राजदूत'

भारतीय राजनयिक की प्रशस्ति

नैरोबी, 30 नवंबर। अतीत में अनेक लोग कीनिया में आए हैं, परंतु बहुत कम लोगों ने वैसी गहरी छाप छोड़ी, जैसी भारतीय जनसंघ के महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय ने छोड़ी है।

कीनिया में भारत के अधिकृत राजनयिक श्री आर.के. टंडन ने नैरोबी से उनके भारत की ओर रवाना होने की पूर्व संध्या पर किए गए स्वागत समारोह में उन्हें 'भारत का असली राजदूत' बतलाया।

मुंबासा में

नवंबर माह में प्रातः के समय दीनदयालजी नैरोबी से हवाई यात्रा कर मुंबासा पहुँचे। वहाँ के गण्यमान्य लोगों द्वारा उनके आगमन पर स्वागत किया गया, जिनमें आर्य समाज के अध्यक्ष और हिंदू यूनियन तथा भारतीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक भी थे।

श्री आर.बी. पांड्या के निवास पर स्थानीय नेताओं के साथ चाय पर अनौपचारिक चर्चा के पश्चात् श्री उपाध्याय कीनिया डेली मेल के संपादक और मुंबासा म्युनिसिपल कौंसिल के सदस्य के साथ आदरणीय आर.एस. मतानो से सरकारी आवास पर मिलने गए, जो कि कोस्ट रीजनल असेंबली के उपाध्यक्ष हैं। दोनों नेताओं ने 'प्रजातांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष की भूमिका' पर चर्चा की।

तत्पश्चात् श्री उपाध्याय ने कीनिया एल्युमिनियम एंड इंडस्ट्रियल वर्क्स का दौरा किया, जो कि कीनिया का एल्युमिनियम का सबसे बड़ा कारख़ाना है।

बाद में दोपहर को भारतीय जनसंघ नेता पूर्वी अफ्रीका के ट्रेड कमिश्नर से मिलने गए।

जैन मंदिर और शिव मंदिर के अध्यक्षों ने अपने-अपने मंदिरों में पंडितजी का स्वागत किया।

दीनदयाल उपाध्याय की अति व्यस्त दिनचर्या में उनके सम्मान में आर्य समाज द्वारा दिए गए भोज तथा भारतीय स्वयंसेवक संघ द्वारा आयोजित जनसभा के कार्यक्रम शामिल थे। परंतु दिन के कार्यक्रमों में सबसे प्रमुख पंडितजी का आमंत्रित 600 श्रोताओं के सम्मुख दिया गया भाषण था, जिसका आयोजन पटेल समाज में किया गया। उस दिन के लिए विषय था, 'हम बेहतर जीवन कैसे जी सकते हैं?'

दार-ए-सलाम में

19 नवंबर को दोपहर में दीनदयालजी दार-ए-सलाम पहुँचे। यद्यपि उनको यहाँ बहुत कम समय रुकना था तो भी स्थानीय पंजाबी हिंदू एसोसिएशन ने उनकी एक जनसभा करवा दी, जिसके पश्चात् चायपान हुआ।

कंपाला में

20 नवंबर को दीनदयालजी वायुयान द्वारा कंपाला पहुँचे। कंपाला में अपने 24 घंटे के प्रवास में भारतीय जनसंघ के नेता की युगांडा नेशनल असेंबली के स्पीकर श्री नरेंद्र पटेल तथा कंपाला के मेयर श्री पी.एन. पटेल से भेंट हुई।

शाम के समय स्थानीय भारतीय स्वयंसेवक संघ इकाई द्वारा आयोजित जनसभा को श्री उपाध्याय ने संबोधित किया।

एल्डोरेट में

एल्डोरेट जाते समय रास्ते में श्री उपाध्याय जिंजा में रुके, जहाँ उन्होंने प्रमुख नागरिकों के साथ चायपान किया। उपस्थित लोगों में जिंजी के मेयर डॉ. ए.एम. काली भी थे।

एल्डोरेट में श्री उपाध्याय के सम्मान में दोपहर के भोज का आयोजन हुआ, जिसमें एल्डोरेट के पहले अफ्रीकी मेयर श्री ओलू भी शामिल हुए।

नाकुरू में

श्री उपाध्याय के यात्रावृत्त में नाकुरू अंतिम स्थान था। नाकुरू में श्री उपाध्याय नगर काउंसिलर श्री एम.आर. ठाकुर के मेहमान रहे। शाम को श्री उपाध्याय ने एक जनसभा को संबोधित किया। इसके पश्चात् चायपान हुआ। देर रात्रि में अपने साथियों के साथ दीनदयाल उपाध्याय नैरोबी पहुँचे, जहाँ तीन दिन का अति व्यस्त कार्यक्रम उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ बैठकों का दौर

श्री उपाध्याय ने कीनिया में अपने आख़िरी तीन दिन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोगों के साथ बिताए।

पहले प्रमुख व्यक्ति, जिनसे वे मिले—श्री हम्फरी सैलेड थे, जो कीनिया राष्ट्रीय सभा के स्पीकर हैं। श्री उपाध्याय नैरोबी के पहले अफ्रीकी मेयर श्री एल्ड चार्ल्स रुबिया से भी मिलने गए। बातचीत दोनों देशों में नागरिक सुविधाओं पर केंद्रित रही। मध्याह्न के भोजन से पूर्व पंडितजी ने कीनिया में भारत के कमिश्नर श्री आर.के. टंडन से शिष्टतावश भेंट की और उनके साथ एक घंटे अकेले में बातचीत की।

दोपहर को श्री उपाध्याय दो अति महत्त्वपूर्ण लोगों से मिले—एक तो प्रधानमंत्री जोमो कानपाटा के दाहिने हाथ माने जानेवाले, गृह मंत्रालय देख रहे गृहमंत्री श्री ओगिंगा ओडिंगा थे; दूसरे श्री टोम.जे. मोबीया थे, जो कि न्याय और संवैधानिक मामलों के मंत्री थे। श्रीमान मोबोया एक युवा और योग्य मंत्री थे, जो कि अफ्रीका की राजनीति में गत आठ वर्षों में अग्रणी रहे।

23 नवंबर को श्री उपाध्याय राज्यपाल श्री मैल्कॉम मैक्डोनल्ड से मिले और उसके साथ 40 मिनट तक रहे। श्री मान मैक्डोनल्ड भारत में पाँच वर्ष तक ब्रिटेन के हाई कमिश्नर रहे थे, इसलिए उनके पास भारत की रुचि के अनेक विषय चर्चा के लिए थे।

दोपहर के पश्चात् भारतीय नेता ने अफ्रीकी युवाओं से चाय पर चर्चा की। 24 नवंबर, रविवार को पंडितजी का कीनिया में अंतिम दिन था। दिन का प्रारंभ भारतीय स्वयंसेवक संघ की शाखा से हुआ, जिसमें लगभग 300 स्वयंसेवकों ने हिस्सा लिया। श्री उपाध्याय ने सभा को संबोधित किया। इसके पश्चात् आर्यसमाज प्रार्थना मंदिर में उनका भारतीय संस्कृति पर ज्ञानवर्धक भाषण हुआ। दोपहर ढले नैरोबी के भारतीय स्वयंसेवक संघ के नगर संयोजक ने पंडितजी के सम्मान में एक भोज दिया। इसमें एक सौ अतिथि मौजूद रहे।

समापन समारोह

पंडितजी की कार्यसूची में श्री विवेकानंद शताब्दी समारोह समिति द्वारा शाम को आयोजित एक शानदार स्वागत समारोह अंतिम कार्य था। इस अवसर पर नैरोबी के श्रेष्ठजन, जिनमें डॉक्टर, वकील, नौकरशाह, पब्लिक नोटरी आदि थे। एक अन्य सम्मानित मेहमान, भारत के कमिश्नर श्री आर.के. टंडन थे।

इस अवसर पर उपाध्याय ने संक्षिप्त परंतु शानदार भाषण दिया। उन्होंने पूर्वी अफ्रीका के लोगों को असीम आवभगत के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने भारतीय मूल

के लोगों द्वारा अपने द्वारा अपनाए इस देश के विकास में सहयोग की सराहना की। उन्होंने इस बात पर दु:ख जताया कि भारतीयों में यहाँ अपने भविष्य को लेकर अनिश्चितता है। श्री उपाध्याय ने मत व्यक्त किया कि इस नागरिकता के प्रश्न पर अधिक बहस या बातचीत नहीं होनी चाहिए। इससे भय बढ़ता है। उन्होंने कहा कि प्रजातंत्र में जनता और सरकार को कुछ प्रतिबंधों के अधीन काम करना ही पड़ता है, जो कि संविधान लगाता है।

श्री उपाध्याय ने इस बात पर बल दिया कि महान् संस्कृति के उत्तराधिकारी होने के कारण भारतीय मूल के लोगों को भविष्य में और बड़े बलिदान देने पड़ सकते हैं। अपने द्वारा अपनाए गए देश की उन्नति के लिए कार्य करना उनका दायित्व है और भारतीय जीवन पद्धति के वाहक होने के नाते इस कर्तव्य का निरपेक्ष ढंग से निर्वाह करना चाहिए। परंतु दुर्भाग्य से ऐसा करने के पश्चात् भी यहाँ सम्मान से जीना दूभर हो जाए तो भारत माता उनका हृदय से स्वागत करेगी। इसके लिए किसी गारंटी की ज़रूरत नहीं है। उनका भारतीय रक्त ही गारंटी है।

उस रात्रि को जब श्री उपाध्याय एयर इंडिया के वायुयान में सांताक्रूज के लिए सवार हुए तो उनके प्रशंसकों की बड़ी भीड़ उन्हें विदा करने आई। आर.के. टंडन के शब्द सबके मन में गूँज रहे थे—सचमुच, यहाँ पर भारत का 'वास्तविक राजदूत' आया था।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 23, 1963

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

भारतीय जनसंघ का वार्षिक राष्ट्रीय अधिवेशन, अहमदाबाद

अधिवेशन प्रारंभ होने से एक दिन पूर्व, स्वागत समिति ने आचार्य घोष एवं कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों के लिए, काँकरिया झील के किनारे एक उद्यान में चाय पार्टी का आयोजन किया था। आमंत्रित अतिथियों से कार्यकारिणी के सदस्यों का परिचय महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय ने करवाया। एक के पश्चात् एक सचिव खड़े हुए और श्री उपाध्याय को उनके पार्टी दायित्वों की जानकारी देते रहे। जब मोटे-ताज़े जगन्नाथ राव जोशी खड़े हुए तब उपाध्यायजी का सारगर्भित कथन था, ''आप ने अब उन्हें देख लिया है'' और आगे कहा, ''जोशीजी सचमुच जनसंघ के सबसे वज़नदार कार्यकर्ता हैं।'' जिसे सुनकर लोगों की हँसी का फव्वारा छूट पड़ा।

ऐसा हुआ कि आर्थिक नीति संबंधी प्रस्ताव के समय दिल्ली का एक कार्यकर्ता प्रस्ताव के पूर्ण विरोध के लिए खड़ा हुआ। उसका मुख्य विरोध इस बात पर था कि आर्थिक प्रस्ताव भारतीय अर्थव्यवस्था के वास्तविक अभिशाप जनसंख्या विस्फोट को छूने में असमर्थ रहा है, और इसे कहने के पश्चात् उसने आत्मकथा से जोड़कर अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा कि छह वर्ष पूर्व उसने ''भारतीय जनसंघ की जनसंख्या नियोजन नीति का अनुसरण प्रारंभ किया और उसके परिवार में पाँच नए सदस्य आ गए।''

चर्चा की समाप्ति के पश्चात्, सचिव सुंदर सिंह भंडारी ने विभिन्न संशोधनों पर मतदान करवाया। जब सारे संशोधन प्रस्तुत हो चुके, तब उन्होंने कहा, ''मैं अब पूरे प्रस्ताव को मतदान के लिए प्रस्तुत करता हूँ। यदि पहले के एक सदस्य की तरह कोई अन्य सदस्य है, जो पूरी तरह प्रस्ताव का विरोध करता है, वह हाथ खड़ा करे।'' एक प्रतिनिधि ने बीच में टोकते हुए कहा, ''उसका विरोध सैद्धांतिक कारणों से नहीं था बल्कि वैयक्तिक समस्याओं के कारण था।''

अध्यक्षीय जुलूस के चार घंटे की पदयात्रा के पश्चात् जब प्रतिनिधि सभा स्थल पर पहुँचे तो बुरी तरह थक चुके थे। अपने प्रारंभिक उद्बोधन में आचार्य घोष ने कहा,

''मैं अनुभव कर सकता हूँ कि आपको कैसा लग रहा है।'' आगे उन्होंने शरारतपूर्ण ढंग से कहा, ''परंतु मेरी हालत आपसे बिल्कुल भिन्न है। मैं सदा की तरह तरो-ताज़ा अनुभव कर रहा हूँ। शायद आपको हँसी आए, परंतु सच यही है कि जब अहमदाबाद के नागरिक मुझ पर फूलमालाएँ और गुलाब की पँखुडियाँ बिखेर रहे थे और अपना स्नेह दे रहे थे, मुझे बिल्कुल एक दूल्हे जैसा एहसास हो रहा था। सत्तर साल की उम्र में दूल्हे की तरह स्वागत किया जाना सचमुच एक अद्‌भुत और नया अनुभव है, जो आज मेरे हिस्से आया है।''

आचार्य घोष ने अपने अध्यक्षीय भाषण का प्रारंभ राष्ट्र की गरिमा बढ़ाने में गुजरात के योगदान से किया। भारतीय जनसंघ अध्यक्ष ने कहा, ''इसमें संदेह नहीं कि गुजरात अपने गिरनार के शेरों के कारण जाना जाता है, परंतु उससे भी ज्यादा यह देश को महात्मा गांधी और सरदार पटेल जैसे नरसिंह देने के लिए जाना जाता है।''

अपने लिखित अध्यक्षीय अभिभाषण से हटकर उन्होंने चाऊ-एन-लाई की कैरो हवाई यात्रा भारत से होकर जाने और उस पर नेहरू और लोहिया में इस बात पर वाद-विवाद होने पर कि उसके लिए सबसे छोटा रास्ता कोलंबो या ताशकंद होकर था या भारत होकर, घोष बाबू ने कहा, ''मुझे समझ नहीं आता कि क्यों नेहरू, लाल चीन के लिए ब्राडसा समय सारिणी बनाकर यह बताना चाहते हैं कि पीकिंग से अन्य देशों तक सबसे छोटा रास्ता कौन-सा है।'' उन्होंने कहा कि जहाँ तक भारत का प्रश्न है, ''चीनी नेताओं को नर्क का सबसे छोटा रास्ता लेने दो, भारत को इसकी परवाह नहीं।''

28 दिसंबर को सत्र के प्रारंभ में जगन्नाथ राव जोशी का भाषण फुलझड़ियों से जगमगा रहा था, कुछ हैं—

''1947 में कांग्रेस में सबसे अधिक सुना जानेवाला नारा था 'राम राज', कांग्रेस के गत 18 वर्ष के राज के पश्चात् देश 'कामराज' तक पहुँचा है।''

''अन्न देवता की बलिवेदी पर एक के बाद अनेक मंत्रियों की बलि दी जा चुकी है, परंतु देवता अभी भी संतुष्ट होने का नाम नहीं ले रहा।''

''जब तक गांधीजी कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे, लोगों को बुराई का विरोध करना सिखाया जाता था, चाहे निष्क्रिय रूप से ही हो। नेहरूजी के नेतृत्व में हमारी निष्क्रियता पहले की तरह बनी हुई है, परंतु 'विरोध' का स्थान 'समर्पण ने ले लिया।''

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए महाराष्ट्र की शांतिबाई परांजपे ने लोगों को निष्क्रियता त्यागकर पाकिस्तान की शरारतों के प्रति सक्रिय दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत के लिए प्रोत्साहित करते हुए जोशीला भाषण दिया। उन्होंने कहा कि आज की हालत उन्हें हिंदी कवि दिनकर की पंक्तियों की याद दिलाती है—

''रोक युधिष्ठिर को न यहाँ

जाने दे उसको स्वर्ग धीर
फिर दे हमको गांडीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।''

विनती है कि युधिष्ठिर को (हे हिमालय) मत रोको, उसे स्वर्ग चले जाने दो, परंतु हमें आज पुन: गांडीवधारी अर्जुन और गदाधारी भीम लौटा दो।

अधिवेशन के अंतिम दिन जब श्री यज्ञदत शर्मा भाषण दे रहे थे, महाराष्ट्र के डोंबीवली से समाचार आया कि एक दिन पहले जनसंघ ने वहाँ 18 में से 17 स्थानों पर विजय प्राप्त कर ली है।

इस पर श्री यज्ञदत्त शर्मा ने कहा, ''डोंबीवली के लोगों ने अठारहवीं सीट भी हमें दे दी होती, परंतु उन्होंने कांग्रेस के एक आदमी को जानबूझकर चुना है, ताकि वह दिल्ली में बैठे अपने आकाओं को बता सके कि यदि वे नहीं सुधरे तो डोंबीवली और गोवा का इतिहास जगह-जगह दुहराया जाता रहेगा।

अहमदाबाद के लोगों को भारतीय जनसंघ दल के लोकसभा में नेता श्री यू.एम. त्रिवेदी को पहले दिन खुले सत्र में जब शानदार सशक्त गुजराती में भाषण देते सुना तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। यद्यपि गुजरात के मूल निवासी होते हुए भी त्रिवेदीजी बहुत समय पहले मध्य प्रदेश चले गए थे और वहीं से लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

इस कार्यक्रम का सर्वश्रेष्ठ अंश अंतिम दिन श्री अटल बिहारी वाजपेयी का 90 मिनट का भाषण था, जो कि आकर्षक काव्यात्मक संदर्भों से भरा था, जिसमें कांग्रेस को पूर्णमासी के पश्चात् चाँद को लगनेवाले ग्रहण से उपमित किया गया, जो निरंतर घटता जाता है और जनसंघ को द्वितीया के चाँद से उपमित किया, जो निरंतर बढ़ता जाता है।

अपने भाषण के दौरान श्री वाजपेयी ने सरकार द्वारा संसद् में कठिन प्रश्नों का उत्तर देने से बचने के लिए मँजी हुई रणनीति अपनाई जाती है। 'इस प्रश्न का उत्तर देना जनहित में नहीं है' यह गढ़ा-गढ़ाया उत्तर कठिन प्रश्नों के उत्तर में दिया जाता है। इस युक्ति का जहाँ प्रयोग किया, ऐसे अवसरों के अनेक उदाहरण उन्होंने दिए। इनमें से एक उदाहरण सरसंघचालक श्रीगुरुजी को बर्मा जाने के लिए पासपोर्ट प्रदान करने का था, जहाँ पर अनेक सांस्कृतिक संगठनों ने उन्हें निमंत्रित किया था। श्री वाजपेयी ने कहा, ''मैं शर्मिंदा हूँ कि भारत सरकार से देशद्रोहियों को मास्को और पीकिंग की यात्रा के लिए आज्ञा पाने में कोई कठिनाई नहीं होती है, जबकि देशभक्तों को विदेश यात्रा पर जाने से रोका जाता है, जिनकी यात्राओं से भारत के अन्य राष्ट्रों से संबंध मज़बूत ही होंगे।'' श्री वाजपेयी ने कहा, ''जब मैंने संसद् में पूछा कि श्रीगुरुजी को पासपोर्ट क्यों जारी नहीं किया गया? तो मुझे बताया गया, यह जनहित में नहीं है कि इसके कारण बताए जाएँ।''

उन्होंने कहा, ''क्या आप विश्वास करेंगे कि जब मैंने मंत्री महोदय से पूछा कि क्या वे यह बताने का कष्ट करेंगे कि किस आधार पर सरकार यह निर्णय करती है कि 'जनहित क्या है?' तो मुझे बताया गया कि 'यह बताना भी जनहित में नहीं है।'

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 6, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XIV

अनुच्छेद 370 का उत्सादन

जनसंघ की अवधारणा

नई दिल्ली, मार्च 3। जनसंघ की अखिल भारतीय कार्यकारिणी समिति ने पारित प्रस्ताव में आज कहा, ''कुछ विदेशी राजनयिकों की उन भ्रामक चालों पर विराम लगाने के लिए, जिसके अनुसार कश्मीर घाटी अथवा पाकिस्तान हस्तगत कश्मीर को उसमें मिलाकर स्वायत्तता की बात की जा रही है, यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 370 को तुरंत समाप्त किया जाए।''

कश्मीर के वर्तमान घटनाक्रम पर प्रस्ताव में कहा गया है, ''सरकार बदलने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि तुरंत और प्रभावी क़दम नहीं उठाए गए।'' जिनसे राज्य के भारत में पूर्ण विलय और स्वच्छ प्रशासन को सुनिश्चित किया जा सके।

समिति ने कहा कि ''जब तक चीन भारतभूमि पर आक्रांता के रूप में उपस्थित है तब तक भारत को पीकिंग के साथ समझौता-वार्त्ता के लिए नहीं बैठना चाहिए।''

समिति ने निम्नलिखित सदस्यों को संसदीय बोर्ड के सदस्यों के रूप में चुना है : श्री डी.पी. घोष, श्री पीतांबर दास, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, श्री यू.एम. त्रिवेदी, श्री नाना देशमुख, श्री सुंदर सिंह भंडारी, श्री जगन्नाथ राव जोशी, श्री ए.बी. वाजपेयी और श्री बलराज मधोक।

कार्यकारिणी समिति ने केंद्रीय सरकार से प्रार्थना की कि वह पाकिस्तान में हिंदुओं तथा अन्य अल्पसंख्यकों के नरसंहार के विरुद्ध यू.एन.ओ. में औपचारिक रूप से पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायत दर्ज करवाए।

एक प्रस्ताव पारित कर सरकार को अनुरोध किया गया कि वह न्यायविदों के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में प्रार्थना करे कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार की वहाँ जाकर छानबीन करें।

संघ के अध्यक्ष श्री डी.पी. घोष ने कहा कि प्रभावी जनसमर्थन पाने के लिए पार्टी का एक सम्मेलन यहाँ आयोजित किया जाएगा, ताकि सरकार को अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए क़दम उठाने के लिए विवश किया जा सके।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, मार्च 4, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XV

मुसलिम बहुल डोडा ने अब्दुल्ला के दावे को झुठलाया

मुसलिम बहुल जम्मू के डोडा ज़िले ने अब्दुल्ला के इस दावे को झूठा सिद्ध कर दिया कि राज्य के लोग कश्मीर के भारत में विलय के विरुद्ध हैं। भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय तथा जम्मू-कश्मीर जनसंघ के अध्यक्ष पंडित प्रेमनाथ डोगरा जब 19-22 जून तक चार दिवसीय दौरे पर डोडा पहुँचे तो हज़ारों लोग उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़े।

शेख़ ने हानि पहुँचाई

जेल से मुक्त होने के तुरंत पश्चात् अप्रैल में शेख़ अब्दुल्ला ने इस क्षेत्र का दौरा करते हुए अपने स्पष्ट विरोधी और सांप्रदायिक भाषणों के द्वारा सांप्रदायिक सद्भाव को बहुत हानि पहुँचाई। शेख़ को सरकारी संरक्षण दौरे के लिए प्राप्त था और राज्य सरकार द्वारा जीपों और कारों का बेड़ा उसकी सेवा के लिए रखा गया था, जिससे भोले-भाले ग्रामीण लोगों में यह प्रभाव गया कि उसका सत्ता में आना अति निकट है। उस परिवेश में भारत विरोधी वक्तव्यों से भारत समर्थक तत्त्व निरुत्साहित हुए और पाकिस्तान समर्थकों के हौसले बुलंद हुए। उन्होंने भारत समर्थक लोगों को खुलकर धमकाना प्रारंभ कर दिया और घोषणा की कि वे 'बाहरी' तत्त्वों को अपने डोडा क्षेत्र में नहीं आने देंगे।

इन सब धमकियों के होते हुए भी यहाँ के हिंदू-मुसलिम निवासियों ने जनसंघ नेताओं द्वारा आयोजित सभाओं में उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस क्षेत्र के लिहाज़ से जनसभाओं का आकार अद्वितीय था।

इस दौरे की अद्भुत सफलता का श्रेय यहाँ भारतीय जनसंघ के नेताओं को जाता है, जनसंघ नेता शेख़ अब्दुल रहमान को इसका बड़ा श्रेय जाता है, जो इसी ज़िले से हैं और अपने साथियों के साथ अथक रूप से घूम-घूमकर पिछले कुछ महीनों से यहाँ के

लोगों को शेख़ अब्दुल्ला की नीतियों और कार्यक्रमों से होनेवाले ख़तरों से सावधान करते रहे हैं।

अब्दुल्ला के मसखरेपन का कोई प्रभाव नहीं

जबकि अब्दुल्ला समर्थकों ने शेख़ अब्दुल रहमान और अन्य कार्यकर्ताओं को सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी और हिंदुओं को हिंसा की धमकी दी। परंतु उनके मज़बूत और निस्स्वार्थ प्रयत्नों से, भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ता अब्दुल्ला के समर्थकों के धोखे को उजागर कर सके।

ज़िले के चारों बड़े शहरों अर्थात् भद्रवाह, किश्तवाड़, डोडा और बटोट में बड़े स्वागत समारोह और विशाल जनसमूहों को भारतीय जनसंघ के नेताओं ने संबोधित किया। पाक समर्थक उपद्रवियों ने उपद्रव करने का भरसक प्रयत्न किया, परंतु सामान्य लोगों के उत्साह और जनसंघ के नेताओं का बढ़ता आत्मविश्वास उनके उपद्रवों पर बड़ी सीमा तक प्रभावी नियंत्रण पाने में सफल हुआ।

19 जून को दौरे के पहले दिन सड़क विचित्र प्रकार के भू-स्खलनों के कारण रुक गई थी, जबकि जनसंघ के कार्यकर्ता सरकारी मज़दूरों के साथ रास्ता साफ़ करने के लिए कठोर परिश्रम करते रहे। अस्सी वर्ष से ऊपर के पंडित प्रेमनाथ डोगरा और श्री दीनदयाल उपाध्याय कुछ कार्यकर्ताओं के साथ अनेक मील तक पैदल चले और तब 40 मील दूर तक एक ट्रक में यात्रा कर उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

लगभग सौ मील के यात्रा-मार्ग पर पड़नेवाले सारे गाँव स्वागत-द्वारों और झंडियों से रँगे थे, जो बता रहे थे कि इस क्षेत्र के लोग कश्मीर के हित में भारतीय जनसंघ नेताओं के कथनों को कितना अधिक महत्त्व देते हैं।

भद्रवाह और कुछ अन्य स्थानों पर महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में स्वागत समारोहों में भाग लिया। अनेक स्थानों पर लोग परंपरागत नृत्य 'कुड' करते और गीत गाते दिखे। डोडा में, जो कि मुख्यत: मुसलिम बहुल क्षेत्र है, गलियों में स्वागत द्वार और झंडियाँ लगी थीं तथा मुख्य गली में क़ीमती कपड़ा बिछाया गया था।

ठाटरी में एक अद्‌भुत दृश्य देखने को मिला, जहाँ अनेक महिलाओं और बच्चों ने उफनती चिनाब नदी को पार कर भारत माता के प्रति अपने प्यार की भावना को प्रदर्शित किया। लंबी पंक्तियों में पैदल चलते हुए वे नारे लगा रहे थे, 'भारत माता की जय हो' तथा 'जनसंघ विजयी हो,' आदि।

किश्तवाड़ में जनमत-संग्रह के समर्थकों ने दीवारों को पोस्टरों से भर दिया था, जिन पर लिखा था, 'यह मुल्क हमारा है, इसका फ़ैसला हम करेंगे।' जो भीड़ पंडित

डोगरा और दीनदयाल उपाध्याय के स्वागत में जुटी थी, उसने प्रत्युत्तर में नारा लगाया, 'यह मुल्क हमारा है, इसका फ़ैसला हो चुका है।'

जनमत संग्रह समर्थक चकराए

जनसामान्य में भारतीय जनसंघ के नेताओं के लिए लोगों की भावनाओं के इस उफान से जनमत संग्रह मोरचा के लोग, जिन्होंने पहले उपाध्याय विरोधी प्रदर्शन करने और हड़ताल करने का निर्णय किया था, दुविधाग्रस्त और हैरान हो गए। तथ्य तो यह है कि उन्होंने हड़ताल की घोषणा अवश्य की, परंतु जन समर्थन बहुत ही कम मिला। उन्होंने दीवारों पर भारत विरोधी पोस्टर बड़ी संख्या में लगाए, परंतु उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

डोडा में कुछ दूर-दराज़ के गाँवों से आनेवाले लोगों ने शिकायत दर्ज करवाई कि कुछ लोगों ने पुलिस की सहायता से जनसंघ की जनसभा में जाने से उन्हें रोका था। उनमें से कुछ ने बताया कि उनका सामान छीन लिया गया है। इन शिकायतकर्ताओं में मुसलमान भी थे।

डोडा में जनसभा समाप्त होने के पश्चात् एक ट्रक में अपने घर वापस जाते हुए जनसंघ कार्यकर्ताओं पर एक पहाड़ी से अँधेरे में पथराव किया गया, जिससे ट्रक ड्राइवर और कुछ कार्यकर्ताओं को चोटें आईं। जब जनसंघ कार्यकर्ताओं ने शरारती तत्त्वों को चुनौती दी तो वे भाग खड़े हुए।

भारतीय जनसंघ नेताओं के भाषणों का केंद्रीय विषय जिस पर उन्होंने ज़ोर दिया था, ''प्राचीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, जातीय और सांस्कृतिक समानता, जो राज्य के लोगों को शेष भारत से जोड़ते हैं।''

उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि ''कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है और कोई इस निर्णय को बदल नहीं सकता।''

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 6, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

भारतीय जनसंघ कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण शिविर

नई दिल्ली, 29 जून। 11 से 15 अगस्त तक भारतीय जनसंघ का एक 'अखिल भारतीय कार्यकर्ता अध्ययन शिविर' ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में आयोजित किया जाएगा। इस शिविर में संगठन की विचारधारा और कार्यपद्धति विषयक प्रशिक्षण दिया जाएगा।

इस शिविर में ज़िला और इससे ऊपर के स्तर के 300 से अधिक पदाधिकारी भाग लेंगे। यह अपनी तरह का जनसंघ का तीसरा शिविर है। पहले दो शिविर बिलासपुर (1957) और पूना (1959) में हो चुके हैं।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 6, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XVII

अराष्ट्रीय पोस्टर का रहस्य

पाक पत्र द्वारा भ्रमित करने का प्रयास

भारतीय जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय के जम्मू-कश्मीर के दौरे के समय जनमत संग्रह की माँग करनेवाला 6 भाषाओं में प्रकाशित एक गुमनाम पोस्टर के चिपकाए जाने का समाचार 'पाञ्चजन्य' के पाठकों को ज्ञात हो चुका है। उक्त पोस्टर के संबंध में एक अत्यंत रोचक समाचार प्रकाश में आया है।

पाकिस्तान के प्रमुख पत्र 'द डान' ने अपने 15 जुलाई के अंक में यह लिखा है कि जम्मू-कश्मीर में जनमत संग्रह की चर्चा करनेवाला 6 भाषाओं में प्रकाशित पोस्टर लगाया गया। उसी समाचार में यह भी उल्लेख किया गया है कि यह पोस्टर कोऑपरेटिव मज़दूर प्रेस, श्रीनगर में मुद्रित हुआ था। उपरोक्त समाचार डान को ए.पी.पी. संवाद समिति के सियालकोट स्थित संवाददाता के द्वारा प्राप्त हुआ था।

अत्यंत आश्चर्य की बात है कि जिस बात की जाँच करने और पता लगाने के लिए जम्मू-कश्मीर की पुलिस परेशान है, वह बात सियालकोट के संवाददाता को, जो यहाँ से 250 मील दूर है, कैसे ज्ञात हुई कि उक्त पोस्टर श्रीनगर के कोऑपरेटिव प्रेस में छपा है, जो एक अर्ध-सरकारी प्रेस है।

बहकाने का प्रयत्न

अत्यंत विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि उक्त पोस्टर भारत विरोधी एक देश के नई दिल्ली स्थित दूतावास में लिखा गया और किसी अज्ञात प्रेस में छापकर उत्तर प्रदेश के कुछ ऐसे विश्वस्त मुसलमान प्राध्यापकों के द्वारा, जो श्रीनगर के कॉलेजों में पढ़ाते हैं, श्रीनगर भेजा गया। उनके वितरण की व्यवस्था छिपे तौर पर रहनेवाले कश्मीर स्थित अंतरराष्ट्रीय तत्त्वों द्वारा कराई गई तथा पाकिस्तानी पत्र द्वारा इस संवाद का प्रकाशन केवल छानबीन करनेवाले अधिकारियों को भ्रम में डालने का प्रयास है, जिससे वास्तविक अपराधी क़ानून की गिरफ़्तारी से बचे रह सकें।

क्या कश्मीर सरकार इस रहस्य का स्पष्टीकरण करेगी?

—पाञ्चजन्य, अगस्त 3, 1964

'सिद्धांत और नीति' ग्वालियर प्रशिक्षण शिविर

ग्वालियर में आयोजित पाँच दिवसीय (11 से 15 अगस्त) प्रशिक्षण शिविर में संपूर्ण देश से आए हुए प्रतिनिधियों के समक्ष अखिल भारतीय जनसंघ के नेतृत्व में 42 पृष्ठों की एक पुस्तिका 'सिद्धांत और नीति' (प्रारूप) अपने कार्यकर्ताओं के हाथों में विचारार्थ रखकर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जो जनसंघ के संस्थागत इतिहास में ही नहीं वरन् देश की भावी पीढ़ियों के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण विचार-मंथन सिद्ध होगा। इस पुस्तिका में 152 अनुच्छेद हैं। देश, जन, संस्कृति के अनुरूप प्रगति निर्माण संयोजना संरक्षण के लिए आधारभूत मान्यताएँ इस पुस्तिका का वर्ण्य विषय हैं।

उत्तरदायित्व के प्रति सचेत

प्रशिक्षण शिविर में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए अनेक प्रतिनिधियों ने गंभीरतापूर्वक इस बात की ओर सभा का ध्यान आकर्षित किया कि राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस-राज्य के गत 17 वर्षों के अनुभवों ने जनता के मन में यह धारणा बना दी है कि पार्टियाँ केवल चुनाव लड़कर पार्टी प्रभाव निर्माण करने के स्वार्थ से प्रेरित रहती हैं। इस कारण देशहित के अनेक कार्यों में जनता के उत्साह व विश्वास को ठेस लगी है। किंतु फिर भी अंतिम आशा और संभावना के नाते उत्सुक जनमानस ने भारतीय जनसंघ की गतिविधियों पर बारीकी से दृष्टि बनाए रखी है। जनता चाहती है कि ध्येयनिष्ठ जनसंघ के कार्यकर्ता पार्टी या दलाभिनिवेश से ऊपर उठकर देश, समाज और व्यक्ति का संपूर्ण विचार कर अपने कार्यों में देशहित को सर्वोपरि महत्त्व का स्थान देंगे।

'सिद्धांत और नीति' पर ग्वालियर के इस पंच-दिवसीय प्रशिक्षण शिविर में कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया विचार-मंथन इसी ज़िम्मेवारी को निभाने के लिए की जानेवाली तैयारियों का भाग था। आज जबकि चुनाव और येन-केन-प्रकारेण सत्ता पर क़ब्ज़ा करने की होड़ में अपने सभी सिद्धांतों और अपनी सभी नीतियों को तिलांजलि देने में विविध पार्टियाँ लगी हैं, जनसंघ अपने कार्यकर्ताओं को गंभीर चिंतन, सुविचारित

संयम, लक्ष्य निर्धारित कार्य की तीव्र गति में एकाग्रता देने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहा है, जो इस बात का द्योतक है कि कल जब अपना विश्वास उड़ेलकर जनता जनसंघ के हाथों में देश की बागडोर सौंप देगी, तब जनसंघ का विवेकी नेतृत्व जनहित में यशस्वी सिद्ध होगा।

पारिवारिक भाव

ग्वालियर के इस प्रशिक्षण शिविर में एकत्र कार्यकर्ताओं के लिए उत्साह देनेवाली एक महत्त्वपूर्ण बात इसकी घोषणा भी थी कि जनसंघ का कार्य भारत की भूमि को लाँघकर अब विदेशों में भी, जहाँ भारतीय रह रहे हैं—पहुँच रहा है। इस प्रशिक्षण शिविर में इंग्लैंड की राजधानी लंदन से आई एक महिला-प्रतिनिधि उपस्थित थीं। वे लंदन में भारतीय जनसंघ की शाखा की उपाध्यक्षा हैं।

सर्वसाधारण राजनीतिक पार्टियों में आपस में परिचय करने का अभाव सबको खटकता है, किंतु व्यक्ति प्रतिष्ठा के झूठे अहंकार के कारण सभी अपने-अपने स्थानों पर प्रसिद्ध ऐसे व्यक्तियों का साधारण व्यक्ति के नाते परिचय करा लेने का साहस भला कौन करे, इसी उधेड़बुन में कार्यक्रम समाप्त होने पर भी एक-दूसरे से अलगाव, दूरी, अपरिचय बनाए रखते हैं। जनसंघ के इस कार्यक्रम में यह छोटी किंतु उल्लेखनीय बात थी कि सब कार्यकर्ताओं का क्रमशः परिचय करा दिया गया। इस बात की दक्षता भलीभाँति रखी जा रही थी कि वायुमंडल का कौटुंबिक भाव सर्वदा बना रहे। इसीलिए जब परिचय या विचार-प्रदर्शन के समय सभा ने कुछ विचारों के प्रति अपना हर्ष प्रकट करने के लिए तालियाँ बजाईं तो नेतागणों ने उन्हें तालियों के मार्ग से न जाने की सलाह दी, कहा, "क्या हम घर में विचार-विनिमय करते समय अपने से तालियाँ बजाते हैं?"

अनुभवी विचारकों का विचार-मंथन

संपूर्ण देश के सभी प्रांतों से आए इन पाँच सौ कार्यकर्ताओं में सभी अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ और पूर्ण जानकार व्यक्ति थे। जनसंघ के अध्यक्ष आचार्य देवप्रसादजी घोष संपूर्ण समय इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयालजी उपाध्याय ही इस कार्यक्रम की धारणा और सबका मार्गदर्शन करनेवाले प्रमुख व्यक्ति थे। सब विषयों पर समान रीति से अधिकारपूर्ण वाणी से लोगों का मार्गदर्शन करने की अद्भुत क्षमता और विविध समस्याओं, उलझनों की गहराइयों तक तत्काल पहुँचने की पैनी दृष्टि के अधिकारी व्यक्ति के नाते जनसंघ में उनका स्थान है। इनके अतिरिक्त संसद् सदस्य श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री जगन्नाथ राव जोशी, संसद् सदस्य, बैरिस्टर उमाशंकरजी त्रिवेदी, प्रसिद्ध साहित्यकार श्री वैद्य गुरुदत्त, अन्यान्य प्रांतों के प्रधानमंत्री

तथा संगठन मंत्री उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश विधानसभा में जनसंघ दल के रूप में मान्यता प्राप्त विरोधी दल के नेतागण एवं विधानसभाई सदस्य, अन्य प्रांतों के विधानसभा के सदस्य, विविध नगर निगमों के प्रधान व सदस्यगण इस प्रशिक्षण शिविर में उपस्थित हुए थे। ठहरने की व्यवस्था ग्वालियर के कार्यकर्ताओं ने एडवोकेट श्री शेजवलकर, अध्यापक श्री नरेश जौहरी तथा म्युनिसिपल बोर्ड के सभी सदस्यों के मार्गदर्शन में सुचारु ढंग से की थी। सभा स्थल के लिए चैंबर ऑफ कॉमर्स का विशाल कक्ष उपलब्ध था। कार्यालय की महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेवारी का वहन जनसंघ के दिल्ली स्थित कार्यालय मंत्री श्री जगदीश प्रसादजी माथुर ने कुछ दिन पूर्व ग्वालियर में पधारकर भलीभाँति किया। उनकी सहायता के लिए मध्य प्रदेश के भोपाल स्थित कार्यालय के कार्यकर्ता भी वहाँ उपस्थित थे। मध्य प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री गिरिराज किशोर जी कपूर तथा मंत्री श्री कुशाभाऊ ठाकरे सब प्रतिनिधियों की व्यवस्था एवं सर्वसाधारण संचालन के लिए उपस्थित थे।

संस्कृति का अर्थ

प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रारूप को रखते हुए दल के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा कि ऊपरी नीतियों और घोषणाओं को देखते हुए कई बार लग सकता है कि जनसंघ और समाजवादियों में अंतर नहीं और कई बार कुछ लोग कहते हैं कि व्यक्तिवादी स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ तो समान है। परंतु चाहे बाह्य रूप से ऐसा लगता भी हो, परंतु जब मूल सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में दृष्टि डालें तो जनसंघ और अन्य दलों में बहुत बड़ा अंतर है। जनसंघ मूलतः संस्कृतिवादी है। संस्कृति की आधारशिला पर हमारा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चिंतन खड़ा है। परंतु संस्कृति का अर्थ बाह्य रूप नहीं वरन् मानव जीवन, समाज और सृष्टि के प्रति मूल दृष्टिकोण है। प्रारूप में कहा गया है कि प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर उसे सुदृढ एवं स्थायी बनाने का प्रयत्न करे तथा अपने नागरिकों को एक ऐसा शासन प्रदान करे, जिसके अंतर्गत वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए एक समृद्ध, सोद्देश्य एवं सुखी समाज के संगठन में सचेष्ट रह सकें। स्वातंत्र्योपरांत अपेक्षा की गई थी कि सदियों से परतंत्र अंतः संघर्षरत हमारा राष्ट्र अपने स्वाभाविक स्वरूप एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकेगा तथा रूढ़ियाँ समाप्त होकर चैतन्यमयी संस्थाएँ जन्म लेंगी और आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय समाप्त होगा। परंतु ऐसा नहीं हुआ। इस विफलता के कारणों का विवेचन करते हुए कहा गया है कि वर्तमान परिस्थिति का सबसे प्रमुख कारण है, 'राष्ट्र जीवन की आत्मा का साक्षात्कार न करते हुए उसके ऊपर विदेशी और विजातीय विचारधाराओं और जीवन मूल्यों को थोपने का प्रयत्न।

इसमें से ही राष्ट्र के 'स्व' के तिरस्कार की प्रवृत्ति पैदा हुई है।' इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि इसका अर्थ पिछड़ापन अथवा आधुनिकता के प्रति अप्रकृत होना नहीं। मानव जाति का अनुभव हमारी संपत्ति तथा विश्व ज्ञान और विज्ञान हमारी थाती है। इस कारण भारतीय जनसंघ का उद्देश्य निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया गया है :

आर्थिक जनतंत्र

'भारतीय जनसंघ का उद्देश्य भारत को उसकी संस्कृति और मर्यादा के आधार पर एक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जनतंत्र बनाना है, जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो तथा जो भारत को सुदृढ एवं सुसंपन्न बनाते हुए उसे एक प्रगतिशील, आधुनिक और जागरूक राष्ट्र बनाए, जो दूसरों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना कर सके और विश्वशांति के स्थापनार्थ राष्ट्रसंघ में समुचित रीति से प्रभाव डाल सके।'

जनसंघ के नीति संबंधी प्रारूप में आगे कहा गया है कि 'लोकतंत्र', 'समानता', 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता' और 'विश्वशांति' के लक्ष्य पाश्चात्य राजनीति के भी चिंतन एवं क्रियाकलापों के विषय रहे हैं। 'समाजवाद' और 'विश्व शासन' की कल्पनाएँ भी इन उद्देश्यों की परस्पर विसंगति तथा उनसे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं में से पैदा हुई हैं। भारत का सांस्कृतिक चिंतन, यह तात्त्विक अधिष्ठान प्रस्तुत करता है, जिससे लोकतंत्र समानता राष्ट्रीय स्वतंत्रता और विश्वशांति के लक्ष्यों की सिद्धि संभव हो। इसी कारण जनसंघ ने भारतीय संस्कृति को अपना आधार स्वीकार किया है। संस्कृति के मूल विचारों की व्याख्या करते हुए निम्न सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है—

1. भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। इसका दृष्टिकोण सामयिक अथवा वर्गवादी न होकर सर्वात्मवादी एवं सर्वोत्कर्षवादी है।
2. भारतीय संस्कति समष्टिवादी है, जिसमें 'अहं' के साथ 'वयं' की सत्ता भी प्रत्येक विचारक के द्वारा प्रतिपादित की गई है।
3. समाज केवल व्यक्तियों का समूह अथवा समुच्चय नहीं अपितु एक जीवमान सावयव सत्ता है।
4. भारतीय राज्य का आदर्श धर्म राज्य है, जो Theocratic State से पूर्णतः भिन्न है। अंग्रेज़ी में यह Rule of Law (विधि का शासन) राज्य की कल्पना को व्यक्त करनेवाला निकटतम शब्द है।

महामंत्री द्वारा सामान्य व्याख्यान प्रस्तुत किए जाने के बाद अनेक प्रतिनिधियों ने प्रस्तुत विषय पर अपने विचार प्रकट किए। इस मौलिक प्रश्न पर उनके प्रौढ़ विचारों को सुनकर उस समय ऐसा लगता था मानो उनके मुख से भारत की आत्मा बोल रही हो।

लगभग 70 वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि इन पुरानी बातों को दुहराने

से काम नहीं चलेगा। हमें अपने जीवनदर्शन की युगानुरूप व्याख्या प्रस्तुत करनी पड़ेगी। भारतीय जनसंघ की यह गोष्ठी मानो उनके अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए आयोजित की गई थी।

विचार-मंथन का यह कार्य यहीं पर समाप्त नहीं हुआ। व्यावहारिक व नीतिगत विमर्श भी हुआ। राष्ट्रभाषा के लिए आज वह समय नहीं, जब हम संपूर्ण राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा हिंदी को बनाने की बात करते थे। वस्तुतः हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात हम हिंदी वालों ने भी बहुत बाद में की है। आरंभ में तो हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की प्रेरणा स्व. केशव चंद्र सेन के मन में आई और उन्होंने स्वामी दयानंद से कहा कि यदि आप अपनी बातों को राष्ट्रव्यापी बनाना चाहते हैं, तो हिंदी भाषा में प्रवचन और हिंदी में अपने सिद्धांतों को लिपिबद्ध करें। स्वामी दयानंदजी ने केशव बाबू के इस मूल्यवान परामर्श को माना। इस इतिहास के आधार पर हम कह सकते हैं कि एक बंगाली और एक गुजराती मनीषी ने हिंदी की उपयोगिता को स्वीकार कर उसको राष्ट्रीय धरातल पर रखा। आगे चलकर महात्मा गांधीजी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कराया। किंतु वह युग दूसरा था। वह त्याग और बलिदान का और राष्ट्र के स्वाभिमान का प्रश्न था। स्वार्थ और नौकरी का नहीं। आज का युग दूसरा है। आज स्वार्थ और नौकरी का युग है। आज यदि हम हिंदी की बात करते हैं तो कुछ लोग इसमें हिंदी साम्राज्यवाद देखते हैं। हमें हिंदी साम्राज्यवादी कहते हैं।

हिंदीभाषी क्षेत्र

मुख्यतः हिंदीभाषी राज्य पाँच हैं—(1) बिहार, (2) उत्तर प्रदेश, (3) मध्य प्रदेश, (4) राजस्थान और (5) हिमाचल प्रदेश। इनके अतिरिक्त आधे से अधिक पंजाब भी हिंदी भाषी है। इन सभी राज्यों की जनसंख्या 20 करोड़ के आसपास है। इस क्षेत्र में निश्चय ही कुछ लोगों की भाषा हिंदी के अतिरिक्त और भी हो सकती है। उसी तरह कलकत्ता, बंबई, मद्रास आदि क्षेत्रों में ऐसी भी जनसंख्या है, जिनकी अपनी भाषा हिंदी है। इसीलिए मोटे तौर से यह दिखाई देता है कि नेता, चाहे वे किसी भी दल के हों, चाहे किसी भी स्तर का चुनाव हो, मुख्यतः हिंदी भाषा द्वारा जनता से वोट माँगते हैं। इसलिए भी इस क्षेत्र के प्रशासन की भाषा हिंदी ही हो सकती है। किंतु यह एक दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना है, अथवा अँग्रेज़ीपरस्त नौकरशाही का व्यापक षड्यंत्र है, जिस कारण आज तक इस भू-खंड के भी शासन में हिंदी को वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जिसका उसे पूर्ण अधिकार है।

लोकतंत्र में शिक्षित प्रशासन

आज हम लोकतंत्र के युग में रहते हैं। अतः हमें लोकतांत्रिक ढंग से ही विचार

करना होगा। लोकतंत्र की स्थापना जनता की भाषा अपनाए बिना नहीं हो सकती। इस दृष्टि से विचार करने पर खेर आयोग के शब्दों में हमें यही कहना पड़ता है कि "केवल भारतीय भाषाओं के माध्यम से हम जनसाधारण की सेवा के लिए अभिप्रेत अपने राष्ट्रीय जीवन का यह व्यापक पुनरुत्थान करने में सफल हो सकते हैं, जो संविधान में उल्लिखित राजकीय नीति के निर्देशक सिद्धांतों, मूल अधिकारों, वयस्क मताधिकार, निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा, सामाजिक न्याय के विस्तार और सबके लिए समान रूप से अवसर सुलभ कराने के लक्ष्य पूरे करने के लिए आवश्यक हैं।" अतः हिंदीभाषी सभी राज्यों के राजकाज में हिंदी को प्रमुखता देना लोकतंत्र के अनुकूल है। ऐसी स्थिति में 26 जनवरी, 1965 के बाद हिंदीभाषी राज्यों में अंग्रेज़ी को क़ायम रखना संविधान की मंशा के विरुद्ध ही नहीं, उसकी उपेक्षा करना होगा।

राज्य की भाषा-नीति

संविधान बन जाने के बाद सन् 1948 ई. में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान की सरकारों ने विधिवत् अपने यहाँ हिंदी को राजभाषा घोषित किया, पर एकाएक हिंदी के प्रयोग से राजकाज में असुविधा होती, इस कारण इन चारों हिंदी भाषा-भाषी राज्यों ने 26 जनवरी, 1965 तक अंग्रेज़ी में भी काम करने की छूट दे दी। साथ ही इस अवधि तक हिंदी को पूर्ण सक्षम बनाने का निर्णय भी किया। यदि निष्ठापूर्वक हिंदी में काम किया जाता तो निश्चय ही इस अवधि तक इन चारों हिंदी भाषी राज्यों के सरकारी कार्यों का हिंदीकरण हो गया होता। किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। चतुर राज-कर्मचारी वर्ग ने हमारी राजभाषा समस्या तथा उसमें अंग्रेज़ी के लिए छूट का अनुचित लाभ उठाया। इन चारों हिंदीभाषी राज्यों के मंत्रियों ने राजभाषा हिंदी के प्रति अपने कर्तव्य के पालन पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। मंत्रियों का मुख्य कर्तव्य है, संविधान के अनुसार राज्य की नीतियों का निर्धारण और उनका संचालन। अपने इस कर्तव्य के अनुसार उनके लिए यह आवश्यक था कि वे...तथा त्रिपुरा चारों हिंदीभाषी राज्यों का हिंदीकरण हो गया होता। यदि केवल अँग्रेज़ीपरस्त अधिकारी ही इन हिंदीभाषी राज्यों में ऊँचे पदों पर आएँगे, तो इसी प्रकार इन राज्यों का नुक़सान होता रहेगा। अब 26 जनवरी, 1965 सामने है। अंग्रेज़ी से फ़ायदा उठानेवाला सरकारी कर्मचारी वर्ग भी सजग हो गया है। वह इस प्रयत्न में है कि किसी प्रकार इन हिंदीभाषी राज्यों में भी यह विधेयक पास करा लिया जाए कि अभी हिंदी का ऐसा विकास नहीं हुआ है कि उसमें पूर्ण रूप से सरकारी कामकाज हो सके; अतः अनिश्चित काल के लिए इन राज्यों में भी अंग्रेज़ी को चलने दिया जाए। यदि ऐसा विधेयक इन राज्यों में पास हो गया, तो हिंदी का भविष्य विनष्ट हो जाएगा। हिंदीभाषी राज्यों में पूर्ण हिंदीकरण का एकमात्र उपाय

है—राजकाज में पूर्णरूप से अंग्रेज़ी का निष्कासन। जब तक हिंदीभाषी राज्यों में हिंदीकरण नहीं होगा, तब तक केंद्रीय सरकारी कार्यों में हिंदी का विकास असंभव है। हिंदी विरोधी बराबर यही तर्क देंगे कि यदि हिंदी में राजकाज की क्षमता होती, तो हिंदीभाषी राज्य अपने यहाँ पूर्ण हिंदीकरण क्यों नहीं करते? ऐसी स्थिति में हिंदीभाषा-भाषियों का कर्तव्य है कि वे किसी भी शर्त पर अपने राज्य में अंग्रेज़ी न चलने दें।

राष्ट्रीय कार्य

एक समय था, जब राष्ट्रपिता बापू के नेतृत्व में हिंदी पढ़ना-लिखना राष्ट्रीय काम समझा जाता था। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिंदी तथा मातृभाषा की सेवा को कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में स्थान दिया था और कांग्रेस के प्रत्येक कर्मठ सदस्य को अपनी रुचि के अनुसार आज भी कोई-न-कोई रचनात्मक कार्यक्रम लेना पड़ता है। राष्ट्रीय स्वाभिमान को भुलाकर जो भारतीय भाषा को दबाकर अंग्रेज़ी की आवाज़ बुलंद करते हैं, उनकी ओर हमारे नेता बहुत ज़्यादा ध्यान देने लगते हैं। स्वाधीनता के पूर्व असहयोग और सत्याग्रह के युग में जब कुछ स्वार्थरत भारतीय अमन-सभाएँ कर अंग्रेज़ों के पक्ष का समर्थन करते थे, तब उसका वह काम देशद्रोह का समझा जाता था। उनकी ओर नेतागण ध्यान भी नहीं देते थे और स्वाधीनता संग्राम में अपना क़दम आगे बढ़ाते चलते थे। किंतु दुर्भाग्यवश आज स्थिति ही उल्टी हो गई है।

'मैकाले' की परिकल्पना

कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेज़ी बड़ी समृद्ध भाषा है, उसका साहित्य विशाल है। हम मानते हैं, अंग्रेज़ी में ये विशेषताएँ हैं, किंतु क्या इन्हीं विशेषताओं के कारण अंग्रेज़ी भारत की राजभाषा बनाई गई थी? बिल्कुल नहीं। सत्य इतना ही है कि हम अंग्रेज़ों के ग़ुलाम थे और अंग्रेज़ों ने अपनी सुविधा के लिए हमारे ऊपर अंग्रेज़ी लादी। उन्होंने अंग्रेज़ी को लेकर लोगों के मन में इतने प्रलोभन भर दिए गए कि भारतवासियों ने राजकीय प्रतिष्ठा के लिए उसे आग्रहपूर्वक अपनाया। लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेज़ी शिक्षा-पद्धति चलाने के संबंध में उस समय जो परिकल्पना की थी, उसे आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। अंग्रेज़ी के माध्यम से मैकाले ने यही परिकल्पना की थी कि अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली से भारत में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न होगा, जो रक्त-मांस से तो भारतीय रहेगा, किंतु भाषा, भाव, विचार, वेश-भूषा में वह अंग्रेज़ रहेगा। मैकाले की यह परिकल्पना किस सीमा तक सच उतरी, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

राष्ट्रपिता बापू अंग्रेज़ी के इस विष से अच्छी तरह अवगत थे। ये ऐसे भारतीय राष्ट्र की कल्पना कर रहे थे, जो भारतीय भाषा, भारतीय भावना, भारतीय संस्कृति,

भारतीय चिंतन, भारतीय वेश-भूषा से सज्जित हो।

कर्मचारी एवं भाषा

स्वाधीनता-प्राप्ति के तुरंत बाद ही राष्ट्रपिता बापू ने अपने 21 सितंबर, 1947 ई. के 'हरिजन' में लिखा—''निश्चय ही, प्रांतीय सरकारों को इसमें बिल्कुल आसानी होगी कि वे ऐसा कर्मचारी वर्ग रखें, जो सारा कामकाज प्रांतीय भाषाओं और अंतः प्रांतीय भाषा में चला सकें।''

सांस्कृतिक क्षति

'यह आवश्यक परिवर्तन लाने में जितना विलंब होगा, उतनी ही और उसी मात्रा में राष्ट्र की सांस्कृतिक क्षति होगी। सबसे पहला काम है भारत की समृद्ध प्रांतीय भाषाओं को उज्जीवित करना। यह दलील पेश करना वस्तुतः हमारा मानसिक आलस्य है कि हमारी कचहरियों में, स्कूलों में और सचिवालयों तक में, उक्त परिवर्तन लाने में थोड़ा समय, संभवतः कुछ वर्ष लग जाना ज़रूरी है।

प्रांतों को इसके लिए भी प्रतीक्षा करने की ज़रूरत नहीं है कि संघ इस सवाल को हल करेगा।···सभी सार्वजनिक सरकारी विभागों में प्रांतीय भाषा को पुनः चलाना पहला क़दम है और अगर यह क़दम तुरंत उठा लिया जाता है तो अंतःप्रांतीय भाषा का दूसरा पग उठते फिर क्या देर लगती है? प्रांतों को केंद्र से संबंध रखना होगा। इस काम के लिए अंग्रेज़ी को माध्यम बनाने का साहस नहीं किया जाएगा। केंद्र फौरन ही इस बात को महसूस कर ले कि हिंदी बिना किसी दल या वर्ग का दिल दुःखाए, आसानी से सारे भारत की भाषा हो सकती है और इसे जो लोग केवल अपनी सुस्ती के कारण नहीं सीख पाते, उन मुट्ठी भर हिंदुस्तानियों के लिए सारे राष्ट्र पर ऐसा सांस्कृतिक बोझ कभी नहीं लादा जा सकता। मैं कहता हूँ कि एक सांस्कृतिक अपहारक के रूप में अंग्रेज़ी को भी हमें उसी तरह निकाल फेंकना चाहिए, जिस तरह हमने अंग्रेज़ों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका।'

राष्ट्रपिता बापू के उद्‌गारों पर क्या टिप्पणी की जा सकती है? ये इतने स्पष्ट तथा तीव्र हैं कि किसी भी स्वाधीनचेता नागरिक के हृदय को उद्वेलित और प्रेरित कर सकते हैं।

सूचना प्रकाशित हुई है कि भारत सरकार अगले सितंबर 1965 ई. से अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिंदी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने का विचार कर रही है। ऐसा समझने का भ्रम हो सकता है कि भारत सरकार हिंदी पर बड़ी कृपा दिखाने जा रही है। हम अपनी सरकार से पूछना चाहते हैं कि क्या ऐसा करना

भारतीय संविधान का अपमान नहीं है? जिस संविधान के प्रति हमने ईश्वर के नाम पर या निष्ठापूर्वक शपथ ली है, उस संविधान के भाषा विषयक अनुच्छेद 120 तथा 210 से, 26 जनवरी 1965 ई. के बाद 'या अंग्रेज़ी' में पद स्वत: लुप्त हो जाएँगे। संविधान में मूलत: उल्लिखित रह जाएगी केवल संघीय भाषा हिंदी और अधिनियमों से अधिकृत राज्यों की राजभाषाएँ संसद् के एक अधिनियम द्वारा अंग्रेज़ी को अनिश्चित काल तक एक सहयोगी भाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है। सहकारी भाषा प्रधान भाषा का स्थान नहीं ले सकती।

हम अपने न्यायप्रिय नेताओं से पूछना चाहते हैं कि क्या यह न्याय की बात है कि 1965 ई. से हिंदी को वैकल्पिक माध्यम बनाया जाए, रानी की चेरी बनाना क्या राष्ट्रीय स्वाभिमान की बात है? न्याय की माँग है कि 1965 ई. से संविधान-सम्मत संघीय हिंदी ही प्रतियोगिता परीक्षा का सामान्य माध्यम रहे और 1965 के अधिनियम से आगे अंग्रेज़ी सहकारी रूप में वैकल्पिक भाषा हो।

—पाञ्चजन्य, 14 अगस्त, 1964

□

परिशिष्ट-XIX

भारतीय जनसंघ के कार्यक्रमों का आधार 'एकात्मक मानववाद'

महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ जारी

ग्वालियर, 16 अगस्त। जनसंघ का पंच दिवसीय अध्ययन शिविर, जो यहाँ गत संध्या को संपन्न हुआ, संगठन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा। एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ 'भारतीय जनसंघ, सिद्धांत और नीति' शीर्षक से प्रतिभागियों में बाँटा गया, जिसमें संगठन के कार्यक्रमों और नीतियों का दार्शनिक आधार स्पष्ट किया गया था और जो शिविर में विचारोत्तेजक चर्चा का विषय रहा।

यह 42 पृष्ठ का प्रारूप महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय द्वारा तैयार किया गया था और अब इस पर निचले स्तर पर भी जनसंघ की इकाइयों में चर्चा होगी।

एक पाँच सदस्यीय समिति, जिसमें सर्वश्री उपाध्याय, बाजपेयी, भंडारी, मधोक और ठेंगड़ीजी रहेंगे, विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों द्वारा इस पर भेजे गए सुझावों पर विचार करेगी। इस विषय को औपचारिक रूप से जनसंघ के जनवरी के अंत में विजयवाड़ा में होनेवाले बड़े अधिवेशन में स्वीकृति दी जाएगी।

पाँच सौ से अधिक कार्यकर्ताओं ने इस शिविर में भाग लिया, जिनमें जनसंघ की भारतीय प्रतिनिधि सभा (साधारण सभा) के 250 सदस्य भी शामिल थे। देश के हर राज्य का प्रतिनिधित्व हुआ। आचार्य देवा प्रसाद घोष ने अध्यक्षता की।

नेहरू को श्रद्धांजलि

'रॉक्सी थिएटर' में भारतीय प्रतिनिधि सभा का औपचारिक सत्र 11 अगस्त को प्रातः आयोजित हुआ।

वेदमंत्र उच्चारण के पश्चात् एक शोक प्रस्ताव दिवंगत प्रधानमंत्री नेहरू की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए प्रस्तुत किया गया, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू को 'एक

महान् नेता' बताया गया, जिसको लोग दल और विचाराधारा से ऊपर उठकर आदर और प्यार देते थे।

श्री भारत भूषण अग्रवाल, जो कि स्वागत समिति के अध्यक्ष और इस स्थान के बड़े उद्योगपति हैं, ने प्रतिभागियों का स्वागत किया।

घोष ने कांग्रेस सरकार को दोषी ठहराया

अपने अध्यक्षीय भाषण में आचार्य घोष ने देश में वर्तमान गंभीर आर्थिक संकट का उल्लेख करते हुए सरकार को चेतावनी देते हुए कहा, "यदि सरकार ने तुरंत और अत्यधिक कड़े क़दम, मूल्यों में वृद्धि रोकने और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के लिए नहीं उठाए तो क़ानून व्यवस्था भंग होने का गंभीर ख़तरा पैदा हो सकता है।"

श्री घोष ने कहा, "जो सरकार अपने नागरिकों को भोजन और वस्त्र नहीं दे सकती, उसके बने रहने का कोई औचित्य नहीं है।"

भारतीय जनसंघ ने सरकारी ख़र्चों और योजनाओं में भारी कटौती की माँग की। उन्होंने कहा कि हलकी-फुलकी मरम्मत से काम नहीं चलेगा और 'लोकप्रिय समाजवादी जुमलेबाज़ी जैसे 'राजकीय व्यवसाय' और 'राष्ट्रीयकरण' हमें किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचाएँगे और सच तो यह है कि व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के सामान्य कार्यक्षेत्रों में हस्तक्षेप तथा राजकीय नियंत्रण और राजकीय पूँजीवाद द्वारा अधिकांश सार्वजनिक गतिविधियों पर अधिकार कर लेने से ही यह भयावह स्थिति पैदा हुई है और इस सबके पीछे भयंकर वित्तीय घाटा और महत्त्वोन्माद से प्रेरित पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन चलनेवाले कार्य हैं, जिन्होंने मुद्रास्फीति को आसमान पर पहुँचा दिया है और रुपए को काग़ज़ का टुकड़ा मात्र बनाकर रख दिया है।

आचार्य घोष ने पाकिस्तान में ग़ैर-मुसलिमों पर हो रहे अत्याचारों के प्रति सरकार के आलसी और कायरतापूर्ण रवैये की निंदा की और कहा कि पाकिस्तान में रहनेवाले अल्पसंख्यकों का सरकारी आश्वासनों से विश्वास पूरी तरह उठ चुका है और उन्हें विश्वास हो गया है कि उस कट्टर इसलामिक राज्य में उनके लिए कोई भविष्य नहीं है। श्री घोष ने इस पर जो दुःखद प्रतिक्रिया भारत में हुई है, उसकी चर्चा करते हुए कहा, "मुझे विश्वास है कि भारत में इस प्रकार से गुस्सा नहीं फूटता, यदि लोगों को लगता कि भारत सरकार इसके लिए पाकिस्तान को दंडित करने हेतु क़दम उठा रही है।"

कैरों की अवैध रूप से अर्जित संपत्ति ज़ब्त करो

श्री घोष ने कैरों के मुद्दे पर विशेष टिप्पणी करते हुए भ्रष्टाचार की समस्या को

विस्तार से उठाया। बीते समय में उच्च पदों पर भ्रष्टाचार की शिकायतें बढ़ी हैं। शायद ही किसी राज्य का कोई मंत्रालय इसकी चपेट में न आया हो। कश्मीर में बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद, उड़ीसा में श्री विजयोनंदा पटनायक और विरेन मित्रा, मैसूर में निजलिंगप्पा, केरल में आर. शंकर, पंजाब में सरदार प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध तथा अन्य भी बहुत से लोगों के विरुद्ध बहुत ज़िम्मेदार लोगों ने भ्रष्टाचार के आरोप लगाए हैं। परंतु प्रधानमंत्री नेहरू की अत्यधिक अनिच्छा के पश्चात् केवल प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध ही जाँच आयोग गठित किया गया, जो कि पंजाब के विधायकों द्वारा राष्ट्रपति राधाकृष्णन को दिए आरोप-पत्र का परिणाम था।''

श्री घोष ने कहा कि अपने हाल के पंजाब के दौरे के दौरान उन्होंने पाया कि पंजाब के लोग कैरों के त्याग-पत्र मात्र से बहुत असंतुष्ट हैं, क्योंकि वे उसका कांग्रेस से और विधानसभा से निष्कासन, उस पर मुक़दमा चलाए जाने और उसे आदर्श स्थापक सज़ा देने तथा उसकी और उसके संबंधियों की अवैध रूप से अर्जित संपत्ति को ज़ब्त करने की माँग कर रहे हैं। ''इससे कम सज़ा से न्याय की अपेक्षा पूरी नहीं होगी और न ही भ्रष्ट लोगों को यह विश्वास दिला सकेगी कि भ्रष्टाचार लाभदायक सौदा नहीं है।''

नेहरू के पश्चात् का युग अधिक यथार्थपरक हो

नेहरूजी को श्रद्धांजलि देते हुए श्री घोष ने कहा कि नेहरूजी विश्व भर के राष्ट्रों में भ्रातृत्व और शांति स्थापना की अपनी गतिविधियों और व्यवहार के कारण निर्विवाद रूप से वैश्विक स्तर के नेता बन गए थे। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि उनका योगदान भारत की अपेक्षा अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में कहीं अधिक है। वह भारत, जिसके हितों और कल्याण के वह 17 वर्षों के लंबे समय तक संरक्षक रहे।'' उन्होंने आगे कहा, ''नेहरू की मृत्यु के साथ एक युग समाप्त हुआ। भारत की सरकार और सरकारी अधिकारी काल्पनिक इच्छाओं, कोरे भ्रमों, रटे-रटाए नारों और दकियानूसी सिद्धांतों से मुक्त होकर भारत और भारत के बाहर की स्थितियों का यथार्थपूर्ण और वस्तुनिष्ठ आकलन करने का गंभीर प्रयास करेंगे और उनके अनुसार कार्यक्रम तथा उपाय खोजेंगे। विदेश नीतियाँ समझौते (सैनिक अथवा अन्य), पक्षधरता अथवा निरपेक्षता, सभी एकमात्र लक्ष्य भारतीय हितों को बढ़ावा देने, भारत को सशक्त करने और इसकी सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दिशा में जाने चाहिए।''

श्री घोष ने जय प्रकाश नारायण के कश्मीर और नागालैंड विषयक दृष्टिकोण की कटु आलोचना की और कहा कि वे विशाल स्तर पर भूदान योजना बना रहे हैं, ''कश्मीर अयूब को और नागालैंड फिज़ो को देने की योजना।''

जनसंघ नेता ने राजाजी के 'आज़ाद कश्मीर' के प्रस्ताव पर बरसते हुए कहा,

''समझ नहीं आता कि राजाजी जैसा यथार्थवादी विचारक इस प्रकार की काल्पनिक बकवास कैसे कर सकता है।''

आचार्य घोष ने चेतावनी देते हुए कहा, ''चीन और पाकिस्तान भारत के दरवाज़े पर अवसर मिलते ही भारत की गरदन पर झपटने के लिए तैयार खड़े हैं।'' विश्वसनीय सूत्र बताते हैं कि चीन की तिब्बत में तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं और वे कभी भी चुंबी घाटी पर झपटने सिक्किम और भूटान पर क़ब्ज़ा कर उत्तरी बंगाल के दार्जिलिंग ज़िले को हथियाने को तैयार हैं।''

पाकिस्तान की योजना

उन्होंने कहा, ''जहाँ तक पाकिस्तान का प्रश्न है, उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान में अपनी सेनाओं का जमावड़ा दो स्थानों पर किया है। एक दामीपुर ज़िले के उत्तर में, जहाँ से वह पश्चिमी बंगाल के पल्ले से भूखंड को हथियाकर जो कि दार्जिलिंग ज़िले के उत्तर तक जाता है, भारत के पूर्वी क्षेत्र, नेफा, आसाम और त्रिपुरा को शेष भारत से काट देंगे। दूसरा केंद्र जेस्सोर और खुलना में है, जो कि कलकत्ता से मात्र पचास किलोमीटर दूर है और पश्चिमी बंगाल के 24 परगना ज़िले की सीमा के पार है, मुख्य निशाना कलकत्ता पर ही है। पूर्वी पाकिस्तान में सबसे बड़े दो हवाई अड्डे लालमोनीर हाट (कूच बिहार के निकट) और मैसूर (कलकत्ता से मात्र 60 किलोमीटर दूर) हैं। कहा जाता है कि पूर्वी पाकिस्तान में भारत के पूर्वी क्षेत्रों पर पहले की यही योजना है।''

आचार्य घोष ने कहा कि भारत के लोग जानना चाहते हैं कि इस दो मुँहे विनाश से बचने के लिए भारत सरकार ने क्या कोई योजना तैयार की है। उन्होंने कहा कि हमें आशा करनी चाहिए कि 'नेफा' का इतिहास पुनः दुहराया नहीं जाएगा।

जनसंघ का 'एकात्म मानववाद' का दर्शन

जनसंघ के अध्ययन शिविर का प्रारंभ शाम को श्री उपाध्याय द्वारा दिए जनसंघ के मूलभूत सिद्धांतों विषयक रोचक भाषण से हुआ। श्री उपाध्याय ने कहा कि कुछ लोग इस बात पर हैरान हैं कि भूमि सीमा ज़मींदारी उन्मूलन और जागीरदारी उन्मूलन पर जनसंघ के विचार समाजवादी पार्टी के विचारों से बहुत मेल खाते हैं और 'राज्य सहकारी कृषि' और 'बढ़ते राजकीय हस्तक्षेप' जैसे विषयों पर जनसंघ सरकार से वैसा ही विरोध जताती है, जैसा कि स्वतंत्र पार्टी। उन्होंने कहा कि जनसंघ के इस दिखनेवाले विरोधाभास को संगठन के मूलदर्शन की उचित समीक्षा से ही समझा जा सकता है।

उन्होंने कहा कि भारतीय जनसंघ भारतीय संस्कृति में विश्वास रखता है, जिसमें पाश्चात्य दर्शनों की तरह समाज और व्यक्ति में कोई आंतरिक विरोध नहीं माना जाता।

उपाध्याय ने कहा कि भारतीय संस्कृति की दृष्टि एकात्मक है। समाजवाद के समर्थक समाज के पक्षधर थे और समाजवाद के लिए वे मनुष्य के साथ मनमाना बरताव करने को तैयार थे। दूसरी ओर पूँजीवाद व्यक्ति के हितों का पक्षधर था और उसकी रक्षा के लिए वह समाज के हितों के विरुद्ध जाने को तैयार था। भारतीय संस्कृति दोनों के कल्याण की कामना करते हुए मानती है कि दोनों के हित परस्पर विरोधी नहीं हैं।

दूसरे और तीसरे दिन शिविर में हुई दो और बैठकों में श्री उपाध्याय ने अपने विचार को और अधिक विस्तार दिया तथा इसे 'एकात्मक मानववाद' का नाम देते हुए कहा कि अपनी एकात्मवादी सोच के कारण जनसंघ मनुष्य के संपत्ति के अधिकार को 'पवित्र और अबाध' नहीं मानता।

उपाध्याय ने कहा कि व्यक्ति का संपत्ति का अधिकार सीमाओं (मर्यादा) में बँधा है, जिन्हें समय-समय पर समाज उस पर लागू करता है।

श्री उपाध्याय ने कहा कि पश्चिम की समाजवाद और पूँजीवाद की विचारधाराओं में मनुष्य केवल एक आर्थिक इकाई है। यह खंडित और अपर्याप्त दृष्टिकोण है और इससे एकांगी सिद्धांतों का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति में मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक और मानसिक आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया गया है। इस आधार पर तैयार कार्यक्रम निश्चय ही चिरस्थायी होंगे।

शोधपत्र के प्रारूप में नई विशेषताएँ

श्री उपाध्याय ने मुख्य रूप से जनसंघ के दर्शन को स्पष्ट किया जैसा कि उन्होंने अपने शोध-पत्र में दरशाया था। इस पुस्तिका में बहुत सी ऐसी विशेषताएँ (तत्त्व) कार्यक्रमों और नीतियों विषयक हैं कि यदि उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है तो पार्टी के घोषणा-पत्र में नवाचार को जन्म देंगी।

इस प्रकार यह प्रारूप तेज़ी से विकसित होते सार्वजनिक क्षेत्र पर दृष्टि केंद्रित करते हुए सुझाव देता है कि सेना, पुलिस और कुछ उच्च अधिकारियों को छोड़कर साधारण कर्मचारियों को राजनीति में हिस्सा लेने की छूट दी जानी चाहिए।

इसके पश्चात् भाषा पर विचार करते हुए इसमें 'उर्दू' के विषय में कहा गया है कि 'यह हिंदी का ही एक रूप है और साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है' तथा इसके लिए नागरी लिपि के प्रयोग का सुझाव भी दिया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रारूप 'पब्लिक स्कूलों' को स्वीकार नहीं करता और विद्यादान की पुरानी अवधारणा को मानते हुए संपूर्ण शिक्षा को निःशुल्क करने की महत्त्वाकांक्षी परियोजना देता है।

आर्थिक नीतियों के खंड में यह भारतीय जनसंघ के घोषणा-पत्र की मुख्य बातों

तक सीमित है, परंतु उनकी विस्तार से व्याख्या करता है।

मज़दूर संघ के नेता डी.बी. ठेंगड़ी ने कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए राष्ट्रीयकरण के लाभ-हानियों पर 'बैंक राष्ट्रीयकरण' के विशेष संदर्भ में प्रकाश डाला। इस भाषण का शिक्षाप्रद अंश यूरोप, जापान की बैंक प्रणालियों की तुलना प्रस्तुत किया जाना था।

शिविर के चौथे दिन श्रोताओं को भारतीय जनसंघ की विदेशी नीति पर ए.बी. वाजपेयी का सुबोध भाषण सुनने का अवसर मिला। श्री वाजपेयी ने विस्तार से दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए चीनी विस्तारवाद से उत्पन्न ख़तरे का वर्णन किया और श्रोताओं के साथ इन देशों के भ्रमण के अपने अनुभव भी बाँटे।

चौथे दिन श्री डी.पी. घोष ने विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों की स्थिति पर भाषण दिया और अपने भाषण में अफ्रीका, लंका और बर्मा में जाकर बसनेवाले भातवंशियों की जनसंख्या वृद्धि के मूल्यवान ऐतिहासिक आँकड़े प्रस्तुत किए।

नीति विषयक और वर्तमान में प्रासंगिक विषयों पर भाषणों के अतिरिक्त नाना देशमुख ने संगठनात्मक कार्यों के विविध आयामों पर प्रकाश डाला।

इस बात से पूरी तरह सहमत रहते हुए कि सार्वजनिक जीवन में कार्यकर्ताओं का आचरण और सामान्य व्यवहार अधिक नहीं तो, उतना सा तो महत्त्व रखता ही है, जितना महत्त्व उन नीतियों का होता है, जिनके लिए वह कार्य करता है। इसलिए इस अध्ययन शिविर के आयोजकों ने आर.एस.एस. के सह-सरकार्यवाह (संयुक्त सचिव) श्री बाला साहब देवरस का भाषण इस विषय पर विशेष रूप से रखा था। उनके 70 मिनट के भाषण को कार्यकर्ताओं ने दत्तचित्त होकर सुना।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 24, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XX

सरकार अन्न व्यापार के एकाधिकार को छोड़े

अखिल भारतीय जनसंघ की केंद्रीय कार्यसमिति ने, जिसकी बैठक 5 और 6 दिसंबर को पटना में हुई, देश की विभिन्न परिस्थितियों पर चिंता व्यक्त करते हुए कुछ सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए हैं।

अखिल भारतीय जनसंघ के मंत्री श्री सुंदर सिंह भंडारी के कश्मीर संबंधी प्रतिवेदन का अध्ययन करने के बाद जहाँ कार्यसमिति ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि कश्मीर से धारा 370 की समाप्ति के लिए संपूर्ण देश की जनता एक साथ है, वहीं पर सरकारी नीति की आलोचना करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया कि यदि सरकार ने अपनी नीति न बदली तथा धारा 370 न हटाई तो देश के सामने एक गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है।

शेख़ अब्दुल्ला और जनमत संग्रह मोरचे की देशद्रोही हरकतों की निंदा करते हुए कार्यसमिति ने यह माँग की कि हज करने के बहाने शेख़ अब्दुल्ला को देश से बाहर जाने की अनुमति सरकार न दे और उसके राष्ट्रघाती कार्यों का कठोरतापूर्वक दमन किया जाए।

अणु बम

चीनी परमाणु बम विस्फोट से उत्पन्न परिस्थिति पर विचार करते हुए कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार की परमाणु बम न बनाने की नीति का विरोध किया और यह माँग की कि देश की सुरक्षा के व्यापक हितों की दृष्टि से सरकार सभी प्रकार के आवश्यक आणविक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करे।

नागालैंड की ख़तरनाक और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति और सरकारी नीति पर चिंता व्यक्त करते हुए कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया और माँग की कि सरकार साइकेल स्काट को अविलंब भारत से बाहर चले जाने का आदेश दे और प्रधानमंत्री श्री शास्त्री अपने आपको श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा किए गए कार्यों से अलग कर लें।

सीमा ख़ाली हो

विद्रोहियों का दमन के स्थान पर उनसे शांति वार्त्ता करने के सरकारी प्रयत्नों की निंदा करते हुए कहा गया कि इस वार्त्ता के कारण सरकार ने उनको एक स्वतंत्र सरकार का स्थान दे दिया है और इसी कारण वे स्वाधीनता की माँग कर रहे हैं। कार्यसमिति ने सरकार को यह सुझाव दिया है कि नागालैंड की बर्मा से लगी हुई 10 मील लंबी सीमा को जनविहीन कर दिया जाए, जिससे प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान जा रहे विद्रोही नागाओं का कठोरतापूर्वक दमन किया जा सके।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा कार्यसमिति ने भारत सरकार से यह अनुरोध किया है कि वह बर्मा से निष्कासित भारतीयों की संपत्ति का प्रश्न उठाए और बर्मा सरकार से उसके लिए पर्याप्त मुआवज़े की माँग करे। प्रस्ताव में कहा गया है कि बर्मा के 8 लाख भारतीयों ने जो 2200 करोड़ रुपए की संपत्ति बर्मा में छोड़ दी है, उसका उचित मुआवज़ा मिलना चाहिए और साथ ही बर्मा की सरकार से यह भी माँग की जानी चाहिए कि वह भारतीयों को बर्मा से आने में पूरी सुविधा प्रदान करे।

वर्तमान काल में मूल्यवृद्धि की समस्या पर कार्यसमिति में कहा गया है कि वर्तमान स्थिति के लिए शासन की ग़लत योजनाएँ, मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं। जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं के, विशेषतः अन्न के उत्पादन को वरीयता देने के स्थान पर पूँजी प्रधान दीर्घफलदायी वृहद् योजनाओं तथा शासन के अनुत्पादक व्यय में अपर्याप्त वृद्धि के कारण एक ओर उत्पादन की कमी तथा दूसरी ओर मुद्रास्फीति का संकट सामने आया है। अतः माँग में वृद्धि एवं मुद्रा के अवमूल्यन से आज की स्थिति पैदा हुई है।

प्रस्ताव में कहा गया है कि आर्थिक विकास और जन-कल्याण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि देश की मूल्य नीति उत्पादनलक्षी होनी चाहिए। बिना उत्पादन बढ़ाए प्रशासनिक एवं अन्य उपायों से मूल्यों का स्थिरीकरण संभव नहीं है। शासन ने नई फ़सल के जो मूल्य निश्चित किए हैं, वे एक के लिए अलाभकर हैं। अतः उत्पादन पर प्रतिकूल परिणाम डालनेवाले हैं।

सरकार को सुझाव देते हुए कहा गया है—

1. खाद्यान्न के सभी क्षेत्र समाप्त कर दिए जाएँ। क्षेत्रों का यह विभाजन राष्ट्रीय एकता के लिए विघातक है। व्यापार के सामान्य प्रवाह में इससे जो अवरोध उत्पन्न हुआ है, उससे मूल्यों में कमी आने के स्थान पर वृद्धि हुई है।
2. अन्न व्यापार के राष्ट्रीयकरण अथवा एकाधिपत्य का विचार छोड़ दिया जाए। सरकारी खाद्य निगम एक प्रतिस्पर्धी व्यापारी के नाते बाज़ार में आया करे।

3. निश्चित एवं कम आय वालों को, जब तक मूल्यों के अनुपात में उनकी आय नहीं बढ़ती, सस्ते दामों पर जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने की व्यवस्था शासन की ओर से हो।
4. सरकारी ख़र्चें कम किए जाएँ। योजना, कर एवं मुद्रा नीति में परिवर्तन करके उत्पादन वृद्धि पर बल दिया जाए।
5. खाद्य स्थिति राष्ट्र के लिए गंभीर संकट है। जनता और शासन के बीच पूर्ण सहयोग से इसके निराकरण का प्रयास होना चाहिए। उत्पादन के क्षेत्र में लगे प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम उत्पादन का, वितरण करनेवालों को अधिक लाभ का लोभ त्यागकर उपभोक्ता के प्रति अपने कर्तव्य का तथा उपभोक्ता को अधिकाधिक संयम का आदर्श उपस्थित करना चाहिए। शासन और जनता को उन तत्त्वों से सतर्क रहना चाहिए, जो वर्तमान परिस्थिति का लाभ उठाकर अपने कुत्सित मंसूबों तथा विदेशी शक्तियों के षड्यंत्रों को पूरा करने के लिए देश में अराजकता की स्थिति पैदा करने की घात में हैं। उनके हाथ में खेलकर आर्थिक दुरवस्था को दूर करना तो दूर उल्टे हम अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता से भी हाथ धो बैठेंगे।

इनके अतिरिक्त कार्यसमिति ने उड़ीसा की सरकार को समाप्त कर उड़ीसा में राष्ट्रपति शासन लागू करने की भी माँग की।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 14, 1964

□

जनसंघ की कार्यकारिणी ने 'सिद्धांत और नीतियाँ' विषयक प्रपत्र के प्रारूप को स्वीकृति दी

पटना, 6 दिसंबर। भारतीय जनसंघ की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति ने छिटपुट संशोधनों के साथ महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत उस प्रपत्र के प्रारूप को स्वीकार कर लिया, जिसमें उन्होंने पार्टी के दार्शनिक आधार को स्पष्ट किया है और विभिन्न क्षेत्रों में जनसंघ की नीतियों का उद्घाटन किया है। तीन दिवसीय बैठक की अध्यक्षता आचार्य घोष ने की।

भारतीय जनसंघ सिद्धांत और नीतियाँ

यह प्रलेख जो 49 पूर्णाकार के पृष्ठों में है, इसका शीर्षक, 'भारतीय जनसंघ : सिद्धांत और नीतियाँ' है। इसे जनसंघ की 'साधारण सभा' में प्रस्तुत किया जाएगा, जिसकी बैठक 1965 में जनवरी माह के अंतिम सप्ताह में विजयवाड़ा में होगी। इस प्रलेख पर चर्चा और स्वीकृति के अतिरिक्त भारतीय जनसंघ कार्यकारिणी ने प्रासंगिक विषयों पर अनेक प्रस्ताव पारित किए।

अनुच्छेद 370 को हटाया जाना चाहिए

ग़ैर-सरकारी प्रस्ताव पर अनुच्छेद 370 को दिए गए सर्वसम्मत समर्थन को भी लिया गया और खेद प्रकट किया गया कि सरकार ने एक बार फिर ग़लती की है।

भारतीय संविधान की कुछ धाराओं को कश्मीर में लागू करना अपने आप में ठीक है, परंतु इससे अनुच्छेद 370 के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को समाप्त नहीं किया जा सकता, जो कि ''अलगाववादियों और सांप्रदायिक तत्त्वों के लिए अलगाव का प्रतीक बन गया है।''

कार्यकारिणी समिति ने यह अनुभव किया कि भारत सरकार पाकिस्तान की धमकियों से घबरा गई और अनुच्छेद 370 को बनाए रखने का निर्णय ''पाकिस्तान के तुष्टीकरण और उसके सम्मुख समर्पण को दरशाता है।''

इस सरकारी दावे की आलोचना करते हुए कि धीरे-धीरे अनुच्छेद 370 का क्षरण होगा और अंततः इसका खोल मात्र बचा रह जाएगा' प्रस्ताव में कहा गया, ''एक ख़ाली पिंजर के रूप में भी यह धारा अलगाववादियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेगी।'' प्रस्ताव में इसीलिए माँग की गई कि इस अनुच्छेद को पूरी तरह समाप्त किया जाए।

कार्यकारिणी समिति ने 'शेख़ अब्दुल्ला को भारी ढील' दिए जाने की निंदा की, जो कि इस अवसर का प्रयोग ''राष्ट्रविरोधी शक्तियों को संगठित करने के लिए कर रहा है।'' सरकार से आग्रह किया गया कि वह उसकी 'राष्ट्रविरोधी गतिविधियों' पर लगाम लगाए और किसी भी बहाने से उसे देश से बाहर जाने की आज्ञा न दे।''

भारत को बम अवश्य बनाना चाहिए

दूसरे प्रस्ताव में सरकार की आलोचना इस बात पर की गई कि सरकार ''चीन के परमाणु क्लब में प्रवेश करने के ख़तरे से भारतीय सुरक्षा के लिए उत्पन्न बड़े ख़तरे की गंभीरता को समझने में असफल रही है।'' इस प्रस्ताव में सरकार पर आरोप लगाया गया कि वह जनमत को दुविधाग्रस्त करने और भ्रम में डालने के लिए आर्थिक हौवा दिखा रही है, ताकि एटम बम बनाने की जनता की माँग को दबाया जा सके।''

इस बात पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि ''भारत की सुरक्षा के लिए जनसंघ कोई भी क़ीमत अधिक नहीं समझती।'' प्रस्ताव में आगे कहा गया, ''आर्थिक तर्क को 'परमाणु ऊर्जा आयोग' के अध्यक्ष के नवीनतम वक्तव्य ने ध्वस्त कर दिया है।''

सरकार के कृत्रिम शांतिवादी मानसिक अवरोधों और 'अंतरराष्ट्रीय उच्च नैतिकता के दंभ' की कठोर भर्त्सना करते हुए और सरकार के चीन विषयक इस बचकाना तर्क से कि ''चीन की परमाणु धमकी से विश्व जनमत के सहारे निपटा जा सकता है,'' प्रस्ताव में चेतावनी देते हुए कहा गया कि ''वर्तमान विश्व की नग्न सच्चाइयों को देखते हुए सरकार की आणविक शस्त्र निषेध की नीति आत्मघाती सिद्ध हो सकती है।'' प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि ''एक स्वतंत्र आणविक निवारक नीति तैयार करने के लिए हर संभव प्रयत्न किए जाने चाहिए।''

हिंदू नागाओं से समझौता वार्त्ता करो

एक प्रस्ताव में कहा गया कि विद्रोही नागाओं से वार्त्ता समाप्त की जानी चाहिए और सुरक्षा बलों को स्थिति सँभालने दी जाने चाहिए। नागालैंड-बर्मा सीमा के बीच 10

किलोमीटर की पट्टी ख़ाली करवाई जानी चाहिए और जय प्रकाश नारायण तथा पादरी स्कॉट की गतिविधियों पर अंकुश लगाया जाना चाहिए।

प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि ''हिंदू नागाओं, जो कि संख्या में ईसाई नागाओं जितने ही हैं, की उपेक्षा करने की वर्तमान नीति अवश्य बदली जानी चाहिए।'' प्रस्ताव में कहा गया, ''नागाओं को बैपटिस्ट चर्च का पर्याय मानना न केवल ग़लत, बल्कि कठोर भी है। साथ ही यह राष्ट्रवाद के मुक़ाबले संप्रदायवाद और अलगाववाद को प्रोत्साहित करना भी है।''

विरेन को निकाल बाहर करो

एक प्रस्ताव में भारतीय जनसंघ कार्यकारिणी ने माँग की कि उड़ीसा में विरेन मित्रा के मंत्रिमंडल को भंग किया जाए, राज्य में राष्ट्रपति राज लागू किया जाए और राज्य के नेतृत्व के विरुद्ध जाँच और उसके आगे के क़दमों में तेज़ी लाई जाए। प्रस्ताव में केंद्र सरकार की इस बात के लिए आलोचना की गई कि सरकार ''भाई भतीजावाद तथा सत्ता के गंभीर दुरुपयोग के आरोप जो मुख्यमंत्री, पूर्व मंत्रियों और अन्य बहुत से मंत्रियों पर लगे हैं, के विषय में ढुलमुल रवैया अपनाती रही है।''

इसमें सरकार द्वारा छात्र आंदोलन से अनुपयुक्त ढंग से निपटने का भी ज़िक्र किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप क़ानून-व्यवस्था की स्थिति पूरी तरह चरमरा गई थी। प्रस्ताव में कहा गया है, ''लोगों का सरकार से विश्वास पूरी तरह उठ चुका है।''

मूल्य-वृद्धि पर प्रस्ताव में सरकार की पहले तो इस बात के लिए आलोचना की गई कि उसने ''अपनी ग़लत योजनाओं और अविवेकपूर्ण आर्थिक और वित्तीय नीतियों से देश को वर्तमान आर्थिक संकट की स्थिति में पहुँचा दिया'' और फिर राष्ट्रीयकरण जैसे मताग्रही नारों और विभिन्न तरह के नियंत्रणों से जो कि 'व्यापारियों, उत्पादकों और उपभोक्ताओं के मनोविज्ञान से बिल्कुल उपयुक्त नहीं हैं, हानि पहुँचाई।'

कार्यकारिणी परिषद् यह अनुभव करती है कि ''मूल्य नियंत्रण केवल प्रशासनिक और भौतिक नियंत्रणों द्वारा संभव नहीं है।'' यह आवश्यक है कि देश की मूल्य-नीति 'उत्पादन आधारित' हो। इस संदर्भ में कार्यकारिणी समिति यह अनुभव करती है कि आगामी वर्ष के लिए फ़सलों के लिए किया गया मूल्य निर्धारण लाभदायक नहीं है। इसलिए उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

प्रस्ताव में एक बार जनसंघ का मत फिर दुहराया गया कि अनाज क्षेत्र समाप्त किए जाएँ, अनाज-व्यापार के राष्ट्रीयकरण का विचार त्याग दिया जाए तथा उचित मूल्य की दुकानों से कमज़ोर वर्ग के लोगों के लिए आवश्यक सामग्री वितरित की जाए।

प्रस्ताव में सरकार से और लोगों से यह आग्रह किया गया कि 'वर्तमान संकट का

सामना करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाएँ।'

इसमें कहा गया, ''उत्पादक वितरक और उपभोक्ता, सभी को आदर्श ढंग से व्यवहार की ज़रूरत है। उत्पादक अधिकाधिक उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त करे, वितरक उपभोक्ता के प्रति अपना दायित्व निभाते हुए अपने लिए अधिकतम लाभ कमाने से बचे और उपभोक्ता उपभोग में संयम का व्यवहार करें।''

बर्मा और लंका से शरणार्थी

बर्मा और लंका में बसे भारतीयों के भाग्य पर चिंता व्यक्त करते हुए भी प्रस्ताव पारित किए गए, जिनमें सरकार पर ज़ोर डाला गया कि वह इनके प्रति अपने दायित्व का निर्वहन करे।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 14, 1964

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

भारत के पुण्यक्षेत्र

शक्तिपीठ

हिंदू धर्म के पुराणों के अनुसार जहाँ-जहाँ सती के अंग या शरीर के टुकड़े, धारण किए वस्त्र या आभूषण गिरे, वहाँ-वहाँ तीर्थ बन गए। यही तीर्थ शक्तिपीठ कहे जाते हैं। शक्तिपीठ शाक्त मत के अनुसार साधना के अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। ये तीर्थ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैले हुए हैं।

देवी पुराण में 51 शक्तिपीठों का वर्णन है। यद्यपि देवी भागवत में 108 तथा देवी गीता में 72 शक्तिपीठों की चर्चा मिलती है। तंत्र चूडामणि में शक्तिपीठों की संख्या 52 बताई गई है। भारत-विभाजन के बाद इनमें से एक शक्ति पीठ पाकिस्तान में चला गया और 4 बांग्लादेश में। इनके अतिरिक्त 1 शक्तिपीठ श्रीलंका, 1 तिब्बत तथा 2 नेपाल में हैं। इस प्रकार आज के भारत में केवल 42 शक्तिपीठ हैं।

51 शक्तिपीठों का संक्षिप्त विवरण

1. किरीट शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में हुगली नदी के तट पर लालबाग कोट पर स्थित है किरीट शक्तिपीठ। यहाँ सती माता का किरीट अर्थात् मुकुट गिरा था। यहाँ की शक्ति विमला अथवा भुवनेश्वरी तथा भैरव संवर्त हैं। कुछ विद्वान् मुकुट का निपात कानपुर के मुक्तेश्वरी मंदिर में मानते हैं।

2. कात्यायनी पीठ वृंदावन : उत्तर प्रदेश मथुरा जनपद स्थित वृंदावन में स्थित है कात्यायनी वृंदावन शक्तिपीठ। यहाँ सती का केशपाश गिरा था। यहाँ की शक्ति देवी कात्यायनी हैं। यहाँ माता सती 'उमा' तथा भगवान् शंकर 'भूतेश' के नाम से जाने जाते हैं।

3. करवीर शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के कोल्हापुर में स्थित 'महालक्ष्मी' अथवा 'अंबाई का मंदिर' ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता का त्रिनेत्र गिरा था। यहाँ की शक्ति 'महिषमर्दिनी' तथा भैरव क्रोधिश हैं। यहाँ महालक्ष्मी का निवास माना जाता है।

4. श्रीपर्वत शक्तिपीठ : यहाँ की शक्ति श्रीसुंदरी एवं भैरव सुंदरानंद हैं। कुछ विद्वान् इसे लद्दाख (जम्मू-कश्मीर) में मानते हैं, तो कुछ असम के सिलहट से 4 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम स्थित जौनपुर में मानते हैं। यहाँ सती के 'दक्षिण तल्प' (कनपटी) का निपात हुआ था।

5. विशालाक्षी शक्तिपीठ : उत्तर प्रदेश, वाराणसी के मीरघाट पर स्थित है। यहाँ की शक्ति विशालाक्षी तथा भैरव कालभैरव हैं। यहाँ माता सती के दाहिने कान की मणि गिरी थी।

6. गोदावरी तट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ आंध्र प्रदेश के राजमुंद्री ज़िले में गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित है। यहाँ माता का बायाँ कपोल गिरा था। यहाँ की शक्ति विश्वेश्वरी तथा भैरव दंडपाणि हैं।

7. शुचींद्रम शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन महासागर के संगम-स्थल कन्याकुमारी से 13 किमी दूर शुचींद्रम में स्थाणु शिव का मंदिर है। उसी मंदिर परिसर में यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के ऊपरी दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति नारायणी तथा भैरव संहार हैं।

8. पंचसागर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ वाराणसी के निकट स्थित है। यहाँ माता के निचले दाँत गिरे थे। यहाँ की शक्ति वाराही तथा भैरव महारुद्र हैं।

9. ज्वालामुखी शक्तिपीठ : हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा में स्थित है यह शक्तिपीठ, जहाँ सती का जिह्वा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सिद्धिदा व भैरव उन्मत्त हैं।

10. हरसिद्धि शक्तिपीठ (उज्जयिनी शक्तिपीठ) : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी के तट पर स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। अत: दोनों ही स्थानों पर शक्तिपीठ की मान्यता है। इस स्थान पर सती की कोहनी गिरी थी। अत: यहाँ कोहनी की पूजा होती है।

11. अट्टहास शक्तिपीठ : अट्टहास शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के लाबपुर (लामपुर) रेलवे स्टेशन वर्द्धमान से लगभग 95 किलोमीटर आगे कटवा-अहमदपुर रेलवे लाइन पर है, जहाँ सती का निचला होंठ गिरा था। इसे अट्टहास शक्तिपीठ कहा जाता है।

12. जनस्थान शक्तिपीठ : महाराष्ट्र के नासिक में पंचवटी में स्थित है जनस्थान शक्तिपीठ, जहाँ माता की ठुड्डी गिरी थी। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं। मध्य रेलवे के मुंबई-दिल्ली मुख्य रेलमार्ग पर नासिक रोड स्टेशन से लगभग 8 कि.मी. दूर पंचवटी नामक स्थान पर स्थित भद्रकाली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव विकृताक्ष हैं।

13. कश्मीर शक्तिपीठ : कश्मीर में अमरनाथ गुफ़ा के भीतर हिम शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंठ गिरा था। यहाँ सती महामाया तथा शिव त्रिसंध्येश्वर कहलाते हैं। श्रावण पूर्णिमा को अमरनाथ के दर्शन के साथ यह शक्तिपीठ भी दिखता है।

14. नंदीपुर शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बोलपुर (शांतिनिकेतन) से 33 किमी दूर सैंथिया रेलवे जंक्शन के निकट ही एक वटवृक्ष के नीचे देवी मंदिर है। यहाँ देवी का कंठ हार गिरा था। यहाँ की शक्ति नंदिनी तथा भैरव नंदिकेश्वर हैं।

15. श्रीशैल शक्तिपीठ : आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद से 250 कि.मी. दूर कुर्नूल के पास श्रीशैलम है, जहाँ सती की 'ग्रीवा' गिरी थी। यहाँ की सती महालक्ष्मी तथा शिव संबरानंद हैं।

16. नलहाटी शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में है यह शक्तिपीठ। यहाँ माता की उदरनली गिरी थी। यहाँ की शक्ति कालिका तथा भैरव योगेश हैं।

17. मिथिला शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का बायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति उमा या महादेवी तथा भैरव महोदर हैं। इस शक्तिपीठ के स्थान को लेकर मतांतर हैं। मिथिला शक्तिपीठ के तीन स्थान माने जाते हैं। एक जनकपुर (नेपाल) से 51 किमी. दूर पूर्व दिशा में उच्चैठ नामक स्थान पर वन दुर्गा का मंदिर है। दूसरा बिहार के सहरसा स्टेशन के पास उग्रतारा और तीसरा समस्तीपुर के निकट जयमंगला देवी का मंदिर है। इन तीनों स्थानों को विद्वज्जन शक्तिपीठ मानते हैं।

18. रत्नावली शक्तिपीठ : रत्नावली शक्तिपीठ का निश्चित स्थान अज्ञात है, किंतु बंगाल पंजिका के अनुसार यह तमिलनाडु के मद्रास (चेन्नई) में कहीं है। यहाँ सती का दायाँ कंधा गिरा था। यहाँ की शक्ति कुमारी तथा भैरव शिव हैं।

19. अंबाजी शक्तिपीठ : यहाँ माता सती का उदर गिरा था। गुजरात में जूनागढ़ के गिरनार पर्वत पर स्थित माँ अंबाजी का मंदिर ही शक्तिपीठ है। मान्यता है कि इसी स्थान पर माता सती का ऊपरी होंठ गिरा था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण है।

20. जालंधर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पंजाब के जालंधर में स्थित है। यहाँ माता सती का बायाँ स्तन गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुरमालिनी और भैरव भीषण के रूप में जाने जाते हैं। इसे त्रिपुरमालिनी शक्तिपीठ भी कहते हैं।

21. रामगिरि शक्तिपीठ : रामगिरि शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर मतांतर हैं। कुछ विद्वान् मैहर स्थित शारदा मंदिर को शक्तिपीठ मानते हैं, तो कुछ चित्रकूट के शारदा मंदिर को। दोनों ही स्थान मध्य प्रदेश में हैं। यहाँ देवी के दाएँ स्तन का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति शिवानी तथा भैरव चंड हैं।

22. वैद्यनाथ का हार्द शक्तिपीठ : झारखंड के गिरिडीह जनपद में स्थित वैद्यनाथ

का हार्द या हृदय पीठ शिव तथा सती के ऐक्य का प्रतीक है। यहाँ सती का हृदय गिरा था। यहाँ की शक्ति जयदुर्गा तथा भैरव वैद्यनाथ हैं।

23. बक्रेश्वर शक्तिपीठ : माता का यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के बीरभूम ज़िले में स्थित है, जहाँ माता का त्रिकूट (दोनों भौंहों के मध्य का स्थान) गिरा था। यहाँ की शक्ति महिषासुरमर्दिनी तथा भैरव बक्रनाथ हैं।

24. कन्याकुमारी शक्तिपीठ : तमिलनाडु में तीन सागरों—हिंद महासागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के संगम स्थल पर कन्याकुमारी का मंदिर है। यहीं भद्रकाली का शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की पीठ गिरी थी। यहाँ की शक्ति शर्वाणी तथा भैरव निमिष हैं।

25. बहुला शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के बर्दवान जनपद में स्थित है बहुला शक्तिपीठ, जहाँ सती के वाम बाहु का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति बहुला तथा भैरव भीरुक हैं।

26. भैरव पर्वत शक्तिपीठ : इस शक्तिपीठ की स्थिति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ उज्जैन के निकट शिप्रा नदी तट स्थित भैरव पर्वत को, तो कुछ गुजरात के गिरनार पर्वत के सन्निकट भैरव पर्वत को वास्तविक शक्तिपीठ मानते हैं। यहाँ माता सती की कुहनी का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति अवंती तथा भैरव लंबकर्ण हैं।

27. मणिवेदिका शक्तिपीठ : राजस्थान में अजमेर से 11 किलोमीटर दूर पुष्कर सरोवर के एक ओर पर्वत की चोटी पर स्थित है सावित्री मंदिर, जिसमें माँ की आभायुक्त, तेजस्वी प्रतिमा है तथा दूसरी ओर स्थित है गायत्री मंदिर। यह गायत्री मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के मणिबंध (कलाई) का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गायत्री और भैरव सर्वानंद हैं।

28. प्रयाग शक्तिपीठ : तीर्थराज प्रयाग में माता सती के हाथ की अंगुली गिरी थी। यहाँ की शक्ति ललिता तथा भैरव भव हैं।

29. विरजा शक्तिपीठ : उत्कल (ओडीशा) में माता सती की नाभि गिरी थी। पुरी में जगन्नाथजी के मंदिर परिसर में स्थित विमला देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ की शक्ति विमला तथा भैरव जगत् हैं।

30. कांची शक्तिपीठ : तमिलनाडु में काँचीपुरम स्थित काली मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती का कंकाल गिरा था। यहाँ की शक्ति देवगर्भा और भैरव रुद्र हैं।

31. कालमाधव शक्तिपीठ : कालमाधव में सती के वाम नितंब का निपात हुआ था। इस शक्तिपीठ के बारे में कोई निश्चित स्थान ज्ञात नहीं है। माना जाता है कि यह मध्य प्रदेश में कहीं है। यहाँ की शक्ति काली तथा भैरव असितांग हैं।

32. शोण शक्तिपीठ : मध्य प्रदेश के अमरकंटक स्थित नर्मदा मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती के दक्षिण नितंब का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति नर्मदा तथा भैरव भद्रसेन हैं।

33. कामाख्या शक्तिपीठ : असम के कामरूप जनपद में गुवाहाटी के पश्चिम भाग में नीलाचल पर्वत पर स्थित शक्तिपीठ कामाख्या के नाम से सुविख्यात है। यहाँ माता सती की योनि गिरी थी। यहाँ की शक्ति कामाख्या और भैरव उमानंद हैं।

34. जयंती शक्तिपीठ : मेघालय की जयंतिया पहाड़ी पर है जयंती शक्तिपीठ। यहाँ माता के वाम जंघा का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति जयंती और भैरव क्रमदीश्वर हैं।

35. मगध शक्तिपीठ : बिहार की राजधानी पटना में स्थित पटनेश्वरी देवी को भी शक्तिपीठ माना जाता है, जहाँ माता की दाहिनी जंघा गिरी थी। यहाँ की शक्ति सर्वानंदकरी तथा भैरव व्योमकेश हैं।

36. त्रिस्तोता शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जनपद अंतर्गत बोदागंज के निकट स्थित मैनागुड़ी में तीस्ता नदी के तट पर त्रिस्तोता शक्तिपीठ है। जहाँ सती के वाम-चरण का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति भ्रामरी तथा भैरव ईश्वर हैं।

37. त्रिपुरसुंदरी शक्तिपीठ : त्रिपुरा राज्य के राधा किशोरपुर ग्राम के निकट पर्वत पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का दक्षिण पद गिरा था। यहाँ की शक्ति त्रिपुर सुंदरी तथा भैरव त्रिपुरेश हैं।

38. विभाष शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पश्चिम बंगाल के मिदनापुर में है। यहाँ माता सती का बायाँ टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति कपालिनी और भैरव सर्वानंद हैं।

39. देवीकूप शक्तिपीठ : हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र नगर में द्वैपायन सरोवर के पास कुरुक्षेत्र शक्तिपीठ स्थित है, जिसे श्रीदेवीकूप भद्रकाली पीठ के नाम से जाना जाता है। यहाँ माता सती का दाहिना टखना गिरा था। यहाँ की शक्ति सावित्री तथा भैरव स्थाणु हैं।

40. युगाद्या शक्तिपीठ : पश्चिम बंगाल में वर्धमान जनपद के क्षीरग्राम में स्थित है युगाद्या शक्तिपीठ। तंत्र चूड़ामणि के अनुसार यहाँ माता सती के दाहिने चरण का अँगूठा गिरा था। यहाँ की शक्ति हैं युगाद्या तथा भैरव क्षीर कंटक।

41. विराट शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ राजस्थान की राजधानी जयपुर से उत्तर में महाभारतकालीन विराट नगर के प्राचीन ध्वंसावशेष के निकट एक गुफ़ा में है। इसे भीम की गुफ़ा कहते हैं। यहीं के वैराट गाँव में शक्तिपीठ स्थित है, जहाँ सती के दाएँ पाँव की अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति अंबिका तथा भैरव अमृतेश्वर हैं।

42. कालीघाट काली मंदिर : पश्चिम बंगाल कि राजधानी कलकत्ता के काली

घाट स्थित काली माता का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की शेष अंगुलियाँ गिरी थीं। यहाँ की शक्ति कलिका तथा भैरव नकुलेश हैं।

43. मानस शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ तिब्बत में मानसरोवर के तट पर है। यहाँ माता सती की दाहिनी हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति दाक्षायणी तथा भैरव अमर हैं।

44. लंका शक्तिपीठ : श्रीलंका के उत्तरी प्रांत में एक स्थान है नैनातिवु। यहाँ स्थित श्री नागपूशानी अम्मन मंदिर भी एक शक्तिपीठ है। यहाँ सती का नूपुर गिरा था। यहाँ की शक्ति इंद्राक्षी तथा भैरव राक्षसेश्वर हैं।

45. गंडकी शक्तिपीठ : नेपाल में गंडकी नदी के उद्गमस्थल पर गंडकी शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती के दक्षिण गंड का पतन हुआ था। यहाँ की शक्ति गंडकी तथा भैरव चक्रपाणि हैं।

46. गुह्येश्वरी शक्तिपीठ : नेपाल में पशुपतिनाथ मंदिर से थोड़ी दूर बागमती नदी की दूसरी ओर गुह्येश्वरी शक्तिपीठ है। यह नेपाल की अधिष्ठात्री देवी हैं। मंदिर में एक छिद्र से निरंतर जल बहता रहता है। यहाँ माता सती के घुटने गिरे थे। यहाँ की शक्ति महामाया और भैरव कपाली हैं।

47. हिंगलाज शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत के हिंगलाज में है। हिंगलाज कराची से 144 किलोमीटर दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में हिंगोस नदी के तट पर है। यहाँ माता सती का ब्रह्मरंध्र गिरा था। यहाँ की शक्ति कोट्टरी तथा भैरव भीमलोचन हैं। यहाँ एक गुफ़ा के भीतर जाने पर माँ आदिशक्ति के ज्योति रूप के दर्शन होते हैं।

48. सुगंधा शक्तिपीठ : बांग्लादेश के बरीसाल में सुगंधा नदी के तट पर स्थित उग्रतारा देवी का मंदिर ही यह शक्तिपीठ है। इस स्थान पर सती की नासिका का निपात हुआ था। यहाँ की शक्ति सुगंधा और भैरव त्र्यंबक हैं।

49. करतोया घाट शक्तिपीठ : यह स्थल भी बांग्लादेश में है। बोगड़ा स्टेशन से 32 किलोमीटर दूर करतोया नदी के तट पर यह शक्तिपीठ स्थित है। यहाँ माता सती का वाम तल्प गिरा था। यहाँ की शक्ति अपर्णा तथा भैरव वामन हैं।

50. चट्टल शक्तिपीठ : बांग्लादेश में चटगाँव से 38 किमी. दूर सीताकुंड स्टेशन के पास चंद्रशेखर पर्वत पर भवानी मंदिर है। यह भवानी मंदिर ही शक्तिपीठ है। यहाँ माता सती की दाहिनी बाँह गिरी थी। यहाँ की शक्ति भवानी तथा भैरव चंद्रशेखर हैं।

51. यशोर शक्तिपीठ : यह शक्तिपीठ बांग्लादेश के खुलना ज़िले के जैसोर नामक नगर में स्थित है। यहाँ सती की बाईं हथेली गिरी थी। यहाँ की शक्ति यशोश्वरी एवं भैरव चंड हैं।

सप्तपुरी

सप्तपुरी पुराणों में वर्णित सात मोक्षदायिका पुरियों को कहा गया है। इन पुरियों में काशी, कांची (क़ांचीपुरम), माया (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवंतिका (उज्जयिनी) की गणना की गई है।

'काशी काँची च माया यातवयोध्याद्वारातऽपि, मथुराऽवन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः';
'अयोध्या-मथुरामायाकाशी काञ्चि अवन्तिका, पुरी द्वारावतीचैव सप्तैते मोक्षदायिकाः।'

पुराणों के अनुसार इन सात पुरियों या तीर्थों को मोक्षदायक कहा गया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. अयोध्या : अयोध्या उत्तर प्रदेश में सरयू नदी के तट पर स्थित एक क़सबा है। भगवान् श्रीराम का जन्म यहीं हुआ था। यह हिंदुओं के प्राचीन और सात पवित्र तीर्थस्थलों में से एक है। अयोध्या को अथर्ववेद में ईश्वर का नगर बताया गया है और इसकी संपन्नता की तुलना स्वर्ग से की गई है। रामायण के अनुसार अयोध्या की स्थापना मनु ने की थी। कई शताब्दियों तक यह नगर सूर्य वंश की राजधानी रहा। इसे मंदिरों का शहर कहा जाता है। यहाँ आज भी हिंदू, बौद्ध, इसलाम और जैन धर्म से जुड़े अवशेष देखे जा सकते हैं। जैन मत के अनुसार यहाँ आदिनाथ सहित पाँच तीर्थंकरों का जन्म हुआ था।

2. मथुरा : पुराणों में मथुरा के गौरवमय इतिहास का विषद विवरण मिलता है। अनेक धर्मों से संबंधित होने के कारण मथुरा में बसने और रहने का महत्त्व क्रमशः बढ़ता रहा। ऐसी मान्यता है कि यहाँ रहने मात्र से लोग पापरहित हो जाते हैं तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वराह पुराण में कहा गया है कि इस नगरी में जो लोग शुद्ध विचार से निवास करते हैं, वे मानव के रूप में साक्षात् देवता हैं। मथुरा में श्राद्ध करनेवालों के पूर्वजों को आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने मथुरा में तप करके नक्षत्रों में स्थान प्राप्त किया था। वराह पुराण में मथुरा की माप बीस योजन बताई गई है। इस मंडल में मथुरा, गोकुल, वृंदावन, गोवर्धन आदि नगर, ग्राम एवं मंदिर, तड़ाग, कुंड, वन एवं अगणित तीर्थों के होने का विवरण है। इनका विस्तृत वर्णन पुराणों में मिलता है। गंगा के समान ही यमुना के गौरवमय महत्त्व का भी विशद वर्णन किया गया है। पुराणों में वर्णित राजाओं के शासन एवं उनके वंशों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

3. हरिद्वार : हरिद्वार उत्तराखंड में स्थित भारत के सात सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में एक है। भारत के पौराणिक ग्रंथों और उपनिषदों में हरिद्वार को मायापुरी कहा गया है। हरिद्वार का अर्थ ही है, हरि तक पहुँचने का द्वार। सबसे पवित्र नदी गंगा के तट पर बसे इस शहर को धर्म की नगरी माना जाता है। सैकड़ों वर्षों से लोग मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य से इस पवित्र भूमि में आते रहे हैं। पवित्र नदी गंगा में डुबकी लगाकर अपने पापों का नाश

करने के लिए साल भर यहाँ श्रद्धालुओं का आना-जाना हमेशा लगा रहता है। गंगा नदी पहाड़ी इलाकों को पीछे छोड़ती हुई हरिद्वार से ही मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है। उत्तराखंड क्षेत्र के चार प्रमुख तीर्थस्थलों का प्रवेशद्वार हरिद्वार ही है। संपूर्ण हरिद्वार में सिद्धपीठ, शक्तिपीठ और अनेक नए-पुराने मंदिर बने हुए हैं।

4. काशी : वाराणसी, काशी अथवा बनारस उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन और धार्मिक महत्ता रखनेवाला शहर है। गंगा नदी के किनारे बसे वाराणसी का पुराना नाम काशी है। दो नदियों वरुणा और असि के मध्य बसा होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ा। यह विश्व का प्राचीनतम बसा हुआ शहर है। यह शहर हज़ारों वर्षों से उत्तर भारत का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है। संस्कृत पढ़ने के लिए प्राचीन काल से ही लोग वाराणसी आया करते थे। वाराणसी के घरानों की संगीत में अपनी ही शैली है।

5. कांचीपुरम : कांचीपुरम तीर्थपुरी दक्षिण की काशी मानी जाती है, जो चेन्नई से लगभग 68 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। कांचीपुरम को कांची भी कहा जाता है। यह आधुनिक काल में कांचीवरम के नाम से भी प्रसिद्ध है। अनुश्रुति है कि देवी के दर्शन के लिए ब्रह्माजी ने इस क्षेत्र में तप किया था। इसकी गणना मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में की जाती है। कांची हरिहरात्मक पुरी है। इसके दो भाग शिवकांची और विष्णुकांची हैं।

6. अवंतिका : उज्जयिनी (उज्जैन) का प्राचीनतम नाम अवंतिका, अवंति नामक राजा के नाम पर था। इस जगह को पृथ्वी का नाभि देश कहा गया है। महर्षि संदीपन का आश्रम भी यहीं था। उज्जयिनी महाराज विक्रमादित्य की राजधानी थी। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में देशांतर की शून्यरेखा उज्जयिनी से प्रारंभ हुई मानी जाती है। इसे कालिदास की नगरी के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ हर 12 वर्ष पर सिंहस्थ कुंभ मेला लगता है। भगवान् शिव के 12 ज्योतिर्लिंगों में एक महाकाल इस नगरी में स्थित है।

7. द्वारका : द्वारका का प्राचीन नाम कुशस्थली है। पौराणिक कथाओं के अनुसार महाराजा रैवतक के समुद्र में कुश बिछाकर यज्ञ करने के कारण ही इस नगरी का नाम कुशस्थली हुआ था। बाद में त्रिविक्रम भगवान् ने कुश नामक दानव का वध भी यहीं किया था। त्रिविक्रम का मंदिर द्वारका में रणछोड़जी के मंदिर के निकट है। ऐसा लगता है कि महाराज रैवतक (बलराम की पत्नी रेवती के पिता) ने प्रथम बार समुद्र में से कुछ भूमि बाहर निकाल कर यह नगरी बसाई होगी। हरिवंश पुराण के अनुसार कुशस्थली उस प्रदेश का नाम था, जहाँ यादवों ने द्वारका बसाई थी। विष्णु पुराण के अनुसार, आनर्त के रेवत नामक पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामक पुरी में रह कर आनर्त पर राज्य किया। विष्णु पुराण से सूचित होता है कि प्राचीन कुशावती के स्थान पर ही श्रीकृष्ण ने द्वारका

बसाई थी—'कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव, सा द्वारका संप्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा'।

द्वादश ज्योतिर्लिंग

द्वादश ज्योतिर्लिंगों के संबंध में शिव पुराण की कोटि 'रुद्रसंहिता' में निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्॥
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ 1 ॥
परल्यां वैदयनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्॥
सेतुबन्धे तुरामेशं नागेशं दारुकावने॥ 2 ॥
वाराणस्यांच विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ 3 ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरूत्थाय यः पठेत्॥
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ 4 ॥

शिव पुराण के कोटिरुद्र संहिता में वर्णित कथानक के अनुसार भगवान् शिवशंकर प्राणियों के कल्याण हेतु जगह-जगह तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं तथा लिंग के रूप में वहाँ निवास भी करते हैं। कुछ विशेष स्थानों पर शिव के उपासकों ने महती निष्ठा के साथ तन्मय होकर भूतभावन की आराधना की थी। उनके भक्तिभाव के प्रेम से आकर्षित भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया तथा उनकी अभिलाषा भी पूरी की। उन स्थानों में आविर्भूत दयालु शिव अपने भक्तों के अनुरोध पर अपने अंशों से सदा के लिए वहीं अवस्थित हो गए। लिंग के रूप में साक्षात् भगवान् शिव जिन-जिन स्थानों में विराजमान हुए, वे हुए सभी तीर्थ के रूप में महत्त्व को प्राप्त हुए।

शिव द्वारा शिवलिंग रूप धारण

संपूर्ण तीर्थ ही लिंगमय है तथा सब कुछ लिंग में समाहित है। वैसे तो शिवलिंगों की गणना अत्यंत कठिन है। जो भी दृश्य दिखाई पड़ता है अथवा हम जिस किसी भी दृश्य का स्मरण करते हैं, वह सब भगवान् शिव का ही रूप है, उससे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। संपूर्ण चराचर जगत् पर अनुग्रह करने के लिए ही भगवान् शिव ने देवता, असुर, गंधर्व, राक्षस तथा मनुष्यों सहित तीनों लोकों को लिंग के रूप में व्याप्त कर रखा है। संपूर्ण लोकों पर कृपा करने की दृष्टि से ही वे भगवान् महेश्वर तीर्थ में तथा विभिन्न जगहों में भी अनेक प्रकार के लिंग धारण करते हैं। जहाँ-जहाँ जब भी उनके भक्तों ने

श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका स्मरण या चिंतन किया, वहीं वे प्रकट होकर विराजमान हो गए। जगत् का कल्याण करने हेतु भगवान् शिव ने स्वयं अपने स्वरूप के अनुकूल लिंग की परिकल्पना की और उसी में वे प्रतिष्ठित हो गए। ऐसे लिंगों की पूजा करके शिवभक्त सब प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। भूमंडल के लिंगों की गणना तो नहीं की जा सकती, किंतु उनमें कुछ प्रमुख शिवलिंग हैं।

शिव पुराण के अनुसार प्रमुख द्वादश ज्योतिर्लिंग इस प्रकार हैं, जिनके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य का किया हुआ पाप दूर भाग जाता है—

1. **सोमनाथ :** प्रथम ज्योतिर्लिंग सौराष्ट्र में अवस्थित सोमनाथ का है। यह स्थान गुजरात प्रांत के काठियावाड़ के प्रभास क्षेत्र में है।

2. **मल्लिकार्जुन :** आंध्र प्रदेश के कुर्नूल ज़िले में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैलम पर्वत पर श्रीमल्लिकार्जुन विराजमान हैं। इसे दक्षिण का कैलाश कहते हैं।

3. **महाकालेश्वर :** तृतीय ज्योतिर्लिंग महाकाल या महाकालेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह मध्य प्रदेश के उज्जैन नामक नगर में है, जिसे प्राचीनकाल में अवंतिका पुरी के नाम से भी जाना जाता रहा है।

4. **ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग :** चतुर्थ ज्योतिर्लिंग का नाम ओंकारेश्वर है। इन्हें ममलेश्वर और अमलेश्वर भी कहा जाता है। यह स्थान भी मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में ही है। यह प्राकृतिक संपदा से भरपूर नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है।

5. **केदारनाथ :** पाँचवाँ ज्योतिर्लिंग हिमालय की चोटी पर विराजमान श्री केदारनाथजी का है। श्री केदारनाथ को केदारेश्वर भी कहा जाता है, जो उत्तराखंड में केदार नामक शिखर पर विराजमान है। इस शिखर से पूरब दिशा में अलकनंदा नदी के किनारे भगवान् श्री बद्री विशाल का मंदिर है।

6. **भीमशंकर :** छठवें ज्योतिर्लिंग का नाम भीमशंकर है, जो डाकिनी पर अवस्थित है। यह स्थान महाराष्ट्र में मुंबई से पूरब तथा पूना से उत्तर की ओर स्थित है, जो भीमा नदी के किनारे सह्याद्रि पर्वत पर है। भीमा नदी भी इसी पर्वत से निकलती है।

7. **विश्वनाथ :** काशी (वाराणसी) में विराजमान भूतभावन भगवान् श्री विश्वनाथ को सातवाँ ज्योतिर्लिंग कहा गया है। कहते हैं, काशी तीनों लोकों में न्यारी नगरी है, जो भगवान् शिव के त्रिशूल पर विराजती है।

8. **त्र्यबंकेश्वर :** आठवें ज्योतिर्लिंग को त्र्यबंक के नाम से भी जाना जाता है। यह नासिक ज़िले में पंचवटी से लगभग अठारह मील की दूरी पर है। यह मंदिर ब्रह्मगिरि के पास गोदावरी नदी के किनारे अवस्थित है।

9. **वैद्यनाथ :** नवें ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ हैं। यह स्थान झारखंड प्रांत के देवघर

जनपद में जसीडीह रेलवे स्टेशन के समीप है। पुराणों में इस जगह को चिताभूमि कहा गया है।

10. नागेश : नागेश नामक ज्योतिर्लिंग दसवें हैं। यह गुजरात के बड़ौदा क्षेत्र में गोमती द्वारका के समीप है। इस स्थान को दारुका वन भी कहा जाता है।

11. रामेश्वर : ग्यारहवें ज्योतिर्लिंग श्रीरामेश्वर हैं। रामेश्वर तीर्थ को ही सेतुबंध तीर्थ कहा जाता है। यह स्थान तमिलनाडु के रामनाथम जनपद में स्थित है। यहाँ समुद्र के किनारे भगवान् श्रीरामेश्वरम् का विशाल मंदिर शोभित है।

12. घुश्मेश्वर : बारहवें ज्योतिर्लिंग का नाम घुश्मेश्वर है। इन्हें कोई घृष्णेश्वर तो कोई घुसृणेश्वर के नाम से पुकारता हैं। यह स्थान महाराष्ट्र क्षेत्र के अंतर्गत दौलताबाद से लगभग अठारह किलोमीटर दूर बेरूलठ गाँव के पास है। इस स्थान को शिवालय भी कहा जाता है।

भारत के चार धाम

भारत के चारों कोनों पर स्थित हिंदू धर्म की चार प्रमुख पीठों को ही चार धाम कहते हैं। चारधाम की स्थापना जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने की थी। इनमें तीन—बद्रीनारायण, द्वारका और पुरी वैष्णव मठ हैं, जबकि एक रामेश्वरम् शैव मठ है। भूगोल की दृष्टि से देखें तो ये चारों धाम मिलकर एक विशुद्ध चतुर्भुज का निर्माण करते हैं। इनमें उत्तर में स्थित बद्रीनारायण और दक्षिण में स्थित रामेश्वरम् एक ही देशांतर पर स्थित हैं, जबकि पूरब पुरी और पश्चिम में द्वारका एक ही अक्षांश पर अवस्थित हैं। इस प्रकार राष्ट्र के चारों कोनों पर स्थित ये मठ भारत की सांस्कृतिक सीमा भी निर्धारित करते हैं। विद्वानों का मत है कि इनकी स्थापना के पीछे आदि शंकराचार्य का उद्देश्य यही रहा होगा कि लोग उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं में स्थित इन धामों की यात्रा कर संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक विरासत को जानें-समझें। संभवत: इसीलिए प्रत्येक हिंदू के लिए चार धाम की यात्रा अनिवार्य कही जाती है।

1. पुरी (गोवर्धन पीठम्) : यह भारत के ओडिशा राज्य में बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित है। यहाँ वैष्णव संप्रदाय का मंदिर है, जो भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को समर्पित है। भगवान् श्रीकृष्ण को ही यहाँ जगन्नाथ के रूप में पूजा जाता है। यह भारत का अकेला मंदिर है, जहाँ भगवान् जगन्नाथ अपने अग्रज बलभद्र और भगिनी सुभद्रा के साथ पूजे जाते हैं। जगन्नाथ शब्द का अर्थ जगत् का स्वामी होता है। इस मंदिर का वार्षिक रथयात्रा उत्सव प्रसिद्ध है। इसमें मंदिर के तीनों मुख्य देवता—भगवान् जगन्नाथ, उनके बड़े भ्राता बलभद्र और भगिनी सुभद्रा, तीन अलग-अलग भव्य और सुसज्जित रथों में विराजमान होकर नगर की यात्रा को निकलते हैं। मध्य-काल से ही यह उत्सव अतीव हर्षोल्लस के साथ मनाया जाता है। इसके साथ ही यह उत्सव भारत के ढेरों

वैष्णव कृष्ण मंदिरों में मनाया जाता है तथा यात्रा निकाली जाती है। यह मंदिर वैष्णव परंपराओं और संत रामानंद से जुड़ा हुआ है। यह गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस पंथ के संस्थापक श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की ओर आकर्षित हुए थे और कई वर्षों तक पुरी में रहे भी थे।

2. रामेश्वरम् (शृंगेरीशरदापीठम्) : पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् तमिलनाडु के रामनाथपुरम् ज़िले में स्थित है। यह तीर्थ चार धामों में से एक है। यहाँ स्थापित शिवलिंग द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। भारत के उत्तर में काशी की जो मान्यता है, वही दक्षिण में रामेश्वरम् की है। रामेश्वरम् चेन्नई से लगभग सवा चार सौ मील दक्षिण-पूर्व में है। यह हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी से चारों ओर से घिरा हुआ एक शंख आकार का एक सुंदर द्वीप है। बहुत पहले यह द्वीप भारत की मुख्य भूमि के साथ जुड़ा हुआ था, परंतु बाद में सागर की लहरों ने इस मिलानेवाली कड़ी को काट डाला, जिससे वह चारों ओर पानी से घिरकर टापू बन गया। भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई करने से पूर्व यहाँ पत्थरों के एक सेतु का निर्माण करवाया था, जिस पर चढ़कर वानर सेना लंका पहुँची और विजय पाई। बाद में राम ने विभीषण के अनुरोध पर धनुष कोटि नामक स्थान पर यह सेतु तोड़ दिया था। आज भी इस 48 कि.मी लंबे आदि-सेतु के अवशेष सागर में दिखाई देते हैं। यहाँ के मंदिर के तीसरे प्रकार का गलियारा विश्व का सबसे लंबा गलियारा है।

3. द्वारका (द्वारकापीठम्) : द्वारका गुजरात की देवभूमि द्वारका ज़िले में स्थित एक नगर तथा तीर्थस्थल है। यह चार धामों के साथ-साथ सप्तपुरियों में भी एक है। यह नगरी भारत के पश्चिम में अरब सागर के किनारे बसी है। धर्मग्रंथों के अनुसार इसे श्रीकृष्ण ने बसाया था। यह श्रीकृष्ण की कर्मभूमि है। आधुनिक द्वारका एक शहर है। क़सबे के एक हिस्से के चारों ओर चाहरदीवारी खिंची है, इसके भीतर ही कई भव्य मंदिर हैं। काफ़ी समय से जाने-माने शोधकर्ता पुराणों में वर्णित द्वारका के रहस्य का पता लगाने में लगे हुए हैं, लेकिन वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित कोई भी अध्ययन कार्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है। 2005 में द्वारका के रहस्यों से परदा उठाने के लिए अभियान शुरू किया गया था। इस अभियान में भारतीय नौसेना ने भी मदद की। अभियान के दौरान समुद्र की गहराई में कटे-छँटे पत्थर मिले और यहाँ से लगभग 200 अन्य नमूने भी एकत्र किए, लेकिन आज तक यह तय नहीं हो पाया कि यह वही नगरी है या नहीं, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने बसाया था। श्रीकृष्ण मथुरा में उत्पन्न हुए, गोकुल में पले, पर राज उन्होंने द्वारका में ही किया। यहाँ श्रीकृष्ण की पूजा रणछोड़जी के रूप में होती है।

4. बदरीनारायण धाम (ज्योतिर्मठपीठम्) : बदरीनारायण धाम जिसे बदरीनाथ मंदिर भी कहते हैं, उत्तराखंड राज्य में अलकनंदा नदी के किनारे स्थित है। यह मंदिर

भगवान् विष्णु के रूप बदरीनाथ को समर्पित है। यह चार धाम में से एक है। ऋषिकेश से यह 294 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित है।

भारत की सात पवित्र नदियाँ

हिंदुओं द्वारा स्नान एवं धार्मिक कृत्यों के समय यह श्लोक याद किया जाता है :

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अर्थात् गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी इन सातों नदियों के जल का सद्प्रभाव इस जल में व्याप्त हो।

यह केवल इन सात पवित्र नदियों का धार्मिक महत्त्व ही नहीं, भारत की सीमाओं का विस्तार भी बताता है। इनमें गंगा, यमुना और सरस्वती उत्तर से पूरब तक, गोदावरी, नर्मदा और कावेरी पश्चिम से दक्षिण तथा सिंधु पश्चिम से उत्तर तक भारत की सीमाएँ निर्धारित करती रही हैं।

वेद शब्द संस्कृत भाषा के 'विद्' धातु से बना है 'विद्' का अर्थ है—जानना, ज्ञान इत्यादि। 'वेद' हिंदू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मंत्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परंपरा की अनुपम कृति है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी पिछले चार-पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिंदू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रंथ हैं। वेद के असल मंत्र भाग को संहिता कहते हैं।

'सनातन धर्म' एवं 'भारतीय संस्कृति' का मूल आधार स्तंभ विश्व का अति प्राचीन और सर्वप्रथम वाङ्मय 'वेद' माना गया है। मानव जाति के लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय हेतु प्राकट्य होने से वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महा तपा, पुण्यपुंज ऋषियों के पवित्रतम अंतःकरण में वेद के दर्शन हुए थे, अतः उसका 'वेद' नाम प्राप्त हुआ। ब्रह्म का स्वरूप 'सत-चित-आनंद' होने से ब्रह्म को वेद का पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिए वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान का साधन है। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये' तात्पर्य यह कि कल्प के प्रारंभ में आदिकवि ब्रह्मा के हृदय में वेद का प्राकट्य हुआ।

वेद के प्रकार

ऋग्वेद : वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण हुआ। यह पद्यात्मक है। यजुर्वेद गद्यमय है और सामवेद गीतात्मक है। ऋग्वेद में मंडल 10 हैं,1028 सूक्त हैं और 11 हज़ार मंत्र हैं। इसमें 5 शाखाएँ हैं—शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन। ऋग्वेद के दशम मंडल में औषधि सूक्त हैं। इसके प्रणेता अर्थशास्त्र ऋषि हैं। इसमें

औषधियों की संख्या 125 के लगभग निर्दिष्ट की गई है जो कि 107 स्थानों पर पाई जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवन ऋषि को पुनः युवा करने का कथानक भी उद्धृत है और औषधियों से रोगों का नाश करना भी समाविष्ट है। इसमें ज़ल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा एवं हवन द्वारा चिकित्सा का समावेश है

सामवेद : चार वेदों में सामवेद का नाम तीसरे क्रम में आता है। पर ऋग्वेद के एक मंत्र में ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आने से कुछ विद्वान वेदों को एक के बाद एक रचना न मानकर प्रत्येक को स्वतंत्र रचना मानते हैं। सामवेद में गेय छंदों की अधिकता है, जिनका गान यज्ञों के समय होता था। 1824 मंत्रों के इस वेद में 75 मंत्रों को छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेद से ही संकलित हैं। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। इसमें सविता, अग्नि और इंद्र देवताओं का प्राधान्य है। इसमें यज्ञ में गाने के लिए संगीतमय मंत्र हैं, यह वेद मुख्यतः गंधर्व लोगो के लिए होता है। इसमें मुख्य 3 शाखाएं हैं, 75 ऋचाएँ हैं विशेषकर संगीतशास्त्र का समावेश किया गया है।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिए गद्य मंत्र हैं, यह वेद मुख्यतः क्षत्रियों के लिए होता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं—

1. कृष्ण : वैशंपायन ऋषि का संबंध कृष्ण से है। कृष्ण की चार शाखाएँ हैं।

2. शुक्ल : यांज्ञवल्क्य ऋषि का संबंध शुक्ल से है। शुक्ल की दो शाखाएँ हैं। इसमें 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में 'ब्रीहिधान्यो' का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अलावा, दिव्य वैद्य एवं कृषि विज्ञान का भी विषय समाहित है।

अथर्ववेद : इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिए मंत्र हैं, यह वेद मुख्यतः व्यापारियों के लिए होता है। इसमें 20 कांड हैं। अथर्ववेद में आठ खंड आते हैं, जिनमें भैषज वेद एवं धातु वेद, ये दो नाम स्पष्ट प्राप्त हैं।

छह शास्त्र : मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, वेदांत।

अठारह पुराण : ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, अग्नि पुराण, मार्कंडेय पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, स्कंद पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मांड पुराण।

अखंडता के प्रतीक भारत के पुण्यक्षेत्र

अष्टविनायक

अष्टविनायक से अभिप्राय है आठ गणपति। यह आठ अति प्राचीन मंदिर भगवान् गणेश के आठ शक्तिपीठ भी कहलाते हैं, जो कि महाराष्ट्र में स्थित हैं। महाराष्ट्र में पुणे के समीप अष्टविनायक के आठ पवित्र मंदिर 20 से 110 किलोमीटर के क्षेत्र में स्थित हैं। इन मंदिरों का पौराणिक महत्त्व और इतिहास है। इनमें विराजित गणेश की प्रतिमाएँ

स्वयंभू मानी जाती हैं, यानि यह स्वयं प्रगट हुई हैं। यह मानव निर्मित न होकर प्राकृतिक हैं। 'अष्टविनायक' के ये सभी आठ मंदिर अत्यंत पुराने और प्राचीन हैं। इन सभी का विशेष उल्लेख गणेश और मुद्गल पुराण, जो हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथों का समूह हैं, में किया गया है। इन आठ गणपति धामों की यात्रा अष्टविनायक तीर्थ यात्रा के नाम से जानी जाती है। इन पवित्र प्रतिमाओं के प्राप्त होने के क्रम के अनुसार ही अष्टविनायक की यात्रा भी की जाती है। अष्टविनायक दर्शन की शास्त्रोक्त क्रमबद्धता इस प्रकार है—

1. श्री मयूरेश्वर मंदिर : यह मंदिर पुणे से 80 किलोमीटर दूर स्थित मोरेगाँव में है। मयूरेश्वर मंदिर के चारों कोनों में मीनारें हैं और लंबे पत्थरों की दीवारें हैं। यहाँ चार द्वार हैं। ये चारों दरवाज़े चारों युग सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के प्रतीक हैं। इस मंदिर के द्वार पर शिवजी के वाहन नंदी बैल की मूर्ति स्थापित है, इसका मुँह भगवान् गणेश की मूर्ति की ओर है। मंदिर में गणेशजी बैठी मुद्रा में विराजमान है तथा उनकी सूँड़ बाएँ हाथ की ओर है तथा उनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। मान्यताओं के अनुसार यहाँ गणेशजी ने मोर पर सवार होकर सिंधुरासुर से युद्ध किया था। इसी कारण यहाँ स्थित गणेशजी को मयूरेश्वर कहा जाता है।

2. सिद्धिविनायक मंदिर : अष्ट विनायक में दूसरे गणेश हैं सिद्धिविनायक। यह मंदिर पुणे से करीब 200 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। समीप ही भीम नदी है। यह क्षेत्र सिद्धटेक गाँव के अंतर्गत आता है। यह पुणे के सबसे पुराने मंदिरों में से एक है। मंदिर करीब 200 साल पुराना है। सिद्धटेक में सिद्धिविनायक मंदिर बहुत ही सिद्ध स्थान है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ भगवान् विष्णु ने सिद्धियाँ हासिल की थीं। सिद्धिविनायक मंदिर एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। जिसका मुख्य द्वार उत्तर दिशा की ओर है। मंदिर की परिक्रमा के लिए पहाड़ी की यात्रा करनी होती है। यहाँ गणेशजी की मूर्ति 3 फीट ऊँची और ढाई फीट चौड़ी है। मूर्ति का मुख उत्तर दिशा की ओर है। भगवान् गणेश की सूँड़ सीधे हाथ की ओर है।

3. श्रीबल्लालेश्वर मंदिर : अष्टविनायक में अगला मंदिर है श्री बल्लालेश्वर का। यह महाराष्ट्र के रायगढ़ जनपद अंतर्गत पाली गाँव में है। इस मंदिर का नाम गणेशजी के भक्त बल्लाल के नाम पर पड़ा है। प्राचीन काल में बल्लाल नाम का एक लड़का था, वह गणेशजी का परम भक्त था। एक दिन उसने पाली गाँव में विशेष पूजा का आयोजन किया। पूजन कई दिनों तक चलता रहा। पूजा में शामिल कई बच्चे घर लौटकर नहीं गए और वहीं बैठे रहे। इस कारण उन बच्चों के माता-पिता ने बल्लाल को पीटा और गणेशजी की प्रतिमा के साथ उसे भी जंगल में फेंक दिया। गंभीर हालत में बल्लाल गणेशजी के मंत्रों का जप कर रहा था। इस भक्ति से प्रसन्न होकर गणेश जी ने उसे दर्शन दिए। तब बल्लाल ने गणेशजी से आग्रह किया अब वे इसी स्थान पर निवास

करें। गणपति ने आग्रह मान लिया।

4. श्रीवरदविनायक : अष्टविनायक में चौथे गणेश हैं श्रीवरदविनायक। यह मंदिर महाराष्ट्र के रायगढ़ ज़िले के कोल्हापुर क्षेत्र में स्थित है। यहाँ एक सुंदर पर्वतीय गाँव है महाड़। इसी गाँव में है श्री वरदविनायक मंदिर। यहाँ प्रचलित मान्यता के अनुसार वरदविनायक भक्तों की सभी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्रदान करते हैं। इस मंदिर में नंददीप नाम का एक दीपक है, जो कई वर्षों से प्रज्वलित है। वरदविनायक का नाम लेने मात्र से ही सारी कामनाओं के पूरा होने का वरदान प्राप्त होता है।

5. चिंतामणि गणपति : अष्टविनायक में पाँचवें गणेश हैं चिंतामणि गणपति। यह मंदिर पुणे ज़िले के हवेली क्षेत्र में स्थित है। मंदिर के पास ही तीन नदियों का संगम है। ये तीन नदियाँ हैं भीम, मुला और मुथा। यदि किसी भक्त का मन बहुत विचलित है और जीवन में दु:ख ही दु:ख प्राप्त हो रहे हैं तो इस मंदिर में आने पर ये सभी समस्याएँ दूर हो जाती हैं। ऐसी मान्यता है कि स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने अपने विचलित मन को वश में करने के लिए इसी स्थान पर तपस्या की थी।

6. श्री गिरजात्मज गणपति : अष्टविनायक में अगले गणपति हैं श्री गिरजात्मज। यह मंदिर पुणे-नासिक राजमार्ग पर पुणे से करीब 90 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। क्षेत्र के नारायण गाँव से इस मंदिर की दूरी 12 किलोमीटर है। गिरजात्मज का अर्थ है गिरिजा यानी माता पार्वती के पुत्र गणेश। यह मंदिर एक पहाड़ पर बौद्ध गुफ़ाओं के स्थान पर बनाया गया है। यहां लेनयादरी पहाड़ पर 18 बौद्ध गुफ़ाएँ हैं और इनमें से 8वीं गुफ़ा में गिरजात्मज विनायक मंदिर है। इन गुफ़ाओं को 'गणेश गुफ़ा' भी कहा जाता है। मंदिर तक पहुँचने के लिए करीब 300 सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। यह पूरा मंदिर ही एक बड़े पत्थर को काटकर बनाया गया है।

7. विघ्नेश्वर गणपति : अष्टविनायक में सातवें गणेश हैं विघ्नेश्वर गणपति। यह मंदिर पुणे के ओझर ज़िले में जूनर क्षेत्र में स्थित है। यह पुणे-नासिक रोड पर नारायण गाँव से जूनर या ओजर होकर करीब 85 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। प्रचलित कथा के अनुसार विघनासुर नामक एक असुर था, जो संतों को प्रताणित कर रहा था। भगवान् गणेश ने इसी क्षेत्र में उस असुर का वध किया और सभी को कष्टों से मुक्ति दिलवाई। तभी से यह मंदिर विघ्नेश्वर, विघ्नहर्ता और विघ्नहार के रूप में जाना जाता है।

8. महागणपति : अष्टविनायक मंदिर के आठवें गणेशजी हैं महागणपति। मंदिर पुणे के रांजण गाँव में स्थित है। यह पुणे-अहमदनगर राजमार्ग पर 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर का इतिहास 9-10वीं सदी के बीच माना जाता है। मंदिर का प्रवेश-द्वार पूर्व दिशा की ओर है जो कि बहुत विशाल और सुंदर है। भगवान् गणपति की मूर्ति को माहोतक नाम से भी जाना जाता है। यहाँ की गणेशजी प्रतिमा अद्‌भुत है। प्रचलित मान्यता के अनुसार मंदिर की मूल मूर्ति तहख़ाने की छिपी हुई है। पुराने समय में

जब विदेशियों ने यहाँ आक्रमण किया था तो उनसे मूर्ति बचाने के लिए उसे तहख़ाने में छिपा दिया गया था।

9. उच्ची पिल्लैयार मंदिर, रॉकफोर्ट : दक्षिण भारत का प्रसिद्ध पहाड़ी क़िला मंदिर तमिलनाडु राज्य के त्रिची शहर के मध्य पहाड़ के शिखर पर स्थित है। चोल राजाओं की ओर से चट्टानों को काटकर इस मंदिर का निर्माण किया गया था। यहाँ भगवान् श्री गणेश का मंदिर है। पहाड़ के शिखर पर विराजमान होने के कारण गणेशजी को 'उच्ची पिल्लैयार' कहते हैं। यहाँ दूर-दूर से दर्शनार्थी दर्शन करने के लिए आते हैं।

10. कनिपक्कनम विनायक मंदिर, चित्तूर : आस्था और चमत्कार की ढेरों कहानियाँ खुद में समेटे कनिपक्कम विनायक का यह मंदिर आंध्र प्रदेश के चित्तूर ज़िले में मौजूद है। इस मंदिर की स्थापना 11वीं सदी में चोल राजा कुलोतुंग चोल प्रथम ने की थी। बाद में इसका विस्तार 1336 में विजयनगर साम्राज्य में किया गया। जितना प्राचीन यह मंदिर है, उतनी ही दिलचस्प इसके निर्माण के पीछे की कहानी भी है। कहते हैं, यहाँ हर दिन गणपति का आकार बढ़ता ही जा रहा है। साथ ही ऐसा भी मानते हैं कि अगर कुछ लोगों के बीच में कोई लड़ाई हो, तो यहाँ प्रार्थना करने से वह लड़ाई ख़त्म हो जाती है।

11. मनाकुला विनायगर मंदिर, पांडिचेरी : भगवान् श्रीगणेश का यह मंदिर पांडिचेरी में स्थित है। पर्यटकों के बीच ये मंदिर आकर्षण का विशेष केंद्र है। प्राचीन काल का होने के कारण इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। कहते हैं कि क्षेत्र पर फ्रांस के क़ब्ज़े से पहले का है यह मंदिर। दूर-दराज से भक्त यहाँ भगवान् श्रीगणेश के दर्शन करने आते हैं।

12. मधुर महा गणपति मंदिर, केरल : इस मंदिर से जुड़ी सबसे रोचक बात यह है कि शुरुआत में यह भगवान् शिव का मंदिर हुआ करता था, लेकिन पुरानी कथा के अनुसार पुजारी के बेटे ने यहाँ भगवान् गणेश की प्रतिमा का निर्माण किया। पुजारी का यह बेटा छोटा सा बच्चा था। खेलते-खेलते मंदिर के गर्भगृह की दीवार पर बनाई हुई उसकी प्रतिमा धीरे-धीरे अपना आकार बढ़ाने लगी। वह हर दिन बड़ी और मोटी होती गई। उस समय से यह मंदिर भगवान् गणेश का बेहद खास मंदिर हो गया।

13. गणेश टोक (गंगटोक) सिक्किम : गणेश टोक मंदिर गंगटोक-नाथुला रोड से करीब 7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह यहाँ करीब 6,500 फीट की ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इस मंदिर के वैज्ञानिक नजरिए पर गौर करें तो इस मंदिर के बाहर खड़े होकर आप पूरे शहर का नजारा एक साथ ले सकते हैं।

14. मोती डूँगरी गणेश मंदिर, जयपुर : मोती डूँगरी गणेश मंदिर राजस्थान में जयपुर के प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। यह मंदिर भगवान् गणेश को समर्पित है। लोगों की इसमें विशेष आस्था तथा विश्वास है। गणेश चतुर्थी के अवसर पर यहाँ काफ़ी भीड़

रहती है और दूर-दूर से लोग दर्शनों के लिए आते हैं। भगवान् गणेश का यह मंदिर जयपुर वासियों की आस्था का प्रमुख केंद्र है। इतिहासकार बताते हैं कि यहाँ स्थापित गणेश प्रतिमा जयपुर नरेश माधोसिंह प्रथम की पटरानी के पीहर मावली से 1761 में लाई गई थी। मावली में यह प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। उस समय यह पाँच सौ वर्ष पुरानी थी। जयपुर के नगर सेठ पल्लीवाल यह मूर्ति लेकर आए थे और उन्हीं की देखरेख में मोती डूँगरी की तलहटी में गणेश जी का मंदिर बनवाया गया था।

भारत के प्रमुख सूर्य मंदिर

भारत में सूर्योपासना की परंपरा बहुत पुरानी है। वैदिक वाङ्मय में सूर्य को ऊर्जा के अक्षयस्रोत और तेजपुंज के रूप में देखा गया है। वेदों में भगवान् सूर्य को पृथ्वी पर समस्त जीवन का स्रोत तथा संरक्षक कहा गया है और इनकी स्तुति में असंख्य ऋचाएँ हैं। इस तरह देखें तो भारत में सूर्य पूजा की परंपरा सहस्राब्दियों पुरानी है। पुराणों में सूर्योपासना के कई संदर्भ पाए जाते हैं। रामायण में महर्षि अगस्त्य भगवान् राम को सूर्य की उपासना के क्रम में आदित्य हृदय स्तोत्र के पाठ के लिए कहते हैं। सूर्यार्चन का यह क्रम संपूर्ण भारत में हमेशा विद्यमान रहा है, इसका प्रमाण पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रतिष्ठित सूर्य मंदिर हैं। जहाँ तक द्वादश सूर्य मंदिरों की बात है, इस संबंध में जिन मंदिरों का उल्लेख मिलता है, वे हैं—देवार्क, पुण्यार्क, उलार्क, पंडार्क, कोणार्क, अंजार्क, लोलार्क, वेदार्क, मार्कंडेयार्क, दर्शनार्क, बालार्क और चाणार्क। यद्यपि इनमें से अधिकतर के बारे में अब ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। जनश्रुति के अनुसार इन सभी मंदिरों का निर्माण भगवान् श्रीकृष्ण एवं माता जांबवंती के पुत्र सांब ने करवाया था। पौराणिक मान्यता है कि श्री सांब को ऋषि दुर्वासा के शाप से कुष्ठरोग हो गया था। इससे मुक्ति के लिए उन्होंने लंबे समय तक सूर्यनारायण की तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उनका रोग हर लिया। तदुपरांत भगवान् सूर्यनारायण के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए सांब ने तीन स्थानों पर सूर्य मंदिरों का निर्माण कराया। ये स्थान हैं—कोणार्क, कालपी और मुलतान। इनमें कोणार्क में उन्होंने प्रातःकालीन सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई, जबकि कालपी में मध्याह्नकालीन और मुलतान में सायंकालीन। मुलतान में स्वर्ण प्रतिमा वाले भव्य सूर्य मंदिर का वर्णन ह्वेनसांग ने भी किया है। सूर्य के प्रमुख मंदिरों का विवरण इस प्रकार है—

1. कोणार्क : यह सूर्य नारायण का सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर है। पुरी ज़िले के अंतर्गत एक छोटे से क़सबे में बंगाल की खाड़ी के समुद्रतट पर मौजूद यह मंदिर ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ मूल मंदिर त्रेतायुगीन बताया जाता है, लेकिन वर्तमान निर्माण राजा नरसिंहदेव-प्रथम के

समय में हुआ। यह यूनेस्को द्वारा घोषित विश्व धरोहरों में से एक है। यह स्थापत्य कला का एक अद्वितीय नमूना है। यहाँ हर साल कोणार्क नृत्य महोत्सव भी होता है। हालाँकि अब मंदिर के मूल स्थापत्य के केवल भग्नावशेष ही शेष हैं, जिनकी देखरेख भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा की जाती है।

2. कालप्रियनाथ : यह मंदिर उत्तर प्रदेश के कालपी नामक क़सबे में है। जालौन ज़िले में स्थित कालपी कानपुर शहर से केवल 65 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ कालप्रियनाथ के रूप में भगवान् सूर्य नारायण का भव्य मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण कब हुआ, इस बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन ऐसा कहा जाता है कि विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक रहे महान् गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद् वाराहमिहिर यहीं से नक्षत्रमंडल का अध्ययन किया करते थे।

3. आदित्य सूर्य मंदिर : यह मुलतान (अब पाकिस्तान) में स्थित था। मुलतान का मूलनाम कश्यपपुर था, जो बाद में यहाँ सूर्य मंदिर स्थापित होने के कारण मूल स्थान हो गया और यही बदल मुलतान बन गया। यहाँ सांब ने भगवान् सूर्य की सायंकालीन प्रतिमा स्थापित कराई थी। यूनानी सेनापति स्कायलैक, जो 515 ई.पू. में इधर से गुज़रा था, ने यहाँ अत्यंत भव्य सूर्य मंदिर होने का ज़िक्र किया है। बाद में हेरोडोटस, ह्वेनसांग और अलबरूनी ने भी यहाँ के भव्य सूर्यमंदिर का वर्णन किया है। ह्वेनसांग ने यहाँ भगवान् सूर्य की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने तथा साथ ही भगवान् शिव और भगवान् बुद्ध की प्रतिमाएँ होने का भी वर्णन किया है। इस मंदिर को मुसलिम आक्रांता महमूद गज़नवी ने सन् 1026 में नष्ट कर डाला।

4. सूर्य पहाड़ मंदिर : यह असम के ग्वालपाड़ा कसबे के निकट है। यहाँ एक वृत्ताकार प्रस्तर खंड पर सूर्य की 12 छवियाँ स्थापित हैं। पुराणों में सूर्य के 12 रूपों का वर्णन है, जिन्हें द्वादशादित्य कहा जाता है। कालिका पुराण के अनुसार सूर्य पहर आदिकाल से ही सूर्य का स्थान है। यहाँ भगवान् सूर्य के अलावा उनके पिता कश्यप और माता अदिति की भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

5. सूर्यनार मंदिर : यह तमिलनाडु के कुंभकोणम में स्थित है। इस मंदिर परिसर में काशी विश्वनाथ और विशालाक्षी की प्रतिमाएँ भी हैं। इनके अलावा अन्य आठ ग्रहों— चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की प्रतिमाएँ भी यहाँ हैं।

6. सूर्य मंदिर, मोढेरा : भगवान् सूर्यनारायण का यह मंदिर गुजरात में है। मेहसाना से 25 किलोमीटर और राज्य की राजधानी अहमदाबाद से 102 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह मंदिर पुष्पावती नदी के तट पर है। इसका निर्माण सन् 1026 में सोलंकी राजवंश के शासक भीमदेव ने कराया था। इस मंदिर में अभी भी पूजा-पाठ होता है और यह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की देखरेख में है।

7. कनकादित्य मंदिर : यह महाराष्ट्र के सिंधुदुर्ग ज़िले में कशेली नामक गाँव में

है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा गुजरात से लाई गई थी। यहाँ सूर्य मंदिर के अलावा महाकाली, सरस्वती और महालक्ष्मी के मंदिर भी हैं।

8. बेलाउर सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के भोजपुर ज़िले के बेलाउर गाँव में अवस्थित है। इसे बेलार्क, उलार्क और उलार सूर्य मंदिर भी कहा जाता है। इस मंदिर का निर्माण राजा सूबा ने करवाया था। बाद में बेलाउर गाँव में कुल 52 पोखरे (तालाब) का निर्माण करानेवाले राजा सूबा को राजा बावन सूब के नाम से पुकारा जाने लगा। राजा द्वारा बनवाए 52 पोखरों में एक पोखर के मध्य में यह सूर्य मंदिर स्थित है।

9. झालरापाटन सूर्य मंदिर : राजस्थान में झालावाड़ का जुड़वाँ शहर है झालरापाटन। शहर के मध्य स्थित सूर्य मंदिर यहाँ का प्रमुख दर्शनीय स्थल है। वास्तुकला की दृष्टि से भी यह मंदिर महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण 10वीं शताब्दी में मालवा के परमार वंशीय राजाओं ने करवाया था। मंदिर के गर्भगृह में भगवान् विष्णु की प्रतिमा विराजमान है, इसीलिए इसे पद्मनाभ मंदिर भी कहा जाता है।

10. औंगारी सूर्य मंदिर : नालंदा का प्रसिद्ध सूर्यधाम औंगारी और बडगाँव के सूर्य मंदिर देश भर में प्रसिद्ध हैं। ऐसी मान्यता है कि यहाँ के सूर्य तालाब में स्नान कर मंदिर में पूजा करने से कुष्ठ रोग सहित कई असाध्य व्याधियों से मुक्ति मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण भी सांब ने करवाया था। इसे बकोणार्क सूर्य मंदिर भी कहते हैं।

11. ब्रह्मण्य देव मंदिर : यह मध्य प्रदेश के दतिया ज़िले में स्थित गाँव उनाव में है। इस मंदिर में भगवान् सूर्य की पत्थर की मूर्ति है, जो एक ईंट से बने चबूतरे पर स्थित है। जिस पर काले धातु की परत चढ़ी हुई है। साथ ही, साथ 21 कलाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले सूर्य के 21 त्रिभुजाकार प्रतीक मंदिर पर अवलंबित है।

12. रनकपुर सूर्य मंदिर : राजस्थान के रनकपुर नामक स्थान में अवस्थित यह सूर्य मंदिर, नागर शैली में सफ़ेद संगमरमर से बना है। भारतीय वास्तुकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता यह सूर्य मंदिर जैनियों के द्वारा बनवाया गया था, जो उदयपुर से क़रीब 98 किलोमीटर दूर स्थित है।

13. सूर्य मंदिर, राँची : राँची से 39 किलोमीटर की दूरी पर राँची-टाटा रोड पर स्थित यह सूर्य मंदिर बुंडू के समीप है। संगमरमर से निर्मित इस मंदिर का निर्माण 18 पहियों और 7 घोड़ों के रथ पर विद्यमान भगवान् सूर्य के रूप में किया गया है। 25 जनवरी को हर साल यहाँ विशेष मेले का आयोजन होता है।

14. दक्षिणार्क सूर्य मंदिर : यह मंदिर बिहार के गया नामक स्थान पर है। यहाँ सूर्य मंदिर गया के प्रसिद्ध विष्णुपाद मंदिर के निकट स्थित है। पूर्वाभिमुख सूर्य मंदिर के

सामने ही सूर्य कुंड है। गर्भगृह के सामने एक विशाल सभा मंडप है, जिसमें बने स्तंभों पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और सूर्य की सुंदर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इसके अलावा यहाँ सूर्य के दो और मंदिर हैं। इनमें एक है उत्तरक मंदिर, जो उत्तर मानस मंदिर के समीप है और दूसरा है गयादित्य मंदिर, जो फल्गु नदी के तट पर अवस्थित है।

15. पुण्यार्क सूर्य मंदिर : यह बिहार में बाढ़ से करीब 13 किलोमीटर की दूरी पर है। कहा जाता है कि यह मंदिर भी सांब द्वारा स्थापित है। देश भर में स्थापित अधिकतर सूर्य मंदिर पोखर और तालाबों के किनारे हैं, जबकि पुण्यार्क सूर्य मंदिर को इकलौते सूर्य मंदिर माना जाता है जो कि गंगा नदी के तट पर अवस्थित है।

16. देव सूर्य मंदिर : यह बिहार के देव (औरंगाबाद ज़िला) में स्थित सूर्य मंदिर है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख न होकर पश्चिमाभिमुख है। यह मंदिर अपनी अनूठी शिल्प कला के लिए प्रख्यात है। पत्थरों को तराश कर बनाए गए, इस मंदिर की नक्काशी उत्कृष्ट शिल्प कला का नमूना है। प्रचलित मान्यता के अनुसार इसका निर्माण स्वयं भगवान् विश्वकर्मा ने किया है। इस मंदिर के बाहर संस्कृत में लिखे श्लोक के अनुसार 12 लाख 16 हजार वर्ष त्रेतायुग के गुजर जाने के बाद राजा इलापुत्र पुरूरवा ऐल ने इस सूर्य मंदिर का निर्माण प्रारंभ करवाया था। शिलालेख से पता चलता है कि पूर्व 2007 में इस पौराणिक मंदिर के निर्माणकाल का एक लाख पचास हजार सात वर्ष पूरा हुआ। पुरातत्त्वविद् इस मंदिर का निर्माण काल आठवीं–नौवीं सदी के बीच का मानते हैं। कहा जाता है कि सूर्य मंदिर के पत्थरों में विजय चिह्न व कलश अंकित हैं। विजय चिह्न यह दरशाता है कि शिल्प के कलाकार ने सूर्य मंदिर का निर्माण कर के ही शिल्प कला पर विजय प्राप्त की थी। देव सूर्य मंदिर के स्थापत्य कला के बारे में कई तरह की किंवदंतियाँ हैं। मंदिर के स्थापत्य से प्रतीत होता है कि मंदिर के निर्माण में उड़िया स्वरूप नागर शैली का समायोजन किया गया है। नक्काशीदार पत्थरों को देखकर भारतीय पुरातत्त्व विभाग के लोग मंदिर के निर्माण में नागर एवं द्रविड़ शैली का मिश्रित प्रभाव वाली वेसर शैली का भी समन्वय बताते हैं।

17. कटारमल सूर्य मंदिर : कटारमल सूर्य मंदिर उत्तराखंड में अल्मोड़ा के 'कटारमल' नामक स्थान पर स्थित है। इस कारण इसे 'कटारमल सूर्य मंदिर' कहा जाता है। यह सूर्य मंदिर न सिर्फ़ समूचे कुमाऊँ मंडल का सबसे विशाल, ऊँचा और अनूठा मंदिर है, बल्कि उड़ीसा के 'कोणार्क सूर्य मंदिर' के बाद एकमात्र प्राचीन सूर्य मंदिर भी है। 'भारतीय पुरातत्त्व विभाग' द्वारा इस मंदिर को संरक्षित स्मारक घोषित किया जा चुका है। यह मंदिर नौवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ माना जाता है।

18. मार्तंड सूर्य मंदिर : यह जम्मू-कश्मीर में अनंतनाग से 9 किलोमीटर उत्तर-

पूर्व दिशा में एक पठार पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि मार्तंड कश्यप ऋषि के तीसरे पुत्र का जन्मस्थान है। यद्यपि अब इस मंदिर के केवल अवशेष ही हैं, मुख्य मंदिर को मुसलिम आक्रांताओं ने ढहा दिया, लेकिन खँडहर इस बात के साक्षी हैं कि कभी यह बहुत ही भव्य मंदिर रहा होगा। इसका निर्माण 7वीं से 8वीं शताब्दी के बीच सूर्यवंशी राजा ललितादित्य ने कराया था। इसमें 84 स्तंभ हैं, जो नियमित अंतराल पर रखे गए हैं। मंदिर को बनाने के लिए चूने के पत्थर की चौकोर ईंटों का प्रयोग किया गया है। खँडहर हो चुके इस मंदिर की ऊँचाई अब केवल 20 फुट रह गई है। आक्रांता सिकंदर बुतशिकन को इस मंदिर की दीवारें ध्वस्त करने में ही एक साल लग गया था।

19. बिरंचिनारायण मंदिर : बुगुडा-बुगुडा नामक क़सबा ओडीशा के गंजम ज़िले में है। यह ऐतिहासिक क़सबा ओडीशा के प्रमुख शहर बरहामपुर से केवल 70 किलोमीटर दूर है। यहाँ स्थित सूर्य मंदिर का निर्माण राजा श्रीकर भंजदेव ने सन् 1790 में कराया था। लेकिन यहाँ प्रतिष्ठित सूर्य प्रतिमा अत्यंत प्राचीन है। यह प्रतिमा मालतीगढ़ के खँडहरों से प्राप्त की गई थी। यहाँ अर्चन के लिए सूर्य की मुख्य प्रतिमा लकड़ी की बनी हुई है। यह सूर्य मंदिर पश्चिमाभिमुख है।

20. बिरंचिनारायण मंदिर, पलिया : ओडीशा के भद्रक ज़िले में पलिया एक गाँव है। यह भद्रक से 15 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में है। यहाँ स्थापित सूर्य प्रतिमा के दोनों हाथों में दो कमलपुष्प हैं। स्थापत्य की दृष्टि से यह मंदिर 13वीं शताब्दी का बताया जाता है। इसका पुनरुद्धार 20वीं शताब्दी के आरंभ में के स्थानीय ज़मींदार ने कराया।

21. अरसावल्ली सूर्य मंदिर : अरसावल्ली आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम शहर का बाहरी हिस्सा है। इसका मूल नाम हर्षावल्ली है, हर्षावल्ली का अर्थ हर्ष का स्थान होता है। यहाँ स्थापित सूर्य मंदिर 7वीं शताब्दी में कलिंग शासक देवेंद्र वर्मा ने कराया था।

सात पर्वत

1. महेंद्र पर्वत
2. मलय पर्वत (नीलगिरि)
3. सह्याद्रि पर्वत
4. हिमालय पर्वत
5. रेवतक पर्वत (गिरनार)
6. विंध्याचल पर्वत
7. अरावली पर्वत

सात वन

1. दंडकारण्य
2. खंडकारण्य
3. चंपकारण्य
4. वेदारण्य
5. नैमिषारण्य
6. ब्रह्मारण्य
7. धर्मारण्य

पंच सरोवर

1. बिंदु सरोवर
2. नारायण सरोवर

3. पंपा सरोवर
4. पुष्पक झील सरोवर
5. मानसरोवर

सप्त द्वीप

1. जंबूद्वीप
2. प्लक्षद्वीप
3. शाल्मलद्वीप
4. कुशद्वीप
5. क्रौंचद्वीप
6. शाकद्वीप
7. पुष्करद्वीप

सप्त सागर

1. क्षीर सागर
2. दुधी सागर
3. घृत सागर
4. पायान सागर
5. मधु सागर
6. मदिरा सागर
7. लहू सागर

सप्त पाताल

1. अतल
2. वितल
3. नितल
4. गभस्तिमान
5. महातल
6. सुतल
7. पाताल

सप्त लोक

1. भूर्लोक
2. महर्लोक
3. भुवर्लोक
4. जनलोक
5. स्वर्लोक
6. तपोलोक
7. सत्यलोक (ब्रह्मलोक)

सप्त वायु

1. प्रवह
2. आवह
3. उद्वह
4. संवह
5. विवह
6. परिवह
7. परावह

□

संदर्भिका

अ

अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा 153
अंग्रेज़ी संविधान 153
अंतरराष्ट्रीय स्वतंत्र व्यापार संघ 297
अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् 35
अधिकोषण व्यवस्था 18
अधिनायकवादी पद्धति 250
अनाक्रमण संधि 98, 130, 271
अनिवार्य बचत योजना 78-80, 84, 124-125
अनुत्पादक व्यय 215
अफ्रो-एशियाई शक्तिगुट 13
अमरीकी गुप्तचर विभाग 156
अमरीकी फ्रेंड्स ऑफ इंडिया सोसाइटी 101
अर्थ क्रांति 92
अर्थशास्त्र 27, 31, 185, 190, 200, 226-227
अलगाववाद 168, 171, 287
अलाभकर जोत 255
अल्प-बचत 32
अविश्वास प्रस्ताव 89, 125
असम घुसपैठ 125

आ

आई.सी.एफ.टी.यू. 293
आत्मनिर्णय 170
आधुनिक विज्ञान 106
आधुनिकीकरण 250, 252, 259
आपातकालीन स्थिति 122-123
आयकर 150, 164-165
आयात लाइसेंस 79
आयुर्वेद 188
आर्थिक 29, 149, 161, 234, 250, 260, 263-264

इ

इंजीनियरिंग उद्योग 162
इंटरनेशनल कन्फेडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन 293
इंडिया गेट 180
इनकम टैक्स 73, 124
इलाहाबाद उच्च न्यायालय 284
इसलाम का राज्य 116

ई

ई.एम.एस. नंबूदरीपाद 147

ईस्ट अफ्रीकन ज्वॉइंट कमेटी 139

उ

उच्चतम न्यायालय 284-286
उत्तर-पूर्वी सीमांत 95
उत्तर प्रदेश सरकार 268
उत्तराधिकार 240
उत्पादन 30, 249-250, 256
उपनिवेशवाद 138, 247
उपासना पद्धति 54, 241

ऋ

ऋषि ऋण 35

ए

एंग्लीकन चर्च 50
ए.आई.आर. 180
एकात्मक वित्त व्यवस्था 263
एकात्म मानव दर्शन 197
एकात्म मानववाद 237
एकाधिकारवादी 105
एडमिरल लार्ड चैटफील्ड 12
एशियन रीजनल ऑर्गनाइज़ेशन 293

ओ

ओवर-ड्रा 29

औ

औद्योगिक क्रांति 103
औद्योगिक विकेंद्रीकरण 258
औद्योगीकरण 228, 236, 253, 257-258

क

कम्युनिस्ट पार्टी 2-3, 85, 118
कर-पद्धति 165
कराधान 18, 29, 61, 151, 291
कर्तव्यपरायणता 108
कर्बला की लड़ाई 55
कर्म का मूल्य 199
कल्चरल 50
कश्मीर 98-100, 140, 169, 171, 175-176, 182
कांग्रेस 4, 172, 179, 204, 206, 209, 211, 284
कामराज योजना 92-93, 145
कार्यकारी समिति 181
कुओमिंतांग 157
कृषि बीमा योजना 256
केंद्रीय भाषा 244
केन्या इंडियन कांग्रेस 110
कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय 131
क्षतिपूर्ति का सिद्धांत 235

ख

खाद्यान्न 163-164, 215, 226, 260, 287
खालसा पंथ 39
खेतिहर मज़दूर 256

ग

गंगा 51, 53-54, 194, 207
गवर्नर जनरल 160
गाली खाओ और प्यार करो 221
गुटमुक्तता 12-14

गुरु गोविंद सिंह 34, 39, 57, 112
ग़ैर-योजनापरक ख़र्च 149
गैरीबाल्डी 50
गोवंश-हत्या 256
ग्रामीण-ऋण-सर्वेक्षण 23
ग्रामोद्योग 259

घ

घृणा अभियान 271
घोषणा-पत्र 83, 139, 293

च

चंद्रगुप्त 51
चंबल-योजना 161
चतुर्थ योजना 215, 290-291
चिकित्सा शास्त्र 188
चिति 47-48, 231-232
चित्रकार 200
चीनी आक्रमण 6, 10-12, 14, 31, 59, 85, 95, 119, 135
चीन-नीति 14, 61, 156, 158
चेकोस्लोवाकिया 14

छ

छत्रपति शिवाजी 34, 57, 227
छुआछूत 189, 238, 239

ज

जखीरेबाज़ 224
जनमत संग्रह 170-171
जनसंघ 2, 16, 33-34, 59-62, 64-65, 78, 80, 83, 105-106, 109, 122, 125-128, 168-169, 174-175, 181, 209-214, 219, 229, 238, 241, 243, 246, 261, 265, 272, 274-277, 287, 289, 295-296
जमायत-उल उलेमा-ए-हिंद 299
जम्मू-कश्मीर 127, 140, 145, 171, 177-178, 181-182, 221, 287
जयप्रकाश नारायण 170, 178, 270, 300
जलियाँवाला बाग 39-40
ज़हरीली घास 67
जान फास्टर डुलेस 135
जॉर्च पंचम 180
जाह्नवी 53
ज्योतिर्लिंग 51

झ

झुनझुनवाला 52

ट

टी.टी. कृष्णामचारी 148, 213
टेलीस्कोप 186
टैक्स 18
ट्रेजरी-बिल 30

ड

डलहौजी 180
डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार 108
डॉ. पुरुषोत्तमदास कपूर 101
डॉ. राजेंद्र प्रसाद 34
डॉ. राममनोहर लोहिया 63
डार्विन 188

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी 34, 82, 169, 172
डॉ. संपूर्णानंद 52, 268
डी.आई.आर. 210
डेमोक्रेटिक 153

ढ

ढाका 111, 130

त

तमिलभाषी 292
तर्कशास्त्र 185
तिब्बत 14-15, 118-119, 249
तीसरी योजना 290
तुलादंड 225
तुष्टीकरण 7, 131, 141, 143, 210, 248, 270-271, 300
तृतीय वित्त आयोग 28
तेलंगाना का षड्यंत्र 118

थ

थियोक्रेसी 232

द

दक्षिण-पूर्व एशिया 99-100, 153, 180, 249
दत्तक-विधान 240
दान पद्धति 69
दार-उल-इसलाम 141
दिल्ली बुलियन 20
दीनदयाल उपाध्याय 101, 155, 166, 181, 272-273
देवनागरी लिपि 244
देवासुर संग्राम 52
देश-विभाजन 43
द्वितीय विश्वयुद्ध 12
द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत 178

ध

धनराज थापर 287
धर्म 55, 68, 108, 197-198, 200, 202, 231-234, 238, 244, 247, 264
धर्मनिरपेक्षता 58, 160
धर्मराज्य 232-233
धातु में विनियोजन 22
ध्येयवाद 108
ध्वजारोहण 111

न

नागरी लिपि 245
नागालैंड नीति 300
नाजी नेता हिटलर 130
नारी अवमानना 238
निजी पूँजी अर्थव्यवस्था 105
निरुद्योगिकीकरण 257
निर्यात 30, 32, 162, 252, 262
नीति-निर्धारण 251
नेति-नेति 275
नेहरू-लियाक़त-समझौता 93
न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी 237, 263
न्यूनतम साझा कार्यक्रम 64, 82

प

पंचतंत्र 73
पंचमहापातक 17

पंचमांगी 118
पंचवर्षीय योजनाएँ 93
पंचशील संधि 12, 93
पंथनिरपेक्षता 178, 211
पन्ना धाय 5
परंपरावाद 155
परमाणु नीति 289
परमार्थ भाव 190
परराष्ट्र-नीति 11-13
परस्परावलंबन 230
परिसंघ 166
पाकिस्तानी आधिपत्य 178
पादरी माइकेल स्कॉट 300
पाश्चात्य जगत् 109
पितृपूजा 207
पी.एस.पी. 64, 106, 119, 170
पुण्यभूमि 53-54
पुरुषार्थ 53, 58, 111, 201-202, 229, 231, 237, 265
पूँजीवादी व्यवस्था 77, 236
पृथकतावाद 60, 171
पोलिटिकल डायरी 1, 10, 20, 27, 92, 95, 98, 161, 213, 290
प्रकृतिपूजक 207, 300
प्रजातंत्रीय विरोधी दल 126
प्रजातांत्रिक व्यवस्था 205
प्रतिरक्षा परिषद् 27
प्रतिरक्षा मंत्रालय 96
प्रिवीपर्स 31
प्रौद्योगिकीय विपूँजीकरण 258
प्रौद्योगिकी विकेंद्रित उद्योगों 236

फ

फारमोसा सरकार 249
फासीवाद 104
फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स ए 151
फ्रांसीसी 239

ब

बंगाल की खाड़ी 7
बख्शी गुलाम मुहम्मद 272, 287
बर्मी सरकार 217-218
बेकारी 24, 149, 250, 255, 257-258, 260, 264
बेपटिस्ट चर्च 300
बेरोज़गारी 26, 291
बैंकों का राष्ट्रीयकरण 262
बौद्धिक वर्ग 42, 49, 66, 71, 86, 107, 183, 193, 203
ब्रह्म समाजी 206

भ

भगवा ध्वज 111
भस्मासुरी नीति 38
भारत-पाक मैत्री 152
भारत-पाकिस्तान 130, 166
भारतभूमि 5, 52, 54-55, 123, 239
भारत सरकार 12, 85, 96, 145, 151, 156, 166, 169, 172-213, 217-218, 221, 292, 297-300
भारत सेवक समाज 179
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 266
भारतीय जनसंघ 10-12, 34, 41, 109,

122, 125–128, 229, 238–239, 241, 248, 261–262, 264
भारतीय जीवन-दर्शन 236
भारतीय प्रतिनिधि सभा 11
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 159
भारतीय संविधान 170, 300
भारतीय संस्कृति 276
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन 249
भाषा अधिनियम 16
भाषायी साम्राज्यवाद 16
भृत्यवर्ग 37, 242

म

मजहबी राज्य 232
मत्स्य न्याय 188
महँगाई विरोधी आंदोलन 266
महामारी 264
महाराजा हरि सिंह 171
महाराणा प्रताप 34, 57, 195
माँ की पुकार 35
माइक्रोस्कोप 186
मातृभाव 46, 48, 231
मातृभाषा 246
मातृभूमि 2, 53–55, 87
मातृश्राद्ध 51
मानवतावाद 237
मार्केटिंग इकोनॉमी 77
मार्क्सवादी 103, 199
मासिक श्राद्ध दिवस 128
मिश्रधन का विनियोग 252
मुद्रास्फीति 22, 30, 80, 84, 242
मुद्रा स्फीतिपरक नियोजन 287
मुसलिम लीग 7, 118, 159–160, 178, 211, 220, 241
मूलभूत अधिकार 233, 237, 248
मूल्यवृद्धि 30, 149, 211, 215, 266, 287
मैजिनी 50
मोक्ष 52, 54, 202–203, 231

य

यज्ञकर्म 190
यतिराज योजना 92
यत् पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे 237
यथास्थितिवाद 106, 155
यहूदी 49, 55–56, 131
युगोस्लाविया 104
युद्ध और शांति 102, 247
युद्ध विराम रेखा 21, 100
यूनाइटेड किंगडम 283
यूरोप 49, 50, 68, 72, 102–103, 129
योगक्षेम 199–201
योजना आयोग 290–291

र

राजभाषा 35, 37, 39, 123, 244
राजस्थान सरकारी भाषा (संशोधन) विधेयक 268
राजस्व 17–18, 24, 28–29, 31, 78, 124, 150–151, 165, 291
राजस्व-घाटा 28
राजा कालस्य कारणम् 225
राज्य-व्यवस्था 235, 242
राज्यशास्त्र 190

रामराज्य परिषद् 127
राष्ट्रधर्म 278, 280
राष्ट्रपति शासन 169, 179, 273
राष्ट्रभाषा 37, 244
राष्ट्रमंडल सम्मेलन 220
राष्ट्रवाद 2-3, 50, 102-104, 106, 132, 184, 209, 212, 226, 240
राष्ट्रीय आय 22, 74, 257
राष्ट्रीयकरण 23, 105, 164, 215, 224-225, 251, 260, 262
राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति 264
राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोरचा 82
राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक विपक्षी दल 295
राष्ट्रीय सुरक्षा 3, 243, 258
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 34, 43, 58, 155
रिज़र्व बैंक 21-22, 262
रैयतवारी प्रथा 254
रोमन कैथोलिक 49

ल

लंका सरकार 292-293
लखटकिया राजा 87
लखनऊ विश्वविद्यालय 129
लद्दाख क्षेत्र 7, 178
लाल फीताशाही 134
लोकतंत्र 102, 104-106, 176, 230, 232-234, 236, 250
लोकतांत्रिक 102-105
लोक शिक्षा 247
लोक-संस्कार 247
लोकाधिकार 233

व

वर्षाकालीन अधिवेशन 124
वॉयस ऑफ अमरीका 93, 180
वास्तविक व्यय 30
विकासमान अंतरराष्ट्रीय व्यापार 251
विकासमान भाषा 244
विकेंद्रित अर्थव्यवस्था 236
विकेंद्रीकृत ईंट-भट्ठा उद्योग 162
विदेशी नीति 84
विदेशी प्रौद्योगिकी 263
विदेशी-मुद्राकोष 18
विपणन 253-254, 256
विमुद्रीकरण 218
विश्व परमाणु निशस्त्रीकरण 289
वेतन नीति 262
वैश्विक मानवाधिकार 293
व्यक्ति-स्वातंत्र्य 203
व्यापारिक संविदा (वायदा सौदा) 215

श

शंकराचार्य 52
शक्ति के बावन पीठ 51
शपथ दिवस 181
शरणार्थियों का देश 298
शांतिपूर्ण जन संघर्ष 181
शांति मिशन 300
शांति वार्त्ता 300
शास्त्री-अयूब मिलन 220
शास्त्री-सिरिमाओ समझौते 297

ष

षट्पदीवाद 203

स

संकल्प 43, 51, 122–123, 132, 197–198, 202, 250
संक्रामक रोगों की रोकथाम 264
संघ शिक्षा वर्ग 42, 49, 66, 71, 183, 193
संपत्ति का अधिकार 235
संपादकीय विभाग 159
संप्रदायवाद 69
संयुक्त–कुटुंब प्रथा 263
संयुक्त राष्ट्र संघ 214, 247
संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी 266, 295
संवैधानिक परिवर्तन 170
संवैधानिक संशोधन 209
सट्टे की प्रवृत्ति 252
सदर–ए–रियासत 145, 146, 177
सद्भावना मिशन 271
सनातन धर्म 110
समझौता–वार्त्ता 172, 261
समाजद्रोही 215
समाजवादी एकता सम्मेलन 63
समाजवादी पार्टी 64, 105, 106
समुच्चय–वाचक–संज्ञा 44
सरकारी राजस्व 164
सरप्लस वैल्यू 73
सर्व प्रभुता संपन्न 282
सर्वोच्च न्यायालय 281, 282, 283
सर्वोत्कर्षवादी 230
सहिष्णुता 34, 58, 211, 232, 233, 241
सामाजिक न्याय 103, 106
सामाजिक विभेद 242
सामाजिक सुरक्षा 237, 240, 263, 264
सार्वजनिक सेवा उद्योग 260
सीमा विवाद 85
सुरक्षा परिषद् 140, 141, 142, 168, 170, 176, 177
सैनिक गठबंधन 135
सोने के तस्कर–व्यापार 24
स्टाक की नीति 226
स्वतंत्र पार्टी 64, 105, 106, 148, 170, 174, 213, 214
स्वदेशी का मंत्र 249
स्वर्ण–नियंत्रण–आदेश 20, 21, 22, 24, 79
स्वर्ण–नियंत्रण बोर्ड 23
स्वस्तिवाचन 49

ह

हथकुटा 225
हल्दीघाटी 56
हाउस ऑफ़ कॉमन्स 283, 286
हिंदी और हिंदुस्तानी 35
हिंदुत्व 52, 53, 56, 57, 58, 108, 192
हिंदू दर्शन 57
हिमालय 53, 187, 239
हिस्लाप महाविद्यालय 113

□□□

परिचय

भूमिका लेखक

स्वामी गोविंददेव गिरि

महाराष्ट्र के अहमदनगर ज़िले में 1949 में जन्म। तत्त्वध्यान विद्यापीठ प्रमुख पांडुरंग शास्त्रीजी की देख-रेख में शिक्षा-दीक्षा। दर्शनशास्त्र में स्नातक के बाद काशी से दर्शनाचार्य। 35 वर्षों से श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, रामायण, महाभारत, ध्यानेश्वरी, योग वासिष्ठ आदि पर प्रवचन।

वह काल लेखक

डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् से सार्वजनिक जीवन का आरंभ। 1983-85 अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के पूर्णकालिक कार्यकर्ता रहे। 1988 में रामभाऊ म्हालगी प्रबोधिनी से जुड़े और महानिदेशक का दायित्व सँभाला। मुंबई विश्वविद्यालय से 2009 में पी-एच.डी. की उपाधि मिली। मराठी एवं अंग्रेज़ी में लेखन कार्य। 'बियॉन्ड बैलट्स' एवं 'एकाकी पूर्वांचल' पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति भा.ज.पा. के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा के सदस्य।

समर्पण परिचय लेखक

श्री राजीव रंजन गिरि

19 दिसंबर, 1978 को पूर्वी चंपारण (बिहार) में जन्म। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एम.ए. और एम.फिल.। दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच.डी.। दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कॉलेज में अध्यापन। गांधी दर्शन की पत्रिका 'अंतिम जन' के संपादक रहे। 'अथ-साहित्य : पाठ और प्रसंग', 'संविधान सभा और भाषा विमर्श', '1857 : विरासत से जिरह' सहित कुछेक पुस्तकें प्रकाशित। आलोचनात्मक लेखन के लिए विद्यापति सम्मान।

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

જાનેવારી તા. ૧૭ વાર મંગળ પોષ શુદી ૪ સંવત ૨૦૧૨

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

संघ का कार्य हिन्दू संगठन का है। भावात्मक हिन्दुत्व हमारे सम्मुख है। हिन्दू शब्द से ...

१. ज्ञान का लक्षण = एकत्व का बोध है; अनेकता का बोध - अज्ञान। एकात्मता का बोध कराने का प्रयत्न करना होगा।

अपने स्वयं में सबके लिये समान आदर होना चाहिये। जो बाध्य इनके पोषक न हों उन्हें हम व्यवहार से निकाल...

हिन्दुत्व के लक्षण सबमें समान रूप से मिलेंगे। भगवान का दर्शन सभी कर सकते हैं। सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है।

Import of ...
less than 18 months
total value of 4.3 m...
value of imports of ...
machinery in 1956
325 crores:
Some industries
licensed for a capa...
excess of the pla...
some have ... capa...
near the targets
for the end of the p...
These are supa...
rubber, tyres & t...
alcohol, soda as...
soda, refractor...
transmitter form...
and rayon fil...
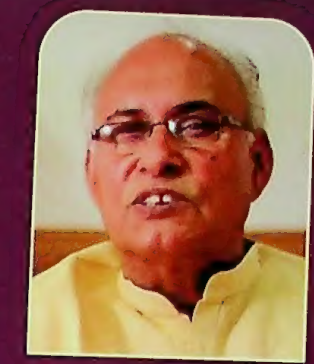
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

ISBN 978-93-86231-26-0

₹ 400/-